राधाकृष्ण-ग्रंथावली

पहला खंड

जिसमें

गोलोकवासी बाबू राधाकृष्णदास की कविताओं, लेखों, जीवनचरित्रों तथा नाटकों का संग्रह है।

संकलनकर्त्ता और संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथम संस्करण : १९३० [मूल्य ३)

निवेदन

गत ईसवी शताब्दी के अंतिम अंश मे हिंदी-साहित्य-सेवियों मे बाबू राधाकृष्णदास का एक विशेष स्थान था। उन्होने हिंदी-भाषा और साहित्य की जो उस समय सेवा की थी वह बड़े महत्त्व की थी। हम यह भी कह सकते हैं कि भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने जिस नीति का अवलंबन कर देशहितैषी कार्यों की ओर ध्यान दिया था उनकी उस परंपरा को बनाए रखने और उसी मार्ग पर अंत समय तक चलने की दृढ़ता बाबू राधाकृष्णदास ने दिखाई थी। पर अब इन महोदय को लोग भूलते जा रहे हैं। काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की सेवा में हम दोनों ने अनेक वर्षों तक एक साथ काम किया था अथवा मुझे इस बात के कहने मे अत्यंत आनंद और अभिमान होता है कि हिंदी की सेवा मे तत्पर रहने के लिये मुझे बाबू कार्तिकप्रसादजी खत्री निरंतर कहते रहते थे। वे नित्य नए नए उपायों और योजनाओं की ओर मेरा ध्यान दिलाते रहते थे, पर साहित्य-सेवा मे दीक्षा देकर मुझे अग्रसर करने का श्रेय मेरे मित्र बाबू राधाकृष्णदास को प्राप्त है। हिंदी पुस्तकों की खोज का काम करने तथा प्राचीन अनुसंधानों के पीछे पड़ने की ओर उन्होंने मेरी प्रवृत्ति को उत्तेजना दी और उसे सुव्यवस्थित मार्ग पर लगाया था। अतएव केवल मित्रता के ही नाते नहीं, वरन् उनका जो मुझ पर उपकार है उससे किंचित् मात्र भी उऋण होने के निमित्त मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूँ कि उनकी स्मृति तथा उनकी रचनाओं को, जहाँ तक मुझसे हो सके, स्थायी करने का उद्योग करूँ। इन्हीं कामनाओं से प्रेरित होकर मैंने राधाकृष्ण-ग्रंथावली को प्रकाशित

करने का आयोजन किया है। इसका पहला खंड तो अब प्रकाशित हो रहा है जिसमे उनकी रचित कविताओं, लेखो, जीवनचरित्रों तथा नाटकों का संग्रह है। दूसरे खंड मे उपन्यासो तथा आख्यायिकाओं का संग्रह रहेगा। इस दूसरे खंड के साथ मेरी इच्छा उनका जीवन-चरित्र लिखने की भी है।

इस संग्रह के प्रस्तुत करने मे पंडित केदारनाथ पाठक ने मेरी बडी सहायता की है अतएव उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूँ। साथ ही मैं काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का भी अनुगृहीत हूँ कि उसने उन सब पुस्तकों आदि को इस संग्रह मे सम्मिलित करने की अनुमति दे दी जिन पर उक्त सभा का स्वत्वाधिकार था। मुझे विश्वास है, हिंदी के प्रेमी पाठक इस राधाकृष्ण-ग्रंथावली का यथोचित आदर कर मेरे मित्र तथा हिंदी के एक प्रमुख सेवक की कृति और स्मृति को स्थायी करने मे मेरी सहायता करेंगे।

काशी | श्यामसुंदरदास

विषय-सूची

कविता

[पृष्ठ १—६८]

(१) मेकडानेल पुष्पांजलि ... ... ३—५
(२) विजयिनी विलाप ... ... ६—११
(३) पृथ्वीराज-प्रयाण . ... १२—१४
(४) भारत बारहमासा .. . १५—१७
(५) जुबिली . ... १८—१९
(६) देश-दशा . ... २०—२२
(७) छप्पन की बिदाई, नए वर्ष की बधाई .. २३—२४
(८) राम-जानकी २५
(९) प्रताप-विसर्जन . ... २६—३०
(१०) रहिमन-विलास .. ... ३१—६०
(११) विनय . ... .. ६१—६२
(१२) फुटकर कविता ... ... ६३—६६
(१३) सुनीति ... . ६७—६८

लेख

[पृष्ठ ६९—१५३]

(१) हिंदी क्या है ? ... ... ७१—८२
(२) मुसलमानी दफ्तरों में हिंदी .. ... ८३—९२
(३) होली है ... . ९३—९६
(४) कुछ प्राचीन भाषा कवियों का वर्णन ... ९७—१०२
(५) विक्टोरिया शोकप्रकाश ... ... १०३—११३

(६) पंच ... ... ११४—११६
(७) स्वर्ग की सैर .. . . ११७—१२४
(८) वर्तमान वाइसराय और गवर्नर-जेनरल राइट ऑनरेबुल लार्ड जार्ज नैथिनियल कर्जन आफ कैडेलस्टन ... . १२५—१३०
(९) भाषा कविता की भाषा ... . १३१—१४२
(१०) पुरातत्त्व ... . १४३—१५३

जीवन-चरित्र

[पृष्ठ १५५—५४६]

(१) वीरवर बाप्पा रावल .. ... १५७—१६७
(२) श्रीनागरीदासजी का जीवनचरित्र ... १६८—२१०
(३) कविवर विहारीलाल ... ... २११—२२५
(४) आर्य-चरित्र ... ... २२६—२७२
(५) ईश्वरचंद्र विद्यासागर ... ... २७३—२९५
(६) भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का जीवनचरित्र ... २९६—४२९
(७) सूरदास ... ... ४३०—४८७
(८) हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास ... ४८८—५४६

नाटक

[पृष्ठ ५४७—८१९]

(१) दुःखिनी बाला ... .. ५४९—५६६
(२) महारानी पद्मावती ... ... ५६७—६२९
(३) धर्मालाप ... . ६३१—६४१
(४) महाराणा प्रतापसिंह ... .. ६४३—७८५
(५) सती-प्रताप ... ... ७८७—८१९

गोलोकवासी बाबू राधाकृष्णदास

(१) मेकडानेल पुष्पांजलि

जय मेकडानेल अति उदार दीनन-हितकारी।
नीति-निपुन, समदरसी, प्रजापुंज-सुखकारी ॥
महा-अविद्या-तम-नासन मैं परम सहायक।
विद्या-वारिद बरसि हरसि शिच्छा-उन्नायक ॥
हतभाग्य देश तुव समय मैं बहु बिधि सुख संपद लह्यो।
जय जयति लाट प्रिय लाट जय हृदय खोलि सबहिन कह्यो ॥१॥

धन मेकडानेल लाट प्रजा के दुःख निवारे।
कचहरिया लीला सों सबके प्रान उबारे ॥
धन उनइस सौ सन धन धन यह मास एपरिल।
धन तारीख अठारह जन-हिय-कमल गए खिल ॥
जब लौं हिंदू हिंदी रहै यह शुभ दिन न बिसारिहैं।
मेकडानेल नाम पवित्र यह नित सादर उच्चारिहैं ॥ २ ॥

शिच्छा मै ह्याँ के वासी सबहिन ते पाछे।
उरदू सीखै कौन न जानै हिंदिहु आछे ॥
दारिद बस अँगरेजी उरदू पढ़ि जु सकैं नहि।
हिंदी सो न अदालत के कछु कारज निकरहि ॥
तासों विद्या सो हीन रहि दीन दुखित क्लेसित रहैं।
सुनि कै पुकार सो दुख हर्‍यो तासों सब जय जय कहैं ॥ ३ ॥

इक तौ महा कराल अकाल सतावन आयो।
दूजे ज्वाला प्लेग चारहू दिसि धधकायो॥
महा अराजकता राजत सब देस दुखारी।
पै तुम धीरज सहित देत सबही दुख टारी॥
केवल न विपति ही हरत तुम नव शिच्छा बिस्तारिकै।
रच्छत सब भाँतिहि निज प्रजा अति सनेह हिय धारिकै॥ ४॥

प्रभो! हमारी दसा छिपी नहिं तुमसों नेकहु।
पुनि पुनि कहि कै तुम्है कहा हम देहिं दुःख बहु॥
हरौ पीर हे बृटिश वीर! अति धीर न्यायनिधि।
विद्या कला प्रचारि देहु सुख हमै सबै बिधि॥
इक नाथ तिहारी कृपा ही हमकों धीरज खंभ है।
रच्छौ, सिच्छौ सब दुख हरौ तुम्हरोही अवलंब है॥ ५॥

तुम समान प्रभु कबौं न अबलौं मिल्यो रह्यो है।
जे जे सुख तुव समय लहे नहि जात कह्यो है॥
रहै सदा तुम्हरी छाया हम सीस विराजत।
तुव अनुशासन पाइ सबै दुख हमरे भाजत॥
जद्यपि तुव अवधि बढ़ी तऊ जब तुव गमन बिचारही।
थहराइ उठै हिय सुमिरि तुव गुनगन धीर न धारही॥ ६॥

निसि दिन वा करुणामय सों माँगै सरसाए।
चिरजीवी तुम होहु कुशल सों सदा सुहाए॥
कीरति देवी सदा अचल तुव संग विराजैं।
विजय-लच्छमी चरनन सों लिपटी ही भ्राजैं॥
तुव सुजस-घटा छाई निरखि, मन मयूर हम सबन के।
नाचैं सनेह युत अनँद भरि, बिसरि सबै दुख भवन के॥ ७॥

कौन वस्तु हम दीन जगत मैं ऐसी पावैं।
तुव चरननि धरि भेट हृदय अभिलाष पुजावैं ॥
भक्ति रत्न करि यत्न हृदय मे धरयो सोहायो।
सोई अमोलक रत्न जत्न सो सन्मुख लायो ॥
हे दीनबंधु, करिकै दया ताकों सादर लीजिए।
हम प्रजावृंद के हृदय को अति संतोषित कीजिए ॥ ८ ॥

[१८९७ ई०]

---

(२) विजयिनी विलाप

अरे आजु चारहु दिसा छायो कहा विषाद ।
नर नारी व्याकुल फिरत पूरित आरत नाद ॥
श्याम ध्वजा फहरात क्यो जित तित लखियत आज ।
श्याम बसन धारन कियो क्यो सब राज-समाज ॥
मुख मलीन अति छीन दुति क्यों सब लोग लखात ।
करिकै कृपा बताइए मेरो हिय अकुलात ॥

'कहा तुम्हें नहि खबर' खबर अनरथ की आई ।
भारतेश्वरी विजयिनी यह जग छोडि सिधाई ॥
तोरि जगत सो नेह मोरि मुख जग के सुख सों ।
छोरि सबै धन धान्य बोरि जग सागर दुख सों ॥
बिमल कीर्ति फैलाइ, लोक करिकै यह निज बस ।
गई करन वह लोक विजय फैलावन निज जस ॥

मातृहीन सब प्रजावृंद करि, जगत रुलाई ।
मातु विजयिनी हाय हाय सुरलोक सिधाई ॥
भई अनाथिनि दिग दिगंत लौं पृथ्वी सारी ।
सब भूमडल आजु शोक की मूरति धारी ॥
हाय दया की मूर्ति हाय विकटुरिया माता ।
हा ! अनाथ भारत को दुख मे आश्रयदाता ॥

दीन करुन धुनि यही चहूँ दिसि गूँज रही है ।
उदासीनता महा बेबसी बरसि रही है ॥

हैं हैं कहत कहा अरे सोंचहि फूटे भाग।
मातु विजयिनी ने कहा छाँड्यो सुत-अनुराग॥
जासु दया-पूरित हृदय लखि जन मुखहि मलीन।
पिघलि चलत हो धीर तजि मेटन को दुख दीन॥

सो किमि गही कठोरता, लखि निज प्रजा-समाज।
दीन दुखी बिलखत गई कैसे तजि कै आज॥
निज के दुख तृन सम तजति लखि कोउ प्रजा मलीन।
सो आश्वासन देत किन सबहि प्रजा लखि दीन॥
अहह! दैव कीनी कहा तोहि दया नहि नेक।
क्यों तुम नित प्रति दीन को देत कलेस अनेक॥

तापैं भारत पै कछू तुम्हरो कोप बिसेख।
जबहि यासु कछु दिन फिरत तबहि सकत नहि देख॥
बहु दिन के बहु दु ख सहि जबहि विजयिनी गोद।
हतभागी भारत लह्यो जबहि कछू हिय मोद॥
तबही तुम निर्दय दई सुख की सो आधार।
हरि लीनी अनयास ही बोरि दु ख मझधार॥

क्यों तुमको न्यायी कहत क्यो दयालु तुव नाम।
न्याय-रहित निर्दय अतिहि तेरे सबही काम॥
अथवा भारत के विषय भूलत तुम निज बान।
भेद बताओ बेगही व्याकुल अतिसय प्रान॥
दीनदयाल दयानिधान हरि भारत सो क्यों रूठे।
निज अपराध औरर पै डारत न्यायी भए अनूठे॥

बिनु तुव अनुशासन इक पातहुँ डोलि सकत नहि प्यारे।
फिर क्यो ताको फल भोगत ये भारत प्रजा बिचारे॥

कहो कौन के कहे महाभारत में सबहि लराई।
भारत को निर्जीव कियो तुम सबै भाँति जदुराई ॥
बचे बचाए कों प्रभास थल आपुस में कटवाई।
हा हा! भारत को अनाथ करि आपहुँ गए सिधाई ॥

हा! कबहूँ वे दिन फिर ह्वैहै वह समृद्धि सुख सोभा।
कै अब तरसि तरसि मसूसि कै दिन जैहैं सब छोभा ॥
कहाँ परीच्छित कहँ जनमेजय कहँ विक्रम कहँ भोज।
नंद-वश कहँ चद्रगुप्त कहँ हाय कहाँ वह ओज ॥
काल-बिबस जौ गए नृपति वे तौ क्यो उनके बालक।
भए न उनके सम, काकी आज्ञा उपजे कुल-घालक ॥

पृथ्वीराज जयचद कासु प्रेरणा सो बैर बढ़ाई।
आपुस मैं कटि मरे विदेशी यवनहि लियो बुलाई ॥
वाही दिन भारत स्वतंत्रता जड़ मैं तेल पिलाई।
बैठे आप तमासा देखत, फिरैं सबै बिलखाई ॥
मथि लीने सब सहज प्राकृतिक गुण भारतबासिन के।
रहि गए सीठी छाछ सदृश ये दर दर चुनते तिनके ॥

अकबर जहाँगीर से शाहन को किन राज दिवायो।
होनहार दारा शिकोह कों क्यो हाथी भडकायो ॥
आपुस के झगडे बढाइ क्यों कियो अराजक देशहिं।
दीन प्रजा दुख भार दुखित ह्वै कहँ लौं सहै कलेशहि ॥
ऐसे मैं करि कृपा भेज न्यायी अँगरेजहिं राजा।
सूखत धान अमृत बरसा सी किए कछुक सुख-साजा ॥
इतनी कसर कहो क्यों राखी जासों सब दुख भाजत।
महरानी क्यों इतै आइ नहि भारत माँहि विराजत ॥

निज नैननि लखि निज रैयत दुख दया हृदय उपजावति ।
दारिद फलइ अविद्या दुख को भारत सो भगवावति ।।
भला सोऊ नहि सही रहति जीवित जोपै महरानी ।
तऊ उतहि सों बैठि हरति दुख बरसि सुधा सम बानी ।।
सोऊ सही गई नहि तुमसो तिनको हूँ हरि लीनो ।
अहह ! दैव निर्दय तुम अतिसय महा कष्ट यह दीनो ।।
तिरसठ बरस जासु छाया सुख कीनो भारतबासी ।
ताकों अनायास हरि लीनी सब कछु आसा नासी ।।
रे बीसवी सदी तेरो पैरो कैसो जग आयो ।
या बसुधा को अमल चंद्र हरि चहुँ दिसि तम फैलायो ।।

जाको प्रताप छायो दिगत ।
जाके प्रताप बसुधा कपंत ।।
जो अबला-कुल मे जनम लीन ।
अतिसय सबलन को जेर कीन ।।
जाके प्रताप दिनकर डरात ।
दिन रहत सदा नहि होत रात ।।

जाको मुख ताकत अति ससक ।
महिपाल जगत के मनहुँ रक ।।
जाको प्रताप सागर तरग ।
लै करत जगत मैं नाच रग ।।
फहरात विजय ध्वज अति उतग ।
लखि लखि सब अरि हिय रहत दग ।।
सहि सकत न जासु प्रताप दाप ।
जिमि हरि पद अग्गो न जगत नाप ।।

जल पियत सिंह अरु अजा साथ ।
विद्युत ठाढी जहँ बाँधि हाथ ॥
जा सम न और तिय सुनी कान ।
जनमे न जगत नर जा समान ॥

जाकी न दया को कहूँ अंत ।
लहि जासु छाँह सब सुख बसत ॥
जो जीव मात्र पै करत प्रीत ।
मनु निज कुटुंब सम सबै मीत ॥
सुनि जासु सुधा सम मधुर बैन ।
सब प्रजापुंज अति लहत चैन ॥

अति कृपा प्रेम भरि जासु दीठ ।
लखि, हरत प्रजा के दुखहिं नीठ ॥
सो अमित गुननि की रासि मात ।
हा हा ! बिनु जीवन है लखात ॥
तजि सबै दया अरु मोह हाय !
सुरलोक गई कैसे सिधाय ॥

तजि अखिल भुवन सागर अगाध ।
भुव तीन हाथ कीन्ही समाध ॥
हा हा ! यह दुख नहिं सह्यो जात ।
चहुँ ओर यहै धुनि है सुनात ॥
हा मातु ! हाय हा मातु हाय !
तजि नेह कितै तू छिपी जाय ॥
बोलत न हाय क्यो निठुर होय ।
देखौ न पुत्र तुव रहे रोय ॥

कहँ गई तुम्हारी दया माय।
किन लेत दुखित सुअ. हिय लगाय॥
हा हा! विधना तुम भए बाम।
मैया ने प्रीति तजी ललाम॥

हैं सुने जगत बहु पूत ढीठ।
पै तजत न मैया प्रीति नीठ॥
करि अबस माय-सुत दिय छुडाय।
तो सो न निठुर बिधि कछु बसाय॥

यह मानी इक दिन अवसि जग मैं मरनो होय।
पै निज स्वारथ हेतु लगि धीर धरत नहि कोय॥
नहि संसय इननैं लह्यो पूर्ण आयु सुखपूर्ण।
पै निज स्वारथ को सुमिरि होत हृदय अति चूर्ण॥
अस्तु न कछु बस आपनो भगवत इच्छा माहि।
तासो करि संतोष अब यह माँगत प्रभु पाहि॥

कीरति बिमल सदैव जगत मैं अविचल राजै।
परमातमा समीप पवित्रातमा विराजै॥
रहै वंस मैं राज लच्छमी नित थिर होई।
रहै प्रजा नित सुखी दुखी जग होइ न कोई॥
तुव असीस या देस को दुख दारिद सबही बहै।
उन्नति गौरव सब पूर्व सम यह भारत फिर सो लहै॥

[सरस्वती भाग २]

(३) पृथ्वीराज-प्रयाण

जननी हमैं सीख अब दीजै ।
परम कुपूत पूत तेरो यह ताहि बिदा अब कीजै ॥
पूत कुपूत होत बहुतै पै होत कुमाता नाही ।
बरु कुपूत पै अधिक मातु रुचि होतै रही सदाही ॥
करिकै यहै भरोस मातु माँगत तुम पै कर जोरे ।
छमियो सब अपराध हमारे पुत्र-सनेह निहोरे ॥

करिकै बहुत साध जनमायो बहु आसा करि पोष्यो ।
राजछत्र दै मान बढायो सबहिँ भाँति संतोष्यो ॥
पै या भाग्यहीन नै माता ! कोउ आसा न पुरायो ।
केवल बोझ भयो तुव ऊपर दिन दिन अधिक सतायो ॥
रक्तप्रवाह बहाइ, जीति बहु देस, छत्र सिर धार्‍यो ।
राज बढावन लोभ मातु हम देश-बंधु बहु मार्‍यो ॥

सोइ सब पाप आइ सिर नाच्यो छलियन के छल हार्‍यो ।
हाय मातु ! तोहि दै मलेच्छ कर चहत बिदेश सिधार्‍यो ॥
परम पवित्र शस्य-धन-पूरित रत्नमई सुखदाई ।
जासु अनूप रूप पै सुरगन रहत सदा ललचाई ॥
रही अनादि काल सों पालित जो आरज-भुज-छाहीं ।
ताहि अधम अति भाग्यहीन हम राखि सके हठ नाहीं ॥

मातु ! बहुत सुख पायो तुम मम पुरुषन के आधीना ।
अब वह सुख सपने से ह्वैहैं हाय दैव ! कह कीना ॥

यद्यपि हम सबही बिधि दोषी लग्यो कलंक हमारे।
पै निर्दोष मातु सब भाँतिहि जौ जिय न्याय बिचारे॥
अपुनेहि भाई बंधु आपुही करैं जो छल अरु द्रोहा।
तौ रच्छा ह्वै सकै कौन बिधि जौ बिधिही बुधि मोहा॥

ताहू पै निज भुज प्रताप दुष्टन को दियौ भगाई।
छली चोर छल सों जीते याकी नहि हमैं हँसाई॥
होनहार जो रह्यो भयो, अब सोच किए फल नाही।
मातु बिदा अब देहु हाय! बिछुरत तुव पद-नख-छाही॥
पुण्यभूमि मैं जनमि हाय! अब मरन चल्यो मरु देसा।
आर्य्यध्वजा दै शत्रु हाथ मैं यह अति हाय कलेसा॥

अपुने किए कर्मफल भोगन मैं कछु दुख मोहि नाही।
पै जननी तुव भावी दसा विचारि हृदय फटि जाही॥
ये देवालय, वेद शास्त्र ये, यह गो-ब्राह्मण-पूजा।
यह पवित्रतम धर्म्म-भाव जग मैं न जासु सम दूजा॥
हाय! महाद्रोही मलेच्छकर परि सब कलिषुत ह्वैहैं।
पाप-ताप-पूरित भुव करिकै घोर यत्रणा दैहैं॥

जाकी विद्या कला और कौशल की छटा लुभाई।
इकटक देखत रहत जगत मोहित ह्वै सुधि बिसराई॥
होइ यवन-पद-दलित सोइ सब माटी ही ह्वै जैहैं।
चारहु दिसि मूढ़ता बेबसी कछु दिन माँहि लखैहैं॥
जा भारत प्रताप दिसि लख जग चख चकचौंधी लागे।
हाय! कहा सो लुटिहैं पद-तर सोचत ही बुधि भागे॥

ऐसे करत तर्क व्याकुल ह्वै कंठ रुद्ध ह्वै आयो।
'चल काफिर क्या रोता है' इक यवन ढकेलि सुनायो॥

गिरत सम्हारि सचेत होइ कर जोरि जननि पग लागी।
देश बंधु दिसि हेरि बचन बोले आरत-रस पागी॥
भैया! मैया दै मलेच्छकर हम तौ जात बिदेसा।
तुम रच्छा करिहौ जहँ लौ बस होइ न याहि कलेसा॥

जद्यपि पराधीन भए पै जौ आत्मपनौ न बिसरिहौ।
धर्म, ऐक्य, विद्या अनुसरिहौ तौ अरि-सीस बिदरिहौ॥
जैसे भई दसा यह सो तुम निज नैननहि निहारौ।
दूर बहाइ खोट सो इक ह्वै भारत मातु उबारौ॥
जिनि भूलौ निज पुरुषन के गौरव की भ्रात कहानी।
सिमिटि शत्रु-बल मेटि उबारौ भारत भुव सुख-खानी॥

सुनत वचन ये म्लेच्छ सैन चहुँ दिसि सो गरजन लागी।
मुसुक बाँधि भारत-गौरव कों भारत सो लै भागी॥
चिर स्वतत्रता चिर गौरव चिर सुख छन माँहि बिलाई।
बँधि चिर-दिन दासत्व-शृंखला, भारत भुव बिलखाई॥
दीनबंधु निज बिरद सम्हारौ दीन दुखित दुख हारौ।
हे भारत भुवनाथ हाथ गहि भारत भूमि उबारौ॥

[सरस्वती भाग २]

(४) भारत बारहमासा

लाग्यो असाढ़ सुहावना सब देश मिलि आनँद करैं ।
यूरप अमेरिक फ्रास जरमन मोद जिय मे नहि धरैं ॥
एक हम अभागे देश भर कै बैठि के रोवत रहै ।
नहि काम कोउ करनो हमै बस व्यर्थ दिन खोवत रहैं ॥ १ ॥

आयो सुसावन मन बढ़ावन सबहि के आनँद भयो ।
गरजन लगे नभ चमकि बिज अँधियार चारहु दिसि छयो ॥
सो चमक गरज गँभीर मोकहँ अतिहि हाय डरावही ।
भए नारि हम डरपत रहै धीरज न हिय मे लावही ॥ २ ॥

भादो लग्यो आधो भयो मन कौन बिधि जीवन धरै ।
इक तो रह्यो अँधियार मो मन और चहुँ दिसि घूमरैं ॥
जहाँ बोलते दादुर पपीहा मोर सब मन मोहते ।
अब रटत आठहु जाम उल्लू अतिहि सुंदर सोहते ॥ ३ ॥

आयो कुआर तुषार लाग्यो पास कपड़ा हू नही ।
जब देहिँ भिच्छा यूरपी तब काम कछु चलिहै सही ॥
अब और कछु बाकी नही इक नामही बस बचि रह्यौ ।
करि श्राद्ध पितर की याद करि अँग अंग शोकानल दह्यौ ॥ ४ ॥

कातिक पुनीत लग्यो नहान दीपावली हू आ गई ।
करि याद पिछले दिनन के वे सुख सबै आनँदमई ॥
अब कहाँ धन-तेरस रह्यौ बचि हारि जूआ-मे गए ।
अब बारि कैं तन आपुनो दीपावली हमही भए ॥ ५ ॥

अँगहन महीना गहन सों लगि नास हमरो सब भयो ।
वह तेज वह उजियार सबही एक छिन मे नसि गयो ।।
अचरज ! भए गोरे सुराहु औ चन्द्रमा "काला" भयो ।
अब भीख माँगत देश सबही दान मे धन बल गयो ।। ६ ।।

अब पूस आयो रूस आयो सुनत जिय औरहु जरयो ।
थोरो बहुत जो कछु बच्यो इन आपनो सोऊ हरयो ।।
जानत नही क्यो रूस बैठे श्यामसुंदर मोहना ।
भए हूस हम खँडहर भयो सब देख सुंदर सोहना ।। ७ ।।

माघ मास बसत आयो हम बसंत निजै भए ।
खोइ सब धन मान विद्या फूलि कै उमगे नए ।।
पतझार धन सब होइगो अरु पीयरे हमही भए ।
अरु आम से बैारे हमी दुख रोग चारहु दिसि छए ।। ८ ।।

फागुन लग्यो आगुन लग्यो हिम आइ होली सिर चढी ।
लहू टपकन लगे आँखन मनु नदी रँग की बढ़ी ।।
रह्यो जो कछु बच्यो थोरो सोऊ सब इकठा करयो ।
झोकि होलिका मे दयो तेहि एक छिन मे सब जरयो ।। ९ ।।

चैत लाग्यो चैन नहि जिय तनिक हू अजहूँ भयो ।
बीरता साहस पराक्रम द्रव्य सबही नसि गयो ।।
अब बच्यो नाही पास कछु सब खोइ बैठे हाय हम ।
जानौं नही अब रह्यो का जासों अजहुँ नहिं लेत जम ।। १० ।।

वैशाष मे ग्रीषम लग्यो गरमी चहूँ दिसि छै गई ।
का करौ कैसे जीव राखौ या दुःख तन सब नै गई ।।
मोहि छोड़ि करुनानाथ हरि नहि जानिए कितही गए ।
भजि भूत प्रेतक सीतलै वैशाख-नंदन हम भए ।। ११ ।।

जेठ मे दूनो भयो दिन कटत कोऊ बिधि नही ।
जग ढूँढि डाल्यो मिल्यो नहि साचो कोऊ साथी कही ॥
ग्रीषम जरावै तनहि मन को हाय शोकानल दहै ।
हाय कोउ नहि मीत अपु मन बेदना कासो कहै ॥१२॥

इमि रोइ बारह मास जिय भरि हारि कै चुप ह्वै रह्यो ।
समुझि अपुनो मीत भल सतोप अति गाढे रह्यो ॥
राज धन ऐश्वर्य बल सब भाँति सो भूलत भयो ।
हाय आपुहि भूलि कै यह दास भारत बनि गयो ॥ १३ ॥

[भारत-जीवन १८६४]

(५) जुबिली

कोटि कोटि सुरराज मुकुट लुंठित जा पद तर ।
जासु नयन की कोर सदा जोहत ब्रह्मा हर ॥
पै अपनी सत्ता नरपति मैं दिखरावन हित ।
रहत युधिष्ठिर को आपहु रुख जोवत ही नित ॥
सोइ भक्तबछल करुणायतन यादवपति मंगल करहि ।
चिरविजयिनि श्रीविकटोरिया भारत भुव आनँद भरहि ॥ १ ॥

परम दुःखमय तिमिर जबै भारत पैं छायो ।
गृह-विछेद, बहु खड राज्य, सब प्रजा सतायो ॥
तबहि कृपा करि ईश बृटिश सूरज प्रगटायो ।
जिन उजरत करि कृपा बहुरि यह देश बसायो ॥
सोइ बृटिश वंश उज्ज्वल करन विकटोरिया प्रकाश भो ।
आनंद छायो सब देश मैं अरु दुख तिमिर विनाश भो ॥ २ ॥

हे जननी तुव हृदय पुत्र-वत्सलता-पूरित ।
पिघलि चलत जब लखत प्रजागन दुखित विसूरित ॥
अतिहि कराल अकाल फँसे लखि प्रजा दुखारी ।
वाक्य-दान, धन-दान, किए सब देश सुखारी ॥
[illegible] निधि मेकडोनेल प्रभु डूबत सों रच्छा करी ।
काल के गाल सों प्रजा कृपा करि उद्धरी ॥ ३ ॥

तुव शासन के समय जगत जो उन्नति पायो।
ज्ञान, विज्ञान, कला कौशल कल, जो प्रगटायो॥
जैसे कवि, पंडित, ज्ञानी, जनमे एहि अवसर।
राज्यनीति, रणरीति, कुशलता, फैली भुव पर॥
जो कबहुँ सुनी नहि कान सों रवि-रथ हू थिर ह्वै रह्यो।
या साठ बरस के बीच मे सो सुख संपति जग लह्यो॥ ४॥

[प्रीति-कुसुमाजली १८६७]

(६) देश-दशा

फूले कास आस वर्षा की टूटी, पछवाँ वाय बही।
स्वच्छ हुआ आकास चिलकती धूप चार दिस छाय रही॥
पहिली वर्षा पाय खेत मे पौधे जो थे हरखाए।
हाय धूप की तेजी से सो जाते है अब मुरझाए॥

कर कर आस किसानों ने जी जान लगाकर बोए थे।
सहकर धूप जेठ की चिल्ला बीज पास के खोए थे॥
सहैं आप दुख पेट जरावें जिमीदार का पोत भरें।
तिस पर मारी जाय फसिल तो कहो क्यों न बेमौत मरें॥

संबत तिरपन के अकाल मे टूट चुकी थी प्रजा सभी।
परै जो छप्पन मे भी टोटा पनपैंगे फिर नहीं कभी॥
संबत छप्पन के फल सुन सुन उड़े होश थे पहिले से।
राजा प्रजा सशंकित थे औ सबके जी थे दहले से॥

जो वह बात हुई सच्ची तो रहा ठिकाना नहीं कहीं।
तो गारत यह आरत भारत होगा कुछ संदेह नहीं॥
पांचाल, मद्रास, बंबई, राजस्थान आदि की ओर।
तरस रहे असाढ़ ही से, पर बूँद पडी नहि कोई ठौर॥

कौन नाज का कहैं ठिकाना कौन घास औ चारे का।
जल का टोटा, प्रान बचै क्यो जल बिन हाय बिचारे का॥
दीनबंधु करि नेह मेह आनन्द से जो तुम बरसाते।
हम भी जीते सुख से खाते उनको भी कुछ पहुँचाते॥

सहते सहते दु:ख जरजरित होय रहे हैं हम सब हाय ।
जीवन-धन ! जीवन बिनु मारौ तो जीवन क्यों रहै बचाय ।।
नि:सदेह भूलकर तुमको नित नित पाप कमाते हैं ।
धरती माता को कुपूत हम बोझ से सदा दबाते हैं ।।

पर हो खेल कूद मे मायल बालक जो अघ करते है ।
तुम्ही कहो मा बाप कभी भी सूली पर ले धरते हैं ।।
जगतपिता, जगजीवन, जगनायक, जगस्वामी होकर भी ।
जगजीवन अपराध देख जीवन न देव, है उचित कभ' ।।

त्राहि ! दयानिधि करुणासागर त्राहि दीन के हितकारी ।
बहुत भई अब द्रवौ नाथ ! नवनीत प्रिया गिरिवरधारी ।।
सुनत बचन आरत दुखियन के दयासिन्धु रुक सकै नहीं ।
होय दयार्द्र तुरत दिया है सब अपराध बहाय यही ।।

लगी झकोरन पुरवैया बादल भी कुछ कुछ दिखलाए ।
गई आस कुछ बँधी फेर कर मुरझाए चित हरखाए ।
लगी टकटकी बादल के दिस, वह आए घन, वह आए ।
वह बिजली चमके घन गरजे, वह देखो बादल छाए ।

हाय ! हाय ! यह बादल तो उड करके निकल गए उस ओर ।
आँखें पथरा गई न बरसे क्यों तुम ऐसे भए कठोर ।
मरे तो आप हैं हम सब क्यो मार रहे हौ तरसाकर ।
अब तो दया करो दुख नासो, सरसाओ कुछ बरसाकर ।।

बोल उठा एक, मीठी सोंधी लपक इधर से आती है ।
इठला इठला हवा और कुछ ठंढी खबर सुनाती है ।।
फीसी भी कुछ पड़ी न घबडाओ पानी भी आता है ।
आनँदघन कर कृपा तुम्हारे सब दुख दूर बहाता है ।।

जाते, आते, तरसा सरसा, कर निरास, दे आस कभी।
हँसा, रुला, गाली खा, बिनती करा, हरा दुख अन्त सभी ॥
वह बरसे, सरसे, तरसे जिय सरसे सुख परसे सबही।
झर से निकल सके नहि घर से, हरसे नर नारी सबही ॥

सूखत धान परा पानी सब धरा हरष के फूल उठी।
दीन किसान प्रसन्न अन्न अब पावैंगे दो चार मुठी ॥
धन! धन! दीनदयाल तुम्हारी दया का पारावार नहीं।
कर दिया लहर बहर छिन भर में रहा न दुख का नाम कहीं ॥

ठहर गई बाजार, दहल गए निठुर सभी गल्लेवाले।
रह गए लोग लोभ सब बह गए, भए अकाल के मुँह काले ॥
पर जब दशा और प्रांतो की याद करै जी कांप उठै।
दीनानाथ! दीन जन पर क्यों रह रहकर तू हाय रुठै ॥

प्रभो दीन भारतवासी हम, तुम बिनु नहि अवलब कहीं।
तुम जो दया दीठ नहि देखो, मरैं सभी संदेह नहीं ॥
नाम दया चित धरो, हुई अब बहुत, हरो दुख के रासी।
कृपा वारि सींचो भारत भुव, सुख पावैं भारतवासी ॥

[भारतमित्र १८६८]

---

(७) छप्पन की बिदाई, नए वर्ष की बधाई

दीन, दुखी, आरत विपत्ति के, मारे भारतवासी ।
सहमि उठे सुनि कै आगम छप्पन की छई उदासी ॥ १ ॥
पंडित कहैं महाभारत के ग्रह सब एकत आवैं ।
भारत मे भारत मचवावैं महाप्रलय घहरावैं ॥ २ ॥
यूरुप के गणितज्ञ कहैं, भुम्र का अंतिम दिन आवै ।
नभ तें रीझि प्रकृति देवी नक्षत्र-माल पहिरावै ॥ ३ ॥
तिरपन, निरखि प्रतच्छ 'पेशखीमा' की विकट अवाई ।
निहचय भयो भविष्य वाक्य को, मुँह पर उड़ी हवाई ॥ ४ ॥
घोर अकाल प्लेग की ज्वाला, भारत जारन लागी ।
राजा प्रजा त्रस्त भए डोलै सबन धीरता भागी ॥ ५ ॥
व्यापारी व्यापार बन्द करि धनी सचि धन राखे ।
लौटि प्रवासी निज घर आवै धुकुर पुकुर हिय माखे ॥ ६ ॥
एक वाक्य ह्वै सबहि पुकारैं हे करुणामय स्वामी !
रच्छौ नाथ ! विपति सब टारौ हे प्रभु गरुडागामी ॥ ७ ॥
जदपि नाथ की कोप दोठि लहि निज कुकर्म फल पाई ।
सहस बरस सो दीन हीन भारत जन रहे बिलखाई ॥ ८ ॥
तदपि आहि निज लीला-थल नाते तौ दया विचारौ ।
हे क्रीडामय ! निज स्वभाव तजि अब कै हमैं उबारौ ॥ ९ ॥
यों बिलखात सहत दुख नाना छप्पन जू हू आए ।
राम राम करि विजय-दशमि लौं सब त्योहार मनाए ॥ १० ॥
कातिक लाग्यो सब सुख भाग्यो कठिन काल नियरायो ।
लगी चटपटी सबके जिय मे सबको मुख कुम्हिलायो ॥ ११ ॥

कातिक इतै, नवंबर उत कोउ भाँति कुशल सों बीत्यों ।
बहुरे प्रान सबनि के मानो काल व्याल सो जीत्यो ॥ १२ ॥
जद्यपि परलय भई न भारत रक्त नदी सो न्हायो ।
तदपि कराल अकाल, प्लेग ने अतिसय प्रजा नसायो ॥ १३ ॥
चलित चलावत पाथर बरसि फसिल की करिकै ख्वारी ।
आश मूल निरमूल कियो, छप्पन सब बिधि दुखकारी । १४ ॥
तापै, राजा के चिंता सों चिंतित भारतवासी ।
भूलि पेट-ज्वाला, निद्रा तजि, निसि दिन रहे उदासी ॥ १५ ॥
भारतेश्वरी माता को चिंतित मुख लखि कुम्हिलानो ।
भक्ति-भाव पूरित भारत हिय फाटि हाय बिलगानो ॥ १६ ॥
यों सबत छप्पन सताइ पतझार संग ही भाग्यो ।
परम सुखद बसत आगम लहि सबको मन अनुराग्यो ॥ १७ ॥
एहि अवसर अतिसय आनँदमय विजयिनी विजय सुनाई ।
सूखत धान परो पानी जनु हियक्यारी लहराई ॥ १८ ॥
कोउ कोउ भाँति चलो भैया छप्पन की भई बिदाई ।
नए बरस की आओ हम सब हिलि मिलि देहि बधाई ॥ १९ ॥
होय परम सुभ यह संबत मेरे दुख सबै नसावै ।
प्लेगहि मारि अकालहि जारि जुद्ध ज्वालाहि बुझावै ॥ २० ॥
दयासिंधु ! जय दीनबंधु जय ! जय भारत हितकारी ।
तुम्हरी कृपा लहै सुख संपति नित यह प्रजा तुम्हारी ॥ २१ ॥
[सरस्वती भाग १]

———

(८) राम जांनकी

(चित्रकूट)

कहो पिय साँचे काके बैन ?
तुम भाख्यो घर रहौ जहाँ है सबही विधि सुख चैन ॥ १ ॥
यह मन्दाकिनि तीर गिरि गुहा यह सुख मन्द समीर।
यह एकान्त कुज बिहरन यह सुंदर श्याम शरीर ॥ २ ॥
फूलन के आभरन मनोहर निज रुचि सों पहिरावन।
उरझे बार जटा के निज कर प्रेम सहित सुरझावन ॥ ३ ॥
यह कोकिल-रव शीतल छाया यह तुम संग बिहार।
प्राणनाथ कँह भाग हमारे यह सुख सहज पियार ॥ ४ ॥
ज्यो ज्यो घन गरजत बरसत इत त्यो त्यो तुव गर लागि।
परमानंद अलौकिक लूटत नित नित नव अनुरागि ॥ ५ ॥
यह गिरि अवलि, सोहावनि, झरना झरते चारहुँ ओर।
प्रबल प्रवाह पहाडी नदियाँ बहति, करत कल रोर ॥ ६ ॥
राजभवन सुख साज सबै, पै तुम बिन हमको फीको।
हमरे भाग सुहात बिराजत प्राणनाथ सुख टीको ॥ ७ ॥
जहँ राजा तहँ राजमहल, अरु जही धूप तहँ छाया।
जहाँ धनी धन रहत तहाँ ही जहाँ प्रान तहँ काया ॥ ८ ॥
तुम मेरे जीवन धन प्यारे ! तुव चरननि सुख राजै।
राधाकृष्णदास की जीवनि नैन प्रेम जल छाजैं ॥ ९ ॥

[सरस्वती भाग १]

---

(६) प्रताप-विसर्जन

[नन्ददासजी के अमर गीत की चाल]

उन्नत सिर गिरि अवलि गगन सों उत बतरावत ।
इत सरवर पाताल भेदि अति छबि छहरावत ॥
मद पवन सीरी बहै होन लगे पतझार ।
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक मानों कोउ अवतार ॥
हरन भुव भार को ॥

मुखमडल अति शांत कांतिमय चितवन सोहैं ।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारहुँ दिसि जोहैं ॥
वीर-मंडली घेरि कै प्रभु की गति रहै जोहि ।
मनु भीषम सर-सयन परे कौरव पांडव रहे सोहि ॥
हृदय उमग्यो परै ॥

लखि निज प्रभु की अत समय की वेदन भारी ।
व्याकुल सब मुख तकैं सकैं धीरज नहि धारी ॥
राव सलूमर रोकि निज हिय उदवेग महान ।
हाथ जोरि बिनती कियो अति हरुए लगि प्रभु कान ॥
बैन आरत सने ॥

"अहो नाथ अहो वीर-सिरोमनि भारत स्वामी ।
हिंदू कीरति थापन मैं समर्थ सुभ नामी ॥
कहाँ वृत्ति है आपकी, कौन सोच कहा ध्यान ?
देखि कष्ट हिय फटत है केहि सकट मे हैं प्रान ॥
कृपा करिकै कहौ ॥"

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिसि फेरयो ।
भरि कै दीरघ साँस सबन तन व्याकुल हेरयो ।।
पुनि लखि सुत तन—फेरि मुख अति संतप्त अधीर ।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले बचन गँभीर ।।
परम आतक सो ।।

"हे हे वीर-सिरोमनि सब सर्दार हमारे ।
हे विपत्ति-सहचर प्रताप के प्रान पियारे ।।
तुव भुजबल लहि मैं भयो रच्छा करन समर्थ ।
मातृभूमि स्वाधीनता को प्रबल सत्रु करि व्यर्थ ।।
अनेकन कष्ट सहि ।।

प्रानन हूँ ते प्रिय स्वतंत्रता कब तै खोई ।
हाय आर्यगन भए दास निज गौरव धोई ।।
म्लेच्छ विदेसी सत्रु के दास बने करि गर्व ।
नस्वर तन सुख कारनैं आर्य कीर्ति करि खर्व ।।
भूलि निज रूप कों ।।

या प्रताप नैं उचित कहौ कै अनुचित भाखौ ।
वा स्वतन्त्रता हेतु जगत सुख तृन सम नाखौ ।।
ढाइ महल खँडहर किए सुख सामान बिहाय ।
छानि बनन की धूरि को गिरि गिरि मैं टकराय ।।
जनम दुख झेलि कैं ।।

स्वर्गहु ते बढ़ि जन्मभूमि करि रहित म्लेच्छ अरि ।
सूखी रोटी अति पवित्र जल, छुधा तृप्त करि ।।
सो खोई बहु दिनन की सुख स्वतंत्रता पाय ।
बंधु बांधव बीच मैं हम मरत आजु हरषाय ।।
क्लेश को लेस नहि ।।

पै जब आवत ध्यान लख्यो जो मम हित दुख इतने ।
सो अमूल्य निधि मम पाछे रहिहै दिन कितने ।।
तुच्छ वासना मै पग्यो दुःख सहन असमर्थ ।
चंचल अमरहि देखिकै होत आस सब व्यर्थ ।।
सोचि भावी दशा ।।"

कहि दुखमय ये वचन अमर तन दुख सो देख्यो ।
मूँदि नैन जल भरे स्वाँस लै सब दिसि पेख्यो ।।
सन्नाटा चहुँ दिसि छयो सबके मुख गभीर ।
पृथ्वी दिसि हेरैं सबै भरे महा हिय पीर ।।
बैन नहिं कछु कहैं ।।

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो ।
अभिवादन करि अति विनीत ये बचन सुनायो ।।
"पृथीनाथ यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु हिय आज ।
कुँअर बहादुर तैं परी कौन चूक केहि काज ।।
निराशा जो भई ।।"

बदलि पास कछु सँभरि बैन परताप कह्यो पुनि ।
अति गंभीर सतेज मनहुँ गुंजत केहरि धुनि ।।
"सुनौ वीर मेवार के गौरव राखनहार ।
मेरे हिय की वेदना—जो कियो आस सब छार ।।
अमर के कर्म नै ।।

एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यो ।
इतनेहि मैं मृग एक आनि कै तहाँ जु पैठ्यो ।।
हरबराइ संधानि सर अमर चल्यो ता ओर ।
कुटिया के या बाँस मैं फस्यो पाग को छोर ।।
अमर तौहू न रुक्यो ।।

बढ़न चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे।
पै नहि जिय मैं धीर छुड़ावै ताको आछे॥
पागहु फटी सिकारहूँ लग्यो न याके हाथ।
पटकि पाग लखि झोपड़िहि अतिहि क्रोध के साथ॥
बैन मुख ते कढे॥

'रहु रहु रे निर्बोध अमर-गति रोकनहारे।
हम न लेहिंगे साँस बिना तोहि आजु उजारे॥
राजभवन निर्मान करि तेरो चिह्न मिटाइ।
जो दुख पाए तोहि मैं सो दैहौं सबै भुलाइ॥
सुखद आवास रचि॥'

तबही ते यें बैन सूल सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख वासना अवसि दुख दिवस बिसारिय॥
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ विषय के दाम।
बेचि, सिसोदिय कीर्ति को यह करिहै अवसि निकाम॥
रुके हम सोच एहि॥"

हिंदूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौर्‌यो तब॥
लै लै असि दृढ़ पन कियो, छ्वै छ्वै प्रभु के पाय।
"जौ लौं तन, स्वाधीनता तौ लौं रखौं बचाय॥
संक करिए न कछु॥"

दृढप्रतिज्ञ छत्रिन पन सुनि राना मुख बिकस्यो।
आसलता डहडही भई मुख तें यह निकस्यो॥
"धन्य वीर तुम जोग ही यह पन तुम्हहि सुहाय।
अब हम सुख सो मरत हैं, हरि तुम्हरे सदा सहाय॥
यहै आसीस मम॥"

देखत देखत शांतिसदन परताप सिधाए ।
पराधीनता-मेघ बहुरि भारत सिर छाए ॥
सबही सुख परताप संग कियो विसर्जन हाय ।
दीन हीन भारत रह्यो सुख सम्पदा गवाँय ॥
त्राहि प्रभु रच्छिए ॥

[सरस्वती भाग ३]

---

(१०) रहिमन विलास

गहि सरनागत राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर और न कछू उपाव ॥
और न कछू उपाव पाप के बोझ दबाए।
पूर्व कर्म की वायु भयानक लहर उठाए ॥
कहुँ सुझात नहि ठौर सुदुस्तर भवसागर महि।
चहत बचन जौ मूढ अजौं प्रभु सरनागत गहि ॥ १ ॥

यह रहिमन सब सग लै उपजत नाहिन कोय।
सबै प्रीति अभ्यास बस होत होत ही होय ॥
होत होत ही होय सबै अवसर निज पाए।
करु उद्योग उपाय अतिहि दृढ़ चित्त लगाए ॥
दुरुह काज लखि 'दास' हारि हिम्मत तू जिन रह।
सब कछु मनुजहि करै राखु निश्चय निज हिय यह ॥ २ ॥

निज कर क्रिया रहीम कहि सुधि भावी के हाथ।
पासे अपने हाथ मे दॉव न अपने हाथ ॥
दॉव न अपने हाथ जदपि है हाथ पराए।
पै बिनु कर्मन किए शुभाशुभ फल नहि पाए ॥
भाग्य भरोसे भूलि समय जिनि चूकै रे नर।
होनी होय सु होय करै कर्तव्य जु निज कर ॥ ३ ॥

रूप, कथा, पद, चारु पट कचन दूबा लाल ।
ज्यो ज्यो निरखत सूक्ष्म गति मोल रहीम विशाल ॥
मोल रहीम विशाल अधिकतर सुख उपजावै ।
ज्यों ज्यों तिनमे गडौ तत्व त्यों त्यों दरसावै ॥
'दास' प्रेम को नेम विलच्छन औरहु बेहद ।
ताके आगे कहा मोल है रूप कथा पद ॥ ४ ॥

बड़न कोऊ जौ घटि कहै नहि रहीम घटि जाहि ।
गिरधर मुरलीधर कहे कछु दुख पावत नाहि ॥
कछु दुख पावत नाहि जगतधर गिरधर भाखे ।
पूरन ब्रह्म अपार नाम नँदनंदन राखे ॥
वामन रूपहि धर्‌यो भयो वैराट सोऊ तौ ।
'दास' घटै नहि नेकु कहै लघु बडन कोऊ जौ ॥ ५ ॥

ससि, सकोच, साहस, सलिल, साजे नेह रहीम ।
बढ़त बढत बढि जात है, घटे न तिनकी सीम ॥
घटे न तिनकी सीम देखतहि मैं घटि जाई ।
बढत कछुक दिन लगै जतन बहु भाँति बनाई ॥
बढि कै जब यह घटै जाइ सोभा औरहु नसि ।
जदपि सोई पै कृष्ण पच्छ फीको लागै ससि ॥ ६ ॥

बड़े दीन के दुख सुने होत दया उर आन ।
हरि हाथी के कब हुती कहु रहीम पहिचान ॥
कहु रहीम पहिचान रही कब हरि हाथी सन ।
सहज सुभाउ दयालु देखि नहि सके दुखित जन ॥
पर उपकारिन साथ काम नहि जान चीन्ह के ।
सब ससार कुटुंब लखैं हित बड़े दीन के ॥ ७ ॥

कहि रहीम नहिं लेत हैं रही विषय लपटाइ।
घास चरे पशु आप तें गुर लौं लाए खाइ॥
गुर लौं लाए खाइ विधाता प्रकृति बनाई।
बोझ ढोइ नित मरैं पढ़न सो जान छिपाई॥
आम्र वृक्ष तजि दूर बेलि बब्बूलहि लपटहि।
भव दुख सुख सों सहैं सहज हरिनाम न मुख कहि॥ ८॥

रहिमन राज सराहिए जो बिधु के बिधि होय।
रवि को कहा सराहिए उगै तरैयाँ खोय॥
उगै तरैयाँ खोय नाहिनै तासु बडाई।
बड़े सराहन जोग सोई जो जग सुखदाई॥
प्रभुता मद जिनि भूलु प्रजा पालहि किन सुख सन।
यह सरीर नसि जाय रहै इक कीरति रहिमन॥ ९॥

दुरदिन परै रहीम प्रभु दुरथल जैये भाग।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागै आग॥
जब घर लागै आग सबै मरजाद भुलावै।
समुझि समय को फेर सबै सहतै बनि आवै॥
जैसो समयो देखि रहै तैसो है तू किन।
मौन होइ सहु दास परै जो कबहूँ दुरदिन॥ १०॥

क्षमा बड़न को उचित है छोटन को उतपात।
कह रहीम प्रभु को घट्यो जो भृगु मारी लात॥
जो भृगु मारी लात औरहु आदर दीनो।
लघु प्रकृतिहि पहिचानि नेकु जिय रोस न कीनो॥
नदी नीर गंभीर काम कहँ भवर पड़न को।
छिलछिल जल इतराय सहज गुण क्षमा बड़न को॥ ११।

जो गरीब सों हित करैं धन रहीम वे लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग॥
कृष्ण मिताई जोग कहा शबरी गुह बानर।
तजि दुरजोधन पाक शाक खायो जो बिदुर घर॥
जौन प्रेम मन करै कहा तौ ले अमीर कों।
तेई नर जग धन्य करैं हित जो गरीब सों॥ १२॥

कुटिलन संग रहीम बसि साधु बचौती नाहिं।
नैना टैना करत हैं उरज मरोरे जाहिं॥
उरज मरोरे जाहिं फँसे शिव नारद ज्ञानी।
ओछे संगति बैठि होत बित हित की हानी॥
सबै साधुता दाबि रँगत सहजहिं अपुने रँग।
सत संगत मैं बैठु दूरि तजु तू कुटिलन सग॥ १३॥

कमला यह न रहीम थिर सोच कहत सब कोय।
पुरुप पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥
क्यों न चचला होय सिंधु-तनया चंचल-मति।
एकन को करि तुष्ट देइ तजि सहज चपल गति॥
बड़न गिरावै दास धरै छोटन सिर समला।
कोटि जतन किन करौ रहै नाहिन थिर कमला॥ १४॥

जाइ समानो अब्धि मैं गग नाम भयो धीम।
काकी महिमा ना घटी पर-घर गए रहीम॥
पर-घर गए रहीम होइ अवसहिं हलकाई।
जदपि न पूँजी तदपि भरम निज गेह सुहाई॥
आधे पेटहि खाइ सहै बरु सरबस हानी।
पर-घर धाए दास बडाई जाइ समानी॥ १५॥

रहिमन कहत जो पेट्ट सों क्यों न भयो तू पीठ।
भूखे मान घटावही भरे डिगावै डीठ॥
भरे डिगावै डीठ नीठ जग को तृण जानै।
सबै खुटाई भरी क्रोध तनिकहि मैं आनै॥
याके भरिबे हेत करत नर पाप अनेकन।
सबही दुख को हेत दास यह पेट जु रहिमन॥ १६॥

आपु सदा बेकाम के शाखा दल फल फूल।
रोकत जाय रहीम कह औरन के फल फूल॥
औरन के फल फूल रोकि जग अनहित करही।
व्यर्थहि रोकै भूमि भार पृथ्वी पर धरही॥
आपु करै नहि काम और को मारै आँकुस।
ऐसे जन सों भूलि दास करिए जिन आपुस॥ १७॥

बड़े जो छोटन सों बँधै कहि रहीम यह लेख।
सहसन के हय बाँधिए लै कौड़ी के मेख॥
लै कौड़ी के मेख अस्व गज बाँधि जु राखहि।
मुक्ता मणि अनमोल पोहि गुन नाहि जु नाखहि॥
बड़े बड़े सद ग्रन्थ लिखत इक तुच्छ कलम सो।
लघु को हूँ आदरै अहैं जग लोग बड़े जो॥ १८॥

धूर उड़ावत सीस पैं कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज रिखि-पतनी तरी सो ढूँढत गजराज॥
सो ढूँढत गजराज आजु व्याकुल ह्वै भारी।
ज्यों बूड़त गज देखि धाइ गहि लियो उबारी॥
त्योंही हमैं पैं द्रवौ नाथ गजराज मनावत।
अँसुआ ढारत नैन भूमि सिर धूर उड़ावत॥ १६॥

जो रहीम भावी कहूँ होती अपुने हाथ।
राम न जाते हिरन सँग सीता रावन साथ॥
सीता रावन साथ जाइ दुख असह न पावत।
दसरथ बचन न देत प्रान प्रिय पुत्र गँवावत॥
जदपि राम सरवज्ञ टारि नहिं सके लिखी सो।
कोटिन करो उपाय होत निहचय भावी जो॥ २० ॥

हित अनहित सब कोउ कहै को सलाम को राम।
हित रहीम तब जानिए जेहि दिन अटकै काम॥
जेहि दिन अटकै काम न ता दिन मुखहिं छिपावै।
आपु सहै दुख कोटि मित्र के काम बनावै॥
विपति देइ जो साथ मीत जानिय तेहि नित चित।
सम्पद मैं तो धाइ बनत सहजही सबै हित॥ २१ ॥

जो रहीम गति दीप की कुल कपूत की सोय।
बारे उजियारो करै बढ़े अँधेरो होय॥
बढ़े अँधेरो होय नेह गुन देय जलाई।
दुरगन्धित गृह करै कालिमा देइ लगाई॥
व्यभिचारी अरु चोर देहिं सुख तिन ही को अति।
सब सोभा बिनसाइ होइ यह जो रहीम गति॥ २२ ॥

ऊगत जाही किरन सों अथवत ताही काँति।
त्यों रहीम सुख दुख सबै बढ़त एक ही भाँति॥*

---

* जान पड़ता है, रहीम ने यह दोहा नीचे लिखे हुए प्राचीन श्लोक को देखकर रचा है—

उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥—सं० स०।

बढ़त एक ही भाँति तैसही घटत न देरी।
सुख दुख .आठो जाम रहैं सबही कौं घेरी ॥
जो विवेक-रत दास नाहि तनिकहुँ ते चूकत।
रहत एक रस, होत अस्त त्यों ही ज्यो ऊगत ॥ २३ ॥

जो रहीम छोटे बढ़ैं बढ़त करैं उतपात।
प्यादे तें फरजी भयो तिरछे तिरछे जात ॥
तिरछे तिरछे जात अधिक अभिमान बढ़ाई।
ओछे घट मे कहाँ बहुत जल रहे समाई ॥
जन्मि हीन कुल बढे भाग्य प्रभुता पाई सो।
भू पै धरैं न पाँव भूलि गए आपु रहे जो ॥ २४ ॥

गति रहीम बड नरन की ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपुने सही होत असवार ॥
सही होत असवार आप दुख सहै अनेकन।
पर-उपकारन लागि हानि निज करैं जु कोटन ॥
औरन के सुख हेतु सहैं दुख धन्य धीर मति।
जस भागी ते दास स्वर्ग मे पावे नित गति ॥ २५ ॥

संपति भरम गँवाइ कै तहाँ बसे कछु नाहि।
ज्यों रहीम ससि रहत है दिवस अकासहि माहि ॥
दिवस अकासहि माहिं रहै निज तेज गँवाई।
अति फीके मुख लखौ सबै सोभा बिनसाई ॥
नकटा जीए जदपि तऊ है महा अधम गति।
तहाँ बसे सुख नाहि जहाँ भोगे सुख संपति ॥ २६ ॥

संपति संपतिमान को सब कोई सब देय।
दीनबंधु बिंनु दीन की को रहीम सुधि लेय ॥

को रहीम सुधि लेय दीन दुखिया संपति बिन।
बनै धनिक के सार दरिद परिवार करै बिन॥
पैं कृपालु प्रभु सपतिमानन को करि चम्पत।
अपुनावत अति दीन दीनपन जिहि एक सम्पत॥ २७॥

दीनहि सब कहँ लखत है दीनहि लखै न कोइ।
जो रहीम दीनहि लखै दीनबन्धु सम होइ॥
दीनबन्धु सम होय करै वाको प्रभु निज सम।
दीनबन्धु यह नाम प्रभुहि लागत अति प्रियतम॥
देखु न करि हित दीन, कहत का तोकों जग महँ।
दीनबंधु ये धन्य दान इन दीनहि सब कहँ॥ २८॥

अब रहीम चुप करि रहौ समुझि दिनन को फेर।
जब दिन नीके आइहैं बनत न लागै देर॥
बनत न लागै देर जबै पलटै दिन अपने।
तब लौं चुप करि सहौ कोऊ सों नेकु न झपने॥
सबै उपाय निरर्थ होयँ दिन खोटे हैं जब।
करैं खुसामद सबै फेरि दिन पलटैंगे अब॥ २९॥

खीरा सिर धरि काटिए मलिए निमक लगाय।
करुए मुख कों चाहिए रहिमन यहै सजाय॥
रहिमन यहै सजाय होत कटु मुखवारन की।
तातें धरे सुभाउ मधुरता मुख धारन की॥
मधुर अँगूरहि खात दिए बिनु छिलकहि चीरा।
देखु प्रतच्छ प्रमान कहाँ अंगुर कहँ खीरा॥ ३०॥

साधु सराहैं साधुता जती जोखिता जान।
रहिमन साँचे सूर को बैरी करै बखान॥

बैरी करै बखान सुजस सुर-पुर लौं छावै।
साँचो गुण बरबसहु शत्रु मुख वाह कढावै॥
साँचहि आँच न कहूँ साँच की जय जु सदा हैं।
खलहु आदरैं अचरज कह जौ साधु सराहैं॥ ३१॥

रहिमन ओछ प्रसंग ते नित प्रति लाभ विकार।
नीर चुरावत सपुटी मार सहत घरियार॥
मार सहत घरियार जगत मैं प्रगट सुनावै।
गंगोदक मद संग मिलत निज नाम गँवावै॥
गेहूँ सँग घुन पिसैं बुरे सँग दुखित भले जन।
भूलि न ओछे सग करौ कहि दास जु रहिमन॥ ३२॥

अमिय पियावत मान बिनु रहिमन मोहि न सुहाय।
मान सहित मरिबो भलो जौ विष देइ बुलाय*॥
जौ विष देइ बुलाय अमिय जनि पान कीजिए।
आधे पेटहि खाइ नमक रोटिही जीजिए॥
धिक जीवन बिनु मान मिलै किन राज अमर तिय।
मान सहित विष दास लाख अम्मिय सौं अम्मिय॥ ३३॥

सर सूखे पंछी उड़ैं औरै सरन समाहि।
दीन मीन बिनु पच्छ के कहु रहीम कहँ जाहिं॥
कहु रहीम कहँ जाहि जिन्हें आसरो तुम्हारो।
तुम बिनु रहै न प्रान छनक जौ नाथ बिसारो॥
कहौ कौन पै छोडि होत हम पै तुम रूखे।
दास दया जिय धरहु मरत जिमि झख सर सूखे॥ ३४॥

---

* यह दोहा सोरठा के रूप मे अहमद के नाम से प्रसिद्ध है।

कहु रहीम कैसे निभैं केर बेर को संग।
वे डोलत रस आपुने इनके फारत अंग॥
इनके फारत अंग रंग वह अपुने डोलै।
चना चबावन संग कैसे सहनाई बोलै॥
खल सज्जन को सग निभत नाहिँन छन एकहु।
गाय व्याघ्र को संग निभै कै घरी दास कहु॥ ३५॥

जो विषया सतन तजी मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन करि स्वान स्वाद सों खात॥
स्वान स्वाद सों खात ज्ञान बिनु बुरो न बूझै।
तू ताहू तें मूढ पाइ नर तन नहि सूझै॥
देखि जगत व्यवहार तऊ लावत नहि हृदया।
बचिकै रहु तासों अनर्थ को जड जो विषया॥ ३६॥

अमी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत इक बार॥*
जेहि चितवत इक बार करत तिनकी नाना गति।
सत तम राजस साथ धरत यह परम प्रबल मति॥
बंक सहज मुसक्याइ, निरखि गति पलटत पल पल।
परम अनूपम नैन ऐन मद अमी हलाहल॥ ३७॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापै नही लपटे रहत भुजंग॥
लपटे रहत भुजंग होइ विषहीन सु आपै।
लाख सुंदरिन मध्य साधु मन नेकु न काँपै॥

---

* इस दोहे को कोई कोई रसलीन का कहते हैं।

जो नर सत्य-प्रतिज्ञ छार हैं रतन ढेर तो।
लाखन मैं नहिं मुरै अहैं जग सत्य सूर जो ॥ ३८ ॥

बसि कुसंग चाहत कुसल रहिमन मन अफसोस।
महिमा घटी समुद्र की रावन बसे परोस ॥
रावन बसे परोस सिंधु पै सेतु बँधायो।
पाइ कुसंगति साधु जनन हू धर्म भुलायो ॥
हींग संग परि कस्तूरिहु की गंध जाइ नसि।
दृढ़ करि राखैा हिए कुसल नाहिन कुसंग बसि ॥ ३९ ॥

रहिमन सूधी चाल सो प्यादो होत उजीर।
फरजी मीर न ह्वै सकै टेढे की तासीर ॥
टेढे की तासीर मीर फरजी नहिं होवै।
परे कुदाँवन प्रान पियादे हाथहिं खोवै ॥
सूधी चालहिं गहौ बनावत जो सब काजन।
दास कुटिलता तजौ लहो सुख संपति रहिमन ॥ ४० ॥

जो रहीम दीपक दसा तिय राखति पट ओट।
समय परे पर होति है वाही पट की चोट† ॥
वाही पट की चोट दीप छन माहिं बुझावै।
जोइ रच्छक सोइ भच्छक यह प्रत्यच्छ दिखावै ॥

---

* यह दोहा तुलसीदास जी के नाम से प्रसिद्ध है।

† इस दोहे का भाव नीचे दिए गए प्राचीन पद्य से मिलता है।

येनाञ्चलेन सरसीरुहलोचनाया-
त्रात प्रभूतपवनादुदये प्रदीप।
तेनैव सोऽस्तमसमयेऽस्तमय विनीतः
क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम् ॥ स० स०

समय फिरे पर बनै सत्रु जो रहै मीत सो।
समय फेर नहि फिरै सहो सो आनि परै जो ॥ ४१ ॥

अनुचित उचित रहीम लघु करै बड़ेन के जोर।
ज्यो ससि के सकोच सों पचवत आग चकोर ॥
पचवत आग चकोर चन्द्रमा के बल ही सों।
हने शिखडी भीष्म एक अर्जुन के छल सो ॥
कहा धनिक नहि करै पाइ कमला को निज हित।
हाकिम को बल पाइ करै अमला बहु अनुचित ॥ ४२ ॥

काम कछू आवै नही मोल न कोऊ लेय।
बाजू टूटे बाज को साहब चारा देय ॥
साहब चारा देय जाहि कोउ बात न पूछे।
परम गरीबनेवाज भरत जेहि देखत छूछे ॥
देइ गजहि मन चिउटिन कन अजगरहू को भछु।
तिनके दाता राम जौन नहि जोग काम कछु ॥ ४३ ॥

धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाय ॥
जगत पियासो जाय तृषित लखि जल ललचावै।
जद्यपि सब कछु भरो काम कोउ के नहिं आवै ॥
ह्वै सब लायक दीन दया नहि धिक तिन कहँ गनि।
लघु पुँजी उपकार सने मन नर तेइ धनि धनि ॥ ४४ ॥

माँगे घटत रहीम पद किती करो बढ़ि काम।
तीन पेग बसुधा करी तऊ बावनै नाम ॥
तऊ बावनै नाम काम बलि द्वारे ठाढ़े।
कर फैलाए कहत सदा दाता की बाढ़ै ॥

सब परतिष्ठा दास दूर ताही छिन भागे।
आँखिन मैं घटि जाय जाय पर-द्वारे माँगे॥ ४५॥

नाद रीझि तन देत मृग नर धन हेत समेत।
ते रहीम पसु ते अधिक रीझेहु कछू न देत॥
रीझेहु कछू न देत वाह वाहिहु मैं टोटा।
कबहुँ कियो जो वाह दियो मनु कंचन कोटा॥
सहि कलेस निज गुन दिखरायो बड़ी साध मन।
रुच्यो न तातें धन्य देत मृग नाद रीझि तन॥ ४६॥

रहिमन कबहूँ बडन कों नाहि गर्व को लेस।
भार धरे ससार को तऊ कहावत सेस॥
तऊ कहावत सेस अटल गति रहत सदाही।
सरसों सम तेहि जानि नाहि कबहूँ अनखाही॥
ओछे जौ कछु बढै धरत धरनी पर पैर न।
भूलि आपनो रूप जगत् तृन लखत रहीमन॥ ४७॥

रहिमन नीचन संग बसि लगत कलक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि मद समुझहिं सब ताहि॥
मद समुझहि सब ताहि घृणा सो ताको पेखैं।
जैसी सगति लखै ताहि तैसोही लेखै॥
दुष्ट संग मैं बैठि बचौ बरु दुष्ट कर्म सन।
पै जग के उपहास बचो नहिं दास रहीमन॥ ४८*॥

पाठांतर—मद समुझहिं सब ताहि सग बस संशय पैठ्यो।
परम सुंदरी साथ युवक इकलोही बैठ्यो॥
घरियन अवसर पाइ सकत रखि मन के बेगन।
पै कलंक जग कबौ रोक नहिं सकत रहीमन॥ ४८॥

रहिमन अब वे बिरछ कँह जाकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखिग्रत सेहुड कज करीर॥
सेहुड़ कंज करीर जहाँ तहँ देखि परत अब।
अनमोलक हय जहाँ तहाँ खर बँधे लखौ मब॥
जिन सो सब सुख लहत पाइ फल फूल सुछाँहन।
तहँ बबूल दुख देइ काल बस हाय रहीमन॥ ४६* ॥

बिगरी बात बनै नही लाख करौ किनि कोय।
रहिमन बिगरे दूध को मथे न माखन होय॥
मथे न माखन होय जतन चाहे जो कीजै।
एक बेर मन फटे सुरस नहि फेरि लहीजै॥
चूके एकहि बूँद फेर ढरकाए गगरी।
बनै न कोटि उपाय दास बिगरी सो बिगरी॥ ५० ॥

मथत मथत माखन रहै दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराय॥
भीर परे ठहराय मीत तेहि साँचो जाने।
सपति मे सब सगे विपति सबही बिलगाने॥
प्रिय हितनि ताहि सबै त्यागि निज स्वार्थ मनोरथ।
ऐसे निज हित सने मीत कों दास लेहु मथ॥ ५१ ॥

होय न जाकी छाँह ढिग फल रहीम अति दूर।
बाढेउ सो बिनु काम के जैसे तार खजूर॥

---

* पाठातर—सेंहुड कज करीर रहे सोभा बिनसाई।
बालमीक शुक व्यास जहाँ छबि रहे बढ़ाई॥
अर्जुन करन ययाति भीष्म सोहत जो देसन।
तहँ दिखात हम सरिस अधम कायर नर रहिमन॥

जैसे तार खजूर बढ़े पै काम न आवै ।
धिक धिक ऐसी बाढ़ जो न कछु सुख सरसावै ॥
जानि देहु फल कथा दया नहि पथिक बिथा की ।
व्यर्थ ठाम रहे रोकि छाँह हूँ निकट न जाकी ॥ ५२ ॥

रहिमन निज मन की बिथा मन ही राखौ गोय ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय ॥
बाँटि न लैहैं कोय भरम बिनु बात गँवाइय ।
जो कछु बीतै सहै बिथा केहि रोइ सुनाइय ॥
हँसिबेवारे सबै दुखित दुख बूझत बिरलन ।
भव दुख मेटनहार और नहि बिनु वा रहिमन ॥ ५३ ॥

रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहि ।
उनते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहि ॥
जिन मुख निकसत नाहि नाहि ते मनौ जगत मे ।
होते बिमुख जे होहिं जनम धिक तिनको जग मे ॥
भले पसारैं हाथ लगै जब प्रान अधर तर ।
जिन्है न ताकी दरद जियत क्यों रहिमन वे नर ॥ ५४ ॥

मुकता करै कपूर करि चातक जीवन जोय ।
एतो बड़ो रहीम जल ब्याल बदन विष होय ॥
ब्याल बदन विष होय प्रकृति अमृतमय तजि कै ।
जैसो देखै पात्र मिलै तेहि तैसहि सजि कै ॥
जे रघुपति पद पदुम रहत मुनि मन संयुक्ता ।
तिन पद तर दससीस लुठत रजमय तजि मुक्ता ॥ ५५ ॥

ससि की सीतल चाँदनी सुंदर सबहि लखाय ।
लगे चोर चित मे लटी घटि रहीम मन आय ॥

घटि रहीम मन आय न तासों ससिहिं छोटाई ।
जौ घटि लखै उलूक दिवाकर नाहि हेठाई ॥
खल निंदा नहिं गिनहिं सुसज्जन टारि देहि हँसि ।
सज्जन गुन सब काल लगत सीतल जैसे ससि ॥ ५६ ॥

अमृत ऐसे वचन मैं रहिमन रिस की गाँस ।
जैसे मिसरिहु मे मिली निरस बाँस की फाँस ॥
निरस बाँस की फाँस सरस मिसरी सँग लागत ।
बाँकी चितवनि बिना रसिक मन नहिं अनुरागत ॥
मान समय अपमान रुचत पिय को मानिनि कृत ।
रसमय रिस के बैन दास लागत ज्यों अमृत ॥ ५७ ॥

रहिमन मनहि लगाइ कै देखि लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा नारायन बस होय ॥
नारायन बस होय मनहि दृढ करि जु लगावै ।
सब कारज ही धाइ सहज मैं सनमुख आवै ॥
जगत भयो बस जानु भयो बस जब चंचल मन ।
दमन कठिन मन केर कठिन कछु और न रहिमन ॥ ५८ ॥

रहिमन अँसुआ नैन ढरि मन दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह तें कस न भेद कहि देइ ॥
कस न भेद कहि देइ भेद घर को सब जानै ।
देइ मान हिय धर्‌यो निकारत जिय दुख मानै ॥
मुँह लगाउ करि जाँच तरह दीजे भेदी सन ।
होत अतिहि नुकसान बिगारै भेदिया रहिमन ॥ ५९* ॥

---

* पाठांतर—कस न भेद कहि देइ भेद घर को सब जानै ।
करौ न कोटि छिपाव सीस चढ़ि तौन बखानै ॥

गुन ते लेत रहीम जन सलिल कूप तें काढ।
कूपहु तें कहुँ होत है मन काहू को गाढ़॥
मन काहू को गाढ़ कितेको चाहे होवै।
बस गुन ते ह्वै जाय रुखाई सारी खोवै॥
गुनी जनन के गुन को गाहक अवसि मिलै सुन।
कबहुँ दुखी नहि होइ रहै अपुने मे जो गुन॥ ६० ॥

रहिमन मन महराज के दृग सो नही दिवान।
जाहि देखि रीझे नयन मन तेहि हाथ बिकान॥
मन तेहि हाथ बिकान ठिकानो लागै कैसे।
इक तो आपुहि चपल मिले मत्री हू तैसे॥
तापै उतते लगे नैन सर कसिकै जेहि छन।
दीवाने दीवान भए मन फॅसयो रहिमन॥ ६१ ॥

बिरह रूप घन तम भयो अवधि आस उद्योग।
ज्यो रहीम भादौ निसा चमकि जात खद्योत॥
चमकि जात खद्योत कहूँ कहुँ पंथ सुझावत।
जैसे सिधु अथाह बॉस लहि धीर बढ़ावत॥
अवधि मिलन पिय कह्यो आस इक सोइ विरहिनि तन।
प्रान रहत ठहराय भेदि कै बिरह रूप घन॥ ६२ ॥

रहिमन लाख भली करौ अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूॅ सॉप सहज धरि खाय॥
सॉप सहज धरि खाय जदपि पाल्यो बचपन सो।
वाको जाति सुभायॅ कोऊ सो द्वेष न मन सो॥

तबै लौ गोए रहत सकत सहि जबही लौं मन।
जब उफनाइ कढात छिपत तब नाहिन रहिमन॥ ५९ ॥

कुटिल कृतघ्नी लोगन पै वारे हूँ तन मन।
जाइ न दुष्ट सुभाव दास यह कहत रहीमन ॥ ६३ ॥

जैसी परै सो सहि रहे कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब सीत घाम औ मेह ॥
सीत घाम औ मेह सबै सहतै बनि आवै।
चलै न एक बिचार आइ जब सिर घहरावै ॥
राजा रक अमीर दास सबकी गति ऐसी।
बनै सबन ही सहत परै जिनपैं जब जेसी ॥ ६४ ॥

सीत हरत तम हरत नित भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा जौ घटि लखै उलूक ॥
जौ घटि लखै उलूक दोस तौ रवि नहिं पावै।
ससि पै डारै धूर आपुने ही पै आवै ॥
इनही के बल जगत चलत दूजो को इन सम।
परयो सौर जग नाम दास नित सीत हरत तम ॥ ६५ ॥

ज्यों रहीम सुख होत है बढे आपुने गोत।
त्यों बडरी अँखियानि लखि अँखियन को सुख होत ॥
अँखियन को सुख होत बड़ाई नैनन देखे।
पाइ सजाती बिहँसि मिलत कुल गुन बिनु लेखे ॥
ज्यों ज्यों ये मिलि हँसै बिबस मन होय सु त्यों त्यों।
उलझत औरहि और छुड़ाओ इनको ज्यों ज्यों ॥ ६६ ॥

मनसिज माली की उपज कहि रहीम नहि जाय।
फल श्यामा के उर लगे फूल श्यामं उर आय ॥
फूल श्याम उर आय लगे हिय मोद बढ़ावन।
प्रेमबेलि डहडही सदा दोऊ मनभावन ॥

भई प्रफुल्लित और फलित मोहत सोभा निज।
प्रेम अमृत सो सींचि बढायो है एहि मनसिज ॥ ६७ ॥

जिन रहीम तन मन लियो कियो हिए मे भौन।
तिनसो सुख दुख कहन की रही कथा अब कौन ॥
रही कथा अब कौन जौन हिय माहि छिपाइय।
मनहि लियो अपनाइ वस्तु अब कौन दुराइय ॥
पय पानी सो मिलै दास तू तजि छल बल किन।
करै न कछू दुराव लियो है तेरो मन जिन ॥ ६८ ॥

ये न रहीम सराहिए देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए हार होइ की जीत ॥
हार होइ कै जीत मीत हित टरैं न सपने।
प्रान हाथ ही लिए रहै प्रीतम हित अपने ॥
एक प्रेम तै काम आस कछु चित्त न धरते।
जग सब खोजे दास मिले बिरले जु मित्र ये ॥ ६९ ॥

हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सरपूर।
खैंचि आपुनी ओर को डारि दियो पुनि दूर ॥
डारि दियो पुनि दूर भ्रमत लख चौरासी यो।
अपनो जन कहवाइ करावत उपहासी क्यो ॥
नाथ ! न्याय गुन भूलि दया गुन सहज चित्त धरि।
लीजै दास उबारि अहो करुणा-निधान हरि ॥ ७० ॥

करत निपुनई गुन बिना रहिमन निपुन हजूर।
मानो टेरत बिटप चढ़ि एहि प्रकार हम कूर ॥
एहि प्रकार हम कूर आपुहि प्रगट जतावै।
जादू वहै बगान सीस चढ़ि कै कबुलावै ॥

गुन पुरुषारथ हीन फैल य बहु आडंबर।
दास अन खुल जाय चतुरई लाख क्या न कर ॥ ७१ ॥

नहि रहीम कछु रूप गुन नहि मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए भ्रमत भूख ही लाग ॥
भ्रमत भूख ही लाग काम नहि कबहूँ आवै।
भो भो करि कै कान फोरि चित दुखित करावै ॥
जो देखै सो कहै धन्य है इनकी रीझहि।
ताहि साथ जिनि रखौ रूप गुन कछु जिनमें नहि ॥ ७२ ॥

कागद को सो पूतरा सहजहि मे घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखौ सोऊ खैंचत बाय ॥
सोऊ खैंचत बाय अमर अपने को मानै।
द्वै दिन की चाँदनी ऐंठि जग तृन सम जानै ॥
अरे मूढ! निज रूप समुझु करु सुकृत कर्म जो।
नस्वर तन जिनि भूलु पूतरा कागद को सो ॥ ७३ ॥

कहि रहीम इक दीप तें प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै दृग दीपक जरु दोय ॥
दृग दीपक जरु दोय भरयो हिय नेह खजानो।
दोय दोय के मिलत झलक बाइस गुन मानो ॥
चाहत जितो छिपाव तितो औरहु वह प्रगटहि।
हृदय भाव बरबसहि नैन ये दास देत कहि ॥ ७४ ॥

तरवर फल नहि खात हैं सरवर पियै न पान।
कहि रहीम पर-काज-हित संपति सुचहि सुजान ॥
संपति सुचहि सुजान देह पर-कारज धारहि।
करि कै पर-उपकार बचन नहि कबहुँ उचारहिं ॥

श्रौर श्राप दबि जाहि दास जे श्रहैं श्रेष्ठ नर।
फल सो लदि कै सदा झुकत जिमि धरनी तरवर ॥ ७५ ॥

जिहि रहीम चित श्रापनो कीनो चतुर चकोर।
निसि बासर लागी रहै कृष्णचंद्र की श्रोर ॥
कृष्णचंद्र की श्रोर सदा मो मन श्रनुरागै।
ज्यों मयूर घन चातक स्वाती ही सो पागै ॥
ऐसे ही मन लग्यो रहै नित चरन कमल तिहि।
ब्रज-युवती मन-मोर नचत लखि मुख सुंदर जिहि ॥ ७६ ॥

रीति प्रीति सबसो भली बैर न हित नित गोत।
रहिमन याही जनम को बहुरि न संगति होत ॥
बहुरि न संगति होत कहाँ तुम कहँ वे बिछुरै।
कहाँ कहाँ ते श्राइ श्राज एकत ह्वै बिचरै ॥
जीवन है दिन चार कलह श्ररु द्वेष तजौ श्रब।
हिल मिल सुख सो रहौ दास करि रीति प्रीति सब ॥ ७७ ॥

कहि रहीम धनि बढ़ि घटै जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै तिनको कहा घास बेचि जे खात ॥
घास बेचि जे खात रहत निर्द्वंद सदा ही।
धनिकहि टेढी परत होत जौ तनिक तबाही ॥
साक मिटै श्ररु भेद बात मैं परै जु तनकहि।
उद्यम-जीवी लोग नेकु जिय मैं नहि संकहि ॥ ७८ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि भूलत सब पहिचानि।
सोच नही वित हानि को जो न होय हित हानि ॥
जो न होय हित हानि कहा वित हानि बिगारै।
बित नित श्रावै जाय भाग्य बस सबै सहारै ॥

दास लेत मुख फेरि देखि कछु लै यह माँगि न ।
भये बिगाने मीत सतावत औरहु दुरदिन ॥ ७९ ॥

को रहीम पर-द्वार पर जात न जिय पछितात ।
*संपति को सब जात है बिपत सबहि लै जात ॥
बिपति सबहि लै जात समुझिओ संपति वार ।
करु न निरादर वहू जीव है सदस तिहारे ॥
आयो तुव ढिग हारि आस बिनु करु न बनै तो ।
ढलती फिरती छाँह सुफल करु निज धन पद को ॥ ८० ॥

जो रहीम होती कहूँ प्रभु-गति अपने हाथ ।
तो को धौं केहि मानतो आप बड़ाई साथ ॥
आप बड़ाई साथ भूमि पै पग नहि धरतो ।
मन भावति अनीति सदा ही जग मैं करतो ॥
बिनु पाये अधिकार फूलि अभिमान करै सो ।
ना जानै का करै नेकु अधिकार मिलै जो ॥ ८१ ॥

जो रहीम मन हाथ है मनसा कहुँ किन जाहि ।
जल भीतर छाया परी काया भीजति नाहि ॥
काया भीजति नाहि रहै जल सों जो न्यारो ।
मन राखै दृढ किये कहा दु:संग बिचारो ॥
दास डिगावैं नाहि सहै सब परै जोई तन ।
करि न सकै कोउ कछू रहै बस जो रहीम मन ॥ ८२ ॥

तेहि प्रमान चलिबो भलो जो सब दिन ठहराय ।
उमड़ि चलै जल पार तें जो रहीम बढ़ि जाय ॥
जो रहीम, बढ़ि जाय घटै सो निहचै जग यहि ।
पूनो को ससि ग्रसै राहु तजि द्वैज चंद्रमहि ॥

चलै न ऐसी चाल लखत जग आँख चढै जेहि ।
बुधजन चलैं जो चाल दास दृढ़ करि तू गहि तेहि ॥ ८३ ॥

यो रहीम सुख दुख सहत बड़े लोग सहसाँति ।
उवत चद्र जेहि भाँति सो अथवत वाही भाँति ॥
अथवत वाही भाँति एक बिधि अंतर नाहीं ।
यहै नीति जग चली घटत औ बढ़त सदाही ॥
बाढे जैसे रहे घटे हू पै रहिए त्यों ।
धीरजवान सुजान सहै सुख दु.ख सदा यो ॥ ८४ ॥

माह मास लहि टेसुआ मीन परे थल और ।
त्यों रहीम जग जानिए छूटे अपनो ठौर ॥
छूटे अपनो ठौर रहै बस हाड़ चाम के ।
दाँत केस नख मनुज भ्रष्ट थल बिना काम के ॥
जब लौं थल पै रहै तबै लौ सब गुन गरिमा ।
कौडी के भये तीन छुटे थल भागी महिमा ॥ ८५ ॥

कहि रहीम संपति सगे बनत बहुत बहु रीत ।
बिपति कसौटी जे कसे तेई साँचे मीत ॥
तेई साँचे मीत परे दुख टरैं न सपने ।
ज्यों ज्यों लागै आँच लगै रँग औरहु दपने ॥
ऐसे साँचे हितू जगत खोजें बिरले लहि ।
जिन्हे मिले अस मीत तिन्हें जग धन्य धन्य कहि ॥ ८६ ॥

तब ही लग जीबो भलो दीबो परै न धीम ।
बिनु दीबो जीबो जगत हमहि न रुचै रहीम ॥
हमहि न रुचै रहीम दया बिनु जग मैं जीबो ।
यहै एक हैं सार बनै निज कर जो दीबो ॥

धन की सोभा दान दान सों जस फैलै जग।
जब लौं पर-उपकार बनै धन जनम तबहि लग ॥ ८७ ॥

रहिमन दानि दरिद्र तर तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यो सरितन सूखा परे कुओ खनावत लोग ॥
कुआँ खनावत लोग लेइ गुन तें जल काढ़त।
दत्तात्रय जड गुरु कियो इक गुनहि निहारत ॥
नीच ऊँच को भेद दास करि दूर राखु मन।
मिलै जहाँ गुन दान धाइ लीजै तहँ रहिमन ॥ ८८ ॥

रहिमन देखि बडेन को लघु न दीजिए डार।
जहाँ काम आवै सुई कहा करे तलवार ॥
कहा करै तलवार अँगरखा के सीवन मैं।
मोती चुगे न जाहि अन्न है जड़ जीयन मैं ॥
बैठि बड़न ढिग फूलि निरादर करहि न लघु जन।
जहँ आवै जो काम तहां सचिय सो रहिमन ॥ ८९ ॥

बड़ माया को दोस यह जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो दुख सहि जिए बलाय ॥
दुख सहि जिए बलाय मान बिनु जीवन फीको।
कियो राज तहँ लगत भीख माँगन नहि नीको ॥
रहे आपुने आस, हाथ तिन पैं फैलाया।
निभै एक रस सदा होय बरु नहि बड़ माया ॥ ९० ॥

धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि कहा भौंर को भाय ॥
कहा भौंर को भाय लेइ मधु अनत सिधारै।
स्वारथ ही की प्रीति काम लै फिर न निहारै ॥

धिक धिक ते नर दास स्वार्थ हित मीत रहे बनि।
प्रिय बिछोह जे प्रान तजै ते प्रेमी जग धनि॥ ९१॥

दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहि।
पै रहीम चातक रटनि सरवर को कोउ नाहि॥
सरवर को कोउ नाहि श्यामसुंदर रस ओपी।
ज्ञान सुनैं नहि धर्म प्रेम मद माती गोपी॥
सुनि ऊधो की बात दुखित ह्वै बोली सब सुर।
चातक चाहै स्वाति नचत घन लहि कै दादुर॥ ९२॥

अमर बेलि बिन मूल की प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि खोजत फिरिए काहि॥
खोजत फिरिए काहि नदनंदन पिय आछत।
निज जन दुख प्रहार रहत नित काछा काछत॥
जो सहाय असहाय सरन गहि अरे मूढ़ किन।
होइ अमर किमि दास गहे दृढ़ अमर बेलि बिन॥ ९३॥

रहिमन अति न कीजिए गहि रहिए निज कानि।
सहिजन अति फूलै तऊ डार पात की हानि॥
डार पात की हानि भए कहा सोभा पाई।
अति किये हरनाकुस छन मे गयो बिलाई॥
बलि कीनो अति धर्म पठायो तुरत पतालन।
करै राह की बात निभै जो सदा रहीमन॥ ९४॥

सरवर के खग एक से बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर एकै ठौर रहीम॥
एकै ठौर रहीम अनत चित नाहिं डिगावै।
कमलन कों रवि एक और सों सुख नहिं पावै॥

सती नारि मन सदा रहै मति एक चरन तर।
गोपिन एकहि श्याम कहो को इनके सरवर ॥ ६५ ॥

कहु रहीम केतो रही केती गई बिहाय।
माया ममता मोह परि अंत चले पछिताय ॥
अंत चले पछिताय काम एकौ नहिं आए।
जिन हित बहु दुख सहे आजु वे भए पराए ॥
अब सब तजु रे मूढ सरन नँदनंदन की गहु।
राधे कृष्ण गोपाल सियापिय राम राम कहु ॥ ६६ ॥

जो रहीम करबो हुतो ब्रज को यहै हवाल।
तो कत मातहि दुख दियो गिरिवर धरि गोपाल ॥
गिरिवर धरि गोपाल ब्रजहि बूडन सों राख्यो।
क्यों परबस सहि क्लेस जरत दावानल चाख्यो ॥
कालिय दहि विषहीन कियो क्यों जमुना जल को।
क्यो ब्रज राख्यो नाथ ! करन ही रही यही जो ॥ ६७ ॥

जो रहीम बिधि बड किए को कहि दूषन काढि।
चंद दूबरो कूबरो तऊ नखत सों बाढि ॥
तऊ नखत सो बाढि सदा उडुराज कहावै।
बूढ़ भयो मृगराज तऊ बन मेरु कँपावै ॥
करौ लाख उपहास ईरषा कछु न गिनें ते।
तिनको घटै न बढै बिधाता किए बड जे ॥ ६८ ॥

रहिमन जाचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो बावन आँगुर गात ॥
बावन आँगुर गात परयो ही हाथ पसारत।
बलि के द्वारे खरे अजहूँ यह कहे पुकारत ॥

म्वै बड़ाई धूल माँगिबे कीं आई मन।
दाता की जय सदा दवै जाचक ही रहिमन॥ ९९॥
जब रहीम घर घर फिरैं माँगि मधुकरी खाहि।
यारा यारी छाँड़ि द्यो अब रहीम वे नाहि॥
अब रहीम वे नाहि रहे सुख जिनको जोहत।
कौडी के भए तीन द्रव्य अपुनो सब खोवत॥
रहिए इनसो दूर लेहि नहि माँगि कछू अब।
अब सब बाते गईं रही तब रही दास जब॥ १००॥

जाल परे जल जात बहि तजि मीनन की मोह।
रहिमन मछरी नीर की तऊ न छाँडति छोह॥
तऊ न छाँडति छोह बिछोहा प्रान गँवावै।
अम्मृत मै लै धरो तऊ नहि ताहि सुहावै॥
साँचे प्रेमी अटल करहि प्रीतम कैसहुँ छल।
भख न तजै जल नेह तजत भख जाल परे जल॥ १०१॥

धन दारा अरु सुतन मैं रहत लगाए चित्त।
क्यों रहीम खोजत नही गाढे दिन को मित्त॥
गाढे दिन को मित्त चित्त मे क्यो नहि राखहु।
सुद्ध प्रेममय होय प्रेम अमृत किन चाखहु॥
जाके सग अनंत समय तुम करो बिहारा।
छोडु न सो दिन चार हेत ये सुत धन दारा॥ १०२॥
बड़े पेट के भरन मैं है रहीम दुख बाढ़ि।
गज के मुख बिधि याहि तें दए दाँत द्वै काढ़ि॥
दए दाँत द्वै काढ़ि प्रगट जग माहि दिखावत।
मनहुँ निकारे दाँत पेट की बिथा जनावत॥

लघु संतोषी सदा सुखी बचि सब रपेट के।
सबहिन भारी परै परे सिर बड़ पेट के ॥ १०३ ॥

ओछो काम बडो करै तौ न बडाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को गिरिधर कहै न कोय ॥
गिरिधर कहै न कोय मेरु लै लंका धाए।
इन्है न गिरिधर कहै उन्है पूजन सब आए ॥
यहै जगत की रीति बडन पद सबहि न पोछे।
कोऊ न पूछत काम करैं कैसहु जो ओछे ॥ १०४ ॥

प्रीतम-छवि नैनन बसी पर-छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आपु फिरि जाय ॥
पथिक आपु फिरि जाय टिकन की जगह न पावै।
तन मन पिय रस भरो ज्ञान अब कहाँ समावै ॥
मन समुझावत चहत हाय ! पै कहा करैं हम।
नैनन ढिग आवतै सबै ह्वै जात जु प्रीतम ॥ १०५ ॥

गुरुता फबै रहीम कहि फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं अंत बतौरी आहि ॥
अंत बतौरी आहि सबै सोभा बिनसावै।
जेहि हित जो कछु बन्यो तहाँ सोई छबि पावै ॥
ओछे बड पद लहैं तदपि झलकत हठि लघुता।
पै तिनही को फबै सदा जिन पाई गुरुता ॥ १०६ ॥

मान सरोवर ही मिलै हंसनि मुकता भोग।
सफरी भरे रहीम सर बक-बालक ही जोग ॥
बक-बालक ही जोग इहाँ नहि काम हमारो।
जग माया के कीट करै को मान तिहारो ॥

हमें न कछु परवाह तिहारी अरे मूढ नर।
कहा दिखावत लोभ बसत हम मानसरोवर॥ १०७॥

रहिमन रिस सहि तजत नहि बड़े प्रीति की पौरि।
मूकन मारत आवई नींद बिचारी दौरि॥
नींद बिचारी दौरि पुट-पुरिन लागत आवै।
जे गँभीर जन रोस विवस नहिं न्याय भुलावै॥
आम वृच्छ सहि मार देत फल परम प्रेम सन।
कटै कुटै अन देइ बडन की गति यह रहिमन॥ १०८॥

जो पुरषारथ सो कहूँ सपति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर तपत रसोई भीम॥
तपत रसोई भीम त्यागि कुल मान बडाई।
बिनु अवसर नहि होय कोऊ कारज ही सॉई॥
सौ सौ करौ उपाय सुफल नहि होय नेकु सो।
सोई मिलै अरु तबै मिलै लिखि रही भाग जो॥ १०९॥

रहिमन अपने पेट सों बहुत कह्यो समुझाय।
जौ तू अनखाए रहै तो सों को अनखाय॥
तो सो को अनखाय खाय तू तोहि बढ़ावै।
तू ही अनरथ मूल जगत मैं मान घटावै॥
तेरेहि कारन रोग लेत सब अगन को गहि।
दादा! करिकै कृपा क्यों न तू अनखाए रहि॥ ११०॥

खरच बढ़ गो उद्यम घट्यो नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए थोरे जल की मीन॥
थोरे जल की मीन भए सब भारतवासी।
अनावृष्टि अतिवृष्टि सबै धन धान विनासी॥

पेट जुरै नहिं अन्न लगंत नित प्रति कर पर कर ।
अन धन खिंचत बिदेस, रहत इत नाहिन इक खर ॥१११॥

रहिमन तीन प्रकार ते हित अनहित पहिचान ।
परबस परे परोस बस परे मामिले जान ॥
परे मामिले जान जान पहिचान करावै ।
उघरै मन के भाव सत्रु अरु मित्र जनावै ॥
करैं भलाई सदा अहैं जग जे सज्जन जन ।
इनकी सगति किए भलाई नित प्रति रहिमन ॥११२॥

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आहि ।
ज्यो रहीम नट कुंडली सिमिटि कूदि कढि जाहिं ॥
सिमिटि कूदि कढि जाहि देखि अचरज जिय आवै ।
घट तैं सिधुहि बाँधि मनौं निज बस मैं लावै ॥
सार पूर्ण उपदेस पूर्ण गुन पूरन सोहा ।
कैसे कहे रहीम अरथ के दीरघ दोहा* ॥११३॥

[सरस्वती, भाग ३]

---

* कविवर राधाकृष्ण ने उनहि पल्लवित कीन ।
सारदीय ससि सम बिमल सुजस विस्व बिच लीनं ॥ स० सं०

(११) विनय

प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए ।
अपुने या प्यारे भारत के पुनि दुख दारिद हरिए ॥
धरम गिलानि होति जबही जब तब तब तुम वपु धारत ।
दुष्टन हरि साधुन निर्भय करि तबही धरम उबारत ॥
महा अविद्या राच्छस ने या देसहि बहुत सतायो ।
साहस, पुरुषारथ, उद्यम, धन, सबही निधिन गँवायो ॥

काल, पात्र अधिकार विरोधी सबही कारज साधैं ।
साँचे धर्म छाँड़ि मिथ्या विश्वासन ही आराधैं ॥
जेते गुन जग मैं बढ़िबे के ते अवगुन इन लेखे ।
देखि प्रतच्छ प्रमान अनेकहु करत हाय अनदेखे ॥
जो कोउ हित की कहत बात तौ कोपैं सबही भारी ।
धरम बहिरमुख, मूरख, नास्तिक कहि कहि देवैं गारी ॥

कहँ लगि कहौ दयानिधि इनकी सबहि भए मतवारे ।
जो तुम साँचे जगत-पिता तौ क्यो न दया उर धारें ॥
जौ कोउ कबहूँ धरम परचारक भाग्यन ही सों जनमे ।
तौ वे शुष्क जगत स्वारथ-रत भक्ति नेकु नहिं मन मे ॥
झूठे मन केवल बनावटी तुव अस्तित्वहि मानैं ।
करिकै ओट धरम-ग्रथन की भेद और जिय ठानैं ॥

जद्यपि निहचय देस दसा लखि कोउ कोउ दु:खित भारी।
पै ये देश काल बिनु सोचे चलत चाल हितकारी ॥
ताही ते इनके बातन को होत प्रभाव न नेकौ।
तैंतिस कोटि अछत बढवत ये संख्या और अनेकौ ॥
करुनामय! शंकर स्वामी मम पुनि भूतल वपु धारौ।
मेटि सकल उपधर्म भ्रमित विश्वासहि जड़ सों जारौ ॥

थापि प्रेम मन भक्ति अचल साँचे गुन हिंदुन दीजै।
मूल धर्म निरधारित करि प्रभु त्राहि! कल्यानहि कीजै ॥
उद्धत भए सबै मनमाने विना तुम्हारे आए।
काहू की न सुनेंगे ये करिहैं निज निज मन भाए ॥
जो यह बात न मन मे आवै तौ मबवा कों टेरौ।
हुकुम देहु दल बल समेत भारत पै डारैं डेरौ ॥

पूर्न प्रताप प्रलय बरसा करि छिन मे याहि बहावै।
रहै न नाम हिंद हिंदू को जग मे अब न लजावै ॥
देखो जग उपहासास्पद है तुम्हरा नाम धरावैं।
कृष्ण कृपानिधि! कृष्णकाय ये तुम्हरी विरद हँसावैं ॥
कै मारौ कै तारौ इनको कछु निस्तार लगाओ।
त्राहि त्राहि करुनामय केशव! दासहिं प्रभु अपुनाओ ॥

[सरस्वती, भाग ३]

(१२) फुटकर कविता

(१)

लागे पै मानत न कछु, करहु जु लाख उपाय ।
इत उत चितवैं नहि तनिक, नैन निगोरे हाय ॥
मन सों मन अरु हार सो, हार उरझि रहि देह ।
धन उरझनि यह प्रेम की, धन्य धन्य यह नेह ॥
रात जगी सँग लाल के, भे दृग दोऊ लाल ।
मानहुँ होन प्रभात सो, भई क्रुद्ध अति बाल ॥

[कविवचनसुधा]

(२)

बिरह पलोट्यो तन दसा, मन गति हू बदलानि ।
निज प्रतिबिंबहि लखि चकित, दूजी तिय जिय जानि ॥
प्रेम-पथ कछु और, प्रियतम बिछुरे सुख बढ़ै ।
प्रिय लखात सब ठौर, भेटे इक प्रिय भेटही ॥

(३)

झीनी झीनी बूँदनि परति, बडो सोभा अति,
चमकि चमकि बिज्जु जिय डरपावै है ।
लाल मखमली बीरबहू भूमि डोलै मानो,
बूँद अनुराग नेह मेह बरसावै है ॥
भरे अनुराग बैठे प्यारे प्यारी झूले माँहि,
सखी जन गावत बजावत झुलावैं हैं ।

दास देखि सोभा यह भूलि जात दुख सबै
प्यारी जू डरति प्यारो अंग लपटावै है ॥

[कविवचनसुधा]

(४)

देखी लाडलि की दसा, चदा गयो लुभाय ।
बदरी मे मुँह ढाँकि कै, नीर बहावत हाय ॥

(५)

हमरो चौथ चंदा का करिहै ?
श्री व्रजचंद चंदमुख प्रेमी औरन सो का डरिहै ।
कुलबोरिन सब कहत गाँव मे और नाम का धरिहै ?
'दास' कलकहुँ हम प्रेमिन के ढिग आवत थरहरिहै ।

(६)

जनम लियो है व्रज प्रेम सुधा सागर, वह—
बापुरो मयंक प्रगट्यो है जल खारी को ।
घटत बढ़त तेजहीन तेजमान होत,
बाढै दिन दूनो तेज कीरति कुमारी को ॥
वह सकलंक 'दास' दुखद चकोर, यह—
मेटत कलंक भव पोषत बिहारी को ।
घन मे छिपत, यह घनश्याम संग सदा,
मंद करै चंदहि अमंद दुति प्यारी को ॥

(७)

हौं बलि जाउँ मानिनी छबि पर ।
बैठी भौंह चढ़ाय रिस भरी गोल कपोलनि कर धर ॥

नैन बंद, अलकावलि छूटी, अचल पट खसक्यो सर।
लाल मनावत मानहि रहि गए धरि के प्यारी के पग पै कर ॥
विह्वल देखि प्राण प्रीतम को मिली मान तजि प्यारे के गर।
बरनि सकै या छबिहि 'दास' जो जग मे ऐसो नाहिन कोउ नर ॥

(८)

लाड़िली ऐसी मति मोहिँ दीजै।
चरन छोडि नहि जाउँ अनत कहुँ सरन आपनी दीजै ॥
नित उठि दरस करूँ पिय प्यारी, हृदय-पखान पसीजै।
इतनी अरज 'दास' की सुनिए निज जन कृपा करीजै ॥

(९)

काल व्याल के गाल सों राखि लियो गहि हाथ।
भूलि सबै अपराध मम जय जय कालीनाथ ॥

(१०)

प्राननाथ प्रीतम ललन पूरन परमानंद।
राखो अपने चरन मे काटि सकल भवफंद ॥

(११)

निज भाषा हित निरत होइ तजि गृह कारज छति।
देस देस पर्यटन कियो सहि कै कलेस अति ॥
अति सुदच्छता सहित सभा उद्देश प्रचारयो।
पाल्यो निज कर्तव्य नागरी काज सुधारयो ॥
श्रीराम राव, माधव उभय, विश्वनाथ कीरति अयन।
अति हरखित चित हम सबन को, धन्यवाद कीजै ग्रहन ॥

(१२)

पिता असंभव पन पूरित लखि आनंदित अति।
सोत्साह जयमाल लिए धाई चंचल गति॥
रविकुल रवि तट पहुँचि रूप के तेज बिमोहित।
भूलि तन दसा रही चित्र पुतरी सी सोहित॥
लखि प्रेम बिबस पिय जब झुके अति सँकोच डारी गरैं।
यह प्रेममई मूरति दोऊ नित नित नव मंगल करैं॥

[सरस्वती]

---

(१३) सुनीति

[अनुवाद]

मूर्ख शिष्य उपदेस, पालन नारि कुलच्छनी
दुखियन सग हमेस, पंडितहू दुख नित लहहि।
कुलटा, नारी, मित्र सठ, उत्तरदायक दास
गृह ससर्प के बास ते, मृत्यु हथेली पास।
आपद हित धन रच्छिए, धन दै रच्छिय नारि।
आपुहु रच्छिय सर्वदा धन अरु नारि बिसारि ।।
आपद हित धन रच्छही धनियन को कह क्लेस।
पै लक्ष्मी जब पग करत रहै न संचित लेस ।।
नहि सम्मान, न जीविका, नहिं बांधव जेहि देस।
नहि विद्या-चरचा तहाँ बसिकै पावत क्लेस ।।
धनी, वेदविद विप्र, नृप, नदी, वैद्य ये पाँच।
जहाँ होहि नहि तहँ बसे निहचै पावै आँच ।।
भय, उदारता, कुशलता, लाज, जीविका बित्त।
जिनमे नहि ये पाँच गुन तिनकौ करै न मित्त ।।
काम पड़न पै भृत्य अरु बांधव संकट काल।
मित्र विपति मे परखिए धन छय जानिय बाल ।।
रोग, दु.ख, दुर्भिच्छ अरु राजद्वार, मसान।
शत्रु घिरे मे साथ जे ते हैं बंधु महान ।।
ध्रुव तजि अध्रुव आस बस धावहि जे अज्ञान।
ध्रुवहू खोवहिं व्यर्थ ते अध्रुव प्रथम नसान ।।

रूपहीन हूँ सुकुल की ब्याहहिं सुता सुजान।
रूपवती कुल नीच तजि सोहत ब्याह समान॥
नदी, शस्त्रधारी, नखी, शृंगी, राजा नारि।
भूलि न इन्है पतीजिए बुध जन कहत बिचारि॥
विष ते अमृत काढ़िये सुबरन अशुचि बिहाय।
नारि-रत्न दुष्कुलहुँ ते विद्या नीचहु पाय॥
कुल-नारिन भोजन द्विगुन लज्जा चौगुन नैन।
साहस षट गुन आठ गुन तन मे ब्यापत मैन॥

[सरस्वती]

लेख

(१) हिंदी क्या है ?

हिंदोस्तान-निवासी जन साधारण की भाषा का नाम हिंदी है। हिंदी के बहुत कुछ रूपांतर हुए और वर्तमान काल मे भी बहुत से भेद है। हिंदोस्तान की बनावट पृथ्वी के सब देशो से कुछ विलक्षण ही है, ध्यान देकर देखिएगा तो स्पष्ट जान पड़ेगा मानो परमेश्वर ने संसार को बनाकर इस देश को सबका इग्जिबिशन (प्रदर्शिनी) बनाया। इस देश के जितने खड है उतनी ही चाल उतने ही जुदे जुदे जल वायु प्रकृति—सारी पृथ्वी का नमूना यहाँ मिलता है। अरब देश सी गर्मी और रेगिस्तान इस देश मे देख लीजिए, लैप-लैंड सी सर्दी इस देश मे अनुभव कर लीजिए, काबुल के मेवे यहाँ लीजिए, संसार भर के अन्न यहाँ खाइए, गोरे से गोरे काले से काले, वीरशिरोमणि, मारते के पीछे भागते के आगे, सभी प्रकृति, सभी आकार के मनुष्य यहाँ हैं। काश्मीर भी इसी देश मे है और मार-वाड का रेगिस्तान भी यहीं। इन्ही कारणों से यहाँ की भाषा के भी बहुतेरे भेद हैं। दूसरे और देशो मे इसके विरुद्ध एक ही सा जल वायु, एक ही सा रूप, आकार, स्वभाव, भाषा, फल, फूल, अन्न सब एक ही से पाए जाते हैं। इसलिये और देशो के साथ मिलान करके इस देश का अनुमान करना कठिन ही नही वरन असंभव है, परतु क्या इससे यही सिद्ध हो गया या यही मान लेना चाहिए कि इस देश की कोई एक भाषा नहीं है ? यदि आप ध्यान देकर देखेंगे तो अवश्य ही सब के भीतर मूल एक ही पावेंगे, सब भेदातरो को एक ही सूत्र मे बँधा पावेंगे, वह सूत्र कौन है ? हिंदी—चाहे जितना

भेद देखिए, चाहे उसे बंगालिन के वेश मे देखिए, चाहे पारसिन की साड़ी और रूमाल पहिरे देखिए, चाहे पाश्चात्य बडे बड़े घाघरे और ओढनी के घूँघट मे पाइए और चाहे पायजामा और दुपट्टे की पोशाक से यवनगृह मे देखिए परतु तनिक भी विचारपूर्वक आप जिस समय देखेगे अनायास पहिचान लेगे—यह तो हिंदी है। निदान हिंदुस्तान की यदि कोई एक भाषा हो सकती है तो वह हिंदी ही है। यद्यपि हिंदी और उर्दू ये दो भाषाएँ इस समय प्रचलित है और सदा से इन दोनो मे झगडा चला ही आता है परंतु यथार्थ मे उर्दू और कुछ नही है केवल हिंदी ही है। भेद इतना ही है कि हिंदी से और जितनी भाषाएँ बनी हैं वे सीधे अक्षरो में अर्थात् देवनागरी अक्षरो से निकले अक्षरों मे लिखी जाती हैं और उर्दू उलटे अक्षरो मे अर्थात् फारसी अक्षरो मे लिखी जाती है। यद्यपि उर्दू मे फारसी के कठिन कठिन शब्दों को मिलाकर लोग इतनी कठिन भाषा बना डालते हैं जितनी कि हिंदी को लोग संस्कृत शब्दों से। परतु यथार्थ रूप उर्दू का देखिए तो सिवाय हिंदी के और कुछ न पाइएगा। क्रिया तो सब हिंदी की निर्विवाद हुई हैं परंतु शब्द भी हिंदी के बहुत से मिलेंगे।

यह साधारण नियम है कि जब जो राजा होता है और जो उसकी भाषा होती है तब वही प्रधानता प्राप्त करती है। इसी से मुसलमान बादशाही के समय हिंदी मे बहुत से फारसी के शब्द ऐसे मिलजुल गए कि अब वे मानो हिंदी के ही जान पडते है, किसी भाँति वे हिंदी से अलग नही किए जा सकते, यहाँ तक कि अच्छे अच्छे हिंदी के लेखक भी उन्हे बेधडक लिख जाते हैं और कभी उन पर ध्यान भी नहीं जाता। यह कुछ आश्चर्य नही है क्योकि मुसलमानी राज्य तो लगभग हजार वर्ष तक यहाँ रहा है। अँगरेजी राज्य को अभी डेढ़ ही सौ वर्ष

के लगभग हुए परतु अँगरेजी के बहुत से शब्द ऐसे मिलजुल गए हैं कि अब वे हिंदी हो के जान पडते हैं, जैसे रेल, स्टेशन, लालटेन, टमटम इत्यादि। परतु यथार्थ मे देखिए तो हिंदोस्तान की भाषा हिंदी ही पाइएगा। कुछ लोगों का यह कथन है कि प्राय: ग्रामीण लोग उर्दू ही समझ सकते हैं सस्कृत के शब्द मिली हिंदी नही समझ सकते, परतु यह ठीक नही है। कौन ऐसा हिंदू है जो साधारणत. रामायण को न समझ सकता हो ? इसमे सदेह नही कि वे सस्कृत के कठिन शब्द नही समझ सकते परतु साथ ही वे उर्दू के भी कठिन शब्द नही समझ सकते। उनके लिये जैसे महाशय और महोदय है वैसे ही जनाब और हुजूर है, उनसे तो यदि आप रउरे या राउर कहकर सबोधन कीजिए तो वे झट समझ जायँगे परतु यह शब्द कहाँ से आया ? क्या यह सस्कृत के रावल शब्द का अपभ्रंश नहीं है ? यो ही जब आप ध्यान देकर देखेगे तो जन साधारण की बोलचाल मे अधिकता ठेठ हिंदो के शब्दो की या सस्कृत के बिगड़े शब्दो की पावेगे और जो फारसी के शब्द उनमे मिलेगे वे भी ऐसे ही होगे जो अब हिंदो के साथ ऐसे मिल गए है मानो वे हिंदी ही के हैं। हिंदी की चिट्ठी पत्री की प्रशस्ति, बही खाते की लिखावट आदि देखिए सबमे आप मुख्य शब्द हिंदी सस्कृत के ही पाइएगा। आप हिंदुओ की बात जाने दीजिए, मुसलमानी महल्ले या गाँव मे चलिए और साधारण मुसलमानो से दस्तखत कराना आरभ कीजिए। देखिए जितने लिखे पढ़े मुसलमान मिलेगे, उनमे अधिकता हिंदो ही मे दस्तखत करनेवालो की होगी। डाकखानो मे देखिए तो अधिक चिट्ठियाँ हिंदी ही सिरनामे की मिलेगी। पुस्तको मे देखिए तो रामायण के बराबर किसी उर्दू पुस्तक की बिक्री न होगी, बरच उर्दू अलिफलैला से हिंदी मे उसका अनुवाद अधिक बिकता है।

हम ऊपर सिद्ध कर चुके है कि भिन्न भिन्न प्रकृति और जल वायु के कारण भाषा मे भी भिन्नता पाई जाती है परतु यथार्थ मे सब भाषाएँ हिंदी ही की रूपातर है, सब प्रात के निवासी कुछ कठिनता से हिंदी बोली को समझ सकते है और अधिकाश लोग टूटी फूटी हिंदी बोल भी लेते है, परतु हिंदोस्तान मे प्रति योजन अर्थात् बारह कोस पर बोली बदलती जाती है और इसी से बहुत से रूप हो गए है। ब्रज से चाहे जिस ओर चलिए बराबर थोड़ा थोडा भेद पाते जाइएगा, यहाँ तक कि बंगाल पहुँचते पहुँचते वह बँगला हो जायगी और उधर दक्षिण पहुँचते पहुँचते गुजराती और महाराष्ट्री हो जायगी परंतु क्रम से मिलाते चलिए तो बहुत स्पष्ट भेद जान पड़ेगा। निदान हिंदी के हिंदोस्तान की भाषा होने मे कोई सदेह नहीं है पर इसके बहुत भेद हो गए है जिनमे चार मुख्य है, पहली पूरबी (बनारस प्रात की), दूसरी कनौजी (कानपुर प्रांत की), तीसरी ब्रजभाषा (आगरा मथुरा प्रात की), चौथी खडी बोली (सहारनपुर मेरठ प्रांत की)।

यह सब भेद तो हुए बोलचाल और प्रादेशिक हिंदी के। अब हमे उस हिंदी की ओर ध्यान देना चाहिए जो सभ्यसमाज, राजदर्बार वा साहित्य मे बरती जाती हो और जिससे सारे देश से संबंध हो। वह खड़ी बोली है। वर्तमान समय मे उर्दू और हिंदी दोनों ही सभ्य भाषाएँ खडी बोली ही के भेद हैं। उर्दू के दोष और हिंदी के गुण हम आगे चलकर दिखावेगे, यहाँ केवल यही कहना चाहते हैं कि हिंदी क्या है?

सारे संसार की यह रीति है कि जन साधारण की बोलचाल से और साहित्य की भाषा से बड़ा भेद रहता है। साहित्य की भाषा सदा ऊँचे दर्जे की रहती है अतएव हम लोग हिंदी भाषा उसी को कहेगे जिसमे शुद्ध शब्द हों और जिसमे विद्या संबंधी किसी विषय के लिखने

मे कठिनता न हो, जब कि अँगरेजो के बच्चो के लिये व्याकरण आदि पढ़ने की आवश्यकता होती है तब हिंदोस्तानियों को हिंदी ग्रथ समझने के लिये हिंदी पढने की आवश्यकता हुई तो इसमे आश्चर्य क्या है ? पर हाँ साथ ही हम यह अवश्य कहेगे कि कचहरी की भाषा ऐसी ही सहज रहनी चाहिए जो सर्वसाधारण की समझ मे यथासंभव अनायास आ सके, चाहे आवश्यकतानुसार उसमे उर्दू और अँगरेजी के भी शब्द मिला दिए जायँ।

हिंदी से उपकार क्या है ?

मान लिया कि जैसा कहा गया है हिंदी का वही रूप है परतु हिंदी से उपकार क्या है ? हिंदी की उन्नति करने से हमे क्या लाभ है ?

यह बात सर्वमान्य है कि मनुष्यो को परमेश्वर ने अपनी सृष्टि मे जो सबसे श्रेष्ठता दी है उसका मुख्य कारण ज्ञान है। ज्ञान और विद्या का वैसा ही परस्पर सबंध है जैसा कि देह के साथ छाया और वाक्य के साथ अर्थ का। विद्या ही मनुष्य-जीवन की शोभा और सार्थककारिणी है। जिस देश मे जितना ही विद्या का प्रचार अधिक होता है वह देश उतना ही अधिक सभ्य समझा जाता है। इसी हिंदोस्तान मे जिस समय विद्या का पूरा प्रचार था उस समय का गौरव हम क्या सारा संसार करता है और वर्तमान समय मे विद्या के प्रचार से यूरोप और अमेरिका जैसे सुख और समृद्धि को भोग रहे हैं वह विदित ही है। यह विषय ऐसा सर्वमान्य है कि इसपर अधिक लिखना व्यर्थ समय नष्ट करना है।

इस समय हिंदोस्तान की जो दशा है वह आप लोगो पर भली भाँति प्रगट है। अँगरेजो का सुख और शांतिमय राज्य पाकर भी

यथार्थ मे हिंदोस्तान उसका पूरा लाभ नहीं उठा सकता। वाणिज्य की दिनो दिन कमी होती जाती है। जन साधारण बेकाम और परमुखापेक्षी होते जाते है, देश दरिद्र और निकम्मेपन से भस्म हुआ जाता है। जिधर देखिए भूखे और नंगो की हाहाकार गूँज रही है, स्थान स्थान मे झगडे हो रहे हैं, मूर्ख लोग पक्षपात के वशीभूत होकर महा अनर्थकारी दुर्घटना कर उठाते हैं, व्यर्थ को धर्म का नाम बदनाम करने के लिये आपस मे लड़ मिटते है, देश को नाश किए डालते हैं, राजा और प्रजा दोनो को दुःख देते है। सरकारी अदालतो मे देखिए कानून की अज्ञानता से कितने निर्दोषी दोषित होकर दंड पाते है। क्या इन सभो का कारण केवल अविद्या का प्रचार ही नही है?

यहाँ हमारे सुयोग्य मित्रगण कह उठगे कि यह बात व्यर्थ को कही जाती है। सरकार अँगरेज की कृपा से देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक विद्या का प्रचार हो रहा है। स्कूल और कालिज खुल गए हैं, हर बरस हजारों लड़के पढ पढकर निकलते हैं फिर भी अविद्या का प्रचार कैसा? हम इस बात को स्वीकार करते हैं, अवश्य विद्या का प्रचार बहुत कुछ हुआ और हो रहा है, और उसका बहुत कुछ सुंदर परिणाम हो रहा है। यहाँ पर हम अपनी बात पुष्ट करने के लिये दो बातों का अवश्य वर्णन करेगे—एक तो यह कि आजकल जितने उपद्रव और झगड़े होते हैं यदि आप लोग देखेगे तो सुशिक्षित मडली को उससे अलग ही पाइएगा, वरच इसके लिये उन्हें दुखित देखिएगा। दूसरे यह कि आप पढे लिखे लोगों को पेट की ज्वाला से जलते कम देखिएगा। परतु वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से देश के उपकार के साथ ही साथ कुछ अपकार भी हो रहा है, और पूरा उपकार तो कदापि साधित न होता है और न हो सकता है। देश मे व्यापार और कारीगरी के अभाव से अँगरेजी शिक्षा पानेवालों का

ध्यान केवल दो ही विषयो पर अधिक होता है एक नौकरी और दूसरे वकालत—पर इन दोनो की भी कोई सीमा है। देश का देश यदि नौकर और वकील ही बन जाय तो नौकरी और मुकद्दमे कहाँ तक शेष रह सकते हैं। आप लोग प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि वकीलो की बहुतायत से बहुतेरे वकीलो की यह दशा हो रही है कि इक्के का किराया तक नही मिलता और इधर अच्छे अच्छे ग्रैजुएट बीस बीस रुपए महीने की नौकरी के लिये लालायित हो रहे है। तनिक आप लोग इन बेचारो के चित्त के नैराश्य की ओर तो देखिए।

"हसरत प उस मुसाफिरे बेकस के रोइए
जो थक गया हो बैठ के मजिल के सामने"

बडी बड़ी आशा करके अपनी औकात से अधिक व्यय करके पढ़ा। अब बी० ए० या वकील हुए, परंतु हाय अब भी पेट नहीं भर सकता! घरवालो ने समझा था कि जब यह पढके तैयार होगे, सारा दुख दारिद्र्य दूर हो जायगा, पर जब आप खाली पाकेट घर लौटकर आए, विचारिए उन बेचारो पर क्या गुजरी होगी? अब पढ लिखकर यह भी गवारा नही कि अपना पैतृक रोजगार या कोई छोटे दर्जे का काम और दुकानदारी करे और जिसके लक्ष्य पर पढ़ा था उसका भी ठिकाना नही तो अब क्या करे। निदान ज्यो ज्यों ऐसी शिक्षा का प्रचार अधिक होता है, ज्ञान लाभ करने के साथ ही साथ दु.ख की सीमा और भी बढ़ती जाती है। इसके सिवाय यह शिक्षा इतना समय और इतना व्यय चाहती है कि जिससे सर्वसाधारण का उपकार नही हो सकता। आप लोग जब विचार करेंगे, इतिहासो से यह सिद्ध होगा कि किसी देश की उन्नति और उसको श्री-समृद्धि की प्राप्ति बिना उस देश की भाषा की उन्नति के नही हुई है। जब तक सब विषयों के ग्रंथ ऐसी भाषा मे न हो, जिसको उस देश के रहनेवाले

बहुत कम परिश्रम से पढ और समझ सके तब तक संभव नहीं कि सारे देश मे विद्या का प्रचार यथार्थ रूप से हो सके। देखिए हिंदी मे एक ग्रंथ रामायण है उसका प्रचार इस देश मे कैसा है और उसके सुधामय उपदेश से देश को कितने लाभ पहुँचते है। अतएव हिंदी भाषा मे सब आवश्यक विषयो के ग्रथ जब तक न बनेगे तब तक देश का उपकार नहीं हो सकता। आबाल वृद्ध वनिता गँवैये आदि सब हिंदी के ग्रंथों से अपना अपना काम सीख सकते हैं। निदान जब तक देश-भाषा हिंदी मे पूरी शिक्षा न दी जायगी तब तक देश का उपकार होना असभव है।

हिंदी की दशा क्या है?

अब यह विचारना चाहिए कि हिंदी की दशा क्या है? उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है या नहीं?

यद्यपि हिंदी इस देश की प्राचीन भाषा है पर जिस समय यहाँ हिंदुओ का राज्य था उस समय यहाँ की सभ्य तथा राजभाषा संस्कृत होने के कारण इसकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता था। एक तो हिंदोस्तान की यही चाल बहुत बुरी थी कि यहा कलाकौशल आदि विद्याओं को गुप्त रखना ही लोग परम पुरुषार्थ समझते थे जिससे यहाँ की बडी बड़ी विद्याएँ लोप हो गईं। दूसरे उस समय जो कुछ ग्रथ बने भी वे सस्कृत में। इससे हिंदी की कुछ पुष्टि न हो सकी, और सिवाय इसके यदि उस समय का कोई ग्रंथ मिले भी तो उसकी भाषा आज क्या सर्व साधारण का काम दे सकती है। इसके पीछे जिस समय हिंदी पर ध्यान दिया गया उसी समय मुसलमानों की चढ़ाई इस देश पर हुई, फिर तो ऐसे झगड़े फैले कि लड़ाई झगड़ों के सिवाय किसको अवकाश था कि विद्या की ओर

ध्यान देता। केवल काम मात्र चलाने के लिये कुछ धर्म ज्योतिष वैद्यक और इतिहास के ग्रथ बन गए। यथार्थ मे एक भाषा को जैसे सब लौकिक और पारलौकिक विषयो से पूरित होना चाहिए वह न हो सकी। दूसरे राजा का ध्यान उर्दू की ओर विशेष रहने से हिदी की और भी दुर्दशा हो गई। इसमे सदेह नही कि उर्दू भी हिदी ही की एक शाखा है पर फारसी के विद्वानो ने अपनी आदत के अनुसार उसमे फारसी के शब्द मिला मिलाकर उसे ऐसी कठिन कर डाला कि वह फारसी ही के समान हो गई और उससे जन साधारण कोई लाभ नही उठा सकते। इतने अधिक काल तक उर्दू का प्रचार इस देश मे रहा और इस ॲगरेजी राज्य मे भी उसी को आदर मिला हुआ है, परतु किसी गॉव मे निकल जाइए देखिए तो उर्दू जाननेवाले कितने मिलते हैं? इसके विरुद्ध आप जहॉ देखेगे हिंदी जाननेवाले बहुतेरे मिलेगे यद्यपि हिदी का पक्ष करनेवाला कोई नही है। यहॉ तक कि मुसलमान समाज मे भी हिदी ही की अधिकता पाइएगा। दूसरे यह कि फारसी के अक्षर ऐसे भ्रममूलक हैं कि एक शून्य के घटने बढने से कुछ का कुछ हो जाता है। लिखा कुछ जाय पढ़ा कुछ जाय। कोई मनुष्य जो उर्दू या हिंदी भाषा न जानता हो वह केवल उर्दू के अक्षर सीखकर चाहे कि कोई पुस्तक शुद्ध शुद्ध पढ़ सके कभी पढ़ नही सकता और हिदो के अक्षर पढ़कर भाषा से सपूर्ण अनभिज्ञ भी शुद्ध उच्चारण कर सकेगा। पूज्यपाद भारतेदु बाबू हरिश्चंद्र जी ने एज्यूकेशन कमीशन मे गवाही दी थी, उसमे सिद्ध किया था (سر) ऐसा चिह्न ६०६ रीति से पढा जा सकता है और कही रे का दाल बन गया तो फिर १२०० हो गए, योही सब शब्दो को समझ लीजिए। निदान उस समय हिंदी की अवनति के सिवाय उन्नति न हुई। अब आया

अँगरेजों का समय। इस समय हिंदी ने रूप बदला। अब केवल कविता और धर्म का विचार छोड़कर साधारण लोगों के समझने और उपकार के योग्य भाषा बनने लगी, सहज बोलचाल में ग्रंथ बनने लगे, समाचार-पत्र छपने लगे, लोगों का कुछ ध्यान इस ओर खिंचा। यह सब केवल दोही एक बड़े बडे राजपुरुषों की कृपा-दृष्टि का फल था परंतु अधिकांशों का ध्यान इधर नहीं पडा क्योंकि राज-भाषा तो उर्दू ही रही। इसलिये उन लोगों ने केवल उसी के सहायक रहना कर्तव्य समझा नहीं तो हिंदी का रूप अब तक दूसरा हो जाता।

हम ऊपर वर्णन कर चुके है कि जब तक वाणिज्य कलाकौशल आदि का प्रचार इस देश मे न होगा, देश का दु:ख दूर न होगा और उसके होने का उपाय सहज यही है कि हिंदी में सब आवश्यक ग्रंथ बने और उनकी शिक्षा दी जाय। परंतु दु:ख का विषय है कि इसका सर्वथा अभाव हिंदी मे बना ही है। किसी उपयोगी विषय को ढूँढिए तो हिंदी मे न मिलेगा, यहाँ तक कि हिंदी का कोई उत्तम कोष या सर्वमान्य व्याकरण चाहिए तो न मिलेगा। अब इससे बढ़कर हिंदी की क्या दुर्दशा हो सकती है।

नागरी-प्रचारिणी सभा क्यों बनी ?

इन्हीं अभावों को दूर करने के अभिप्राय से इस नागरी-प्रचारिणी सभा का जन्म हुआ। जब देखा गया कि हिंदी, जिस पर इस देश की सारी भलाई निर्भर है, दिन पर दिन उन्नति के बदले अवनति कर रही है, कोई भी इस अनाथिनी की ओर ध्यान नहीं देता तो हिंदी के कुछ प्रेमी लोगों ने इस सभा को स्थापित किया, क्योंकि बिना रोए माँ भी लड़के को दूध नहीं पिलाती तो हमारी अँगरेजी सर्कार कैसे इस अनाथिनी का स्वत्व इसे दे सकती है और

हमारे देशबांधव लोगो को भी नीद कुछ अधिक आती है। जब तक जगाए न जायँ, वे भी क्यो इधर देखने लगे थे ?

"इस सभा का मुख्य कर्तव्य (क) हिंदी भाषा की त्रुटियों को दूर करना, (ख) हिंदी को उत्तम और आवश्यक विषयों के ग्रथो से (नवीन ग्रंथ अथवा दूसरी भाषाओ के अनुवाद द्वारा) अलंकृत करना और (ग) हिंदी भाषा के प्रचार तथा उचित अधिकार पाने के लिये सर्कार तथा एतद्देशीय और परदेशीय सज्जनों मे उद्योग करना है।"

इस सभा की नियमावली और रिपोर्ट से इसका पूरा वृत्तात विदित होगा।

नागरीप्रचारिणी सभा क्या चाहती है ?

नागरीप्रचारिणी सभा जो कुछ चाहती है उसे हम बहुत संक्षेप मे निवेदन किए देते है।

(१) हिंदी भाषा का पूरा पूरा इतिहास, व्याकरण तथा कोष प्रकाशित करके हिंदी साहित्य की पूर्णता करे।

(२) गद्य और पद्य के ऐसे ग्रंथो का प्रचार करे जिसमे इस देश मे सदाचार और सभ्यता का अधिकार हो।

(३) गणित, ज्योतिष, वेदात आदि सब शास्त्रो का संस्कृत, अँगरेजी तथा अन्यान्य भाषाओ से हिंदी मे अनुवाद करे जिसमे विद्या सबधी यावतीय विषय हिंदी मे मिल सके।

(४) विज्ञान शास्त्र, शिल्प विद्या, कल बनाने, कल चलाने आदि की विद्या, वाणिज्य, कृषि कर्म आदि सासारिक विषयो के ऐसे ग्रथ बनावे जिससे इस देश के लोग शिक्षा प्राप्त करके देश की दुर्दशा को दूर कर सके।

(५) जन साधारण को हिंदी शिक्षा प्राप्त करने में उत्साहित करे।

(६) भारतवर्ष के सब प्रांत-निवासियों को हिंदी सीखने के लिये उत्तेजित करे जैसे बंगाली, गुजराती महाराष्ट्र आदि, जिसमे हिंदी भाषा कुछ समय मे ऐसी भाषा हो जाय जिसे सारे भारत-वासी पढ लिख और समझ सके।

(७) सरकार से आदर दिलाने का उद्योग करे। उर्दू के अक्षरों की अपूर्णता से अदालती कागजो मे जो बुराइयाँ और कठि-नाइयाँ आ पड़ती है उनसे बचाने की चेष्टा करें।

देशवासियों का कर्तव्य क्या है ?

परंतु यह सब निर्भर करता है केवल देशवासियों की कृपादृष्टि पर। जब तक आप लोग इस ओर दृष्टि न देंगे, कुछ नहीं होने का। सभा है ही क्या ? केवल आप लोगों के इकट्ठे होने का ही तो नाम सभा है ? जब तक आपही लोग अलग रहेंगे, हम लोग सभा कहेंगे ही किसको ? यदि आप लोग सभा के प्रस्ताव को ठीक समझते हैं—सहायक हूजिए, और यदि सभा को ठीक रास्ते पर नहीं देखते—सचेत कीजिए। सभा केवल आपही लोगों का भरोसा रखती है—आपही की कहलाती है—इसकी सफलता आपही की सफलता है—और इसके उपहास से आपही को लज्जित होना पड़ेगा। ऊपर लिखी बातों और इनके सिवाय और जो कुछ आप विचार करे उन बातो मे मनसा वाचा कर्मणा सहायता करके देश के दुःखो को दूर करने की चेष्टा कीजिए और यश के भागी हूजिए।

[साहित्यसुधानिधि]

(२) मुसलमानी दफ्तरों में हिंदी

जब से मुसलमानो का राज हिंदुस्तान मे आया तभी से देव-नागरी अक्षर और हिंदी भाषा के अतिरिक्त फारसी अरबी अक्षर और भाषा का प्रचार इस देश मे हुआ, राजकीय कार्य फारसी अक्षर और भाषा मे होने लगे, प्रतिष्ठित और शिक्षित हिंदुओ ने भी फारसी सीखी और उसमे यहाँ तक योग्यता प्राप्त की कि मुसलमानो को भी उनकी फारसी कविता और लेखो पर रीझना पडा। परंतु गँवार छोटे दर्जे के फौजी सिपाहियो मे फारसी से काम चलता न देखकर बादशाह अलाउद्दीन खिलजी (सन् १३०० ई०) के समय मे अमीर खुसरो ने उर्दू भाषा की सृष्टि की। उर्दू का अर्थ लशकर है। इस नई भाषा को सर्व साधारण मे प्रचलित करने के लिये खुसरो ने खालिकबारी बनाई और उसकी लाखो प्रतियाँ लिखकर साधारण मे बाँटी गईं, जो कि इस कहावत से सिद्ध है—

"एक लख ऊँट सवा लख गारी (गाड़ी)।
उस पर लादी खालकवारी ॥"

और इसी लिये खालिकबारी की भाषा गँवारी भाषा है, परंतु उर्दू ने निम्न श्रेणी के लोगो के अतिरिक्त कभी शिक्षित, उच्च पदस्थ लोगो मे तथा राजकाज मे आदर नही पाया, क्योंकि न तो कोई प्राचीन ग्रंथ उर्दू के मिलते हैं, न कोई अदालती कागज या उनके अनुवाद उर्दू मे मिलते हैं और न कोई प्राचीन व्यवहार के ही उर्दू मे होने का पता चलता है, केवल टोडरमल ने अकबर के समय में कुछ काम इससे लिया था और अंत मे आकर इसका कुछ आदर दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुरशाह (जफर) तथा लखनऊ के

नवाबो के दर्बार मे हुआ परतु वह भी केवल कविता ही तक रहा, उस समय भी अदालतों मे उर्दू न घुसने पाई, यहाँ तक कि अँगरेजों के आने पर भी बहुत दिनों तक फारसी ही अदालतों मे जारी रही और उर्दू को किसी ने न पूछा। यह फारसी सन् १८३७ ई० तक जारी रही और उसके पीछे अँगरेज गवर्मेंट ने फारसी से सर्व साधारण प्रजा को कष्ट देखकर देश-भाषा जारी करने की आज्ञा दी और उसी आज्ञा के अनुसार बंगाल मे बँगला, गुजरात मे गुजराती और महाराष्ट्र मे महाराष्ट्री प्रचलित हुई और पश्चिमोत्तर, अवध, बिहार, मध्यप्रदेश आदि मे हिंदुस्तानी जारी की गई, परतु उस समय के अँगरेज हाकिमो को न जाने क्या उलटी सीधी समझाकर अमलों ने उर्दू ही हिंदुस्तानी भाषा है, समझा दिया और उसी के अनुसार उर्दू प्रचलित हो गई, परतु इस भ्रम को समझकर बिहार और मध्यप्रदेश की गवर्मेंट ने सन् १८८१ ई० मे उर्दू को उठाकर हिंदी जारी कर दी। एक इसी प्रांत की गवर्मेंट ने न जाने क्यों अब तक इस ओर ध्यान नही दिया है।

देखने मे फारसी से उर्दू सरल जान पड़ती है और फारसी के बदले मे उर्दू का प्रचलित करना सुगम जान पडता है और इसी से इसका प्रचार किया गया, परंतु विचार करके देखा जाय तो इससे महा अनिष्ट हुआ है और देश मे विद्या की चर्चा बहुत ही घट गई तथा सर्व साधारण को भी कठिनता पडी और समय समय पर हाकिमो को भी धोखा खाना पडता है। फारसी एक स्वतंत्र विद्या है। उसे तब तक कोई नही समझ सकता जब तक कि वह उसे अच्छी तरह न पढ ले। इसलिये जब तक फारसी थी, लोगों को उसमे पूरी योग्यता प्राप्त करनी पडती थी। दूसरे फारसी मे स्थानो और व्यक्तियों आदि के नामो के अतिरिक्त और सब बातें उसी भाषा के शब्दों में

लिखी जाती थी जिनको कि नियमपूर्वक पढ़े बिना कोई समझ नही सकता था, और तीसरे जो अक्षर लिखे जाते थे वही भाषा रहती थी इससे कुछ का कुछ नही पढ़ा जाता था। इसके ठीक विपरीत उर्दू की दशा है। एक तो उर्दू कोई भाषा नही है। यह फारसी, अरबी और हिंदी के आधार बिना बन नही सकती और इन तीनों भाषाओ मे योग्यता प्राप्त करे ऐसे कम लोग होते है। इससे उर्दू पढ़कर कोई विद्वान् नहीं बन सकता। दूसरे, अक्षरो को पढने लगे और उसमे अपने हृदय के भावो को लिखने का अभ्यास हो गया। अब और कौन समय लगावे ? उसी अधकचरी अवस्था मे रह गये। उनकी विद्वत्ता की यह दशा है कि यदि उन्हे 'साबित' लिखना है तो वे यह नही जानते कि 'सा' को 'से' से लिखे या 'स्वाद' से या 'सीन' से। योही 'त' को 'ते' से लिखे या 'तो' से, क्योकि जिस भाषा के शब्द उसमे आए है उससे तो वे परिचित है ही नहीं, करे क्या, निदान विद्या की गंभीरता सर्वथा जाती रही। तीसरे, अक्षर भ्रामक और एक उच्चारण के कई अक्षर जैसे अ के दो, त के दो, स के तीन, ज के तीन, र के दो, इत्यादि तथा मात्राओं का काम केवल जेर जबर पेश के चिह्नों से लिया जाता है, वह भी प्राय लिखे नही जाते, केवल अनुमान से समझे जाते हैं। ऐसी दशा मे दूसरी भापा के शब्द इन अक्षरों में कभी ठीक पढे लिखे नही जा सकते और यही सारी कठिनाइयो की जड़ है। चौथे, फारसी के प्राचीन अदालती कागजात जहाँ तक देखे जाते हैं प्राय. नस्तालीक अर्थात् सुपाठ्य लिखे हुए मिलते हैं क्योकि कठिन भाषा होने के कारण लोग उन्हे सबसे पढे जा सके इसलिये साफ लिखते थे और अब लोग यह समझकर कि यह भाषा सबकी समझ मे आनेवाली है, इस ओर ध्यान ही नही देते और ऐसा शिकस्त: लिखते हैं कि दूसरे की कौन कहे प्राय स्वयं ही नही पढ़

सकते। अस्तु, हम यहाँ हिंदी उर्दू के गुण दोषो पर विचार नहीं करना चाहते, हमारा आलोच्य विषय केवल यही है कि मुसलमान बादशाहो के समय मे हिंदी का कुछ आदर अदालतों मे था या आजकल ही की तरह उस समय भी हिंदी की कोई पूछ न थी ?

मुसलमान बादशाहो के आदि काल से क्या क्या परिवर्तन हुए इसका ठीक पता नही लगता। इसका एक बडा कारण यह भी है कि किसी बादशाह ने शृंखला से जमकर राज्य नही किया, बहुधा झगड़े बखेड़ं ही मे रहे और थोड़े ही दिनों तक प्राय. खड राज्य ही करते रहे। मुसलमानी बादशाहो की उन्नति अकबर के समय से और अवनति औरंगजेब के समय से आरभ हुई। अतएव हम इसी समय का उदाहरण दिखलावेगे।

अकबर के मत्री राजा टोडरमल ने सर्कारी दफ्तरो का प्रबंध किया और उचित समझकर महक्मा माल के कागजात हिंदी मे कर दिए जो कि आज तक प्रचलित है और पटवारी लोग हिंदी ही मे कागजात देही दाखिल करते हैं।

महाजनी के कागजों को टोडरमल ने हिंदी में जारी रखा जो कि आज तक वैसे ही चलते है, हुंडी के लिये जो मस्विदा उन्होने बनाया वह ज्यो का त्यों आज तक चलता है, यदि उसमे एक मात्रा का भी अंतर पड़े तो हुंडी नाजायज हो जाय, यहाँ तक कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो हिंदी नही जानता हुंडी लिखना चाहता है तो फारसी अक्षरों मे उसे हुंडी की वही नकल लिखनी होती है जो कि हिंदी मे लिखी जाती है।

दफ्तरो मे हिंदी बरती जाती थी इसका प्रमाण गोस्वामी तुलसीदास जी का पंचनामा है जिसे उक्त गोसाईं जी ने भदैनी के दो भाइयों के हिस्सा करने मे लिखा था और जिस पर उस समय के काजी ने तसदीक लिखी है और मुहर कर दी है। इस पंचनामे की नकल को खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर की छपी रामायण तथा डाक्टर

ग्रिअर्सन साहब के The Modern Vernaculai Literature of Hindustan के Addenda Et Corrigenda मे देखिए। मै उस समय के किबाले आदि की खोज मे भी हूँ, यदि हाथ आए तो पाठको की भेट करूँगा।

जहाँगीर और शाहजहाँ ने अकबर के परिश्रम का सुख भोगा और अकबर के दिखाए मार्ग पर चलकर सुखपूर्वक राज्य किया। उनके समय मे कोई विशेष परिवर्त्तन राज्य-प्रणाली मे नही हुआ।

औरगजेब ने अपनी नीति और अपने सिद्धात को बदला। यदि अकबर ने हिदुओ को प्रसन्न करके अपना शुभचितक बनाना उचित समझा तो औरगजेब ने "बिनु भय होइ न प्रीति" की नीति पर उन्हे दु खित करना, यदि अकबर ने किसी के धर्म मे हस्तक्षेप करना अमगलकारक समझा तो औरगजेब ने सब धर्मो को मिटा देने मे मगल, निदान दिन की रात, और रात का दिन हो गया, परतु आवश्यक समझकर राज-कार्य-दक्ष औरगजेब ने अदालती भाषा मे कुछ परिवर्त्तन नही किया, महक्मा माल मे पूर्ववत् हिदी ही जारी रही, किबाले आदि का अनुवाद हिदी मे होना आवश्यक ही बना रहा। हम इसको प्रमाणित करने के लिय औरंगजेब के राजत्व काल के एक प्राचीन किबाले के हिंदी-अश की नकल उद्धृत करते है—

मुहर काजी की फारसी मे

मुहर मुफ्ती की फारसी मे

(फारसी का किबाला)

. . .. .

सवत् १७४० स मे फागुन सुदी ६ तमुमी (?) पुरूषक (?) करै बीकरै करै करता महाराज रघुनाथ सुत बीसेसर दास का पोता

बीकरै करता सुरजन शाही कन्हई सुत रामभदर का पोता वा राज साही आनंदराम सुत टोडरमल का पोता वा रामपरसाद मचूकर का बेटा रामदास का पोता वा सुमेरा जुझारा का बेटा आजोचा का पोता दारूल अदालती बलदै महमदाबाद उर्फ बनारस मो हाजीर होई कै बयान किया की एक कीता जमीन जो तूल पछीव वा पुरूब लाठा बीस २० वा अरज उत्तर दखीन लाठा बीस २० तीश का मोकसर बीगहा एक १ तीश की हदहदूद का बेवरा मोजीब तपसील।

पुरूब मोतसील जीमीन बाग तुला लहेरा जदू का बेटा	पछीव मोतसील बाग नरहरी गर्धी मसहूर	उत्तर मोतसील जीमीन मया वोगैरह सुरकाई	दखीन मोतसील तालाब रोटा भंटा

मौजे रोटा भटा मामुला परगने हवेली महमदावाद उर्फ बनारस की रकबा मे इशके कीसमती बीरादरी हमारे हीशा मो हुआ अबताई हमारे कबुज तसरूफ मो था पहीले इशके महाराज मजकूर ने हमारी रजामदी शो बारह दरखत आवली वा दस दरखत आवला वा सात दरखत आवा वा चारी दरखत लीबु बोही जीमीन मजकूर मो बैठावा बोही पर काबीज था अब महाराज मजकूर ने खरीदारी बोही जीमीन की कीया तब बोही जीमीन का मोल करावा मोल भा रजामदी तरफएन रूपैआ ५३) मोकरर भा तब हाजीर कीआ भगवती सीवदत का बेटा रामदास का पोता वा बीकरम भरथ का बेटा कबला का पोता एन्हौ गुआही दीया तब सुरजन साही वा राजसाही वा रामपरसाद वा सुमेरा मजकूर इकरार शरई कीआ की जीमीन मजकूर वा अमला फएला शुधा रूपैया तीरपन ५३) शीका आलमगीरी वोजन पूरा पर महाराज मजकूर के हाथ बुड़ा बुड़ा (?) कै

बेचा बेचा रूपैश्रा मजकूर महाराज सो लेई कै श्रापने हीशा मोजीब हरीक दाम का बीज मो तसरफ भए चैा: सुरजन शाही १३।) राज-साही १३।) रामपरशाद १५।।।=)।। सुमेरा मजकूर १०।।-)।। जीमीन मजकूर पर महाराज को काबीज मोतसरफ कीया कोई दावागीर पैदा होई तौ बेचवैश्रा जवाब करै ता' ६ माह रवील श्रौली शन १०९५ .. "

उस समय मे केवल हिंदी ही मे कैसे कागजात लिखे जाते थे इसे दिखलाने के लिये हम "श्री गोवर्धन नाथ जी के प्रागट्य की वार्ता" से गोस्वामि श्री बिट्ठलराय जी के इकरारनामे की श्रविकल नकल उद्धृत करते है जो कि दिल्ली मे लिखा गया था (पडित मोहनलाल विष्णुलाल पड्या प्रकाशित उक्त वार्ता के पृष्ठ ३५ का फुटनोट देखो) ।

॥ १ ॥

श्रीहरि

लिखत बिट्ठलराई दामोदरजी सुत श्रीगोवर्धन नाथजी के देवाले की सेवा श्री वल्लभाचार्य करते ता पीछे श्री बिट्ठलेश्वर दीच्छित करते इनके सात बालक श्री गिरधरलाल जी श्री गोबिंदजी श्री बालकृष्ण जी श्री गोकुलनाथ जी श्री रघुनाथ जी श्री यदुनाथ जी श्री घनश्याम जी ज्यो छहो भाईन सो चले त्यों इनके कुल सो चले ज्याहि या बात ते कोई घाटि बाढ़ि करे सो श्रीनाथजी ते बिमुख श्रीनाथजी को श्रपराधी लौकिक गुनहगार यह बात महाराजा श्री जसवतसिह जी महाराजा श्री जयसिहजी महाराजा श्री बिट्ठलदासजी के श्रागे चुकी मिति चैत्र वदी ७ गुरौ सवत १७०७ मुकाम शाहजहानाबाद ।

महाराज जसवतसिहजी	अत्र साषी राजा जसवतसिह

महाराजा जयसिहजी

राजा बीठलदासजी	अत्र साषी राजा बीट्ठलदास

औरगजेब के उत्तराधिकारियो को अपने झगडों और मुसलमानी राज्य की जड़ खोदने से अवकाश कहाँ था जो कुछ परिवर्तन करते ? वही प्रथा प्रचलित रही। इसके प्रमाण मे मेरे अधिकार मे उस समय से लेकर अँगरेजी राज्य के आरंभ तक इसी तरह के अनेक किबाले आदि वर्तमान है परंतु उनको प्रकाशित करना अनावश्यक समझकर मैं ठीक इसी तरह के अँगरेजी राज्यारभ के एक किबाले के हिंदी अंश की नकल उद्धृत करता हूँ।

मुहर काजी की फारसी में		मुहर मुफ्ती की फारसी मे

(फारसी का किबाला)

. ...

सबत १८६७ मी० जेठ सुदी १ बार सुभ दीने वीकरी करता धवल वोझा गजराज वोझा के बेटा मोहकम वोझा के पोता बराभन बीच कजाये बुलदै बनारस के हाजिर आयं कै एकरार कीया की एक मंजिल बाग समेत चारिबदीवार ईंट समेत जमीन इमारत महला कासीपुरा जो बनारस मे है पैमाइस पीरन राज जुमीला जमीन गज ११५८)– २ बहर कीता पहीला तूल पूरब पछीव समेत दोनों दीवार गज ८७॥) तरफ दखिन गज ४४) तरफ उत्तर गज ४३॥) करार

अधिया ४३॥।)= अरज उत्तर दखीन समेत दोनो दीवार गज २६।)≡ मोकसर गज ११४३॥)-२ बंहर कीता दूसर वा खोची तरफ पूरब तूल उत्तर दखीन गज ४) पूरब पछीव गज १।।) मोकसर गज ६) वा इमारत एक बंगला खपरापोस तरफ उत्तर वा एक घर खपरापोस तरफ दखीन वा कुआ पका वा एक दलान तरफ पूरब वा दो दरखत दाखील बाग बीके मो है तेकी चारो हद—

पूरब	पछीव	उत्तर	दखीन
तालाब मैदागीन	गली चलती दुवारा पनारा	गली खास वा मदिल गनेस जो बड़े वा दुआरा पनारा वातीन खीरकी बाला खाने को इधर है	गली चलती

ममलूका खरीद मेरा है वा केबाला समेत मोहर हजरत तुमारे के पास रखता है वा मै अब तको बीला सरीकत दूसरे के ऊपर उसके काबीज है अब तमामी बाग कीता २ बदले रूपैआ ८७५) सीका हाली आधा रूपैआ ४३७॥) बदसत हुकुमचद बीहारीलाल के बेटा ठाकुरदास के पोता अगरवाला तीस के हाथ बुडा बुड़ा कै (?) बेचा बेचा रूपैआ सभ दाम दाम खीरीदार से ले कै अपने खरच मे ले आया मै तब जीमा खरीदार का खलास भया खरीदार कीता २ ऊपर कबुजोअत॰ अपनी ऊपर तमामी बाग जमीन बै पर काबीज कीया मैं खरीदार मजीलीस मे हाजीर था मोल जमीन बाग रूपैआ

पर कबूल करकै एकरार कीया की अपर कबुजियत बेचनेवाले ऊपर तमामी बाग जमीन वै पर काबीज हुआ मैं आगे कोई इसका दावा झगरा करै तौ झूठा झूठा इसका जवाब बेचनेवाला करै खरीदार से इलाका नाही ता० २६ रबीउस्सानी सन १२२५ हीजरी द हींदुइ सकरलाल गु कानीगो... ."

जान पडता है कि उस समय के अँगरेज लोग भारतवर्ष की बातो से वैसे परिचित नहीं होते थे जैसे कि मुसलमान थे, इसी लिये अदालत के अमलो ने अपना मतलब साधने के लिये हिंदी अनुवाद उठा दिया और उस समय के हाकिमो ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया, क्योंकि पीछे के किबाले आदि मे हिंदी अनुवाद नहीं है।

फिर प्राचीन शैली किबाले के लिखने की बदली और वर्तमान शैली के समान "मनकि" करके लिखने की प्रथा चलाई गई, परंतु भाषा फारसी ही रही।

इन किबालो को देखकर यह न समझना चाहिए कि केवल किबालो ही मे हिंदी अनुवाद रहता था मेरे पास पट्टे, रेहन्नामे आदि कई प्रकार के कागजात कई समय के लिखे हुए हैं, जिनको प्रकाशित करना व्यर्थ लेख बढाना है।

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग २, १८९८]

---

(३) होली है

अहा हा ! आज होली है, नही नही भारत के भिक्षा की झोली है, नहीं नही क्षत्रियो की होली है, अजी वाह अच्छा कहा यह तो बुड्ढो के खेलने की गोली है, भारतवर्ष की दुर्दशा के छिपाने को लाल गुलाल की खोली है, नहीं भारतवर्ष के असभ्यता प्रदर्शन को यह बेहूद ठठोली है, यह लाल लाल क्या उड रहा है ? अजी हजरत गुलाल । यहाँ कभी लोग ऐसे थे कि थोडी थोडी बातो पर खून बहाते थे, फिर आप समझिए कि हमारे हिंदुस्तानी लोगो की तो यह सदैव की चाल है कि बड़ो की नकल करना फिर ये क्यों न खून बहावे ? पर उतना पराक्रम कहाँ कि किसी अपने विदेशी शत्रु से लडकर खून बहावे ? तब आपस मे ही सही, पर भाई उसमे चोट चपेट लगती है, कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि चोट भी न लगै और बडो की चाल निभी जाय, तब गुलाल और लाल रंग निकाला गया !!! यहाँ की सभी बाते ऐसी है । देखिए प्रमाण प्रस्तुत है । आगे की यह चाल थी कि स्त्री विधवा हुई और उसका प्राण लिया गया, फिर जब सर्कार से सती होने की मनाही हुई तब सोचा कि जीवदान तो अवश्य ही करना चाहिए, कैसे जीवदान हो ? विधवा-विवाह मत करो, एक की जगह दस जीवदान होगे, ले सर्कार सती होना बद करै भ्रूण-हत्या ही सही !!! गुलाल का अर्थ सुनिए—गु-गुणो-ला-लाल ल-लीपना अर्थात् गुणो को लाल चौका से लीप पोतकर रगीन कर देना । अबीर का अर्थ तो स्पष्ट है अर्थात् अ = नही, वीर = वीर । अवीर पिचकारी मे रग भर-कर ऐसा मारो कि समुद्र पार जाय, छि' पिचकारी से क्या होगा

दमकला लगाओ रंग की इतनी बहुतायत करो कि भारत रंक हो जाय, मारे सर्दी के अकड़ जाय, जिसमे फिर दम भो न ले, बचै खुचै होलिका मे जलाओ।

भई हम लोग तो अँगरेजो के भा गुरु है। अँगरेज लोग कहते हैं कि "आदमी बंदर की औलाद हैं" हम कहते है नहीं हम लोग स्वय बंदर है। विश्वास न हो हिदुस्तानियो का मुँह आज देख लो। यह सामने क्या शोर गुल हो रहा है ? अजी यह "पुलिस" की गोल है। क्यो भाई पुलिसवाले ही जो गाली इत्यादि बकते है तो और लोगों की क्या बात है ? क्यो जी आज शहर की रचा कौन करता है ? पुलिसवाले दूसरे ही रग मे मस्त हैं। वाह तुमने सुना नही कि "राम-भरोसे वे रहैं पर्वत पर हरियाय" भला वह कौन लोग है जो बडी सभ्यता से होली खेल रहे हैं ? वे हिदी पत्र हैं।

देखो लेखनी कैसे धूमधाम से पिचकारी का काम दे रही है। कागज कैसे उड़े जाते है जैसे गुलाल, उनके अक्षर ऐसे है जैसे कुमकुमा, कलेजे पर लगते ही कलेजे को बेध डालते हैं। पर भाई ये लोग गाली तो नही बकते ? वाह वाह ! गाली तो ऐसी बकते हैं कि जैसी कोई भी नहीं बकता। हिदुस्तानियो को अपनी उन्नति करने को कहते हैं। यह गालियों की परदादी है ! भई सबसे पक्के खिलारे तो यही लोग हैं। इनको बारहो महीना होली है। भई आज "ताश" बादला मत पहिनना नहीं तो फिर पूरे बनोगे। सच पूछो तो आज कल "बादशाहो" की बड़ी खराबी है पर "बीबियों" ने तो हर तरफ से "रंग मार" रखा है, दालमंडी के कारण घर के "गुलामो" को चैन है, अजी होली ऐसी मचाओ कि लोगो को "दहला" दो, रंग इतना उडाओ कि सबको "नहला" दो, होली का तिवहार ऐसा है कि साठ बरस के बुड्ढे को भी "आठ" बरस

का बच्चा बना देता है, खेल मे ऐसी धूम मचाओ कि शरीर से "सत्ता" जाती रहे, और लोग "छक्का पंजा" सब भूल जायँ, थोड़ी सी अबीर लेकर मुँह मे "चौका" लगा दो, आजकल तो जो फल "तिया" के जपने मे है वह तो अब किसी फकीर के "दुआ" मे जरा भी नही, "एक्का" पर चढकर बहरी तरफ जाने और बूटी छानने ही मे दुनिया का मजा है, "रग" है गुरु तोरा, का कहना है, यार "पान" ने तो तुम्हारे मुँह मे खूब लाली मचा रक्खी है, अजी यह मुँह मे क्या 'लाल लाल" पोत रक्खा है? ईंट पड़े तुम्हारे अकिल पर, इतना भी नही जानते यह गुलाल है, हुजूर अगर "हुक्म" हो तो इस 'चिडिया'वाले के मुँह मे कालिख पोत कर "काला" देव बना दूँ।

देखो एडिटर लोग भी होली खेल रहे हैं।

जुरि आए एडिटर लोग होरी होय रही।
कोऊ धन्यवाद की ढेरी करत सहित आनंद।
कोऊ बैठ्यो होरी गावत कोउ बैठ्यो निर्द्वंद ॥
होरी होय रही।
कोऊ देखि दशा भारत की दुखी होत चित माँहि।
तापै होरी देखि देखि कै मन महँ धीरज नाहि ॥
होरी होय रही।
कबहुँ हुतो जो भारत सबसों उत्तम या जग बीच।
ताही की यह दीन दसा है इनहि कहत सब नीच ॥
होरी होय रही।
दास बने सब रोवत निसि दिन कोऊ नहि सुधि लेत।
लार्ड रिपन की देखि किरपा मिलि धन्यवाद सब देत ॥
होरी होय रही।

क्यों भई होली भी क्या अच्छा तिवहार है ?

आजु होलिका को अहै अति प्रसिद्ध तिहवार।
याही सो निकस्यो सबै भारत को कतवार ॥
जित देखहु तित लाल ही पीलो रग लखात।
मानहुँ अति आनंद सो सबही प्रमुदित गात ॥
सबके जिय को भाव यह प्रगट होइ दरसात।
प्रेस एक्ट के उठन सो आनँद उर न समात ॥
जब हिय मे आनंद को भयो खजानो बद।
तब बाहर ह्वै छोड चल्यो छाडि सबै दुख द्वद ॥

[उचितवक्ता]

---

(४) कुछ प्राचीन भाषा कवियों का वर्णन

भाषा कवियो का वर्णन करके सबसे पहले बाबू शिवसिह सेगर ने सवत् १६३४ मे यश प्राप्त किया। उनके पीछे भाषारसिक डाक्टर ग्रियर्सन ने इसे और भी परिमार्जित करके अँगरेजी भाषा मे प्रकाशित किया, जिसके लिये भाषारसिक मात्र उक्त महोदयों के कृतज्ञ हैं—परतु बाबू शिवसिहरचित "शिवसिह-सरोज" के भी पहले का अर्थात् सवत् १६३० सन् १८७३ का बना "भाषा काव्य-सग्रह" नामक ग्रंथ मुझे मिला। यह ग्रंथ पडित महेशदत्त शुक्ल द्वितीयाध्यापक रामनगर (जिला बारहबङ्की) पाठशाला रचित है और लखनऊ के मुंशी नवलकिशोर प्रेस मे मुद्रित है। इसमे सग्रह-कर्ता ने पहले कुछ प्राचीन कवियो की कविता सग्रह की है, फिर उन्ही कवियो का जीवनचरित्र तथा समय आदि सक्षेप से दिया है और अंत मे कठिन शब्दो का कोष दिया है। कवियो का समय-निर्णय इस ग्रथ मे जैसा किया है वैसा कही देखने मे नही आता, विशेष कर अवध प्रात के कवियो का समय-निर्णय बहुत ही निश्चय के साथ किया है। यदि इसमे दिया समय ठीक हो (जिसके ठीक न मानने का कारण हमे नही दिखाई पडता), तो बहुत से कवियों के समय-निर्णय का मार्ग अत्यत परिष्कृत हो जाता है। जिन कवियों के विषय मे कोई विशेष बात इन्होने लिखी है उनका सक्षिप्त वर्णन इस लेख मे पाठकों के कौतूहलार्थ किया जाता है।

भगवतीदास

कान्यकुब्ज ब्राह्मण किठॉवॉ गॉव जिला फैजाबाद के रहनेवाले।

संवत् १६८८ मे नासिकेतोपाख्यान बनाया और संवत् १७१४ मे स्वर्गवासी हुए।

नरोत्तमदास

वाड़ी जिला सीतापुर के रहनेवाले। संवत् १५८२ मे "सुदामा-चरित्र" बनाया। "शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १६०२ दिया है।

लल्लूजीलाल

आगरे के रहनेवाले। प्रेमसागर आदि के कर्त्ता। संवत् १८३० मे जन्म हुआ था।

अनन्यदास

कान्यकुब्ज ब्राह्मण गॉव चकेदवा जिला गोंड़ा के रहनेवाले। भारतवर्ष के अतिम राजा पृथ्वीराज (?) के कवि थे। "अनन्य योग" ग्रथ योगशास्त्र का बनाया। जन्म संवत् १२७५ (?) मे हुआ। "शिवसिंह-सरोज" मे इनका समय सवत् १६२५ लिखा है। इनकी कुछ कविता "अनन्य योग" से उद्धृत करते हैं—

का होत मुड़ाए मूड़ बार। का होत रखाए जटा भार॥
का होत भामिनी तजे भोग। जौ लौं न चित्त थिर जुरै जोग॥
थिर चित्त करै सुमिरन मँझार। ऊपर साधै सब लोक चार॥
यह राजयोग सुख को निधान। कोइ ज्ञानवंत जानत सुजान॥
अर्जुन रु जनक पृथु आदि लोग। राजन साध्यो सब राजयोग॥
सुखराज कियो अरु भोग सिद्ध। को अतिथि भयो इन सम प्रसिद्ध॥
यह अतिथिनहूँ ते अति अनूप। सुनु राजयोग सिद्धांत भूप॥
सुख मारग यह पृथीचंदराज। यहि सम न आन तम है इलाज॥

....

दोहा

राजयोग सिद्धांत मत, जानि राज पृथिचंद।
यहि सम मत नहिं दूसरो, खोजि शास्त्रि बहु छंद ॥
जो चाहो संसार सुख, अरु सिद्धांत प्रकाश।
तै। साधै। सर्वज्ञ यह, योग सदा अनयास ॥ १५ ॥

मलूकदास

ब्राह्मण, कड़ा मानिकपुर के रहनेवाले संवत् १६९५ मे स्वर्गवासी हुए। ये "बड़े सिद्ध थे। इनके मित्र एक मुरारिदास वैष्णव थे जो कि कड़ा नगर से बीस कोस पूर्व दिशा मे कही गंगाजी के निकट रहते थे। माघ मास मे इन्होने एक बड़ा भारी भंडारा किया पर मनुष्य बहुत थे इससे सामग्री न पहुँच सकी तब ईश्वरानुग्रह से यह वृत्त मलूकदास को विदित हुआ तो एक तोड़े पर अपनी ओर से लिखा कि मुरारिदास के पास पहुँचे। उसे ले गगाजी से कहा 'हे गंगे, इसे अभी वहाँ पहुँचा दीजिए क्योंकि मनुष्य इसको ले जाकर समय पर नही पहुँच सकता' यह कह गगाजी मे छोड़ दिया। उसी समय मुरारिदास अपने घाट पर स्नान करने गए थे कि तोड़ा रुपयों से भरा हुआ पाय मे लगा। उसे देख जाना कि मलूकदास का भेजा हुआ है। सबको भोजन कराया। ये मलूकदास तुलसीदासजी के समय मे थे क्योकि जब तुलसीदासजी अयोध्याजी से चित्रकूट जाते थे तो इनसे भेंट हुई थी"।

"शिवसिंह-सरोज" मे इनका समय संवत् १६८५ लिखा है।

मलूकदास का एक स्वतंत्र मत ही चलता है। ये रामोपासक थे। मिस्टर ग्राउस इन्हे जहाँगीर के समय मे बताते हैं और लिखते हैं कि इनके संप्रदाय का एक स्थान और एक रामजी का मंदिर श्रीवृंदावन केशीघाट पर है। अब तक इनकी गद्दी पर महत

लोग हैं। इनका बनाया "दश रत्न" ग्रंथ और अनेक पद हैं। यह प्रसिद्ध दोहा इन्हीं का है—

"अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए सबके दाता राम॥"

मोतीलाल कवि

सरवरिया ब्राह्मण बांसी राज्य में अधैला ग्राम के रहनेवाले। गणेशपुराण भाषा किया। संवत् १५९८ मे मरे। "शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १५९७ दिया है।

चरणदास

पंडितपुर जिला फैजाबाद के रहनेवाले संवत् १५३७ मे मरे। स्वरोदय बनाया। "शिवसिंह-सरोज" ने भी यही समय दिया है। इनके और भी कई ग्रंथ हैं। सभों का संग्रह लाहौर के "ब्रह्म-विद्याप्रचारक" मासिक पत्र मे छपा है।

भिखारीदास (दास)

कायस्थ अरवल देश (बुँदेलखंड) के टैंडगा नगर के रहनेवाले। पिता का नाम कृपालुदास, पितामह का वीरभानु, प्रपितामह का रामदास और भाई का चैनलाल था। जन्म-संवत् १७४५ मृत्यु-संवत् १८२५। इन्होंने छंदार्णव पिंगल, रस-सारांश, काव्य-निर्णय, शृंगार-निर्णय, बाग-बहार आदि ग्रंथ बनाए। "शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १७८० दिया है।

रामनाथ प्रधान

श्रीअयोध्याजी के रहनेवाले। संवत् १८५६ मे जन्म और संवत् १९२५ मे मृत्यु। "राम कलेवा, रामहोरी रहस्य, और फुलवारी आदि ग्रंथ अत्यंत सुंदर बनाए।" "शिवसिंह-सरोज" मे इनका समय संवत् १९०२ दिया है।

जानकीदास कवि

पँवार ठाकुर गुड़सड़ा ग्राम जिले गोंडा के रहनेवाले। संवत् १४६८ मे मरे। स्फुट कविता मिलती है। "शिवसिंह-सरोज" मे इनका नाम नही है।

नरहरि कवि

भाट महापात्र, असनी ग्राम जिला फतहपुर के रहनेवाले। संवत् १६६६ मे मरे। अकबर के दर्बार मे थे। इन्होने निम्नलिखित छप्पय बनाकर गौओ के गले में लटकाकर अकबर से गोवध छुड़वाया था—

"अरिहु दंत तृन दबहि ताहि नहि मारि सकइ कोइ।
हम संतत तृन चरहिं बचन उच्चरहि दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहि बच्छ महि थभन जावहि।
हिंदुन मधुर न देहि कटुक तुरकहि न पियावहि॥
कह नरहरि सुनु साहपद बिनवत गउ जोरे करन।
केहिऽपराध मोहि मारियतु मुयउ चाम सेइयत चरन॥"

हरिनाथ

ऊपर लिखे नरहरि कवि के पुत्र। पिता के मरने के समय २२ वर्ष के थे अर्थात् सवत् १६४४ मे जन्म और संवत् १७०७ मे मृत्यु।

"शिवसिंह-सरोज" मे लिखा है कि बड़े दानी उदार थे। एक एक दोहे पर लाखो पाया पर सब लुटा दिया। महाराज मानसिंह सवाई अजमेरवाले से इन दो दोहो पर दो लाख रुपए पाए—

"बलि बोई क़ीरति लता करन करी द्वै पात।
सींची मान महीप ने जब देखी कुँभिलात॥

जाति जाति तें गुण अधिक सुन्यो न अजहूँ कान।
सेतु बाँधि रघुबर तरे हेला दै नृप मान॥"

जब बाहर निकले, रास्ते मे एक नागापुत्र मिला। उसने यह दोहा कहा—

"दान पाइ द्वै ही बढ़े कै हरि कै हरिनाथ।
उन बढि ऊँचो पग कियो इन बढ़ि ऊँचो हाथ॥"

चट सर्वस्व उसी को दे डाला।

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ५—१९०१]

---

(५) विक्टोरिया शोकप्रकाश

बीसवी शताब्दी ने न जाने कैसी कुसाइत मे पैर रखा है कि शताब्दी के उलट फेर के साथ ही साथ हम लोगो के भाग्य का भी उलट फेर कर दिया। हाय ! यह आज क्या सुनते हैं कि जिस दयामयी, स्नेहमयी महारानी विजयिनी (विक्टोरिया) की स्नेहमय गोद मे प्राय: तिरसठ वर्ष तक हम अभागे भारतवासियो ने सुख से काल यापन किया था—उनकी पवित्रात्मा अब केवल उनकी यशोराशि को संसार मे छोड़कर और उनके पवित्र पार्थिव शरीर को, जिसके प्रताप के अटने के लिये यह सारी पृथ्वी भी छोटी थी, केवल साढे तीन हाथ भूमि मे अनाथो की भाँति सुलाकर, इस ससार से अंतर्हित हो गई। यद्यपि इस अशुभ सवाद को विश्वास करने का एकाएकी जी नहीं चाहता, परतु क्या किया जाय। जो घटना घट चुकी, उसके अविश्वास करने का कोई फल नही। सचमुच ता० २२ जनवरी को संध्या के सात बजे श्रीमती—परम भाग्यवानों की भाँति बिना कुछ विशेष कष्ट पाए हुए बहुत थोड़ी बीमारी मे—इस संसार की ममता छोड़ चल बसीं। यद्यपि श्रीमती जैसी कुछ सुख समृद्धि, प्रताप यश छोड़कर पूर्णायु भोगकर सुकीर्ति के साथ इस संसार से उठ गईं वैसा किसी बिरले ही के भाग्य मे कदाचित् कभी हो—परतु उनके दया, प्रेम और न्यायमय शासन-काल से प्रजा अतृप्त ही रह गई। उसे यह सुखमय समय ऐसा बीता मानो वह बहुत ही छोटा था—सच है सुख की घड़ी बात करते ही बीत जाती है। कल जिस सुख का अहर्निशि हम लोग अनुभव करते थे वह आज कहानी मात्र रह गया! जिस प्रशंसित समय को हम लोगों ने आँखों से देखा है

वह अनंत समय तक इतिहास के पृष्ठो पर आदर के साथ पढ़ा और सुना जायगा। अस्तु, भगवदिच्छा मे किसी का कुछ वश नहीं—हम लोगों के सतोष के निमित्त केवल श्रीमती के पवित्र चरित्र का मनन और उसके शिक्षामय उदाहरण को अपने लिये आदर्श बनाना ही एक आधार है, इसलिये हम बहुत ही सक्षेप से श्रीमती का जीवनचरित्र यहाँ पर लिखते हैं—

जन्म और राज

महारानी विक्टोरिया का जन्म सन् १८१९ की २५ मई को इँगलेड के केंगसिगटन राजभवन मे हुआ। इनके ताऊ इँगलैड-नरेश चौथे विलियम की मृत्यु हुई। उस समय विक्टोरिया से बढ़कर उनका उत्तराधिकारी होने का दूसरे को अधिकार न था इसलिये इन्ही को निज ताऊ की गद्दी मिली। इस राज्याभिषेक का उत्सव सन् १८३८ ई० की २९ जून को बडे समारोह से सपन्न हुआ। इनका विवाह अपने ममेरे भाई से हुआ जो दुलहिन से केवल तीन ही महीने बड़े थे। इनका नाम प्रिंस एलबर्ट था। सन् १८४० ई० के १० फरवरी के शुभ मुहूर्त मे यह शुभ विवाह हुआ। विलायत होने पर भी महारानी ने अपने पति से ऐसी प्रीति और भक्ति दिखाई जैसी प्रीति और भक्ति भारतवर्ष की सती कुलवती कामिनियाँ दिखाती हैं। इस दंपति-प्रेम को देख सुन सारी प्रजा चकित और प्रफुल्लित होती थी परंतु यह अलौकिक सुख महारानी के भाग्य मे केवल २१ ही वर्ष रहा अर्थात् सन् १८६१ ई० के दिसंबर की १६ तारीख को महारानी को असहनीय वैधव्य-यातना ने आ दबाया। उस कोमल हृदय पर इस असहनीय दुःख ने प्रबल आघात दिया और वह ऐसा दु:ख हुआ जैसा प्राणपति के वियोग से पतिप्राणा ललनाओं को हुआ करता है। वैधव्य-दु:ख का महारानी

ने ऐसा विचित्र पालन किया कि जिसे देख विलायतवालों को आश्चर्य्य सा हो गया।

संतति

महारानी को सब मिलाकर नौ सताने हुई। उनके नाम ये हैं—
सन् १८४० की ३१ नवबर को महारानी की प्रथम संतति—श्रीमती विक्टोरिया एडीलेड मेरी लूइसा प्रिसेस रायल का जन्म हुआ। यही वर्तमान जर्मन-नरेश की माता है। दूसरी संतान—ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् अलबर्ट एडवर्ड प्रिंस आफ वेलूस हुए। ये सन् १८४१ ई० की ९ नवबर को जन्मे। १८६३ ई० की १० मार्च को डेनमार्क की प्रिंसेस अलेकजेंडरा से इनका विवाह हुआ। तीसरी संतान—श्रीमती प्रिंसेस एलिस माड मेरी सन् १८४३ ई० १५ अप्रैल को जन्मीं। सन् १८६२ ई० की १ जुलाई को हेसीड्रामूसटाड के प्रिंस लूइस से इनका विवाह हुआ और सन् १८७८ ई० की १४ दिसंबर को राजकुमारी का परलोकवास हुआ। चौथी सतान—सन् १८४४ ई० की ६ अगस्त को प्रिंस आलफ्रेड अर्नेस्ट अलबर्ट पैदा हुए। इन्हीं को ड्यूक आव एडिनबरा की उपाधि मिली। १८७४ ई० की २३ जनवरी को रूस के वर्त्तमान नरेश की बहिन से इनका विवाह हुआ। गत वर्ष ३० जुलाई को उनकी मृत्यु हुई। पाँचवी सतान—श्रीमती प्रिंसेस हेलेना अगस्टा विक्टोरिया सन् १८४६ ई० की २४ मई को पैदा हुई। सन् १८६६ ई० की ५ जुलाई को शेल्स-विग होल्स्टीन के प्रिंस क्रिश्चियन से इनका विवाह हुआ। छठी सतान—श्रीमती प्रिंसेस लूसी क्यारोलिन अलबर्टा १८४८ ई० की १४ मार्च को पैदा हुई। सन् १८७१ ई० की २१ मार्च को मार्किस लोर्न से इनका विवाह हुआ। सातवी सतान श्रीमान् प्रिंस आर्थर विलियम पैट्रिक एलबर्ट ड्यूक आव कनाट १८५० ई० की १ मई को

जन्मे। १८७६ की १७ मार्च को प्रुशिया के प्रिंस फ्रेडरिक की कन्या से इनका विवाह हुआ। आठवीं संतान—प्रिंस लिओपोल जार्ज डनकन अलबर्ट ड्यूक आफ अलबेनी १८५३ ई० की ७ अप्रैल को जन्मे। प्रिंस वालडेक की कन्या से इनका विवाह हुआ। १८८४ ई० को २८ मार्च को इनकी मृत्यु हुई। नवीं और अंतिम संतान—श्रीमती प्रिंसेस वियाट्रिस मेरी विक्टोरिया फिमीडोर १८५७ ई० की १४ अप्रेल को पैदा हुईं। १८८५ ई० की २३ जुलाई को व्याटनवर्ग के प्रिंस हेनरी से इनका विवाह हुआ। यह भी इस समय विधवा हैं।

सर्वप्रिय होने पर भी कई बार महारानी पर कई दुष्टों ने घात किया। उन्होंने घात तो किया परंतु महारानी के पूर्ण पुण्य के कारण उन्हें उसकी ज़रा भी आँच न पहुँची। उसके प्रतिशोध में उन्होंने उन दुष्टो को अपनी अपार दया से क्षमा कर दिया।

पहले भारत का विस्तृत राज्य ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ में था; परंतु सन् १८५७ मे कई कारणों से यहाँ की राजकीय सेना ने राज-विप्लव मचा दिया था। इस अग्नि के शांत होने पर महारानी ने निज हाथ मे राज्यशासन का भार लिया। सन् १८७६ ई० मे महा-रानी के प्रतिनिधि लार्ड लिटन ने दिल्ली मे एक बड़ा दरबार किया जिसमे महारानी के अधीन स्वाधीन मित्र राज्यों और करद राज्यों के प्रायः सभी राजा महाराजा उपस्थित हुए थे। उनकी पूर्ण सम्मति से महारानी ने भारत-राजराजेश्वरी की उपाधि ग्रहण की।

महारानी के ५० वर्ष लों शासन करने के आनंद मे प्रथम "स्वर्ण जुबिली" का उत्सव सब स्थानों मे बड़े आनंद के साथ मनाया गया था। उसी के १० वर्ष के उपरांत अर्थात् १८९७ में "हीरक जुबिली" नाम का उत्सव मनाया गया।

महारानी विक्टोरिया के समय मे इँगलैंड का जैसा कुछ प्रताप बढ़ा वैसा कभी भी नही बढ़ा था। पृथ्वी के प्राय: सभी खंडो के किसी न किसी भाग मे बृटिश पताका फहराती है। श्रीमती के अचल राज्य मे सूर्यनारायण ने भी अचल मूर्ति धारण कर ली है अथवा यों कह सकते हैं कि श्रीमती के भय से पृथ्वी की गति बंद हो गई है और वह सर्वदा सूर्यनारायण के सामने ही बनी रहती है अर्थात् श्रीमती के राज्य मे कभी सूर्यास्त नही होता। आश्चर्य की बात यह है कि जैसे जैसे साम्राज्य महारानी के शासनाधीन हुए वैसी बड़ी लड़ाइयों और रक्तप्रवाह की आवश्यकता नही पड़ी, मानों परमेश्वर ने महारानी के दयामय हृदय का परिचय पाकर ही उनके कोमल हृदय को व्यथित न करने के लिये ही इनकी राज्यवृद्धि मे अपने प्यारे सतानों के सहार की उग्र मूर्ति नहीं धारण की। अस्तु महारानी का राजत्व-समय संसार के इतिहास मे सदा स्मरणीय बना रहेगा।

महारानी के निज के राज्योन्नति तथा पारिवारिक और चारित्र्य संबंधीय उत्कर्ष के अतिरिक्त इस भूमडल मे ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल आदि सभी विषयों मे इस प्रशसनीय समय मे बहुत कुछ सुधार और उन्नति हुई है। यदि इन सब का वृत्तात लिखा जाय तो एक बड़ा ग्रथ बन जायगा जिसके लिये इस पत्रिका (=नागरीप्रचारिणी पत्रिका) मे स्थान नही है, इसलिये हम केवल कुछ संक्षिप्त वर्णन अपने यहाँ के साहित्य का करके इस लेख को समाप्त करेगे।

भारतवर्षीय साहित्य

महारानी के शासन-काल मे सारे संसार के साहित्य ने विशेष उन्नति प्राप्त की, परंतु भारतीय साहित्य ने जो नवीन रूप धारण करके उन्नति लाभ की यह वर्णनातीत है। संस्कृत जो संसार भर की

भाषाओ मे सबसे प्राचीन और सर्वांगपूर्ण, सर्वोत्तम भाषा थी, लगभग एक सहस्र वर्ष से मुमूर्षु दशा मे प्राप्त होकर जीवन के दिन पूरे कर रही थी—पाश्चात्य सभ्यता रूपी ओषधि की कृपा से उसने फिर से बल प्राप्त किया और अब वह न केवल भारतवर्ष ही वरंच सारे ससार को अपने अतुलनीय गुणों से मोहित करके उत्तरोत्तर उन्नति प्राप्त कर रही है। प्राचीन ग्रथो की खोज, अलभ्य ग्रंथो के मुद्रण, अनेकानेक संस्कृत विद्यालयों के संस्थापन और विद्यार्थियों को उत्साह प्रदान के द्वारा मृतप्राय संस्कृत ने पुनर्जीवन लाभ किया। भारतवर्ष के अतिरिक्त जर्मन आदि यूरोपीय देशों में जैसा कुछ संस्कृत का आदर हुआ वह भारतवर्ष के लिये परम गौरव का कारण है।

संस्कृत के अतिरिक्त इस देश की यावतीय देशभाषाओ ने जो नवीन रूप धारण करके उन्नति प्राप्त की है वह उन भाषाओ के इतिहास मे सदा ही महारानी के राज्य को स्मरणीय रखेगी। यद्यपि बँगला, गुजराती और महाराष्ट्री आदि सभी भाषाओ ने जो नवीन रूप धारण करके देश का कल्याण किया है वह स्मरणीय रहेगा—परतु हम यहाँ कुछ वर्णन हिंदी भाषा का करेंगे, जिसने श्रीमती महारानी के राजत्व-काल मे वह अपूर्व नवीन रूप धारण किया है जो पहले किसी के ध्यान मे भी न आया होगा।

प्राचीन समय में हिंदी

महाराष्ट्री को छोडकर जहाँ तक पता लगता है हिंदी भाषा इस देश की सबसे प्राचीन भाषा है। इसने यथासमय यथोचित उन्नति प्राप्त की थी और यद्यपि विदेशियों के आक्रमण से इस पर बहुत कुछ कुठाराघात होता रहा, परंतु इसने समयानुकूल उत्तरोत्तर उन्नति करने मे त्रुटि न की। प्राचीन समय मे न केवल भारतवर्ष वरंच

सारे ससार ही मे कविता का आदर होता था, परतु यह देश इस विषय मे सबसे बढ चढ गया था—यहाँ वैद्यक, कोष और कानून आदि सभी कवितावद्ध बनते थे। हिदी ने भी वही पथ अनुसरण किया था। कविता मे सस्कृत को छोड़कर भारतवर्षीय दूसरी किसी भाषा ने हिदी के समान उन्नति नही प्राप्त की थी। इस देश के दुर्भाग्य-वश विलासप्रियता की रुचि बढने के कारण शृगार रस के काव्यों ने यद्यपि साहित्य ससार को आच्छादित कर लिया था परंतु खोज करने पर पता लगता है कि हिदी साहित्यभंडार आवश्यक विषयो से (जिनका इस देश मे प्रचार रहा है) परिपूर्ण है। हिदी साहित्य काव्य-विषय मे संसार की किसी भाषा से भी पीछे नही है।

हिदू राजत्व-काल मे सस्कृत के अधिक प्रचार और आदर के कारण यद्यपि हिदी ग्रथो का अब तक पता नही लगता है परतु महाराज पृथ्वीराज के समय के और उनके पीछे के ग्रथो को देखने से यह प्रतीत होता है कि सात आठ सौ वर्ष पूर्व भी हिदो उन्नति के उच्च आसन पर आरूढ़ हो चुकी थी। परतु वर्तमान हिदी काव्य की उन्नति का यथार्थ समय अकबर का समय है। तब से जो परिमार्जित पथ ग्रहण करके हिदी ने एक अभिनव रूप धारण किया उसने शाही दर्बार से लेकर कुटीरवासी कगाल तक को मोहित कर लिया। उसके पीछे एक से एक बढ़कर कवि उत्पन्न हुए, एक से एक उत्तम ग्रंथ बने और जैसा चाहिए वैसा ही आदर हुआ। परतु—

अँगरेजी राज्य

के साथ हिदी ने दूसरा ही रूप धारण किया। गद्य की ओर लोगों की रुचि फिरी और विदेशीय अँगरेज अफसरों को इस देश की हिदी भाषा का सीखना पद्य मे कठिन जानकर गद्य की सृष्टि की गई।

प्राचीन साहित्य मे जो कुछ गद्य ग्रंथ उपलब्ध थे वे न तो बोलचाल की यथार्थ भाषा मे थे और न सर्व साधारण के पाठोपयोगी थे। इसलिये कलकत्ता फोर्ट विलियम के डाक्टर गिलक्राइस्ट ने लल्लूलालजी से प्रेमसागर बनवाया और इसी को पढकर अँगरेज लोग इस देश की भाषा सीखने लगे। निदान अँगरेजी राज्य के आरंभ के साथ ही साथ हिंदी मे ग्रथों के मुद्रण और गद्य साहित्य की सृष्टि हुई। यद्यपि बीजारोप अँगरेजी राज्य के आरंभ से ही हुआ परंतु वास्तविक उन्नति श्रीमती महारानी विक्टोरिया के समय मे हुई। हिंदी साहित्य के लिये महारानी विक्टोरिया का समय यावत् चद्र-दिवाकर स्मरणीय रहेगा।

लल्लूलालजी के प्रेमसागर ने एक नवीन पथ मात्र दिखलाया परतु वास्तविक गद्य भाषा का जन्म राजा लक्ष्मणसिह, राजा शिवप्रसाद और भारतेदु बाबू हरिश्चद्र की लेखनी के द्वारा हुआ। राजा लक्ष्मणसिह ने सुंदर विशुद्ध ललित भाषा मे शकुंतलादि काव्य और भारतीय दंडसंग्रह आदि राजनियम के ग्रथ लिखकर विशुद्ध हिंदी का पथ प्रशस्त किया, राजा शिवप्रसाद ने मुहावरेदार बोलचाल की भाषा मे स्कूलो के पाठोपयोगी ग्रथ निर्माण करके इस देश मे हिंदी-शिक्षा का प्रचार किया और भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अभूतपूर्व मनोहर शैली का नवीन आविष्कार कर नागरी देवी के अंग प्रत्यंग को नाटक, उपन्यास, हास्य, परिहास, समयानुसार देशानुरागमय लेख तथा ऐतिहासिक ग्रंथों से अलंकृत कर सब भाषाओं मे इसे उच्चासन दिलाया। ये सभी घटनाएँ श्रीमती विजयिनी के राजत्वकाल की स्मारक हैं।

हिंदी मे सबसे पहला नाटक नहुष नाटक अथवा शकुंतला नाटक इन्हीं के समय मे बना। पहला समाचारपत्र 'सुधाकर'

सन् १८५० ई० मे निकला। फिर तो अनेकानेक उत्तमोत्तम ग्रंथ बने और एक से एक बढ़कर सामयिक पत्र प्रकाशित हुए। यदि इन सभो का वर्णन विशद रूप से किया जाय तो भारी ग्रंथ बन सकता है।

यहाँ पर यह संदेह हो सकता है कि हिंदी गद्य ने तो नवीन रूप धारण कर उन्नति प्राप्त की परतु पद्य की ओर से लोगो की रुचि कम होकर इसकी अवनति हुई होगी—और साहित्य की शोभा पद्य है। परंतु ऐसा नहीं है। पद्य ने भो इस स्वर्णमय समय मे बहुत कुछ उन्नति की और पद्य के एक से एक बढ़कर अनुपम कवियों का इनके समय मे जन्म हुआ।

यद्यपि काशिराज के आज्ञानुसार महाभारत का प्रणयन पहले से हो चुका था परतु इसका पूर्ण विकास इसी समय मे हुआ। प्राचीन कवियो के काव्यो का अपूर्व सग्रह "रागसागरोद्भव" पहले पहल इसी समय में प्रकाशित हुआ और गिरिधरदास (गोपालचंद्र), गोपीनाथ, जसवतसिंह, ठाकुर, द्विजदेव, दीनदयाल गिरि, देव (काष्ठजिह्वा स्वामी), पद्माकर, पजनेस, महाराज विश्वनाथसिंह, माणिकदेव, रामसहाय, रामनाथ प्रधान, महाराज रघुराजसिंह, लछीराम, सरदार, सेवक, हनुमान और हरिश्चंद्र आदि सुप्रसिद्ध कवियों ने इसी समय को सुशोभित कर भाषा-साहित्य-भांडार को अमूल्य रत्नो से जटित किया।

जैसे भाषा के गद्य-साहित्य ने एक नवीन रूप धारण किया वैसे ही पद्य-साहित्य ने भी नवीनता दिखाई। प्राचोन शैली की शृंगारमय अथवा अत्युक्तिपूर्ण कविता को छोड़कर कवियों ने एक नवीन ही सुप्रशस्त पथ परिष्कृत किया। देशदशा, देशानुराग, स्वाभाविक वर्णन आदि की कविता एक नए ही ढंग से बनने लगी।

इसके भी प्रणयनकर्ता हमारे परम प्रिय भारतेदु हरिश्चंद्र ही हुए—"भारतवीरत्व", "भारतभिक्षा", "मदिरास्तवराज", "जातीय संगीत" आदि इसके उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त खडी बोली की कविता का भी एक नवीन रूप खडा हुआ। यद्यपि इसका अंकुर राजा शिवप्रसाद, भारतमित्र और बिहारबंधु ने बोया था परंतु इसे वृक्ष रूप मे पंडित श्रीधर पाठक ने ही परिणत किया। यह भी श्रीमती के राजत्व का एक अखंडनीय स्मारक है।

हिंदी की उन्नति का इतने ही से अंत नही है—देश मे इसके प्रचार का होना भी श्रीमती ही के प्रतापमय समय का प्रभाव है। भारतेंदु हरिश्चद्र की अमृतमयी लेखनी तथा समाचारपत्रो के अतिरिक्त स्वामी दयानंद का अभ्युदय और उनके आधुनिक दृष्टि से एक मत चलाने पर खडबडाकर धर्मसभाओं और आर्यसमाजों के जन्म से हिंदी ने देशवासियो मे बहुत कुछ आदर पाया। इसके अतिरिक्त हमारी प्रजावत्सला महारानी हो का राजत्व था कि तीन सौ वर्षो के पीछे हिंदी ने राजकाज मे आदर पाया। बिहार, कमाऊँ और मध्य प्रदेश मे हिंदी ने स्थान पाया और चलते चलाते इस अभागे पश्चिमोत्तर प्रदेश मे भी न्यायपरायण श्रीमान् सर एटोनी मेकडानेल के द्वारा श्रीमती विजयिनी नागरी-प्रचार द्वारा हिंदी का असीम उपकार कर गई।

निदान श्रीमती का राजत्व समय हिंदी के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों से लिखा हुआ अनंत समय तक जगमगाता रहेगा।

अब हम इस क्षुद्र लेख को इस अपनी हार्दिक प्रार्थना के साथ समाप्त करते हैं—

जब लौ यह संसार, अचल तुव कीरति भ्राजै।
जब लौं बृटिश सुराज्य, तुव परिवार विराजै॥

जब लौं तुव परिवार, प्रजा सुख शाति लहै वित ।
जब लौं प्रजा समाज, दैव अनुकूल रहैं नित ॥
तुम देवि वै ढिग जाइ कै, या जग को मंगल करौ ।
तुव पीछे तुव असीस बल, यह भारत फूलौ फरौ ॥

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ५—१६०१]

---

(६) पंच

(बनारसी गप की बानगी)

गगा-तीर घाट पर लोग एकत्र थे। सबेरे का समय, कोई तख्ते पर बैठा सध्या करता था, कोई सीढी पर लोटा मॉजता था, कोई नहाता, कोई गगाजी मे खड़ा तर्पण इत्यादि करता था, कि इतने मे तख्ते पर बैठे हुए लोगो मे से एक ने कहा "अजी भाई साहब! क्या कहते है। आजकल तो बडी बीमारी फैली है। लाहौर मे तो ऐसी बीमारी है कि लोग बैठे बैठे मर जाते हैं।" दूसरे ने कहा "भाई साहब! तुमने कहॉ सुना?" पहला "अजी साहब! मूलचंद के यहॉ कल चिट्ठी आई है। आज वे पढ़ के सुनाते थे।" दूसरा "हो मुमकिन है।" इतने मे एक गप्पी महापुरुष, जो कि गगाजी मे खड़े नाक दबाए ध्यान कर रहे थे, ध्यान छोड घबराकर बोले "हूँ, हूँ ई सरवा तो झूठ बोले थे। एकै बात का प्रमाण नहीं। हम कल अपने ऑख से सुखदेवमल किहॉ चिट्ठी देख आए हैं कि अंबरसर मे ऐसा पानी बिगड गया है कि जो कोई पीए तो ओही बखत मर जाय और जो हाथ पॉव धोवै तो एके दूसरे दिन मर जाय।"

पहला "देखिए तो सही कैसी झूठी बात कहता है। भला जो पानी ऐसा खराब है तो वहॉ कोई बचा काहे को होगा! सभी एक दिन मर गए होंगे।" गप्पी "तूहै कुछ मालुमो है। हम का झूठ बोली थे। हुआॅ से कोस भर पर एक गॉव है, हुआॅ का पानी अच्छा है। हुआॅ का पानी एक कटोरा एक रुपए का मिलते थे वही लोग पीए थे। झाड़चद तनिक एहर ओहर की भी खबर रक्खा करो। बचा जो।"

सब लोग हँस पड़े। बेचारा पहला आदमी लज्जित हो गया। गप्पी महाशय ने फिर ध्यान करना प्रारंभ किया। पहले मनुष्य ने फिर धीरे से कहा "देखिए साहबो! बे बात कितनी गालिएँ दिया। मैं क्या जानता था कि मेरा इतना कहना जहर होगा। छि छि"। इतना सुनना था कि अब फिर गप्पी महाशय घबराए। मारे क्रोध के न रहा गया, चट ध्यान छोड़ गंगा जी मे से निकल आए और डपटकर कहा "देखले सरवा कर फिर नाहीं मानते। अब जो तनिको बोल्यो तो फिर मारे जूतन के फरस कर देइब"। इतना कहने पर भी क्रोध न शांत हो सका, मारने दौड़ा। लोगो ने "हाँ हाँ" करके पकड़ लिया और शांत किया।

बनारसी गप्पी लोगों का जी भला थोड़े ही मानने को है? इतना होने पर भी लोगो से न रहा गया। एक महाशय बोले "कहो यार! सुना है कि अब्दुल रहमान और आयूब से लड़ाई हो गई और आयूब जीता, सो कैसी बात है?" एक पडित जी उसी तख्ते पर बैठे हुए संध्या कर रहे थे, संध्या को सध्या के लिये छोड़ बोल उठे—नही नही—सरकार से और काबुलवालो से लड़ाई हुई उसमे सरकार हार गई। पाँच सौ तोप और बीस लाख रुपए काबुलियों ने ले लिया। सरकारी बीस हजार आदमी मारे गए, और काबुलियो के एक सौ।" उनमे से कुछ लोग तो हँस दिए (जो कि समझते थे कि यह झूठी गप्प है) और कुछ बडे आश्चर्य से पूछने लगे "सच, सच, कहाँ सुन्यो?" पंडित जी ने कहा "अजी अब तो आनंद है, सर्कार धता होती है और रूम सूम (रूस) वाले आते हैं। तब खूब चैन से कटैगी। आगा मोहम्मद अली के यहाँ तार आया है।" कुछ लोग बड़े ही प्रसन्न हुए और पंडितजी की बात का विश्वास करने लगे। पंडित जी ऐसे प्रसन्न हुए

कि अपनी आधी संध्या छोड़ छाड़ चल दिए। लोग इसी की बात करने लगे।

इतने मे एक महाशय और बोल उठे "भाई! सब लोग होशयार रहना। सर्कार से हुक्म हुआ है कि जितने छोटे छोटे लड़के मिलै सब पकड़कर पुल मे बल दिए जॉयगे। सो भाई सब लोग अपने अपने लडको से खबरदार रहना।" लोग बहुत ही डरे। ग्यारह बज गया था इससे लोग घाट पर से उठकर चले, पर रास्ते भर यही चर्चा रही।

धन्य हैं काशीवासी। नित्य नई बात जोडा करते हैं। यह तो बानगी है। ऐसी बाते नित्य प्रति घाटो और मदिरों मे हुआ करती हैं, जिनका आनंद देखने और सुनने से ही मिलता है। लेखनी की शक्ति नही कि लिख सके।

[सारसुधा-निधि, २३ जनवरी १८८२]

(७) स्वर्ग की सैर

स्वप्न और अपूर्व स्वर्ग

रात अँधेरी, मेघों से आकाश शोभित, बिजली चमककर इस अंधकार मे छटा दिखा रही है, और यह बात प्रकाशित कर रही है कि इस समय संसार मे मेरा ही राज्य है। इसके प्रमाण के लिये उसकी सलामी की तोपे ऐसे जोर शोर से छूटती हैं कि सोए लोग भी जाग उठते हैं और अगस्त* भी काँप उठते है। इस समय विचित्र समा है। ऐसा कौन मनुष्य है जिसका चित्त ऐसे समय मे भी न प्रसन्न होगा। अहा! हा! यह देखो बूँदे भी पड़ने लगी! वाह! हवा कैसी सुंदर बह रही है। इस समय स्वाभाविक प्रसन्नता होती है। यह सब शोभा को देखते देखते दो पहर रात्रि बीत गई परंतु इस आनंद के अवसर मे निद्रा न आई। एक बज गया जरा सी झपकी आई तो देखा क्या कि मैं एक मित्र के साथ सिकरौल की ओर घूम रहा हूँ। अकस्मात् जो दृष्टि आकाश की ओर गई तो देखता क्या हूँ कि कई गोरे कोट बूट पटलून पहिने चुरुट पीते नंगे सिर टोपी हाथ मे लिए मेम साहब का हाथ बगल मे किए ऊपर चढ़े चले जाते हैं। मैंने अपने मित्र से पूछा कि "कहो भाई, तुम कुछ जानते हो कि ये लोग कहाँ जाते हैं"? उसने कहा "नही भाई, मुझे तो कुछ नही मालूम। जरा इनसे पूछना तो चाहिए कि कहाँ जाते हो।" मैंने उत्तर दिया "भाई, हम लोग दो ही मनुष्य हैं। इन लोगों का स्वभाव बुरा होता ही है। यदि पूछने से कुछ ये लोग रुष्ट हो जायँ और आकर हम

---

* अगस्त एक मुनि का नाम है। जिस समय बादल गरजता है, लोग अगस्त अगस्त कहते हैं। यहाँ अगस्त महीने का वर्णन भी है।

लोगों को मारने लगें तो हम लोग क्या कर सकेंगे ?" पर अंत में यही ठहरी कि चाहे कुछ हो, पूछना तो अवश्य चाहिए। दूर निकल जाने के कारण हम लोगो ने चिल्लाकर कहा "कृपापूर्वक यह बतला दीजिए कि आप लोग कहाँ जाते हैं।" इसको सुनकर ऊपर से एक साहब ने उत्तर दिया "आ यू काला आदमी टोम लोग काए को चिल्लाटा है, चुप रश्रो, हम लोग बिहिष्ट मे जाता है।" हम लोगो ने बहुत गिडगिड़ाकर कहा कि कृपापूर्वक हम लोगों को भो ले चलिए। इसको सुनकर तो वे लोग बड़े ही लाल पीले हुए और ऊपर चढने लगे। हम लोगों ने फिर से बहुत गिडगिड़ाकर और हाथ जोडकर वही बात कही। फिर साहबों ने कुछ उत्तर न दिया। जब हम लोगों ने फिर से कहा तब एक मेम ने उन लोगों से झिड़िक के कहा "तुम लोग इन बेचारों की बात क्यों नेईं सुनता, अलबत तुम लोगों को ले चलना होगा"। यह सुनकर तीनों साहब बहुत ही घबड़ाने लगे और उन्होंने एक आदमी भेजा जिसने आकर हम लोगों से कहा "देखो टोम लोगों का किसमट बड़ा है, मेम साहब मिहर्बान हो गया, नही तो कभी न चलने मिलता। अच्छा लो यह कोट बूट वगैरह पहन लो और हम लोगों के साथ चला आओ।" हम लोगो ने सोच विचारकर स्वर्ग देखने के लालच से उन कपड़ों को पहिना और उन सभों के साथ ऊपर चले। धन्य! कोट बूट पटलून धन्य!! पाठको, स्वर्ग मे सशरीर जाना हो तो चटपट यही कपड़ा पहिनो, सीधे स्वर्ग मे चले जाओ। आओ! चूको मत चूको मत—ऐसा सुअवसर फिर काहे को मिलना है!! कोट बूट, पटलून के प्रभाव से बिना परिश्रम स्वर्ग मिलता है। पाठक महाशय! क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हम लोग उन कपड़ों को पहिनते ही ऊपर चढ़ने लगे ? जिस समय हम लोगों ने उस पोशाक

को पहिना उसी समय हम लोगो के कानों मे अच्छे अच्छे अँगरेजी गीतो की मधुर ध्वनि आने लगी। लवंडर इत्यादि अँगरेजी इतरो की सुगंध के साथ अँगरेजी शराबे और चुरुट की दुर्गंधि ऐसी मिल गई थी कि मालूम नही होता था कि यह सुगंध है या दुर्गंध। कभी कभी तो ऐसी दुर्गंध आती कि रुमाल नाक मे ठूँसकर मुँह फेरना पड़ता। सीढ़ी बड़ी सुंदर काठ की बारनिश की हुई थी। कभी कभी फटाफट बंदूक का शब्द, कभी तोप की सलामी, कहीं ईसा मसीह की प्रशंसा का शोर, कही शराब के गुणो का जोर, कही बग्घियो की खरखराहट, कही घोड़ों की टपटपाहट, कही वियोगियो का विलाप, कही आशिक माशूको का मिलाप, कही महाशय की मारामार, कहीं मिस्टर की ब्योछार, कही काली परियाँ, कहीं हाथ मे फूलो की कलियाँ, कही लव (प्रेम) की पुकार, कही अन सिविलाइज्ड ब्लाक इडियन (असभ्य काले हिंदुस्तानी) पर कमबख्ती की मार इत्यादि देखता सुनता मैं भी ऊपर चढ़ा। ऊपर जाकर सबके पहले, एक बडा भारी फाटक देखा जिस पर अँगरेजी ही लिखी थी। कहीं पादरियों की प्रीच, कही सभ्यों की स्पीच। अक्षर बहुत छोटे थे जल्दी मे न पढ़ सके। उस फाटक पर दो गोरे बड़े सजे सजाए, मोटे ताजे, शराब के नशे मे चूर बंदूक हाथ मे लिए तलवार कमर मे लटकाए टेढ़ी चक्करदार टोपी (जो दोनों ओर डोरो से बँधी थी) पहिने अंगूर सा बदन, लहू ऊपर से झलकता हुआ, झूमते झामते, अँगरेजी गीत जोर शोर से गाते खड़े थे। मैंने मेम साहिबा से पूछा "यह कौन जगह है? इसका क्या नाम है? इसमे कौन रहता है?" मेम साहिबा ने बड़े आश्चर्य से मेरी ओर देखा, देखते ही खिलखिलाकर हँसी और कहा "आ यू फूल! टुम इतना भी नही जानटा! ईशका नाम हेवेन् फर्स्ट क्लास (प्रथम श्रेणी का स्वर्ग) हई। इसमे इँगराज लोग रहना माँगटा। टुम

बरा बेकूफ है।" मैंने जो अच्छी तरह देखा और स्वर पहिचाना तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यह कोई हिंदुस्तानी है। मैंने पूछा कि आपका जन्म कहाँ का है ? उन्होने हँसकर कहा "अम इडुस्तान मे पैदा हुआ पर अम ऐसा बेकूफ नेई था कि जैसा टुम लोग है। अमने होश सम्हालटे ही इस सीधी राह को पकड़ा और अम टुम लोगो का बोलचाल नेई पसड करता, अम साहब लोगो के माफिक बोलटा"। मैं लाचार चुपचाप उसके पीछे चला। फाटक पर पहुँचा। पहुँचते ही गोरो ने ललकार के मुझसे कहा Ah you fool, where are you going ? मेम साहिबा ने डपटकर कहा Let them go। मैंने भीतर पैर रक्खा, पर जी मे आया कि यही से फिर चलूँ क्योंकि एक साथ ही ऐसी दुर्गंध आई कि मैं घबडा गया, परतु मैं जी कड़ा करके चला।

भीतर जाते ही मैंने देखा कि सच यही स्वर्ग है ! सडक बड़ी लबी चौडी, बिजली की रोशनी इत्यादि विचित्र शोभा देखने में आई। मैं थोड़ी दूर गया कि इतने मे पॉच चार अँगरेज मेरे पास आए और मेम साहिबा से कुछ थोड़ी सी बातें की। मेम साहिबा ने मुझसे पूछा "टुम खाने मॉगटा ?" मैंने कहा "नही, मेरा सिर मारे दुर्गंध के दुखने लगा।" मुझसे वहाँ न रहा गया। मैंने जी मे सोचा कि "पत्थर पड़ै ऐसे स्वर्ग पर और ऐसे स्वर्गीय मनुष्यो पर कि ऐसी दुर्गंधि मे भी रहते हैं।" आप लोगो को बडा आश्चर्य होगा कि ऐसे सुंदर स्वर्ग मे दुर्गंध का क्या काम ? सडे मांस, शराब, चुरुट इत्यादि की दुर्गंध मुझे बहुत ही बुरी मालूम हुई, चाहे मेरे पाठक लोग इसे सुगंध माने पर मैं उसे कभी नही सुगंध समझता। फिर मैंने सोचा कि इन लोगो की बात न मेरी समझ मे आती है न मैं इनसे बोल सकता हूँ, क्योंकि मैं अँगरेजी बहुत ही कम जानता हूँ इसलिये मैंने मेम साहिबा से कहा कि "अब मुझे दूसरा

कोई स्वर्ग हो तो दिखा दीजिए, मैं यहाँ नहीं ठहर सकता"। उन्होने कहा "अम नेई चलने सकटा टुम इडर के सीढ़ी से (दक्खिन के) चला जाओ। पहले तुमको हेवेन सेकेंड क्लास (द्वितीय श्रेणी का स्वर्ग) और उसके बाद हेवेन थर्ड क्लास (तृतीय श्रेणी का स्वर्ग) मिलैगा। टुम उसको डेकटा हुआ नीचे उतर जाना। यह लो अम टुमको पास देते है, डिखा डेना, कोई न रोकेगा"। यह कहकर मुझे एक कागज का टुकडा दिया। मैं उसे लेकर दक्षिणाभिमुख चला। मेरे मित्र भी मेरे पीछे पीछे चले।

थोडी सीढी उतरकर फिर एक फाटक मिला। उस फाटक पर अर्बी और उर्दू मे लिखा था। मैं अर्बी पढ न सका पर उर्दू पढ़ा। उसमे यह लिखा था।

"यह बिहिश्त हजरत मोहम्मद अली हुस्सलाम के हुक्म से हम दीन मोहमद्दियो के लिये बना है। इसमे काफिरो के लिये बड़ी ही इज्जत रक्खी गई है। प्यारे काफिरो! दौड़ो, अच्छा मौका तुम लोगो के हाथ लगा है। खुद खोदावद ताला तुम्हारी इज्जत करैगा। तुम बे खटके चले आओ"।

हम लोगो ने सलाह की कि चलो देख आवै यह सब बात कैसी है?

फाटक पर एक मनुष्य अफीम की गोली चढ़ाए पिनक मे बैठा झूम रहा था। केवल एक फटा पैजामा पहने था, दाढ़ी बहुत बडी, पास एक पंखा और एक राँगे के कलई का टोटीदार करवा। मैंने पुकारा "क्या मियाँ साहब! जरा होश कीजिए।" उसने उत्तर दिया "अरे म्याँ क्या टे टे करता है, चला जा शोर क्यो करता है? नामाकूल नशा तोड़ दिया!" हम लोग भीतर गए। जाकर देखा कि बड़ा बडा पैजामा पहिने हुए मुसलमान लोग घूम रहे हैं। एक

कहता है कि "भई हिंदू लोग तो बड़े ही बेवकूफ होते है। इन लोगो की तो बडी ही सहज तर्कीब है। ये तमाम दुनियाँ की पूजा करते हैं। किसी दरख्त, बुत, जानवर वगैरह की शिकायत जरा भी करने से कम्बख्त चिढने लगते है। यहाँ तो कम्बख्त बहुत ही कम आते हैं। इन लोगो के आने ही के लिये तो हम लोगो ने दर्वाजे पर लिख रखा है पर इस पर भी कम्बख्त नहीं आते। खैर—वाह दुनिया मे बात बनाने के बराबर कोई शय नहीं है। खास कर हम लोगो के लिये। काफिरो को इसका क्या मजा?" मैने भीतर पैर रखा कि आठ दस आदमी मेरी ओर दौड़े। मैं खडा हो गया। वे लोग यही चिल्लाते थे—"पकडो—पकडो—काफिर है शिकार अच्छा है जाने न पावै"। हम लोग बड़े ही घबराए। हमने पुकारकर कहा "यह क्या? दर्वाजे पर क्या लिखा है?" उन लोगो ने कहा "अबे देख जो कुछ लिखा है। हमारी जो खुशी हुई लिखा, तेरा क्या? खडा रह—खड़ा रह।" हम लोग वहाँ से भागे। वे लोग फाटक तक तो आए फिर लौट गए। हम लोग मारे जल्दी के वहाँ कुछ विशेष न देख सके कि आप लोगो से वर्णन करे। मुसल-मानों का तमाशा तो आप लोगो ने देखा है।

थोडी दूर नीचे जाकर फिर एक फाटक मिला। उस फाटक पर रोमन अक्षरों मे यह लिखा था—

यह "थर्ड क्लासेज हेवेन" (तृतीय श्रेणी का स्वर्ग) है। इसमे गोरे खयाल का साहिब लोग रहने माँगटा। वेल काला लोग, टुम लोग भी यहाँ आओ। देखो कैसा मजा है। जरूर आओ।"

इस फाटक पर दो महाशय बैठे हुए थे। दोनो ऐसे काले जैसे कोयले की खान से निकाले गए हों, महा मलीन और फटा कोट पटलून, अँगरेजी टोपी पहिने हुए थे। मुझे तो ऐसा ज्ञात हुआ

कि कदाचित् "हजरत ईसा मसीह" ने (जब कि वे जीते थे) स्वयं इन लोगो को यह सब दिया था। शराब के नशे मे चूर, "गोरे खयाल" के मद से भरपूर, टूटे पुराने मोढे पर बैठे थे। पास एक छडी रखी हुई थी। हम लोगो के देखते ही देखते फाटक मे से झूमती झूमती दो कौआ परियाँ महामलीनवसना निकल आईं। आते ही उन दोनो महाशयों को एक एक झिडकी दी। दोनो चट उठ खड़े हुए और बड़ा इज्जत से उन दोनो को मोढे पर बिठाया और आप हाथ जोडकर सामने खडे हुए। हम लोगो ने पास जाकर पूछा "कहो भाई, आप लोग कौन है और ये लोग कौन हैं?" एक ने हँसकर कहा "उह! टुम नेई जानटा हम शाहब लोग है और ये दोनो हम लोगो का मेम साहिबा हैं।" हम लोगो को बडा ही आश्चर्य हुआ। धन्य गोरा खयाल धन्य चमाइनो, दौडो तुम्हारी भी यही इज्जत होगी !!! हम लोग आगे बढे। भीतर पैर धरते ही महा दुर्गंध आने लगी! खैर—किसी तरह भीतर गए। जाकर देखता क्या हूँ कि इसमे सब वे ही हिंदोस्तानी हैं जिन्होने अपना धर्म छोड दिया। मैंने इनमे कोई भी गुण न पाया, पर औगुण अँगरेजो के सभी इनमे दिखाई दिए। जिन महाशयो को अँगरेजो के अवगुण देखने होवे यहाँ आकर देख ले, क्योकि यहाँ मूर्तिमान् प्रत्यक्ष विराज-मान है। पाठको! यह स्वर्ग नही है, धर्मनाशियो के दोषो का नमूना है!! मैंने फिर थोड़ी दूर जाकर देखा कि कई एक मनुष्य बैठे हुए बाते कर रहे थे। एक महाशय ने कहा "हिडुष्टानी लोग बरा बेवकूफ है, बरी पूत्तल पत्थर पूजा करटा है; सच्चा राह को कभी नही ढूँढ़ता, जो कोई पाडरी साहिब बटलाता है टो उस पर चलने नही माँगटा, बलके गाली डेटा है। जब हम हिंदू ठा टब हमको बरा डुख ठा। एक पादरी साहिब ने जब से हम को प्रभु ईशा

का सच्चा राह बटलाया टब से हम डूसरा हो गया। ढन्य प्रभु। ढन्य।"

दूसरे ने कहा "अजी यह सुख कभी भी हिडू कबख्तो को नसीब है। डेखो कैसा अच्छा बिहिश्ट है?" मैंने कहा "पत्थर पडे तुम्हारी बिहिश्त पर और तुम्हारे धर्म पर। समझते है कि इससे अन्छा तो हम लोगो का नरक ही है। तुम लोगो ने अपना धर्म छोड़कर क्या सुख उठाया। छि मेरी तो इस नरक मे जान निकली जाती है। राम! राम!" उन लोगो ने कहा "श्रा यू काला लोग, टुम कुछ नेई समझने शकटा चुप रहना माँगो।" हमने फिर कुछ कहना चाहा कि एक महाशय ने कहा "बडमाश! गढा! मना करने से नेइ मानटा", और उठकर मुझे एक धक्का ऐसा दिया कि मेरी नींद ही खुल गई। उठकर देखता हूँ कि न वह स्वर्ग है, न गोरे खयाल के लोग, न दुर्गंधि, न सुगधि, न कोट, न बूट, न पटलून, न वह मित्र। मैं अकेला पडा हूँ, वही पानी बरस रहा है, बिजली चमकती है, बादल गरजता है।

———

(८) वर्तमान वाइसराय और गवर्नर-जेनरल राइट आनरेबुल लार्ड जार्ज नैथिनियल कर्जन आफ कैडेल्स्टन

हम लोगो के सौभाग्य से इस दु समय मे हमे श्रीमान् लार्ड कर्जन ऐसे प्रजावत्सल और विद्यारसिक शासक मिले है जिनके उत्तम प्रबध से भारतवासी घोर अकाल और महामारी के कराल आक्रमण से रक्षा पाते हुए, उत्तम शिक्षा और उचित न्याय प्राप्त कर रहे है। श्रीमान् प्रजापालन तथा बाहरी शत्रुओ से देश की रक्षा का प्रबंध-भार फूलो की माला के समान धारण किए हुए इस देश के प्राचीन शिल्प की रक्षा पर यथोचित ध्यान रखते है, और उनके उद्धार तथा रक्षा का यथासंभव प्रबंध करते हैं। श्रीमान् ने अपने पिछले दौरे मे हिंदुस्तान के प्राचीन स्थानो का निरीक्षण ऐसी रीति से किया जैसा कि आज तक किसी वाइसराय ने नहीं किया था। इन स्थानो को देखकर इनके विषय मे श्रीमान् ने जो कुछ अपने उदार भावो को प्रगट किया है वह देखने ही योग्य है, इसलिये हम उस वक्तृता को, जो श्रीमान् ने एशियाटिक सोसाइटी के वार्षिक उत्सव मे दी थी, आगे प्रकाशित करते हैं। श्रीमान् की उदारता और गुणग्राहकता से हमारे पाठकों को श्रीमान् के दर्शन और जीवनचरित्र जानने की लालसा अवश्य होगी, अत हम इसी पत्र मे श्रीमान् का चित्र अपने पाठको को भेंट करके यहाँ उनका संक्षिप्त जीवनचरित्र लिखते हैं।

इनके पूर्वपुरुष अर्थात् कर्जन वश के लोग लगभग एक हजार वर्ष से डर्बीशायर स्थान मे निवास करते आते हैं। यह वश सदा से बहुत प्रतिष्ठित और सपत्तिवान गिना जाता है। इनके पूर्वपुरुष उन सेक्सन लोगो मे से है जिन्होंने अपनी सपत्ति की रक्षा नारमन लोगो के आक्रमण से की थी। इस वश के लोगो मे प्राय ऐसे लोग हुए है जिन्होने राज्य की उन्नति मे तथा देश मे सभ्यता और नीति के फैलाने मे बहुत कुछ ख्याति प्राप्त की थी, परतु हमारे वर्तमान वाइसराय की समानता को कोई भी न पहुँच सका था। वर्तमान शताब्दी के आरभ से इनका वश वैरन की उपाधि से भूषित है। ये लोग वैरन इस्कारसूडेल कहलाते हैं। यह उपाधि और संपत्ति श्रीमान् के यहाँ वशपरपरागत प्राप्त है।

अट्ठारहवी शताब्दी मे जो वैरन इस्कारसूडेल वर्तमान थे उन्होने वह राजप्रासाद बनवाया जो अब कैडलस्टन हाल के नाम से प्रसिद्ध है। एक समय भारतवर्ष के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड वेल्सली इस कैडेल्स्टन हाल मे अतिथि रहे थे। उन्हे इसकी बनावट ऐसी रुची कि जिस समय उन्होने कलकत्ते मे वर्तमान गवर्नमेंट हाउस बनवाना आरंभ किया, तो आज्ञा दी कि यह ठीक वैसा ही बनै जैसा कि कैडेल्स्टन हाल है। कैसे कौतुक का विषय है कि हमारे वर्तमान वाइसराय इस समय ऐसे स्थान मे विराजमान हैं जो कि ठीक उन्ही के पैतृक स्थान के समान है। कर्जन हाउस एक सौ वर्ष से अधिक दिन का बना हुआ नही है। परंतु मेज आफ कैडेल्स्टन आठ सौ वर्ष से कर्जन वंश के अधिकार मे है। वर्तमान लार्ड इस्कारसूडेल केवल मेज के लार्ड ही नही हैं, वरंच कैडेल्स्टन पैरिश के पादरी भी हैं। हमारे वाइसराय लार्ड जार्ज कर्जन इन्ही के ज्येष्ठ पुत्र और इस वंश के उत्तराधिकारी हैं। श्रीमान् का

जन्म सन् १८५९ ई० मे हुआ था। अब तक जितने वाइसराय भारतवर्ष के राजसिंहासन पर सुशोभित हो चुके हैं, उनमे यह सबसे अल्पवयस्क हैं। घर पर कुछ शिक्षा पाने के उपरांत ये ईटन भेजे गए और वहाँ से अपने सहपाठियों मे अपने परिश्रम और योग्यता से मान्य तथा प्रधानता प्राप्त करके, बैलियल कालेज आक्सफोर्ड मे आए। यही इन्होने सन् १८८४ ई० मे बी० ए० और सन् १८८७ ई० मे एम० ए० पास किया। आक्सफोर्ड मे यह बड़े ही योग्य व्याख्यानदाता समझे जाते थे, और अंत मे यह यहाँ के प्रेसिडेट बनाए गए। इन्होने अपने साहित्यजीवन मे वह प्रतिष्ठा प्राप्त की कि जिस समय ये फेलोशिप आफ आल सोल्स पर नियत किए गए, उस समय किसी को भी आश्चर्य नही हुआ। इस पद पर प्राय बडे प्रसिद्ध ग्रथकर्तागण ही प्रतिष्ठित होते आए हैं।

श्रीमान् मे यह स्वाभाविक गुण है कि ये कभी परिश्रम से नही थकते। तीसवें वर्ष के पहले ही आप डर्बीशायर के मैजिस्ट्रेट और डिपटी लेफ्टिनेट नियुक्त हुए थे। ऐसी प्रतिष्ठा श्रीमान के और भी पूर्व पुरुषगण प्राप्त कर चुके हैं। लार्ड कर्जन अपना सारा समय केवल साहित्यचर्चा और ग्रथरचना ही मे नहीं बिताते थे, वरच आप व्यवसायसबंधी कामो पर भी पूरा पूरा ध्यान देते थे, क्योकि अपना पोलिटिकल जीवन आरभ करने के पहले श्रीमान् हेडफील्ड के लोहे के कारखाने के मैनेजर रह चुके है। यद्यपि यह बड़े धनिक न थे, परतु इनके पास पृथ्वीपर्यटन के योग्य यथोचित धन था। इन्होने अपनी युवावस्था के आरंभ ही मे प्राय यूरोप के अनेक स्थानो की सैर की थी, और उसी समय राजनीतिक (पोलिटिकल) ससार मे संमिलित होने की इन्हे इच्छा उत्पन्न हुई। छब्बीस वर्ष की अवस्था मे ये लैंकशायर के साउथ—पोर्ट

डिविजन की ओर से कंसरवेटिव दल के द्वारा पार्लियामेंट के मेंबर चुने गए। जिस समय ये पार्लियामेंट के हाउस आफ कामंस में आए, मिस्टर डिसराइली मर चुके थे और लार्ड डर्बी हाउस आफ कामंस में न थे। अतः कंसर्वेटिव दल के अनुभवी लीडरों की सहायता प्राप्त करने का इन्हें कुछ भी अवसर न मिला, और वास्तव में इन्हें किसी सहायक की आवश्यकता भी न थी। अपनी योग्यता से ये स्वयं प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगे, और वादविवाद में संमिलित होने लगे। इनका झुकाव विशेष कर फारेन डिपार्टमेंट तथा हिंदोस्तान की ओर ही रहा। इनकी योग्यता को देखकर लोगों को निश्चय हो गया था कि ये यथासमय कोई उच्चतम स्थान के अधिकारी होंगे, परंतु यह समय लोगों के अनुमान से बहुत ही पहले आ गया। सन् १८९१ ई० में आप इंडिया आफिस के अंडर-सेक्रेटरी नियुक्त हुए और श्रीमान् ने पहले पहल इसी पद पर प्रतिष्ठित होकर भारतवर्षसंबंधी जानकारी प्राप्त की। इंडिया आफिस में ये केवल एक ही वर्ष रहे, परंतु उसी थोड़े काल में आपने भारतवासियों और यहाँ की राज्यशासन-प्रणाली की पूरी पूरी जानकारी प्राप्त कर ली थी। इंडिया आफिस ही के अनुभव ने इन्हें भारतसंदर्शन के लिये उत्तेजित करके भारतीय राजनीति में पूरा पूरा अनुभवी बना दिया। जब कभी इन्हें पार्लियामेंट के कामों से अवकाश मिलता, तभी पूर्वीय देशों में पर्यटन करने की इच्छा करते। श्रीमान् चार बेर भारतवर्ष की सैर कर चुके हैं। राजकीय प्रबंधों का भार अपने ऊपर लेने के पहले ही आपने सन् १८८८ ई० में रूस के रास्ते से मध्य एशिया की सैर की थी। इसके दूसरे ही वर्ष इन्होंने अपने अनुभव पर एक ग्रंथ "मध्य एशिया में रूस" (Russia in Central Asia) नामक प्रकाशित किया।

इस ग्रथ ने उस समय लोगो का ध्यान आकर्षित किया और इस पर बड़े वादविवाद हुए। लार्ड कर्जन अपनी इस यात्रा मे मध्य एशिया के अधिकारियो और शासकों से मिले; रूस के गवर्नरों और रूसी पदाधिकारियो से भेट की और वहाँ के लोगो की रहन सहन तथा समाचारो और सम्मतियों को सग्रह किया। इस ग्रथ से एशिया मे रूस की चाल पर श्रीमान् की सम्मति भली भाँति प्रगट होती है। श्रीमान् रूसी अफसरों की उन चालाकियो और चालबाजियों पर बडा जोर देते है जो वे लोग मध्य एशिया मे रूसी व्यापार और रूसी राज्य बढ़ाने के लिये चुपके चुपके कर रहे है। उस समय इनका मत यह था कि रूस हमारे भारतवर्ष पर ताक लगाए हुए है और वह गुप्त रीति से अपना काम साधता जाता है। आपकी सम्मति थी कि हमारा मुख्य कर्तव्य है कि रूस की इन चालो को देखते और रोकते रहे। इसके अतिरिक्त आपके दूसरे ग्रथ तथा यात्राओं के वर्णन पढने योग्य है। इनसे उनकी योग्यता, जानकारी आदि भली भाँति विदित है। इन यात्राओं मे आप कभी कभी "टाइम्स" पत्र के सवाददाता भी रहे हैं। आप अपने एक ग्रंथ मे रूसी विचारो की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित करते हैं और सब कठिनाइयो को निबटाने के उपाय आपका दूसरा ग्रंथ "ईरान और ईरान के मामले" प्रगट करता है। श्रीमान् की भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमा की यात्रा तथा अफगानिस्तान की कहानियो का वर्णन उनके सीमासंबधी अनुभवों का भली भाँति परिचय देता है। आपके पूर्वीय पर्यटन तथा राजनैतिक साहित्य की पूरी पूरी सूची न लिखकर हम यहाँ केवल इतना ही प्रकाशित करना बहुत समझते है कि आपने सन् १८८० ई० के आरभ ही मे यूनान की सैर की और फिर ईरान, हिदुस्तान मध्य एशिया, बुखारा, समर-

कंद, काश्मीर, चीन, जापान, कोरिया, काफरिस्तान, कैनेडा और यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका का दौरा किया। यह बात तो सभी लोग जानते हैं कि श्रीमान् ने अफगानिस्तान मे अमीर काबुल से भेट की और मित्रता बढ़ाई, जिसका बर्ताव अब तक चला आता है।

सन् १८९५ ई० के जेनरल इलेक्शन मे आप कजर्वेटिव गवर्नमेट मे फारेन डिपार्टमेट के अंडर-सेक्रेटरी नियुक्त हुए और अपने इस पद पर प्रतिष्ठित रहकर पार्लियामेट के सभासदो को ऐसा प्रसन्न किया कि जिस समय उन लोगो ने इनके भारतवर्ष के वाइसराय होने का समाचार सुना, अपना हार्दिक आनंद प्रकाशित किया और श्रीमान् को बधाई दी।

थोड़े ही दिन हुए कि श्रीमान् ने अमेरिका के प्रसिद्ध धनिक मिस्टर लीटर की रूपवती तथा गुणवती कन्या से विवाह किया, जिनके गर्भ से दो कन्या-रत्न उत्पन्न हुए हैं, जिनमे छोटी की अवस्था अभी कई महीने मात्र की है।

श्रीमान् ता० ३० दिसबर, सन् १८९८, को बबई पहुँचे और ता० ६ जनवरी, सन् १८९९ ई०, को लार्ड एल्गिन से चार्ज लेकर प्रजापालन मे तत्पर हैं और अपने न्याय और दयागुण से भारत-वासियों के हृदयराज्य के सिंहासन को अधिकृत कर रहे हैं।

[सरस्वती भाग १]

(६) भाषा कविता की भाषा

इन दिनों भाषारसिक समाज मे इस बात की चर्चा फैल रही है कि भाषा कविता की भाषा क्या होनी चाहिए ? कुछ लोगों की सम्मति है कि व्रजभाषा के अतिरिक्त प्रचलित बोलचाल की भाषा मे कविता हो ही नही सकती, और कुछ कहते हैं कि व्रजभाषा की कविता हिंदी भाषा की कविता ही नही है, वह केवल एक प्रात की भाषा कविता कही जा सकती है, कविता जब खड़ी बोली मे होगी तभी वह हिंदी कविता कहलाने योग्य होगी। मेरी समझ मे दोनों ही दलवाले कुछ न कुछ भ्रम मे हैं।

इसके पहले कि कविता की भाषा का कुछ विचार किया जाय, यह देखना आवश्यक है कि इस देश की बोलचाल की भाषा क्या थी और अब क्या है ? प्राचीन ग्रंथों से जहॉ तक पता चलता है यह स्पष्ट है कि इस देश की यद्यपि बोलचाल की भाषाएँ भिन्न भिन्न रही हैं परंतु साहित्य की भाषा संस्कृत थी, अतएव संस्कृत ग्रंथों के अतिरिक्त और कोई उपाय इस देश की बोलचाल की भाषाओं को जानने का नही है, परंतु इसमे एक कठिनाई यह बड़ी भारी आ पड़ी है कि हिंद, हिंदू और हिंदी ये नाम जो इस समय अपने देश, अपना और अपनी भाषा के हम लोग जानते हैं ये विदेशियों के साथ इस देश मे आए और ऐसे सर्वव्यापी हो गए कि इसे छोड़कर अपना यथार्थ नाम भी हम लोग भूल गए और ये नए नाम हमारे प्राचीन ग्रंथों मे कही मिल नहीं सकते (जो नाम उस समय की भाषाओं का संस्कृत ग्रंथों मे मिलता है उसमे से कौन सी भाषा हमारी सर्वव्यापिनी हिंदी थी इसका पता भी नहीं लगता)।

सबसे प्राचीन आर्य ग्रंथ वाल्मीकीय रामायण है। उससे यह पता लगता है कि उस समय संस्कृत द्विजातियो की भाषा थी परंतु मानुषी भाषा दूसरी ही थी। जिस समय हनुमान् जी सीताजी को ढूँढते हुए अशोक वन मे पहुँचे है तो श्री जनकनंदिनी से परिचय करने के समय विचार करते है—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव सस्कृताम्।
रावण मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्य मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सांत्वायितुं शक्या नान्यथेयमनिंदिता॥

—सुं० का० ३० सर्ग

अत· अब इसका कोई उपाय नही है कि ठीक ठीक पता प्राचीन भाषा का लग सके, अतएव हमे छ सात सौ वर्ष के भीतर ही की भाषा को लेकर अपने आलोच्य विषय पर विचार करना होगा। प्राचीन प्रथा इस देश की केवल पद्य ग्रथ लिखने ही की थी इसलिये बोलचाल की भाषा की खोज के लिये भी हमे अगत्या पद्य ग्रथो ही का आश्रय लेना पड़ेगा।

सबसे प्राचीन हिंदी का ग्रथ चद कृत रायसो है, परंतु हम तीन कारणो से इसका आश्रय न लेकर इसके पीछे के प्रमाणो ही के आधार से इसे आरभ करेगे–(१) रायसो की प्राचीनता मे बहुत लोगों को संदेह है। (२) रायसो मे कई प्रकार की भाषा लिखी गई हैं। (३) रायसो की कोई प्राचीन प्रामाणिक प्रति नही मिलती। अतएव लखको के दोष से उसकी भाषा का लेखक के प्रांत की भाषा की ओर खिच जाना संभव है*। मेरी समझ मे इस देश की प्रच-

* मैंने कई ग्रथ ऐसे देखे है जिनमे पंजाब के लेखक ने कबीरदास की कविता पंजाबी और राजपुताने के लेखक ने मारवाड़ी बना डाली हैं।

लित भाषा के विचार के समय, उर्दू के आरंभकाल को ही प्रमाण मानकर आगे चलना चाहिए। जहाँ तक पता लगता है, उर्दू के जन्मदाता फारसी के प्रसिद्ध कवि 'तूतिए हिंद' अमीर खुसरो थे, और उनकी बनाई 'खालिकबारी' ही इस विषय की पहली पुस्तक थी। यह समय निर्विवाद सन् १३०० ई० के लगभग था। खुसरो फारसी का उत्कृष्ट कवि और उर्दू का जन्मदाता होने के अतिरिक्त हिंदी का भी अच्छा कवि था। अतएव हमे प्राचीन भाषा का पता बतलानेवाला इससे बढकर दूसरा कोई न मिलेगा।

खुसरो की भाषाओं पर विचार करने से हमे यह जान पडता है कि ठीक इसी समय की भाँति यहाँ की भाषाएँ उस समय भी कई थी और जो प्रचलित भाषाएँ इस समय बोली जाती हैं उनसे बहुत ही सूक्ष्म रूपातर की भाषाएँ उस समय भी बोली जाती थी। उदाहरण के लिये हम कुछ कविता उद्धृत करते हैं।

खुसरो की हिंदी कविता—

"आदि कटे ते सबको पारै।
मध्य कटे ते सबको मारै॥
अंत कटे ते सबको मीठा।
कह खुसरो मैं आँखों दीठा॥"

कहिए इसमे से व्रजभाषा की झलक आती है या नही? अब शुद्ध खड़ी बोली की कविता देखिए—

"जल का उपजा जल मे रहै।
आँखों देखा खुसरो कहै॥"

खुसरो की उर्दू कविता—

"सनम जद याद आता है।
चश्म दरिया बहाता है॥"

अब खुसरो की "खालिकबारी" मे ग्रामीण भाषा की झलक देखिए—

"रसूल पैगंबर जान बसीठ।
यार दोस्त बोले जा ईठ॥
विया विरादर आव रे भाई।
विनशी मादर बैठु रे माई॥"

एक ज्योतिष संस्कृत ग्रंथ "भास्वती" की टीका भाषा गद्य मे संवत् १४८५ (१४२८ ई०) की बनी बनारस कालिज मे है। उसकी भाषा विलक्षण ही है। कुछ अंश उसका उदाहरण के निमित्त महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी जी कृत "गणकतरंगिनी" से यहाँ उद्धृत करते हैं।

" मुरारि यो (जो) है वासुदेव तेहि के ये (जे) हहि चरण-कमल तेन्ह नमस्कार कै शिष्य निमित्त भास्वती सकृ(स्कृ)त शता-नंद कीन्हि। कौन काल शकू ऊन करब एक सहस्र एकैस १०२१ ग्रंथादि वर्ष भुक्त जानवे। शास्त्र (स्त्रा) कु संज्ञा होइ। सो देखि कै बनमालीन्द शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह। १४८५ समय॥"

इसके पीछे के प्रसिद्ध कवि कबीर थे। कबीर की कविता मे भाषा पर कुछ विशेष ध्यान नहीं है विषय पर ध्यान है—परंतु एक कविता हम उदाहरण के लिये कबीर की बोलचाल की भाषा से मिलती जुलती उद्धृत करते हैं—

"तनना बुनना तजा कबीर। रामनाम लिख लिया सरीर॥
जब लग भरूँ नली की बेह। तब लग टूटै राम सनेह॥
ठाढ़ी रोवै कबीर की माइ। ये लरका क्यों जीव खुदाइ॥
कहै कबीर सुनौ री माइ। पूरन हारा त्रिभुवन राइ॥"

इसके पीछे तो फिर भाषा तथा उर्दू की कविताओं से एवं फारसी किताबो के साथ के हिंदी अनुवादों तथा महाजनो की चिट्ठियो की लिखावट से स्पष्ट सिद्ध है कि यहाँ के सभ्य समाज की बोलचाल की भाषा लगभग वही है जिसे आजकल खड़ी बोली कहते है और जिसे भाषा गद्य के जन्मदाता लल्लूलाल जी ने रेखते की बोली लिखा है।

अब भाषा कविता की भाषा पर ध्यान देना आवश्यक है। सुप्रसिद्ध कवि भिखारीदासजी ने अपने "काव्यनिर्णय" नामक ग्रथ मे इस विषय मे लिखा है।

"भाषा ब्रजभाषा रुचिर कहै सुमति सब कोइ।
मिलै सस्कृत पारस्यौ पै अति प्रगट जु होइ॥"

इसके प्रमाण मे भिखारीदासजी ने आगे चलकर फिर लिखा है।

"तुलसी गंगा दो भए सुकविन के सरदार।
इनकी काव्यन मैं मिली भाषा विविध प्रकार॥"

वास्तव मे भिखारीदासजी ने बहुत ही ठीक लिखा है। कहने को तो यह प्रसिद्ध है कि भाषा कविता ब्रजभाषा मे होती है परंतु वास्तव मे ध्यानपूर्वक देखा जाय तो थोडे से ब्रज के कवियो के अतिरिक्त अधिकाश भाषा कविता की कोई विशेष भाषा नही है, कविगण यथावसर उचित शब्दों को भाषा का विचार छोडकर यथास्थान रख देते है—केवल अपने हृद्गत भाव को प्रकाशित करने और कविता को रोचक बनाने पर ध्यान रखते है—यही उचित भी है। यह बात केवल प्राचीन कवियों मे ही नही है वरंच 'खड़ी बोली' के नवीन कवियों की कविता मे भी पाई जाती है। पंडित श्रीधर पाठकजी ने अपनी एक कविता मे लिखा है—

"रसीली मुसकान हसन कटाच्छ से,
प्रवासियों के मन मे मनोज की।
उमंग यों शीघ्र करे विलासिनी,
सलोनी साँझै शशिशोभिनी यथा ॥"

—ग्रीष्मवर्णन

लगती है को लगै है, करती है को करै है, देख करके के स्थान पर 'विलोकि' ऐसे प्रयोग तो बहुतायत से मिलते हैं। ऐसे ही पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी की कविता मे भी ऐसे अनेक प्रयोग हैं, यथा—

"सिर ऊँचा कर मुख खोलै है।
कैसी मृदु बानी बोलै है ॥"

—कोकिल कविता

"माताममत्व जस वेद पुराण भाखा।
तत्तुल्य है अपर केवल मातृभाषा ॥
आजन्म जो विमुख, ताहु विपत्ति माही।
आवे सदैव मुख मे सोइ, अन्य नाही ॥

—नागरी

गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो इसकी पराकाष्ठा ही कर डाली है। स्वयं ही लिखा है —

"भनित भदेस भाँति बहु बरनी। राम-कथा कलिकलमष हरनी ॥"

अब यहा पर यह प्रश्न उदय होता है कि जब कई भाषा के आश्रय से हिंदी की कविता होती रही है तो फिर कविता की भाषा का नाम व्रजभाषा क्यों कहा जाता है? मेरी समझ मे इसका कारण यही है कि कविता के क्रियापदों मे आया के स्थान पर आयो, गया के स्थान पर गयो, कहा के स्थान पर कह्यो आदि व्रजभाषा की

क्रियाओं के रख देने ही से यह नाम प्रसिद्ध हो रहा है। दूसरी बात यह है कि यदि विशेष विचारपूर्वक देखिए तो यही अनुमान होता है कि भारतवर्ष की Lingua Franca भाषा जो हिंदी कहलाती है वह केवल इसी लिये नहो कि वह सर्वत्र समझी और बोली जाती है वरच इसलिये भी कि भारतीय सब भाषाएँ इसी के आश्रय से बनी हुई हैं। व्रजभाषा, राजपुताने की भाषाएँ, बैसवारे की भाषा, बुदेलखंड की भाषा, भोजपुर विहार की भाषाएँ, तिरहुत की भाषा आदि भाषाएँ तो हिंदी के उपभेद मात्र हुई हैं, साथ ही बँगला, उड़िया, मैथिली, गुजराती, महाराष्ट्री, नैपाली, पंजाबी तथा पहाडी भाषाओ की बनावट भी स्पष्ट ही कहे देती है कि इन्होने हिंदी का आश्रय अवश्य लिया है। यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि भारतवर्ष मे प्रति पाँच कोस पर भाषा बदलती है परतु यह निश्चय करना कठिन है कि वह मूल भाषा कौन है जिससे यह परिवर्तन आरभ हुआ। मेरे अनुमान मे यही जँचता है कि वह मूल भाषा व्रजभाषा ही है, क्योकि यदि विचार करके देखा जाय तो व्रज के चारो ओर से ही यह परिवर्तन क्रमश आरभ हुआ है, और अधिकाश भाषाएँ व्रजभाषा से ही मिलती हुई है। राजपुताने की ओर बढिए तो भरतपुर की भाषा, व्रजभाषा और जैपुरी भाषा के बीच की भाषा जान पड़ती है। उसके आगे जैपुर की भाषा फिर जोधपुर की मारवाडी और जो उससे मिलाइए तो गुजराती बहुत कुछ मिलती है। इधर आगरे की भाषा कुछ व्रजभाषा की ओर झुकती खड़ी बोली है और दिल्ली मे आकर तो वह उर्दुए मुअल्ला ही बन गई है। यह खडी बोली काशी तक सूक्ष्म परिवर्तन के साथ बोली जाने के उपरांत भोजपुर शाहाबाद से फिर परिवर्तित होना आरभ करती है और क्रमशः भोजपुरी, बिहारी, तिरहुतिया से बदलकर मैथिली के रूप मे आ जाती है। मैथिली से

बँगला और उड़िया का क्रमशः परिवर्तन स्पष्ट प्रतीत होता है। बुंदेलखंडी और बैसवारी आदि की क्रियाओ का मिलान व्रजभाषा से बहुत कुछ होता है। दूसरा कारण यह जान पडता है कि हिंदुओ का सर्वमान्य अंतिम अवतार श्रीकृष्णावतार ही है। और उनका जन्म व्रज मे होने के कारण यह भाषा सर्वमान्य हुई। तीसरा कारण यह प्रतीत होता है कि खडी बोली को मुसलमान जाति ने अपनी उर्दू बनाकर ग्रहण कर लिया इसलिये हिंदुओ न विशेष आग्रह व्रजभाषा की ओर किया। इसका दृढ़तर प्रमाण यह है कि श्री-वल्लभाचार्यजी के संप्रदाय मे अब तक यह प्रथा है कि भगवत्सेवा के समय व्रजभाषा का बोला जाना ही उचित समझा जाता है, यावनी शब्दो का प्रयोग निषिद्ध है। इसके अतिरिक्त व्यास लोग जो कथा कहते हैं वे चाहे जिस देश के रहनेवाले क्यों न हो और चाहे बने या नष्ट हो जाय पर वे कथा व्रजभाषा ही मे कहने का उद्योग करते हैं, गोस्वामी लोग व्रजभाषा ही बोलते हैं तथा च उस समय मे साहित्य की भाषा ही व्रजभाषा मान ली गई थी—न केवल पद्य ग्रंथ वरंच गद्य ग्रंथ भी जितने मिलेगे वे प्राय. व्रजभाषा की क्रियाओं ही मे। धर्म संबंधी वार्ता आदि तथा पुराणादिकों की टीका, ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों के सैकड़ो ही ग्रंथ व्रजभाषा गद्य मे अब तक वर्तमान हैं, यहाँ तक कि 'खड़ी बोली' गद्य के आरंभकर्ता लल्लूलालजी ने भी "हितोपदेश" को व्रजभाषा मे बनाया था और कहाँ तक कहे बंगाली कवि अपनी कविता व्रजभाषा मे करना गौरव समझते थे। प्राचीन बँगला पद्य प्राय. व्रजभाषा से मिलते जुलते सैकड़ों ही मिलते हैं। अत. हिंदी के सब रूपो मे व्रजभाषा ही को प्रधानता मिली थी। परंतु इसमे भी संदेह नही कि खड़ी बोलीवाले बहुत दिनो से इसे उपहास की दृष्टि से देखते और गँवारी बोली कहते थे, जैसा कि

मुंशी इंशाअल्लाह खाँ की "रानी केतकी की कहानी" की भूमिका से प्रगट होता है। अस्तु, चाहे यह भाषा ठीक व्रजभाषा न हो, कवियों की गढी हुई एक विशेष भाषा ही क्यों न हो, पर इसका झुकाव विशेषकर व्रजभाषा ही की ओर है। यहाँ पर हम इतना और भी कहना आवश्यक समझते है कि भाषा कवियो ने अपनी कविता के लिये केवल एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग नही किया है वरच अनेक अवसरो के लिये अनेक प्रकार की भाषाएँ लिखी है। जैसे वीर रस के लिये चन्द से लेकर गिरिधरदास तक सभी कवियो ने भाषा को सस्कृत का रूप बनाने के हेतु अनुस्वार लगाया है और टवर्गी अक्षरो को प्राय· द्वित्व करके प्रयोग किया है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो वीर रस के प्राय. सभी प्राचीन नवीन ग्रंथों मे एक सी भाषा पाई जायगी, और ऐसे ही शृ गार के लिये व्रजभाषा के प्राचीन कवियो ने खडी बोली मे भी बहुत सी कविता की रचना की है। व्रजभाषा कविता के आचार्य स्वय सूरदासजी ने भी खड़ी बोली की कविता की है यथा—"देखो रे एक बाला जोगी द्वारे मेरे आया है। अग भभूत गले मृगछाला शृ गीनाद बजाया है।" और खड़ी बोली के कवियों ने वरच यहाँ तक कि बहुधा उर्दू वालों ने भी व्रजभाषा का आश्रय लिया है। अतएव ऊपर लिखे प्रमाणो पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि व्रजभाषा कविता के पक्षपातियो का कहना कि खड़ी बोली मे कविता उत्तम हो ही नही सकती और खड़ी बोली वालो का कहना कि व्रजभाषा की कविता हिंदी कविता ही नही है सर्वथा अनुचित है।

अब विचारणीय विषय यह है कि भाषा कविता की भाषा क्या होनी चाहिए? ऊपर यह कहा गया है कि इस देश की भाषा प्रत्येक पाँच कोस पर बदल जाती है परतु यहाँ पर हम यह कहेगे

कि इतना ही नही वरंच यहाँ प्रत्येक नगर मे कई प्रकार की बोलियाँ बोली जाती है, यथा काशी मे—(१) आते हैं (२) आता हौं (३) आई थै (४) आई ल या आई ला (५) आवत बाटी या आवत बाडी (६) आवथई। निदान यह कहना तो सर्वथा असंभव ही है कि सभी भाषाओ मे कविता हो, यद्यपि गॅवारी भाषा तक मे कविता करने मे लोगो ने सफलता प्राप्त की है। परतु ऐसी कविता सभ्य समाज मे आदर नही पा सकती। इसलिये यह आवश्यक है कि कोई एक भाषा ऐसी मान ली जाय जो सर्वमान्य और सबके समझ मे आने योग्य हो। यह स्थान अधिकृत करने योग्य दो ही भाषाएँ हैं, एक व्रजभाषा या यो कहिए कि प्राचीन कवियो की गढ़ी हुई भाषा और दूसरी खड़ी बोली। मेरी समझ मे भाषा की कविता पर दोनो ही बोलियो का समान अधिकार है।

कविता की प्रचलित भाषा (व्रजभाषा) मे माधुर्यगुण के अतिरिक्त सुगमता बहुत अधिक है। बहुत दिनों से परिमार्जित होते होते इसके शब्द ऐसे बन गए हैं जो कविता के लिये बहुत ही उपयुक्त है, 'देख करके' इतने बड़े शब्द के लिये केवल 'लखि' 'निरखि' 'विलोकि' या 'अवलोकि' यथावसर काम दे देता है। केवल इकार लगा देने से 'करके' इतना अर्थ निकल आता है। दीर्घ का ह्रस्व बना लेना या शब्दो का रूप कुछ बदल देना जैसा व्रजभाषा मे खप जाता है उसके विरुद्ध खड़ी बोली की कविता मे बहुत ही खटकता है। इसके अतिरिक्त कविता शक्ति परमेश्वर की देन है और इसी लिये कवियो की तरग कुछ विलक्षण ही होती है। जो लोग सुकवि हैं उन्हे जब तरग आती है तो फिर संसार के नियमों को दूर रखकर वे अपनी उमग को निकाल डालते हैं। यदि उस समय कोई उन्हे नियम मे बाँधना या रोकना चाहे तो उनकी स्वाभाविक कल्पना नष्ट हो जाती है और फिर उसका

रस जाता रहता है। इसलिये कवियों को उनकी इच्छा से रोकना तथा व्रजभाषा की कविता गँवारी कविता है यह कहकर उत्साह-हीन कर देना सर्वथा अनुचित है। यदि यह कहा जाय कि ऐसी कविता साधारण बोधगम्य नहीं है तो सर्वथा भ्रम है। सच पूछिए तो आजकल की गद्य की हिंदी सर्वसाधारण की समझ मे नहीं आती परतु सूरदास, कबीर, तुलसीदास, मीराबाई आदि की कविता का प्रचार गाँव गाँव मे है और आबाल वृद्ध वनिता सब सहज मे उसे समझ लेते है। और यदि यह कहा जाय कि व्रजभाषा मे समयानुकूल, देशोपकारी तथा स्वाभाविक कविता नहीं हो सकती तो यह भी भूल है। पूज्य भारतेंदुजी की 'भारतभिक्षा', 'प्रबोधिनी' आदि कविता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि इसमे सभी तरह की कविता बन सकती और रोचक हो सकती है। अतएव मेरी समझ मे यह आग्रह करना कि व्रजभाषा मे कविता न हो सर्वथा हानिकारक है वरच जिन कवियो को व्रजभाषा की कविता का अभ्यास हो उन्हे प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे अपनी रुचि की भाषा मे ही कविता करे परतु केवल लकीर के फकीर होकर एक ही रस की कविता का पिष्ट-पेषण न करे वरच देश की दशा को देखकर उसके अनुसार अपने देशभाइयों के उपकार तथा उनकी सामयिक रुचि के अनुसार कविता करके हिंदी का गौरव बढ़ावे। परंतु जिन लोगो की रुचि खड़ी बोली की कविता की ओर है और जिनको खडी बोली में उत्तम कविता करने की सामर्थ्य है उन्हे इससे रोकना भी उतना ही अनुचित है जितना व्रजभाषा के कवियों को खड़ी बोली के लिये रोकना। प्राचीन ढर्रे के भजन, लावनी, रेखता, ठुमरी आदि के अतिरिक्त पंडित श्रीधर पाठक ने 'एकांतवासी योगी' आदि ग्रथ तथा कविता, पडित प्रताप-नारायण मिश्र ने 'संगीत शाकुतल' और पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

ने 'कुमारसंभवसार' आदि रचकर यह सिद्ध कर दिया कि परिश्रम करने से खड़ी बोली भी उतनी ही मधुर और श्रवणप्रिय हो सकती है जितनी ब्रजभाषा; अतएव इसका विरोध करना केवल दुराग्रह मात्र है। खड़ी बोली की कविता के प्रेमियो का यह अवश्य कर्तव्य है कि इसको भी उसी उच्च श्रेणी पर पहुँचा दे जिस पर ब्रजभाषा पहुँच चुकी है परतु यह नही उचित है कि अपने हठ के रक्षार्थ हिंदी के इस अमूल्य संचित भांडार से भाषा साहित्य को वंचित करे। कवियों को बहुत से नियमो मे आबद्ध न करके उन्हे अपनी इच्छा के अनुसार कविता करने दो परंतु उनकी रुचि समयोपयोगी आवश्यकताओ की ओर झुकाकर अपने साहित्य भाडार को उपयोगी विषयों से भरने का उद्योग करो। पूज्य भारतेदुजी ने प्राकृत श्लोक के आश्रय पर "कर्पूरमंजरी" मे बहुत ठीक कहा है—

"जामैं रस कछु होत है पढत ताहि सब कोय।
बात अनूठी चाहिए भाषा कोऊ होय॥"

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका]

(१०) पुरातत्त्व

हमे आज यह कहने और प्रमाणित करने की आवश्यकता नही है कि भारतवर्ष ने बहुत ही प्राचीन समय से उन्नति के सर्वोपरि सोपान पर आरोहन किया था, क्योंकि एक तो यह बात सर्ववादि-सम्मत है, दूसरे आज हमारा आलोच्य विषय यह नही है, आज हम केवल इतना ही दिखाना चाहते हैं कि हमारे प्राचीन इतिहास की क्या दशा है और उसके पुनरुद्धार का कौन सा उपाय है।

प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति की एक एक भिन्न प्रणाली और भिन्न भिन्न रुचि होती है। हमारे भारतवर्ष की यह प्राचीन प्रणाली थी कि जिस जाति के बाँटे जो काम कर दिया गया उसमे कोई दूसरा हस्तक्षेप न करेगा और उस विषय मे पूर्णतया उसी का भरोसा और उसी पर विश्वास करेगे और इसी लिये यहाँ के जितने लौकिक या पारलौकिक विषय कहे गए उनको केवल सूत्र मात्र मे कह दिया, उसे समझाने या प्रमाणित करने की आवश्यकता नही। दूसरे जितने सूत्र थे उन्हे वे ईश्वरवत् मान्य और ग्राह्य थे, उनको कोई प्रश्न करने की आवश्यकता न थी, उनका कर्तव्य केवल इतना ही था कि उन आज्ञाओं का अनुकरण करे और बिना कुछ सोचे विचारे उन्ही के अनुसार चले।

रुचि यहाँ के लोगो की लौकिक की अपेक्षा पारलौकिक की ओर अधिक थी, वे इस नश्वर ससार मे सुख भोगने की अपेक्षा उस अविनाशी संसार के लिये प्रस्तुत होना आवश्यक समझते थे, इसी लिये उन्होंने दूसरे देशो तक जाना, उन्हे विजय करना और बहुत सा द्रव्य उपार्जन करना अनावश्यक समझा, जो कि उस समय उनके लिये

बहुत ही सहज बात थी, और इसी कारण यहाँ के प्रत्येक विषय के साथ धर्म का घनिष्ठ संबंध मिलाया गया, और यह तो स्पष्ट ही है कि जहाँ अदृष्ट घटनाएँ दृष्टि के साथ मिलाई गई वहाँ चाक्षुप-प्रमाण मिलना असंभववत् है। यही कारण है कि आजकल की युरोपीय रुचि के साथ प्राचीन रुचि से बड़ा अंतर पड़ता है।

दूसरा एक बड़ा कारण यह भी है कि इस देश के लोग कविता-प्रिय सीमातिरिक्त थे, और कविता का नामांतर अत्युक्ति कहना चाहिए, फिर अत्युक्ति से और यथार्थता से तो रात दिन का अंतर है।

तीसरे इतिहास लिखने का काम राजाओं के चारनों तथा भाटों के सिपुर्द था, एक तो वे खुशामद से बहुत कुछ घटा बढ़ा देते थे, दूसरे एक राजा का राज्य बदला, दूसरा राजा हुआ कि मंत्री से लेकर प्रतिहारी तक बदल गए, जिसकी विद्या उसके साथ गई, जिस कुल की कीर्ति उस कुल के साथ हुई।

चौथे सबसे बड़ा कारण नित्य का धर्म विप्लव। विद्या बुद्धि से और धर्म से बड़ा विरोध है। जहाँ तक विद्या की उन्नति होगी युक्तियों की नित्य नई कल्पना होगी; और धर्म का मूल केवल विश्वास है, उसमें युक्तियाँ आई और गड़बड़ मचा; यही दशा भारत की हुई। दोनों एक दूसरे के विरोधी। एक ने यहाँ पूर्णता लाभ की। और लोगों ने दोनों को एक करना चाहा जिसने और भी उपद्रव किया। जैसा ही यह देश विद्या बुद्धि के लिये प्रसिद्ध था, वैसा ही धर्मचर्चा और धर्म की दृढ़ता भी इसकी अंग थी, अतएव अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार नित्य नई युक्तियाँ लोग सोचते रहे और उन्हीं के अनुसार धर्म परिवर्तित होते रहे।

धर्म एक ऐसा पदार्थ है जिसके आगे मनुष्य हिताहित-ज्ञान-शून्य हो जाता है और यह बात केवल एशिया ही के लिये नहीं

वरंच इस विषय मे युरोप की भी यही दशा है। एक धर्म के पीछे दूसरे धर्म्म ने जोर पकड़ा और पहले धर्मवालों के साथ उचितानुचित बर्ताव का ध्यान दूर हुआ और यही मुख्य कारण सारी दुर्दशा का हुआ। वैदिक मत शिथिल हुआ, जैन बौद्धों ने जोर पकड़ा, चलिए वैदिक ग्रंथ बोरों मे कसकर नदियों मे डुबाए गए, पुस्तकालय जलाए गए। इनकी युक्ति पुरानी पड़ी, शांकर मत ने स्थान पाया, वही दशा उनकी हुई। शांकर गए वैष्णव आए। उन्होंने भी परम अहिंसा-निष्ठ होने पर भी प्राचीनों की कीर्ति के नाश में कुछ दया न की। और सबके ऊपर विदेशी मुसलमान आए। इन्होंने तो मानों इस देश की प्राचीन कीर्तियों के नाश के लिये अवतार ही लिया था। यदि अकबर सरीखे दो चार विद्यारसिक मुसलमान बादशाह न होते, या औरंगजेब सरीखे दो चार परम क्रूर पराक्रमी बादशाह और होते तो जो कुछ थोड़ी बहुत प्राचीन कीर्ति, ग्रंथादि बच रहे हैं उनका भी पता न लगता। तनिक सोचिए तो सैकड़ों ही वर्ष से परम विद्यारसिक अध्यवसायशील अँगरेज लोग इन प्राचीन पदार्थों की खोज में कटिबद्ध हैं तथापि नए आविष्कार होते ही आते हैं और नित्य इनके द्वारा एक न एक नई बात का पता लगता ही जाता है, फिर यथार्थ में यहां की विद्या की कहाँ तक उन्नति थी इसका क्या ठिकाना है?

इतिहास के ठीक पता न लगने का एक बड़ा कारण यह भी है कि प्राचीन समय में कोई एक संवत् नहीं चलता था। जो राजा गद्दी पर बैठा उसका संवत् उसी दिन से चला। वह मरा, संवत् भी उसी के साथ सती हुआ, दूसरा संवत् चला। अब यथार्थ काल-निर्णय क्योंकर हो? जब से महाराज विक्रम का संवत् चला, इतिहास का भी कुछ न कुछ पता लगता ही है।

इस विषय में उदयपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ तथा पुरातत्त्ववेत्ता महामहोपाध्याय कविराजा साँवलदासजी ने पूज्यपाद भारतेंदुजी को एक पत्र लिखा था उसे यहाँ अविकल प्रकाश करते हैं।

कविराजाजी लिखते हैं।

"मित्रमित्रोत्तमेषु" अपरंच पत्र आपका आया समाचार बाँच चित्त प्रसन्न हुआ। आपने लिखा कि मुसलमानों ने तवारीखों में अपना पक्षपात लिखा और अँगरेजों ने भी तदनुसार ही लिखा सो आप का लिखना सच है। मैंने भी सैकड़ों इतिहास देखे परंतु आपकी और मेरी सम्मति एक है। परंतु कलेश इस बात का है कि राजपूताने में इतिहास लिखने की रीति नहीं थी, मरु भाषा ब्रजभाषा मे यदि ग्रंथ लिखे हैं तो उनमें वाक्य-बाहुल्य इतना बढ़ा दिया कि जिसमें सिवाय कपोलकल्पित प्रशंसा के असली प्रयोजन कठिनता से हाथ आवे, केवल कवियों ने अपनी कविता की शक्ति प्रकाश करने पर दृष्टि रखी। पाषाण लेख मिलते हैं उनमें भी राजाओं को इंद्र वरुण कुबेर या ब्राह्मणों को दान देने के सिवाय इतिहासिक वृत्त नहीं।

थोड़ा आश्रय युरोपियन विद्वानों की यात्रा-पुस्तकों का है। तीन सौ वर्ष अथवा साढ़े तीन सौ से इस तरफ की और इसके पहले की यूनानियों की अथवा अरब के यात्रियों की पुस्तकें मुझको मिली हैं। उनमें देश, स्थान और मनुष्यों के नामों को कुछ का कुछ कर दिया जिससे असली नामों का पता लगाना मुश्किल है तथापि मैं अपने इतिहास में अवश्य दृष्टि रखूँगा परंतु बिना सबूती के नहीं लिखा जा सकता।

नैपाल का इतिहास आप रचें तो मुझे अधिक सावकाश तो नहीं क्योंकि सात घंटा प्रतिदिन इतिहास-निर्माण मे व्यतीत होता है परंतु जहाँ कहीं संदेह हो लिख भेजिए यथाशक्ति उत्तर दिया जावेगा।

सं० १९४० ज्येष्ठ शुक्ला १३ द० साँवलदास

परंतु क्या हमें यह देख हताश होना चाहिए ? क्या हमें अपने पूर्वजों की कीर्ति तथा अपने प्राचीन इतिहास की खोज से पराङ्मुख होना चाहिए ? कदापि नहीं । हमें देखना चाहिए कि किन उपायों से हम इनके उद्धार में कृतकार्य हो सकते हैं और हमें उनका अनुकरण करना चाहिए ।

देखिए तो परम बुद्धिमान् युरोपीय विद्वानों ने आपके प्राचीन इतिहासों का यथा-कथंचित् पता कैसे लगाया है ? जिन बातों को आप स्वप्न में भी नहीं जानते उन्हे वे विदेशी, विजाती विधर्मी आपकी भाषा रीति व्यवहार आदि से संपूर्ण अनभिज्ञ होने पर भी आपको बताते हैं । कैसी लज्जा की बात है कि हमारे पूर्व पुरुषों का वृत्तांत हमें छ हजार कोस से अजनबी लोग आकर बतावें और हम यह देखकर भी कुछ अपना पता आप न लगावे, केवल अकर्मण्य होकर बैठे उन्हीं का भरोसा करें और जो कुछ अपना वृत्तांत जानना हो तो उन्हीं का आश्रय ढूँढ़ें !!!

भला जाने दीजिए अब तक आपने कुछ न किया, आप जानते नहीं थे या आपका ध्यान इस ओर न था, परंतु अब तो आपको दूसरों ने पथप्रदर्शन कर दिया । उससे जो कुछ फल हुआ, आपके इतिहास के अंधकार में कुछ प्रकाश दिखलाया, उसे देखकर भी आपकी रुचि उस ओर नहीं होती और आप कुछ भी उस ओर उद्योगी नहीं होते ?

आज हम आप लोगों को यही दिखलाया चाहते हैं कि उन लोगों ने कौन कौन उपायों से इस कठिनाई को दूर किया है और किन उपायों से यह सब पता लगाया है और यदि आप लोग भी उद्योग करें और इस ओर ध्यान दें तो आप न वही काम कर सकें जो उन्होंने किया है; वरंच उनसे कहीं बढ़कर आप लोग काम कर

सकते हैं क्योंकि बहुत से ऐसे मंदिर आदि धर्म-स्थान हैं जिनसे बहुत कुछ प्राचीन लिपि द्वारा पता लग सकता है परंतु वे लोग वहाँ तक पहुँच नहीं सकते। दूसरे बहुतेरे लोगों के पास बहुत सी वस्तुएँ प्राचीन इतिहास से संबंध रखनेवाली हैं परंतु वे इन लोगों को सरकारी आदमी समझकर छिपाते हैं और किसी प्रकार से प्रगट नहीं करते। तीसरे जिन बातों को वे लोग विदेशी होने के कारण जान और समझ नहीं सकते उन्हे आप सहज में समझ सकते हैं। चौथे बहुत सी प्राचीन कहानियाँ ऐसी प्रसिद्ध हैं जिनसे इतिहासों से बहुत कुछ संबंध है और उन्हें प्राचीन स्त्री पुरुष प्रायः कहा करते हैं। उन्हें जैसे सहज में आप संग्रह कर सकते हैं और उनका मर्म समझ सकते हैं वैसा वे नहीं कर सकते। पाँचवे बहुत सी बातें आप अपनी रीति रसम चाल व्यवहार से प्राचीन कहावत तथा लेखों से मिलान कर समझ सकते हैं उन्हे वे लोग कदापि नहीं समझ सकते। निदान ऐसी बहुत कुछ सुगमता है जिनके द्वारा वे जिन बातों को बहुत कठिनाई से भी नहीं जान सकते उन्हें आप सहज में संग्रह कर सकते हैं, तनिक इधर ध्यान देने मात्र का काम है।

बड़े हर्ष की बात है कि इन दिनों बहुत से महाशयों को हिंदी के समाचारपत्रों में लेख लिखने और ग्रंथ-रचना करने का उत्साह हुआ है। यदि ये लोग इस ओर ध्यान दें तो बहुत कुछ उपकार हो सकता है और उनके उद्योग को भी सफलता प्राप्त हो सकती है। उन्हें चाहिए कि व्यर्थ के बहुत से लेख न लिखकर अपने गाँव, नगर, महल्ले आदि का इतिहास, अपने यहाँ के प्रसिद्ध लोगों की जीवनी, अपने यहाँ की प्राचीन इमारतों का इतिवृत्त तथा लेख आदि को संग्रह करें, उनकी खोज करें उनसे प्राचीन बातों के पता लगाने का उद्योग करे। कहीं किसी काम से विदेश जायँ तो वहाँ भी इन बातों

का ध्यान रखें तो देखेंगे कि वे इस रीति पर कितना कुछ पता ऐतिहासिक घटनाओं का लगा सकते हैं और इसके द्वारा उनकी कीर्ति कैसी अक्षय हो जाती है।

अब मैं उन रीतियों का उल्लेख करता हूँ जिनके द्वारा युरोपीय विद्वानों ने पता लगाया है और वे अनुसंधान करते हैं।

(१) गवर्नमेंट के एक सेक्रेटरी इलियट साहब थे। वे बड़े भारी पुरातत्त्ववेत्ता थे। उन्होंने बहुत से ऐतिहासिक ग्रंथ इकट्ठे किए थे। उनकी मातहती में राजा शिवप्रसाद काम करते थे। राजा साहब उक्त साहब के संग्रह की यह रीति बतलाते थे कि वे एक ऐतिहासिक प्राचीन ग्रंथ उठा लेते और उसे आद्योपांत पढ़ जाते। उससे जो कुछ उपयोगी बातें मिलतीं उनको लेने के अतिरिक्त उस ग्रंथ में जिन ग्रंथों का कुछ वर्णन पाते उनकी एक सूची बनाते और फिर उन ग्रंथों की खोज करते। अब उन ग्रंथों से फिर और ग्रंथों के नाम निकालते और योंही करते करते उन्होंने केवल ऐतिहासिक कई सौ ग्रंथ इकट्ठे किए, जो कि इस समय विलायत में सर्कारी पुस्तकालय मे हैं और सैकड़ों ही ऐसे ग्रंथों के नामों का पता लगाया जो कि वह खोज करने पर न पा सके।

(२) जो विदेशी यात्री लोग हिंदुस्तान में आए थे उनके भ्रमण-वृत्तांत से, जिनमें हुएन्त्संग चीनी यात्री मुख्य था।

(३) यहाँ की चाल थी कि प्रायः ग्रंथकर्ता अपने कुल तथा अपने आश्रयदाता का (जो कि प्रायः राजा ही हुआ करते थे) तथा समय के राजा का वृत्तांत लिखते थे और ग्रंथ बनने का समय देते थे।

(४) यहाँ के किसी किसी राजा ने जो दूर देशों से जाकर विजय की थी उनको उस देश के इतिहास से पता लगाते हैं।

(५) प्राचीन ताम्रपत्र तथा पत्थर पर खुदी प्रशस्तियों तथा दानपत्रों से बहुत ही अधिक काम लिया गया है। इन पत्थरों पर प्राचीन समय के प्रचलित बहुत प्रकार के अक्षर खुदे मिलते हैं। इन लोगों ने एक को दूसरे से मिलाकर उन अक्षरों की वर्णमाला बना ली और तब सहज मे उन्हे पढ लिया। अक्षरों का परिवर्तन क्रमशः हुआ है इस विषय का एक उत्तम ग्रंथ उदयपुर सें "प्राचीन लिपिमाला" नामक पंडित गौरीशकरजी ने प्रकाशित किया है। इन लेखों में समय और वंशावली आदि बहुत ठीक ठीक दिए हुए मिलते हैं।

राजा की प्रशंसा मे अत्युक्ति चाहे जितनी की जाय, ऐसे लेख प्राय: तालाब, मंदिर, सीढ़ी आदि में लगे या कीर्तिस्तंभों पर खुदे, मिलते हैं। जो ये लेख स्पष्ट उस समय पढ़े नहीं जाते तो उसे ज्यों का त्यों एक कागज पर छाप लेते हैं और फिर उसे लाकर और विद्वानों की सहायता से पढ़ते हैं। इसके छापने का सुगम उपाय यह है।

प्रथम लिपि को अच्छे प्रकार से पानी से धोकर और कपड़े से रगड़कर साफ कर ले जिसमें मिट्टी आदि जो उसमें भरी है निकल जाय। पश्चात् एक कागज़ के उतने ही बड़े टुकड़े को, जो लिपि के समान हो, पानी में भिगोकर उस लिपि पर लगा दे। ऐसा करने से वह कागज गीला होने से उस पर चिपक जायगा। पश्चात् धीरे धीरे एक नर्म बालों के बुर्श से इस कागज को ठोंकना चाहिए जिसमें खुदे हुए अक्षरों के भीतर कागज समा जाय। इस क्रिया के उपरांत लकड़ी के एक डैबर को, जिसके एक ओर चार अंगुल चौड़ी काठ की एक तख्ती जड़ी हो और उस पर रुई की एक गद्दी लगी हो, उसे काँच के टुकड़े पर जिस पर गोंद मिला हुआ काजल रखा है थोड़ा गीला करके रगड़े और पुनः लिपि पर चढ़े हुए कागज पर

इस डैबर से स्याही चढ़ावे। ऐसा करने से कागज का बाह्य भाग काला हो जावेगा और लिपि के अक्षर श्वेत इस पर छप आवेंगे।

(६) प्राचीन सिक्कों से।

(७) प्राचीन मूर्तियों से।

(८) प्राचीन इमारतों तथा मंदिरों की बनावट से।

(९) ग्राम्य गीतों के संग्रह और फिर उनके ऐतिहासिक घटनाओं के मिलान से।

(१०) वृद्ध लोगों से प्राचीन जनश्रुतियों तथा कहानियों के संग्रह और उनके ऐतिहासिक घटनाओं के मिलान से।

(११) ग्राम, महल्ला, नगर के नाम और उनके कारण के अनुसंधान से।

(१२) प्रसिद्ध लोगों के जीवनवृत्तांत को लोगों से पूछ पूछकर उनसे ऐतिहासिक घटनाओं के मिलान से।

(१३) नाटक, काव्य, आदि ग्रंथों से चाल व्यवहार आदि का पता लगाकर समयनिर्णय तथा और भी ऐतिहासिक बातों का पता।

(१४) राजाओं के पत्रादि तथा सम्मानपत्रादि से।

(१५) भाट चारनादिक की प्राचीन कविता और वंशावली-वर्णन से।

(१६) वेद, पुराणादि मे लिखे इतिहास और कथाओं से तथा फारसी के इतिहासों या इन्शाओं (अर्थात् पत्रव्यवहार के ग्रंथ) और हिंदी आदि देशी भाषाओं के ग्रंथों से।

आप लोग निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखेंगे तो आशा है कि बहुत कुछ ऐतिहासिक अनुसंधान कर सकेंगे।

(१) जिस ग्राम या नगर में आप रहते हों या जाने का संयोग पड़े उसका नाम क्यों वह पड़ा, जिस व्यक्ति के नाम से

उसका नाम पड़ा हो वह कौन था और कब हुआ आदि जो पता लगे, लिख लीजिए।

(२) जिस देवस्थान मे या प्राचीन इमारत मे जाइए यदि वहाँ कोई पत्थर खुदा हुआ मिले, ईंटों पर कुछ लिखा मिले, उसकी नकल कर लीजिए। यदि वह ऐसी भाषा मे हो जिसे आप न पढ़ें हों या उसके अक्षर ऐसे हों कि न पढ़े जाते हों तो ऊपर लिखी रीति से उनको छाप लीजिए और आपको कोई पढ़नेवाला न मिले तो कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी के सेक्रेटरी के पास यह लिखकर भेज दीजिए कि आपने कहाँ और कैसे पाया। तालाब कुओं आदि मे भी देखिए।

(३) जहाँ कहीं तीर्थस्थान में जाइए वहाँ के पंडों के प्राचीन लेखों को देखिए और जो आपको कुछ मतलब के जान पड़ें उनकी नकल कर लीजिए। इससे बहुत से प्राचीन ऐतिहासिक लोगों की वंशावली मिलेगी।

(४) पुराने पैसे, रुपए, अशर्फी जो मिलें संग्रह कीजिए उनको पढ़िए पढ़ाइए और प्रकाशित कीजिए या एशियाटिक सोसाइटी को भेज दीजिए।

(५) अपने कुल तथा जाति की अल्लों को तथा गोत्रों को प्रकाशित कीजिए, इतिहास जो मिले लिखिए, जाति मे जो प्रसिद्ध लोग हुए हों उनका वृत्तांत समयादि लिखिए, जन्म से मरण पर्यंत की रसमों को लिखिए, जाति के गीत जो हों लिखिए।

(६) गँवारों के बहुतेरे गीत ऐसे हैं जो ऐतिहासिक घटनाओं से संबंध रखते हैं या किसी वीर या दानी आदि की प्रशंसा में होते हैं। उनको संग्रह कीजिए। उनके विषय मे और जो पता लगे लिखिए।

(७) बूढ़े बूढ़े लोगों से जो कोई पुराने इतिहास, कहानी सुनिए उन्हे यह समझकर छोड़ न दीजिए कि अप्रामाणिक हैं, उनको

लिखिए और पीछे उन्हें इतिहासों से मिलाइए। बहुत सी सच्ची घटनाओं का पता लगेगा।

(८) पुराने दस्तावेज या चिट्ठी या किबाला जो कुछ मिले देखिए उनमें बहुत कुछ मतलब की बातें मिलेंगी, काजी की मुहर आदि भी देखिए।

(९) प्राचीन ग्रंथ जो हाथ आवे उन्हे संग्रह कीजिए, पढ़िए, जो कुछ मतलब की बातें हो सुन लीजिए। इस विषय मे समयांतर मे हम एक अलग लेख लिखेगे। इनसे ग्रथकर्त्ता आदि का बहुत कुछ पता लगेगा।

(१०) जहाँ कहीं किसी पुराने घर की रद्दी मिले उसे खूब मन लगाकर देखिए। संभव है उन रद्दियों मे कोई ऐसी चीज मिल जाय जो इतिहासवेत्ताओं को बड़ी ही उपयोगी हो। पुरानी कीडा खाई हुई पुस्तकें भी बहुमूल्य होती हैं। उन्हे सड़ी या अपूर्ण समझकर उपेक्षा न कीजिए।

(११) जहाँ कहीं किसी वीर (जैसे लहुरावीर, कंकड़हा वीर आदि) पीर, शहीद, गाजी, ब्रह्म, सती, साधु, महात्मा आदि का पता लगे उनका जो कुछ वृत्तांत मिले लिखिए।

(१२) कब्र, समाधि आदि के लेख को ढूँढ़िए।

(१३) कोई पुराना मकान या कूहा खोदा जाता हो तो बहुत मनोयोगपूर्वक देखिए। सभव है उसमे कोई उपयोगी वस्तु मिले।

विदित रहे कि एक सौ वर्ष के ऊपर के पदार्थ प्राचीन कहलाते हैं। यदि मेरे इस लेख से कोई एक महाशय भी इस ओर ध्यान देंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

[विद्याविनोद १८९७]

जीवन-चरित्र

(१) वीरवर बाप्पा रावल*

ईदर के राजा नागादित्य को मारकर जब भीलों ने फिर अपना राज्य स्वाधीन किया तब बाप्पा केवल तीन वर्ष का बालक था। उसके परिवार मे महा कोलाहल मच गया। चारों ओर शत्रु—रक्षा कैसे हो ? क्या गहलौत वंश आज नष्ट हो जायगा ? बचने

* इतिहास एक कैसी उत्तम वस्तु है यह सभी लोग जानते हैं। हमारे यहाँ क्रमपूर्वक इतिहास नहीं है इससे हमारे देश की कैसी कुछ हानि होती है। जो कोई नए इतिहास मिलते भी हैं तो मुसलमानों के समय के, जिन्होंने मुसलमानों की स्तुति और हिंदुओं को गालिप्रदान की कसम खाई है। संप्रति जितने इतिहास प्रचलित हैं उनकी प्रायः यही दशा है। इन्हें पढ़कर सुकुमार-मति बालकों के हृदय में ऐसा संस्कार जम जाता है कि वे अपने को तुच्छ और सदा गुलाम समझने लगते हैं। इन होनहार युवकों ही पर भारत का भावी निर्भर है। इस दशा में उनका यह संस्कार होना कैसे दुःख की बात है ! महात्मा टाड ने इस अभाव को दूर करने के लिये बड़ा परिश्रम करके "राजस्थान" बनाया। इसका अनुवाद बँगला इत्यादि कई एक भाषाओं में हुआ, किंतु दुःख का विषय है कि अभागिनी हिंदी में उसका अनुवाद किसी 'माई के लाल' ने न किया जिसमें एतद्देशीय लोग भी अपने पूर्वजों का वृत्तांत जान सकें। यह ग्रंथ इसी उद्देश पर लिखा जाता है। इसमें आर्य्य महात्माओं का जीवनचरित्र लिखा जायगा, जिससे सर्वसाधारण लोग अपना स्वरूप पहिचानें और फिर वैसा होने का उद्योग करें। इसमें मुख्य सहायता महात्मा टाड के राजस्थान से और पूज्यपाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के उदय-पुरोदय से मिली है, इससे ये महात्मा धन्यवादार्ह हैं।

किंतु क्या इससे हमारे पाठकों को आत्मज्ञान के सिवाय और कोई लाभ न होगा ? क्या वे इससे नीति न सीख सकेंगे ? क्या केवल गिरधर की कुंडलिया, चाणक्य-नीति और हितोपदेश ही से नीति-शिक्षा प्राप्त हो सकती

की कोई आशा न थी, चारो ओर लोह के प्यासे भील ही भील दिखाई पड़ते थे, किंतु ईश्वर निस्सहाय बालक का सहाय था, उसने उसकी रक्षा की। जिस कमलावती ने इनके मूल पुरुष गोह की रक्षा की थी उसी के वंश के लोगों ने उसकी रक्षा पर भी कमर बाधी। चाहे कुछ हो, वे बाप्पा की रक्षा अवश्य ही करेंगे। जीते जी बाप्पा की रक्षा जैसे हो करेंहींगे, वे इनके कुल-पुरोहित थे। अपनी जान होमकर बाप्पा को ले सत्यपरायण ब्राह्मण लोग भांडोर दुर्ग में आए; वहाँ एक यदुवशी भील ने उन्हें आश्रय दिया, किंतु वहा भी संपूर्ण निरापद न जानकर वे पराशर वन मे चले गए। उस वन में त्रिकूट नामक पर्वत है। उसके नीचे नगेंद्र (जिसको नागोद कहते हैं) गाँव मे वे शिवोपासक शांतिप्रिय ब्राह्मण बाप्पा को लेकर रहने लगे।

बाप्पा की लड़कई की बड़ी विचित्र विचित्र बातें सुनने में आती हैं। बाप्पा उन ब्राह्मणों की गाय चराया करते थे। सूर्यवंशीय महाराज शिलादित्य के वंशज चरवाहों का कार्य करने लगे। बाप्पा की लड़कई के सबध मे भाटों ने बड़ी उत्तम उत्तम रचनाएँ की हैं। शार-

है ? मेरी समझ में कभी नहीं। इन जीवनचरित्रों से उनको विशेष शिक्षा मिल सकती है। उनमें केवल मौखिक शिक्षा है या झूठी कहानियों द्वारा शिक्षा दी जाती है, किंतु इसमें सच्चे उदाहरण द्वारा शिक्षा मिलेगी जिसका असर उससे कहीं बढ़कर होगा। इसी नंबर में महात्मा बाप्पा का जीवन पढ़ने से कितनी बड़ी नीति-शिक्षा मिल सकती है। बाप्पा का धैर्य, साहस, शौर्य, बुद्धि, चाल और राज नियम इत्यादि सभी बातें नीतिपूर्ण और अनुकरणीय हैं। महाराज मानसिंह का धोखा खाना क्या और राजाओं को सतर्क नहीं करता ? बाप्पा के सहचरों का चरित्र कैसा उपदेश देता है ? निदान इन लोगों की प्रत्येक बात नीतिपूर्ण, उपदेशपूर्ण और मनोरंजक है। यदि पाठकगण चाहें तो इनसे अवश्य लाभ उठा सकते हैं। यदि पाठकों की रुचि दिखाई देगी तो यह ग्रंथ शीघ्र ही खंड खंड करके प्रकाशित होगा। सं० १८८२

दीय झूलनोत्सव में राजपुताने में बड़ी तैयारी और धूमधाम होती है। कहते हैं कि नागौद उस समय सोलंकी वंश के किसी राजा के हाथ में था; इस झूलनोत्सव में उनकी लड़की अपनी सखियों और नगर की लड़कियों के साथ खेलने के लिये कुंज वन में आई थी; पर झुलुआ डालने के लिये रस्सी न मिलने से वह इधर उधर ढूँढ़ने लगी। उसी समय बाप्पा वहा आ गए। लड़कियों ने उनसे रस्सी माँगी, पर बाप्पा ने बाल-चापल्य से तमाशा करने के लिये हँसकर कहा—"तुम लोग जो हमसे विवाह करो तो हम अभी रस्सी ला दें।" भोली भाली आनंदमयी राजपूत बालिकाओं ने इस बात को मान लिया। उसी समय खेल में विवाह हो गया। राजकुमारी और बाप्पा की गाँठ जोड़ी गई और सब लड़कियों ने आपस में हाथ पकड़ एक शृंखलाबद्ध होकर एक बड़े पेड़ की फेरी दी। इसी घटना से बाप्पा के होनहार सौभाग्य का सूत्रपात हुआ। उन लड़कियों के वंशवाले आज तक अपने को बाप्पा के वंश में कहते हैं।

थोड़े दिन पीछे जब राजकुमारी विवाहने योग्य हुई तब राजा एक अच्छा वर ठहराकर ब्याह की तैयारी करने लगे। एक दिन लड़केवाले की ओर के एक सामुद्रिक ब्राह्मण ने राजकुमारी का हाथ देखकर कहा—"इनका विवाह तो हो चुका है"। इस आश्चर्य की बात से राज-भवन में बड़ी हलचल मच गई। यह विवाह किसने किया, कैसे हुआ, क्या हुआ, कब हुआ—यह जानने के लिये गुप्तचर छूटे। बाप्पा को भी यह खबर लगी। उसने सोचा कि तनिक सी बात खुलने से भी हम बड़ी आपत्ति में पड़ेंगे। उसने अपने साथी चरवाहों को सावधान करा दिया; वे लोग उसकी जैसी भक्ति करते थे और उसे जैसा मानते थे उससे बात खुलने की कोई आशंका ही न थी, तिस पर भी बाप्पा ने उन लोगों से बड़ी कड़ी सौगंद ले ली

कि वे रहस्य प्रगट न करें। सौगंद ऐसे ली कि एक छोटा सा कुआँ खोदकर हाथ में एक छोटा पत्थर का टुकड़ा लेकर बड़े गंभीर स्वर से वे बोले—"शपथ करो—सुख में, दुःख में, संपद में, आपद में हमारे साथ रहोगे, हमारी कोई बात मरने पर भी किसी से न कहोगे, हमारे विषय में जो बात जहां सुनोगे उसी समय हमसे सब कहोगे। शपथ खाकर कहो, जो ऐसा न करो तो इसी पत्थर के टुकड़े की तरह तुम लोगों के बाप दादा सात पुरुषों का सब पुण्य अँधेरे कुएँ में पड़ेगा।" और हाथ के पत्थर को उस कुएँ में फेंक दिया। साथियों ने एक मत होकर कसम खाई। उन लोगों ने इनके विरुद्ध कभी न किया; किंतु जिस घटना-सूत्र में कम से कम छः सौ राजपूत बालाओं का भाग्य बँधा हुआ था वह कै दिन छिप सकता है? थोड़े दिन में आप ही राजा को सब बात विदित हो गई।

बाप्पा ने यह सब हाल सुना। वह विपदाशंका से पहाड़ के एक ऐसे प्रदेश में रहने लगे जहाँ कोई मनुष्य भी न था। इस निर्जन स्थान में कई बेर इनके पूर्वपुरुषों को आश्रय मिला था। भागने के समय बालीय और देव ये दो भील-कुमार इनके साथ रहे। इन लोगों का जीवन बाप्पा के साथ जड़ित था। जब बाप्पा ने चित्तौर का राज्य लिया तब बालीय ने अपना अँगूठा फाड़कर उसके ताज़े लहू से उन्हें राज-तिलक दिया।

बालीय और देव यद्यपि असभ्य कुल में उत्पन्न हुए थे, किंतु उन लोगों का हृदय जिस पवित्र भाव से भरा हुआ था उसने कितने सुसभ्य मनुष्यों के उज्ज्वल और ज्ञानालोकित हृदय में स्थान पाया है? वे लोग जैसा पवित्र चरित्र संसार में छोड़ गए हैं वैसा चरित्र कितने सुसभ्यों का हुआ है? उन लोगों ने जो प्रतिज्ञा की थी उसको पूरा पूरा निबाहा। उस प्रतिज्ञा के लिये घर छोड़ा, कुटुंब

छोड़ा, अपना सुख छोड़ा, सभी कुछ छोड़ा, कितनी बेर कितना कष्ट सहा, कितनी बेर उपवास किया, कितनी बेर रात दिन जागते रहे और कितने ही असह्य क्लेश सहे; किंतु उन्होंने एक क्षण भी बाप्पा का संग न छोड़ा, एक मुहूर्त भी वे अपनी प्रतिज्ञा न भूले। यदि बाप्पा को ऐसे जीवन-सहचर न मिलते तो उस अज्ञातवास से निकलकर चित्तौर के राज्य-सिंहासन पर उसका बैठना असंभव था। बाप्पा भी अपने भील मित्रों का उपकार कभी न भूलते, अपने को उनके साथ से सुखी और सम्मानित समझते, और कई प्रकार से कृतज्ञता प्रकाशित करते। जिस दिन वीरचूड़ामणि बाप्पा ने अपने भिल्ल बंधु बालीय और देव के हाथ से आनंद हृदय से चित्तौर-राज्य-तिलक ग्रहण किया, उसी दिन से, उसी पवित्र आनंद-मय दिन से, आज तक चित्तौर की राजगद्दी पर जो राणा बैठते हैं उनको इन्हीं के वंशधर तिलक करते हैं और ये लोग उनके हाथ से तिलक पाकर अपने को सम्मानित और गौरवान्वित मानते हैं।

भाट लोग बाप्पा के भागने का वृत्तांत यों लिखते हैं—बाप्पा नागौद में अपने प्रतिपालक ब्राह्मण की गाय चराने लगे। सूर्यवंशीय महाराज शिलादित्य के वंश में होकर भी वे आनंदपूर्वक गाय चराकर दिन बिताने लगे। इन गौओं में एक दुधार गऊ थी; जब वह संझा को चराई से आती तो उसके थन से एक बूँद दूध भी न निकलता! ब्राह्मणों के जी में संदेह हुआ कि बाप्पा इसका दूध पी जाते हैं। वे लोग अत्यंत सतर्कता से बाप्पा पर ध्यान रखने लगे। बाप्पा ने यह जान लिया। वे उन लोगों के इस संदेह से बड़े ही दुखी हुए। किंतु क्या करें? जब तक इसका ठीक कारण जानकर न प्रकाशित कर सकें उतने दिन मन का दुःख मन ही में रखना पड़ा। उन्होंने इस गाय पर विशेष ध्यान रखने का दृढ़

संकल्प किया। दूसरे दिन चराई पर जाकर बाप्पा उस गाय के पीछे पीछे घूमने लगे। गाय एक एकांत पहाड़ की गुफा में घुसी। बाप्पा भी पीछे पीछे चले गए। अकस्मात् एक अद्भुत दृश्य दिखलाई पड़ा। देखा कि गाय एक सघन लता-मंडल के ऊपर अविरल पयोधार अभिसिंचन कर रही है। बाप्पा बड़े ही विस्मित हुए; पास जाकर देखा कि लता-मंडल में एक शिवलिंग स्थापित है और उसी शिवलिंग के ऊपर सुधामय दुग्धधारा गिर रही है! अब बाप्पा ने जाना कि इसी से गाय का दूध क्षय हो जाता है। शिवलिंग के सामने एक बेंत के कुंज में ध्यान में मग्न एक योगी बैठे हैं। उस स्थल में बाप्पा के जाने से योगी का ध्यान-भंग हो गया; किंतु दया-सागर तपस्वी ने बाप्पा को कुछ भी न कहा। योगी का नाम हारीत था, वे भी इस गाय का दूध पीते थे।

बाप्पा ने हारीत को साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देकर परिचय पूछा। राजपूत-कुल-तिलक बाप्पा ने, जहा तक जानते थे, अकपट भाव से अपना हाल कह सुनाया। उस दिन मुनिवर हारीत से बिदा होकर बाप्पा गाय लेकर घर आए। उस दिन से बाप्पा नित्य योगी के पास आते, उनका पैर धोते, चरणामृत लेते, दूध दुहकर पिलाते और पूजा के फूल चुन लाते। बाप्पा की ऐसी अकपट भक्ति देख महात्मा हारीत चित्त से प्रसन्न हुए और उन्हें बहुत सी नीति-शिक्षा देने लगे। कुछ काल ऐसे ही बीता। मुनिवर धीरे धीरे ऐसे संतुष्ट हुए कि उन्होंने शैव-मंत्र में दीक्षित करके अपने हाथ से बाप्पा के गले में जनेऊ पहिना दिया और उन्हें "एकलिंग के दीवान" की बड़ी भारी उपाधि दी। बाप्पा की अकपट भक्ति और स्नेहपूर्वक शिव-पूजा देखकर भगवती भवानी भी अत्यंत प्रसन्न हुईं। उन्हें आशीर्वाद देने के लिये वे स्वयं सिंह पर

चढ़के सामने आई। उन्होंने अपने हाथ से विश्वकर्मा के बनाए हुए शूल, धनुष, तीर, तुनीर, असिचर्म और बड़ी तलवार इत्यादि उत्तमोत्तम शस्त्रों से बाप्पा को अलंकृत किया। ऐसे आदि-देव भगवान् भूतनाथ के मंत्र से दीक्षित और भगवती भवानी के दिए हुए दिव्यास्त्रों से सुसज्जित होकर बाप्पा अत्यंत पराक्रमशाली हो गए। तब उनके गुरु महर्षि हारीत ने शिवलोक में जाने का दृढ संकल्प किया। उन्होंने बाप्पा से सब समाचार कहा और स्वर्गारोहण के दिन बड़े तड़के बुलाया, पर बाप्पा गाढ़ी नींद में सो जाने से ठीक समय पर वहाँ न पहुँच सके। वहाँ पहुँचकर बाप्पा ने देखा कि योगीवर हारीत अप्सरावाहित दीप्तिमय रथ पर चढ़कर आकाश में कुछ दूर जा चुके हैं। महर्षि ने अपने प्रिय शिष्य पर अंतिम प्रेम दिखलाने के लिये रथ को रोका और आशीर्वाद लेने के लिये बाप्पा को अपने पास आने को कहा। देखते देखते अकस्मात् बाप्पा का शरीर बीस हाथ बढ़ गया; तिस पर भी वे गुरु के पास न पहुँच सके। तब मुनिवर ने मुँह खोलने को कहा। बाप्पा ने मुँह खोला। हारीत मुनि ने मुँह में निष्ठीवन डाला। किंतु बाप्पा भाग्यदोष से एक अमूल्य वर लाभ न कर सके। घृणा और अवज्ञा प्रकाश करके मुँह नीचे करने से वह पवित्र निष्ठीवन पैर पर गिर पड़ा। यदि बाप्पा घृणा से गुरु के दिए हुए स्नेहोपहार की अवमानना न करते तो अमर हो जाते; किंतु यह न हुआ। अमर तो न हो सके, पर देह सब अस्त्र शस्त्र से अभेद्य हो गई। यह भी उनके लिये कुछ थोड़े सौभाग्य का विषय नहीं था। इधर देखते देखते हारीत थोड़ी देर में आकाशमंडल में अंतर्हित हो गए।

जिस दिन यह घटना हुई उसी दिन से बाप्पा ने मूल मंत्र साधने की प्रतिज्ञा की। उसी दिन से उनका भाग्य चमका।

बाप्पा ने अपनी मा से सुना था कि चित्तौरगढ़ का मौर्य राजा इनका मामा है। इस संबध के कारण बाप्पा अपने कार्य साधन में दूने उत्साहित हुए। चरवाही करके जाने से उन्हे घृणा उत्पन्न हुई। थोड़े से साथी लेकर वे लोकालय मे आए। बाप्पा ने आज पहले ही पहिल लोकालय देखा। मनुष्यो का वास-स्थान कैसा होता है यह वे आज तक नहीं जानते थे। लोकालय का सौंदर्य देखकर वे और भी उत्साहित और उत्तेजित हुए। जब दिन अच्छे फिरते हैं तो मिट्टी छूने से भी सोना हो जाती है। आज बाप्पा का भाग्य चमका है, जिधर जाते हैं उधर ही मंगल देख पड़ता है। वन से निकलते ही नाहरा मगरा पर्वत के नीचे सुप्रसिद्ध बाबा गोरखनाथ से उनकी भेंट हुई। गोरखनाथ ने इन्हें एक दोरुखी तलवार दी। मंत्र फूककर इस तलवार से मारने से अनायास पहाड़ कटता है। बाप्पा की उन्नति का पथ पहले ही से परिष्कृत था, जो कुछ बाकी था सो आज पूरा हो गया, इस तलवार की पूजा हर बरस राणा लोग करते हैं।

प्रमर की एक शाखा मौर्य वंश है। इस समय ये लोग ही भारतवर्ष मे सबसे बड़े राजा थे। बाप्पा जिस समय चित्तौर मे गए उस समय मानसिंह नामक मौर्यवंशीय राजा सिंहासन पर थे। महाराज मानसिंह ने अभ्यागत भोजे को यथोचित आदर से रखा और अपनी सामंत-मंडली मे मिलाकर खाने पहिरने के लिये उसे एक अच्छी जागीर दी। उस समय सामंतप्रथा राजपूताने मे बहुत प्रचलित थी। राजपूत सामंत लोग बड़ी बड़ी जागीरें भोगते थे और लड़ाई के समय मानसिंह की सहायता के लिये अपनी अपनी सेना लेकर आ जाते थे। पहले ये लोग विशेष भक्तिभाजन थे और वे भी इन्हें स्नेह करते थे; पर जिस दिन से बाप्पा उनके प्रेमपात्र हुए उस दिन से मानसिंह सामंतों का ध्यान कम रखने लगे। उन

लोगों ने समझा कि इसके मूल कारण बाप्पा ही हैं, इससे वे लोग इनके बड़े भारी शत्रु हो गए और उन्होंने सब तरह से इनका अनिष्ट करने की प्रतिज्ञा की।

उसी समय एक विदेशी शत्रु ने चित्तौर पर चढ़ाई की*। महाराज मानसिंह ने अपने सामंतों को लड़ने की आज्ञा दी, पर उन लोगों ने अपनी जागीरों के पट्टे बड़े घमंड से पटककर कहा—"महाराज! अपने प्यारे बाप्पा को लड़ाई में भेजिए।" बाप्पा ने यह सब अपने कान से सुना पर इससे वे तनिक भी साहसहीन न हुए वरन्‌ उन्होंने दूने उत्साह के साथ उस देशवैरी पर अकेले चढ़ाई की। सामंतों ने मारे घमंड के जागीर तो छोड़ दी, पर लोकलाज के डर से लड़ाई में बाप्पा का साथ दिया। वीर-केसरी बाप्पा की तलवार की चोट शत्रु लोग न सह सके, हारकर इधर उधर भाग गए। बाप्पा उसी विजयी वेश से अपने बाप दादा की राजधानी गजनी नगर में चले गए। गजनी उस समय सलीम नामक एक म्लेच्छ राजा के अधिकार में था। बाप्पा उससे राज्य छीनकर सौर वंशीय एक सामंत को राज्य-सिंहासन पर बिठलाकर चित्तौर फिर आए। कहते हैं कि इसी समय इन्होंने म्लेच्छ सलीम की लड़की से विवाह किया था।

जले कुढ़े सामंत लोग मानसिंह से अत्यंत रुष्ट हो चित्तौर छोड़कर और कहीं चले गए। राजा इससे बड़े ही दुखी हुए।

* "इतिहास-तिमिरनाशक" में इस विदेशी का वृत्तांत यों लिखा है—"सन्‌ ७११ ई० में किवलीद खलीफा था। मुसलमानों के लश्कर ने बड़ा उपद्रव मचाया। सारा सिंध अपने कब्जे में कर लिया और बहुत राजाओं से कर वसूल किया। उसी लश्कर के सेनापति कासिम का बेटा मुहम्मद तीन बरस बाद फिर हिंदुस्तान पर चढ़ा और गुजरात फतह करके चित्तौर की ओर झुका लेकिन बाप्पा से शिकस्त खाकर उसे भागना पड़ा।"

उन्होंने लौट आने के लिये उनके पास कई बेर दूत भेजा; पर वे लोग किसी तरह न फिरे। क्रोधांध सामंत लोग किसी तरह प्रकृतिस्थ न हुए और उन्होंने विद्वेष भाव न छोड़ा, यहाँ तक कि गुरु का कहना भी न माना। जो दूत मनाने के लिये गया था उससे उन लोगों ने कहा कि "हम लोगों ने उनका निमक खाया है इससे एक बरस कुछ बदला न लेंगे।" वे अपनी नीच दुराकांक्षा सिद्ध करने के लिये एक उपयुक्त अधिनायक खोजने लगे। जिस बाप्पा के कारण उन लोगों की यह दशा हुई, अंत में उसी को उसके अलौकिक शौर्य और गुण-गौरव से लाचार होकर उन लोगों को अपना सरदार करना पड़ा। आहा! राज्य का लोभ कैसा भयानक होता है? धन के लोभ में पड़कर मनुष्य को भले बुरे का ध्यान नहीं रहता। परम उपकारी बंधु का ध्यान नहीं रहता। बाप बेटे का ध्यान नहीं रहता। धर्म का ध्यान नहीं रहता। केवल एक धन का ध्यान रहता है!! बाप्पा की भी वही दशा हुई। जो मानसिंह इनके मामा, जिनके अनुग्रह से इनकी उन्नति का द्वार खुल गया, जो इन्हीं के कारण अपने सामंतों के विद्वेषानल में पड़े, अंत में बाप्पा उनके सब उपकारों को भूलकर पत्थर सा कलेजा करके वीरधर्म को तिलांजलि देकर उन्हें मार उन्हीं सामंतों की सहायता से सिंहासन पर आप बैठ गए!! सिंहासन पर बैठने पर सब लोगों ने एकमत होकर इन्हें "हिंदू सूर्य", "राजगुरु" और "चक्कवै" (अर्थात् सार्वभौम) की उपाधि दी।

वीरवर बाप्पा अपनी मातृभूमि, लड़के बाले, और घर कुटुंब सब छोड़कर खुरासान चले गए और उसे जीतकर उन्होंने बहुत सी म्लेच्छ स्त्रियों से विवाह किया। इन लोगों के गर्भ से लड़के लड़कियाँ हुईं।

पूरे एक सौ वर्ष की अवस्था मे वीर-कुल-तिलक बाप्पा ने मनुष्य-देह छोडी। देलवारा के राजा के पास एक पुराना इतिहास है। उसमे लिखा है कि बाप्पा ने इस्पहान, कधार, काश्मीर, इराक, तूरान और काफ़िरस्तान इत्यादि देशों के राजाओं को जीतकर उनकी लडकियाँ व्याही थीं और अंत मे तपस्वी होकर सुमेरु के नीचे अपना शेष जीवन बिताया था। कहते हैं कि वहाँ उन्होंने जीते जी समाधि ली थी। इन म्लेच्छ स्त्रियों से बाप्पा को एक सौ तीस लड़के हुए। वे सब नौशेरा पठान नाम से प्रसिद्ध हैं। इन लोगों ने अपनी अपनी मा के नाम पर एक एक स्वतत्र वंश चलाया था। बाप्पा की हिंदू स्त्रियों के गर्भ से सब मिला के अट्ठानबे लडके हुए थे। ये सब "अग्नि-उपासी सूर्यवंशी" नाम से प्रसिद्ध हैं।

भट्ट ग्रंथ मे एक और भी विचित्र बात लिखी है। कहते हैं कि बाप्पा के मरने पर उनके हिंदू और म्लेच्छ संतानों मे बड़ा झगड़ा उठा। हिंदू लोग उन्हे जलाने को कहते थे और मुसलमान लोग कब्र मे गाड़ना चाहते थे। इसका पचड़ा बड़ी देर तक पड़ा रहा, कुछ तै ही न हो; अंत में बाप्पा के शरीर पर का कपड़ा उठाकर देखा गया तो शरीर के बदले श्वेत कमल के फूल मिले! ये फूल वहाँ से निकालकर मानसरोवर मे लगाए गए। पारसी वीर नौशेरवाँ का भी यही हाल सुना जाता है।

बाप्पा संवत् ७६६ मे जन्मे। जब ये चित्तौर के सिंहासन पर बैठे तब पंद्रह वर्ष के थे। संवत् ७८४ या ७२८ ई० मे गद्दी पर बैठे। बाप्पा* का नाम बाप्प और शिलाधीश भी कहीं कहीं पाया जाता है।

---

* बाप्पा दुलार में लड़के को कहते हैं।

(२) श्रीनागरीदासजी का जीवनचरित्र*

पिय प्यारी अनुराग मधु, मत्त मधुप सुखरास।
गुप्त प्रेम अनुभव छके, जयति नागरीदास॥

आज हम उस महानुभाव भगवदंश महात्मा के चरित्र लिखने मे प्रवृत्त हुए हैं जिसके गुप्त प्रेमानुभव भाव को स्मरण करते ही सहृदय रसिक मात्र को रोमांच होता है, और जिसे भाषा का जयदेव कहने पर भी हृदय को संतोष नहीं होता। आहा! हमारे प्यारे नागरीदासजी के प्रेम-रंग रँगे चित्र का जिन महाशयों

* मेरी इच्छा बहुत दिनों से श्रीनागरीदासजी का जीवनचरित्र लिखने की थी परंतु ठीक ठीक पता न लगने से न लिख सका। मित्रवर बाबू अमीर-सिंहजी द्वारा कई ग्रंथों के मिलने से वह इच्छा पूरी हुई और एक जीवनी लिखी थी जो कि "नागरीप्रचारिणी सभा" के उत्साही सभ्यों के इच्छानुसार ता० २४ मार्च सन् १८९४ ई० को सभा में पढ़ी गई थी। सभा के अनुरोध से "खड्गविलास यंत्रालय" के स्वामी महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंहजी ने अपने यंत्रालय में उसको छापकर प्रकाशित किया था। परंतु उससे मुझे संतोष न हुआ। मैंने अपने मित्र कुँअर जोधसिंह जी मेहता की कृपा से कृष्णगढ़ के दीवान रावबहादुर श्यामसुंदरलालजी द्वारा कृष्णगढ़ के कवीश्वर जयलालजी से नागरीदासजी के वृत्तांत मँगाए। उनके देखने पर मेरे हृदय में कई संदेह हुए और उनको लिखकर उन सभों के उत्तर मँगाए और तब जीवनी लिखनी आरंभ की। इसी बीच में पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजी ने इनकी जीवनी पर एक लेख एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में छपवाया, जिसे देखकर और भी उत्साह बढ़ा और यह जीवनी लिख आप लोगों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ, तथा उक्त महाशयों को धन्यवाद देता हूँ।

इसके पहले संस्करण में भ्रम से महाराज सावंतसिंह के स्थान पर महाराज जसवंतसिंह छप गया था।

ने दर्शन किया होगा उन्हें अनुरागरसमत्त झुके और डबडबाए नेत्रों में अलौकिकता की झलक ने अवश्य मोहित सा कर दिया होगा और महानुभाव भगवदीयों के दर्शन मात्र से अपने चित्त का विलक्षण परिवर्तन होता है इसका अनुभव किया होगा। हम यहाँ उनके हृदय के चित्रस्वरूप इस पद को अपने प्रिय पाठकों को सुनाए बिना आगे नहीं बढ़ सकते—

"गावनि रोवनि मौनहि मे ह्वै मौनहि माँझ सराहनि।
रोके ऊर्द्ध उसास मौन मैं यह दुख कठिन निबाहनि॥
बरे बिजाती निकट काठ से लगे रहैं हियदाहनि।
नागर सुख-सागर किन मेटौ यह अस दुख अवगाहनि॥१॥"

नागरीदास नाम के चार महात्मा हुए हैं। सबसे प्रथम श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य आगरा मे रहते थे जिनकी कथा "चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता" मे है और जिनके विषय मे गोस्वामि श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य श्रीध्रुवदासजी ने अपने ग्रंथ "भक्त-नामावली" में लिखा है।

"नेही नागरिदास अति, जानत नेह की रीति।
दिन दुलराई लाडिली, लाल रँगीली प्रीति॥२॥"

ध्रुवदासजी ने संवत् १६८६ मे "श्री वृंदावन शतक" और संवत् १७०२ में "रहसि मंजरी" बनाई थी परंतु "भक्तनामावली" मे संवत् नहीं लिखा।

इन्हीं बड़े नागरीदासजी के विषय में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने अपने "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" में लिखा है।

हिय गुप्त बियोगहि अनुभवत बड़े नागरीदास हैं।
बारवधू ढिग बसत सबै कछु पीयो खायो॥
पै छनहूँ हिय सों नहिं सो अनुभव बिसरायो।

सुनतहिं बिट्ठल नाम भक्त मुख श्रवन मझारी ।।
प्रान तज्यो कहि श्रहो श्रजौं सुधि तिन्हें हमारी ।
दरसनही दै हरि भक्त अपराध कृष्ट जन दुख दहे ।।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य का जन्म संवत १५३५ में हुआ था अतएव उसी के लगभग इनका भी काल है।

दूसरे नागरीदासजी श्री स्वामी हरिदासजी की शिष्य-परंपरा में हुए हैं। मिस्टर ग्रौस साहब अपने "मथुरा" नामक ग्रंथ में यह परंपरा यों लिखते हैं—श्री स्वामी हरिदास के शिष्य विट्ठल-बिपुलजी (जो कि उक्त स्वामी के चाचा थे), उनके बिहारिनिदास और उनके नागरीदासजी। संवत १५३७ में श्री स्वामीजी लीला में प्राप्त हुए और उनकी गद्दी पर बिट्ठलबिपुलजी बिराजे। यदि २० वर्ष की अवधि महंती की मान ली जाय तो श्रीनागरीदास-जी का समय संवत् १५७७ के लगभग होता है। इनके विषय में ध्रुवदासजी लिखते हैं।

"नागरि अरु हरिदास मिलि, सेये नित हरिदास ।
बृंदावन पायो दुहुनि, पूजी मन की आस ।। १ ।।"

स्वामी हरिदासजी के संप्रदायावलंबी नागरीदासजी की कविता

बाबू गदाधरसिंह के "आर्यभाषा पुस्तकालय" में मुझे एक ग्रंथ प्राचीन हस्त-लिखित मिला, इसमें हरिदासस्वामी तथा इनके संप्रदाय के कई महात्मा कवियों की पूरी बानी का संग्रह है; इसमें नागरीदास जी की बानी का संग्रह भी है, इनके सब मिलाकर लगभग १२८ पद हैं, इन्हीं का वर्णन ध्रुवदासजी ने अपनी "भक्तनामावली" में किया है। इनकी परंपरा यों है—स्वामी हरिदास, उनके विट्ठलविपुल, उनके

विहारिनिदास, उनके नागरीदास, उनके सरसदास (रसिकविहारी), उनके किशोरीदास (ललितकिशोरी) ।

भक्तमाल में नाभाजी ने इन नागरीदासजी के विषय मे यह लिखा है—

"अनन्य नृपति श्री हरिदास कुल भयो धुरधर धर्मधीर ।
श्री बिहारीदास गुरु कृपा महा वैराग प्रेम हद ।
विपुल सहज अनुराग विलोकत बर बिहार सद ॥
गाई अद्भुत केलि झेलि रस रहत मगन मन ।
अरुझी श्याम तमाल बेलि कल कनक सार कन ॥
श्री नागरीदास भीज्यो हियो कुंज बिहारी सर गंभीर ॥"

श्री वल्लभ संप्रदाय तथा हितहरिवंश संप्रदाय वाले नागरीदासजी कविता करते थे या नहीं इसका अब तक मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला है केवल "भक्तनामावली" तथा "वार्ता" आदि में नाम मिलता है ।

तीसरे नागरीदासजी श्री गोस्वामी हितहरिवंशजी वा श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय मे हुए हैं । इनका काल भी १५५० संवत् से १६०० के लगभग समझना चाहिए । इनके विषय में ध्रुवदासजी लिखते हैं—

"रसन दास अद्भुत हुते, करत कबित्त सुढार ।
बात प्रेम की सुनतही, छुटत नैन जलधार ॥ १ ॥
बौरो रस मैं फिरै सो, खोजत नेह की बात ।
आछे रस के बचन सुनि, बेगि बिबस ह्वै जात ॥ २ ॥
कहा कहौं मृदुल सुभाउ अति, सरस नागरीदास ।
बिहारी बिहारिनि को सुजस, गायो हरषि हुलास ॥ ३ ॥

इन दोनों नागरीदासजी के विषय में भारतेंदुजी लिखते हैं ।

"श्री वृंदावन के सूरससि, उभय नागरीदास जन ।

*निज गुरु श्रीहरिवंश, कृष्णचैतन्य चरनरत ॥
हरि सेवा में सुदृढ़, काम क्रोधादि दोष गत ।
अद्भुत पद बहु किए, दीनजन दै रस पाये ॥
प्रभु पद रति बिस्तारि भक्त जन मन संताप ।
दृढ़ सखी भाव जिय में बसत सपनेहूँ नहि कहुँ और मन ।

चौथे नागरीदासजी हमारे ग्रंथ के नायक महाराज सावंतसिंह कृष्णगढ़ (राजपूताना) नरेश उपनाम श्रीनागरीदासजी हैं। ये महाप्रभु बल्लभाचार्य सम्प्रदाय के शिष्य थे। इनके विषय मे भारतेंदुजी लिखते हैं।

"हरिप्रेममाल रस जाल के नागरिदास सुमेर भे ।
बल्लभ पथहिं दृढ़ाइ कृष्णगढ़ राजहिं छोड्यो ॥
धन जन मान कुटुंबहि बाधक लखि मुख मोड्यो ।
केवल अनुभव सिद्ध गुप्त रसचारित बखाने ॥
हिय सँजोग उच्छलित और सपनेहूँ नहि जाने ।
करि कुटी रमन रेती बसत सपति भक्ति कुबेर भे ॥"

भाषा-कवि-चूड़ामणि श्री आनदघनजी से इनसे बड़ा ही प्रेम था। हमारे यहाँ एक अत्यंत प्राचीन चित्र है जिसमे नागरीदासजी और घनआनंदजी एक साथ बिराजते हैं। घनआनंदजी के विषय मे भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी "सुजानशतक" की भूमिका में लिखते हैं —

'आनदघनजी जाति के कायस्थ थे और मुहम्मदशाह के मुंशी थे। गानविद्या और कविता दोनो विषयों मे अति कुशल थे और सच्चे प्रेमी थे, अंत समय मे घर छोड़कर श्री वृंदावनवास करते थे। नादिरशाह ने जब मथुरा लूटी तो उसी मार काट मे ये भी मारे गए।"

"शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १७१५ लिखा है।

---

* यहाँ भ्रम होता है।

आनंदघनजी के विषय में कवीश्वरजी लिखते हैं "सुना जाता है कि जब वृंदावन से महाराज नागरीदासजी और आनंदघनजी कृष्णगढ़ आते थे तब पहले जयपुर आए और श्रीगोविंददेवजी के दर्शनों को गए थे। वहाँ श्रीगोविंददेव जी के सान्निध्य आनंदघनजी ने कीर्तन गाए। उस समय जयपुर महाराजा भी दर्शनों को आए थे सो जयपुर महाराजा ने उनके कीर्तनों की प्रशंसा की। तब आनंदघनजी ने कहा कि तुम प्रशंसा करनेवाले कौन ? हमारे कीर्तनों की प्रशंसा करैं तो श्रीगोविंदजी करैं। यह कहके वहाँ से बिदा हुए और नागरीदासजी से कहा हम ऐसे देश में आगे नहीं चलेंगे, पीछे हो जायँगे। सो पीछे ही मथुरा चले गए और यह भी सुना है कि मथुरा में कत्लेआम हुई तब इन्होंने कत्ल करनेवालों से कहा कि मेरे तलवार के घाव बहुत थोड़े थोड़े बहुत देर तक दो। इनको ज्यों ज्यों तलवार के घाव लगते गए त्यों त्यों वे ब्रजरज में लोटते रहे ऐसे देहत्याग किया।"

नागरीदासजी के विषय में भी प्रसिद्ध है कि वे मथुरा के कत्ले-आम में कट गए परंतु श्रीवृंदावनवास न छोड़ा परंतु "वनजन-प्रशंसक" ग्रंथ में, जिसे नागरीदासजी ने संवत् १८१९ में बनाया, वे लिखते हैं—

"अष्टादश शत दश जु नव, संवत् माघ सुमास।
वनजनसंसक ग्रंथ यह, कियो नागरीदास॥"

इससे प्रमाणित हुआ कि संवत् १८१९ तक नागरीदासजी वर्त्त-मान थे और संवत् १८१४ [सन् १७५७ ई०] में शाहआलम सानी के समय में अहमद दुर्रानी ने मथुरा में कत्लेआम किया था। इस विषय में कवीश्वर जयलालजी ने मुझे यह लिखा है—

"कत्लेआम होने की खबर यहाँ कृष्णगढ़ रूपनगर में गुप्त आ पहुँची थी, नागरीदासजी के छोटे भाई बहादुरसिंहजी और नागरी-

दासजी के पुत्र सरदारसिंहजी ने इनको अर्जी लिखी थी कि कुटुंब-यात्रा के लिये यहाँ अवश्य पधारें तब इस धोखादई से यहाँ आ गए थे फिर छः महीने रहकर पीछे वृंदावन ही पधार गए।

सं० १८२१ की भादो सुदी ३ को ये वृंदावन ही मे परलोक-निवासी हुए। वहाँ उनकी छतरी है जिसमे लेख भी है। वह लेख इस प्रकार है—

"श्रीनाथजी

श्रीराधाकृष्ण गोवर्धनधारी। वृंदावन जमुनातट चारी॥
ललितादिक वल्लभ विठलेश। मोहन करो कृपा आवेस॥

छप्पय

सावंतसिंह नृप कलि विषैं सत त्रेता सम आचरी।
सुत को दै युवराज आप वृंदावन आए।
रूपनगर पति भक्ति वृंद बहो लाड़ लड़ाए॥
सूरबीर गंभीर रसिक रिझवार अमानी।
संत चरनामृत नेम उदधि लौं गावैं बानी॥
नागरीदास विदित सो कृपा ढार नागर ढरिय।
सावतसिंह नृप कलि विषै सत त्रेता विध आचरिय॥"

"संवत् १८२१ भादों सुदी ५ को महाराज नागरीदासजी श्री-वृंदावन पाए।"

चारों नागरीदासजी कविता करते थे और ये सब कविताएँ ऐसी मिल जुल गई हैं कि कुछ पता नहीं लगता कि कौन कविता किसकी है। परंतु राजा नागरीदासजी की अलौकिक कविता में कुछ ऐसा माधुर्य और गूढ़ भाव भरा है कि थोड़े ही काल में इसकी झनकार सहृदय मात्र के हृदय में गूँज उठी और हिंदीभाषा के कवियों के मुकुटमणि का स्थान इन्हीं ने पाया।

हमको खेद है "शिवसिंहसरोज" मे शिवसिंहजी ने इनका संवत् बहुत ही अशुद्ध लिखा है। उन्होंने संवत् १६४८ लिखा है। यदि कहा जाय कि उन्होंने पहले के नागरीदास में से किसी का वर्णन किया है तो यह इससे अशुद्ध ठहरता है कि निम्नलिखित सवैये, जो "शिवसिंहसरोज" मे उक्त कवि की कविता मे लिखे गए हैं वे, महाराज सावंतसिंह उपनाम नागरीदासजी के ग्रंथों मे पाए जाते हैं और यदि इनके समझे जायँ तो समय ठीक नहीं है, क्योंकि इनका जन्म संवत् १७५६ का है—१०८ वर्ष का अंतर है और इसी विश्वास पर डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने* इनके जन्म का समय सन् १५६१ ई० अपने ग्रंथ The Modern Vernacular Literature of Hindustan मे दिया है। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजी ने अपने लेख Antiquity of the poet Nagari Das† में इनके जन्म का समय ठीक दिया है परंतु शिवसिंह‡ और डाक्टर ग्रिअर्सन के भ्रम को स्पष्ट नहीं दिखलाया है, क्योंकि यदि समय के अनुसार इन्हें छोड़ पहले नागरीदासों मे से कोई माने जायँ तो कविता नहीं मिलती और यदि कविता के अनुसार ये माने जायँ तो समय ठीक नहीं।

"भादों की कारी अँध्यारी निसा लखि बादर मंद फुही बरसावै।
स्यामा जू आपनी ऊँची अटा पै छकी रस रीति मलारहिं गावै॥
ता समै नागर के दृग दूरि तें चातिक स्वाति की बूँद यों पावै।
पौन सया करि घूँघट टारै दया करि दामिनी दीप दिखावै" ॥१॥

* डाक्टर ग्रिअर्सन का The Modern Vernacular Literature of Hindustan नंबर ४५ पृष्ठ १३८ और नंबर ३३ पृष्ठ १३८ देखो।

† Journal Asiatic Society of Bengal, Vol LXVI Part 1 No. I—1897 Page 63 देखो।

‡ शिवसिंहसरोज—नं० ११ पृष्ठ १७२ देखो।

"देवन की औ रमाण्पति की दोउ धाम की वेदन कौन बड़ाई।
संखरु चक्र गदा पुनि पद्म सरूप चतुरभुज की अधिकाई॥
अमृतपान बिमानन बैठिबो नागर के जिय नेक न भाई।
स्वर्ग बैकुंठ मे होरी जो नाहि तौ कोरी कहा लै करैं ठकुराई" ॥२॥

"गाँस गँसीलिए बातें छिपाइए इश्क ना गाइए गाइए होलियाँ।
गेद बहाने न बीरा चलाइए सूधे गुलाल उड़ाइए झोलियाँ॥
लोग बुरे चतुरे लखि पावैंगे दाबे रहौ दिल प्रीति कलोलियाँ।
पाइ परौं जू डरौ टुक नागर ह्वाइ करौ जिनि बोलियाँ ठोलियाँ" ॥३॥

इन कविताओं मे कुछ पाठांतर नागरीदासजी के ग्रंथों से है जिसे पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजी ने लिखा है। उसका आशय नीचे प्रकाशित करते हैं।

"हमारे पास इनके ग्रंथों के संग्रह मे नंबर ३८ पत्र १९२ में एक अधूरा ग्रंथ "वर्षा के कवित्त" है जिसमे केवल ८ कवित्त हैं। उसका सातवाँ कवित्त यह है। इसमे बड़ा पाठांतर यही है कि शिवसिंह ने जहाँ नागर लिखा है वहाँ इसमें 'मोहन' है—

भादौं की कारी अँध्यारी निसा झुकि बादर मद फुही बरसावै।
श्यामा जू आपनी ऊँची अटा पै छकी रस रीत मलारहि गावै॥
ता समै मोहन की दृग दूरि ते आतुर सूप (रूप) की भीप यों पावै।
पौन मया करि घूँघट टारे दया करि दामिनि दीप दिखावै॥७॥

उसी संग्रह मे नंबर ३५ पत्र १८४ में "होरी के कवित्त" नामक ग्रंथ है जिसमे १९ कवित्त हैं। उसका १९ वाँ कवित्त यह है। इसमे भी बड़ा अंतर यही है कि 'नागर' के स्थान पर 'भावतें' लिखा है।

गाँस गसीलिए बातैं छिपाइए इश्क न गाइए गाइए होलियाँ।
गेंद बहाने न बीरा चलाइए सूधे गुलाल चलाइए झोलियाँ॥

लोग बुरे चतुरे लखि पावैंगे दाबे रहो दिल प्रीति कलोलियाँ।
पाय परौं जो डरो दुव (ढुक)भावते हाय करो मति बोलियाँ ठोलियाँ॥१९॥

उसी सम्रह में नंबर ४१ पत्र २५६ "फाग विहार" नामक ग्रंथ है। उसमे यह सवैया ८ वीं है।

देवन केरु रमापति के दोऊ धाम की देवनि कीनी बडाई।
सखरु चक्र गदा अरु पद्म सरूप चतुर्भुज की अधिकाई॥
अमृतपान विमानन बैठि बोली जेती कही तेती एक न भाई।
स्वर्ग बैकुंठ में होरी जो नाहीं तौ कोरी कहा लै करै ठकुराई॥८॥

कविता में ये नागरि, नागर, नागरीदास और नागरिया नाम रखते थे।

इनका कुल सदा से वीर वैष्णव चला आता है। इनके हृदय मे राजकाज में फंसे रहने पर भी सदा उज्ज्वल प्रेमशिखा प्रदीप्त थी और वे श्रीवृंदावन के लिये तरसा करते थे जैसा कि उनके पदों से झलकता है।

"ज्यों ज्यों इत देखियत मूरख विमुख लोग,
त्यों त्यों सुखरासी ब्रजवासी सुधि भावै है।
खारे जल छीलर दुखारे अंधकूप चितै,
कालिंदी के काज महामन ललचावै है॥
जैसी अब बीतत सु कहत न आवै बैन,
नागर न चैन परै प्रान अकुलावै है।
थोहर पलास देखि देखि कै बबूल बुरे,
हाय हरे हरे वे तमाल सुधि आवै है॥"

कृष्णगढ़ राज्य का ७२४ मील मुरब्बा है। सन् १८८१ ई० मे इसमे ११२६३३ मनुष्यों की बस्ती थी, जिनमे ५९०९८ पुरुष और ५३५३५ स्त्रियाँ थीं। ये लोग ३ नगर और २१० गावों में रहते

हैं, और सब २४९२८ घर हैं, जिनमे ९७८४६ हिंदू ८४९२ मुसलमान और ६२९५ जैन रहते थे। इस राज्य मे कृष्णगढ़ (राजधानी), रूपनगर और सरवाड ये तीन नगर है।

इस राज्य को जोधपुर के महाराज उदैसिंह के द्वितीय पुत्र कृष्ण-सिंह ने, पैतृक अधिकार को छोड़कर, अब जिस देश मे कृष्णगढ़ राज्य है उसे विजय किया और डाक्टर ंटर का कहना है कि इन्होंने सन् १५९४ ई० में अकबर से फर्मान हासिल करके वर्तमान कृष्णगढ़ राज्य स्थापित किया। परंतु कृष्णगढ़ के लेख से विदित हुआ कि यह राज्य संवत् १६६८ (सन् १६११ ई०) मे स्थापित हुआ, टाड साहब अपने "राजस्थान" में संवत् १६६९ (सन् १६१२ ई०) लिखते हैं। डाक्टर हंटर ने जो सन् १५९४ लिखा है उसका कारण यह विदित होता है कि जोधपुर के महाराज शूरसिंह और कृष्णगढ़-संस्थापक महाराज कृष्णसिंह सहोदर भाई थे, इनके पिता प्रसिद्ध मोटे राजा उदयसिंह ने अपने जीते जी इन्हें (कृष्णसिंह को) अपनी रियासत का आसोप नामक गाँव संवत् १६५१ (सन् १५९४ ई०) मे दिया था, परंतु मोटे राजा उदयसिंह के मरने के पीछे शूर-सिंहजी ने आसोप को जब्त कर लिया और दूधोड़ नामक दूसरा गाँव दिया, तदनंतर शूरसिंहजी के मंत्री भाटी गोइनदास (गोविंद-दास) के और कृष्णसिंहजी के अनबन होने से ये दूधोड़ को छोड़-कर चले आए, तब संवत् १६५४ सन् (१५९७ ई०) में बादशाह के यहाँ से इन्हें हिंडोण का परगना मिला। यही समय राज्य के स्थापन होने का समझना चाहिए, परंतु संवत् १६६८ (सन् १६११ ई०) में इन्होंने कृष्णगढ़ को अलग बसाया।

कृष्णगढ़ नगर बहुत ही सुंदर गूदोलाव नामक तालाब के किनारे पर बसा है, जिसके बीच में महाराज का बाग 'मुहकमविलास' बना

हुआ है। नगर मे श्रीब्रजराजजी का मंदिर है तथा मोहनलालजी, मदनमोहनजी, नरसिंहजी और चितामणिजी के मंदिर हैं। कृष्णगढ़ से १२ मील पर सलीमाबाद मे एक निंबार्क संप्रदाय का मंदिर है जिसमे उस प्रांत के बहुत से हिंदू यात्री दर्शन के लिये आया करते हैं।*

कृष्णगढ़ राज्य की स्थापना के विषय में कृष्णगढ़ दर्बार के कवीश्वर जयलालजी ने मेरे प्रश्न के उत्तर मे यह लिखा है—

"संवत् १६५४ मे जोधपुर से पृथक् राज्य, प्रथम तो 'हिडोण'† में हुआ और फिर 'सेठोलाव' मे, जो कि कृष्णगढ़ से पश्चिम् तरफ लगभग २ मील दूरी पर है, हुआ और महाराज श्रीकृष्णसिंहजी ने संवत् १६६८ में कृष्णगढ़ बसाया।"

ये महाराज कृष्णसिंहजी श्रीवल्लभ कुल के अनुयायी वैष्णव थे और तब से बराबर यह कुल उन्हीं का अनुयायी चला आता है। इस विषय के प्रश्नोत्तर मे उक्त कवीश्वरजी लिखते हैं—

"यह कृष्णगढ़ की राजधानी नियत करनेवाले जो महाराज कृष्णसिंहजी थे जब ही से वल्लभाचार्यजी के अनुयायी हैं और उनके मस्तक पर दे। स्वरूप श्रीनृत्यगोपालजी के विराजते थे, वे दोनों स्वरूप अद्यापि यहाँ विराजते हैं, जिनमें एक स्वरूप श्रीदाऊजी का और दूसरा श्रीकृष्णजा का है, और महाराज श्रीकृष्णसिंहजो नरवर-

* Dr Hunter's Imperial Gazetteer of India Volume VIII Page 223.

† हिंडोण पहले अच्छा नगर था। महाराष्ट्रों ने उसे नष्ट कर दिया। प्राचीन प्राचीर टूटी फूटी पड़ी है। अब यह जयपुर राज्यांतर्गत है।
Dr. Hunter's Imperial Gazetteer Vol. V, Page 414.

गढ़ के कछवाहा राजा आसकरण जी* जो श्रीवल्लभाचार्यजी के अनुयायी महा वैष्णव थे और जिनका प्रसंग वैष्णवों की वार्ता मे है जिनके भानजे थे।"

* नरवरगढ़ के कछवाहा राजा आसकरण जी—डाक्टर ग्रिअर्सन लिखते हैं Askaran Das, the Kachhwaha Rajput of Narwargarh, in Gwaliyar Fl. C. 1550 A D

Rag. He was son of King Bhim Singh See Tod II 362 Calc. ch. II 390—The Modern Literature of Hindustan, page 31, No 71

यही शिवसिंह भी सरोज मे लिखते हैं। (पत्र ६ नं० ३७)

यह गोस्वामि श्रीविट्ठलनाथजी के शिष्य थे। इनका चरित्र "दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता" में (नं० २०२) जो लिखा है हम उसका संक्षेप यहाँ देते हैं—

इन्हें राग पर बड़ी आसक्ति थी। देश देशांतर के गवैयों का आदर सत्कार करते थे। एक समय तानसेन इनके यहाँ आए और उन्होंने "कुँवर बैठे प्यारी के संग अंग अंग भरे रंग बलि बलि बलि त्रिभग युवतिन मन भाई" गाया। राजा प्रेम से मत्त हो मूर्च्छित हो गए। चैतन्य होने पर पूछा, यह किसका पद है? तानसेन ने बताया, गोकुल के गोसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य गोविंद स्वामी का। राजा तानसेन को दो सहस्र रुपया देने लगे पर उन्होंने नहीं लिया। कहा, "मैं रुपए का भूखा नहीं, गुण-ग्राहक ढूढ़ता हूँ सो जैसा सुना था वैसा पाया"। तानसेन को संग ले राजा गोकुल आए और श्रीगोसाईंजी के सेवक हुए। श्रीगुसाईंजी की आज्ञा से गोविंद स्वामीजी ने रमणरेती पर लिवा जाकर राजा को सेवा की रीति तथा कीर्तन आदि सिखाए। तदनंतर राजा श्रीगुसाईंजी की आज्ञा ले और श्रीमदनमोहनजी ठाकुर को सेवा के लिये पधरा अपने देश आए। एक समय दक्षिण देश का कोई राजा इन पर चढ़ आया। इन्होंने सेवा में विघ्न न पड़े इसलिये विचार किया कि राज्य इसे सौंप आप गोकुल चल बसें, परंतु स्वप्न में आज्ञा हुई कि मानसी सेवा कर और शत्रु से लड़। उन्होंने ऐसा ही किया और प्रभु की कृपा से जयी हुए। एक दिन जाड़े की ऋतु में राजा चार घड़ी के तड़के सेवा में नहाए। वहाँ चार चोर छिपे थे। उन सभों ने राजा को

महाराज रूपसिंहजी ने 'रूपनगर' बसाया और उसे राजधानी बनाया। इस विषय में उक्त कवीश्वरजी लिखते हैं—

"संवत् १६६८ में महाराज श्रीकृष्णसिंहजी ने कृष्णगढ़ बसाया और राजधानी नियत की। फिर संवत् १७०० में महाराज श्रीरूपसिंह जी ने रूपनगर को राजधानी का मुख्य स्थान नियत किया था। जब से वहीं रहते थे। फिर महाराज नागरीदासजी के एक पीढ़ी पीछे अर्थात् संवत् १८२३ के पीछे कृष्णगढ़ ही को पीछा राजधानी का मुख्य स्थान नियत किया सो अद्यापि है। और उक्त महाराज को कृष्णगढ़ाधिपति इस कारण से लिखते हैं कि अब प्रसिद्ध राजधानी का स्थान कृष्णगढ़ ही है नहीं तब ये तो रूपनगर* के ही राजा थे।"

तीर मारा जो पीठ को छेद बाहर निकल गया। भितरियों ने पट्टी बांध दी, परंतु राजा सेवा में ऐसा देहाध्यास भूल गए थे कि कुछ खबर ही न हुई। जब सेवा से निकले, पट्टी बँधी देखी। लोगों ने सब वृत्त कहा। राजा ने सोचा कि सब अनर्थ का मूल धन है, राज अपने भतीजे को दे ठाकुरजी का वैभव श्रीगुसाईंजी के यहाँ भेज, एक झांपी में श्रीठाकुरजी को केवल गुंजा मोरपंख धरा अपने साथ ले श्रीगोकुल चले आए, और विरक्त भाव से रहने और लीला का अनुभव करने लगे।

यह वार्ता श्रीगोस्वामी गोकुलनाथजी की बनाई बताते हैं जिनका जन्म संवत् १६०८ मि० माघ सु० ७ का है।

* इसी रूपनगर की राजकुमारी के रूप की प्रशंसा सुन औरंगजेब ने राजकुमारी से विवाह करने का पैगाम भेजा। एक फ़ौज दो हजार सवारों की रूपनगर भेज दी कि यदि यों न माने तो बलपूर्वक ले आओ। बेचारे राजा की क्या सामर्थ्य थी जो इस घृणित इच्छा को रोक सकता, परंतु राजकुमारी के हृदय को राणा राजसिंह के गुणों ने ऐसा मोहित कर लिया था कि उसने अपने पुरोहित के द्वारा राणा के पास संदेसा भेजा "कि क्या

नागरीदासजी किर्न, वल्लभकुल गोस्वामी के शिष्य थे इसके उत्तर मे उक्त कविराजाजी लिखते हैं—

"महाराज श्रीकृष्णसिंहजी के पौत्र रूपसिंहजी थे। वे श्रीवल्लभाचार्यजी* के पुत्र विट्ठलनाथजी† जिनके पुत्र टीकैत (बड़े) श्रीगिरि-

---

आपके रहते मै राजपूतानी, जिसके शरीर मे शुद्ध राजपूत रक्त प्रवाहित है, उस बंदरमुँहे म्लेच्छ की स्त्री हूँगी ? यदि आप रक्षा न करेंगे तो मैं आत्मघात करूँगी।" राणा तुरंत रूपनगर के मार्ग में आ पहुँचे और बादशाही फौज को मार कुमारी को ले गए। राणा राजसिंह संवत् १७१० में राज्यगद्दी पर बैठे थे।

यह कथा "टाड राजस्थान" के अनुसार है। इसके विषय में कृष्णगढ़ से कवीश्वर जयलालजी लिखते हैं कि "औरंगजेब ने न तो फौज भेजी थी और न पैगाम भेजा था। इसका प्रसंग तो ऐसे है कि दाराशिकोह और औरंगजेब से धौलपुर में झगड़ा हुआ था तब किशनगढ़ के राजा रूपसिंहजी दाराशिकोह की तरफ से काम आए थे। तब औरंगजेब ने कृष्णगढ़ के राज्य का मंसब तगीरी मे नाम दर्ज किया था। तब यहाँ रूपसिंहजी के पुत्र मानसिंहजी केवल ३ वर्ष के थे सो वकील ने वहां जाकर औरंगजेब के शाहजादह मोअज्जम को इस राजकुमारी का ब्याहा जाना स्वीकार किया था फिर शाहजादह को तो नहीं ब्याही और उदयपुर के महाराणा राजसिंहजी से गुप्त ब्याह कर दिया और शाहजादह को फिर राजकुमारी सिवाय किसी दूसरी कन्या ब्याह दी थी।"

इस घटना को लेकर बंगभाषा में बंकिम बाबू ने "राजसिंह" उपन्यास बनाया है और उसका अनुवाद भाषा में पूज्य भारतेंदुजी तथा प्राणोपम मित्र पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने किया है। दोनों अनुवाद "खड्गविलास प्रेस" बाँकीपुर में छपे है। देखने योग्य है।

* श्रीवल्लभाचार्य—जन्म संवत् १५३५ मि० चैत्र कृष्ण ११।

† श्रीविट्ठलनाथजी—जन्म संवत् १५७२ मि० पौष कृष्ण ६।

धरजी* थे जिनके तृतीय पुत्र दीक्षितजी श्रीगोपीनाथजी† थे जिनके शिष्य हुए थे उन्हीं के पास ब्रह्म संबंध भी लिया था और श्रीकल्याण-रायजी का स्वरूप दीक्षितजी श्रीगोपीनाथजी ने इन (रूपसिंहजी) के मस्तक पर पधराया था। वह स्वरूप अद्यापि यहाँ विराजता है। और इन्हीं रूपसिंहजी ने श्रीवल्लभाचार्यजी के उस चित्र को, जो बादशाह अकबर ने बनवाया था, बादशाह शाहजहाँ से माँग के ले लिया था। वह चित्र अद्यापि यहाँ है और श्रीकल्याणरायजी के समीप सेवा मे बिराजता है। पूर्वोक्त श्रीनृत्यगोपालजी के दो स्वरूप थे जिनमे एक स्वरूप बड़ा श्रीदाऊजी का सो तो श्री-कल्याणरायजी की गोद में ही विराजता है और दूसरा छोटा स्वरूप श्रीकृष्णजी का सो वर्तमान महाराजाधिराज महाराज श्रीशार्दूलसिंह-जी बहादुर जी० सी० आई० ई० के अनुज महाराज दीक्षितजी श्रीजवानसिंहजी के मस्तक पर विराजता है।''

''जो कि महाराज श्रीरूपसिंहजी के गुरु गोस्वामी दीक्षितजी श्रीगोपीनाथजी थे जिनके प्रपौत्र गोस्वामी श्रीरणछोड़जी‡ नागरीदास जी के गुरु थे। इनका स्थान कोटे मे श्री बड़े मथुरेशजी का है और श्रीरूपसिंहजी से लेकर अब तक उसी स्थान के शिष्य होते हैं और उनका मंदिर कृष्णगढ़ में भी श्रीमदनमोहनजी का है जिनके भेट यहाँ की तरफ से ग्राम भी हैं और लगान सहित दस सहस्र के लग-भग की जीविका है।''

कृष्णगढ़ राज्यवंश का वंशवृक्ष इस प्रकार है—

* श्रीगिरिधरजी टीकैत—जन्म सं० १५६७ मि० कार्तिक कृष्ण १२।

† श्रीगोपीनाथजी—जन्म संवत् १६३४ पौष कृष्ण ४।

‡ गोस्वामी श्रीरणछोड़जी—जन्म संवत् १७७८ पौष कृष्ण ५।

महाराज कृष्णसिंह

सहसमल | जगमाल (ये भाई की गोद बैठे) | भारमल | हरिसिंह (भाई जगमाल की गोद बैठे)

सहसमल
जगमाल (गोद आए)
हरिसिंह (गोद आए)
रूपसिंह (गोद आए)
मानसिंह
राजसिंह

भारमल
रूपसिंह (ये चचा हरिसिंह की गोद बैठे)

राजसिंह के पुत्र:
सुखसिंह | फतहसिंह | सावंतसिंह (नागरीदास) | बहादुरसिंह | बीरसिंह

सावंतसिंह (नागरीदास)
सरदारसिंह | बिरदसिंह (ये सरदारसिंहजी की गोद बैठे)

सरदारसिंह
बिरदसिंह (गोद आए)
प्रतापसिंह
कल्याणसिंह
मोहकमसिंह
पृथ्वीसिंह

बहादुरसिंह — बीरसिंह
बाघसिंह

पृथ्वीसिंह के पुत्र:
महाराजा शार्दूलसिंह जी० सी० आई० ई० (वर्तमान) | जवानसिंहजी | रघुनाथसिंहजी

महाराजा शार्दूलसिंह
महाराजकुमार मदनसिंह

जवानसिंहजी
महाराजकुमार यज्ञनारायणसिंह

नागरीदासजी के सेव्य ठाकुर के विषय में उक्त कवीश्वरजी लिखते हैं—

"नागरीदासजी स्वयं पूर्वोक्त श्रीकल्याणरायजी की सेवा में उपस्थित रहते थे और परदेश जाते तब श्रीनृत्यगोपालजी का स्वरूप साथ मे रखते थे। वृंदावन में रहे तब भी श्रीनृत्यगोपालजी की ही सेवा की।"

नागरीदासजी का जन्म संवत् १७५६ पौष कृष्ण १२ को हुआ। इनके पिता का नाम महाराज श्रीराजसिंह था। इनका विवाह भानगढ नामक नगर के राजा राजावत (राजावत कछवाहों की एक शाखा है) यशवंतसिंहजी की कन्या से संवत् १७७७ की ज्येष्ठ सुदी ९ को हुआ था। इन्हें ४ संतति हुईं। प्रथम पुत्र, जिनका जन्म संवत् १७८३ मे हुआ था बाल्यावस्था ही मे परलोकगामी हुए। दूसरे कुमार सरदारसिंहजी, जिनका जन्म संवत् १७८७ के भाद्रपद शुक्ल २ को हुआ था, यही इनके उत्तराधिकारी हुए। पहली कन्या किशोर कुँवरिजी का विवाह बूँदी के हाड़ा दीपसिंहजी से हुआ था और दूसरी का नाम गोपाल कुँवरिजी था। इनका संबंध जयपुर के महाराज श्री माधोसिंहजी से निश्चय हुआ था, परंतु परम वज्र हृदय विधाता से यह सुखमय संबंध न देखा गया, उक्त महाराज विवाह के पहले ही सुरधामगामी हुए। इनके भ्राता महाराज सरदारसिंहजी ने इनका विवाह किसी दूसरी जगह करने का उद्योग किया, परंतु जिस सती रमणी-रत्न के शरीर मे परम भगवदीय महानुभाव नागरीदासजी का पवित्र रक्त संचालित होता था, जिसने पवित्र कुल की शोभा बढ़ाई थी, वह क्या कभी सांसारिक सुखों के लोभ मे फँसकर अपने परम पवित्र सतीत्व धर्म को तिलांजलि दे सकती थी? प्रातःस्मरणीया गोपालकुँवरिजी ने दृढ़तापूर्वक दूसरा संबंध अस्वीकार किया और कहा जो होना था हो चुका, क्या एक शरीर दो

पति को अर्पण हो सकता है ? और ससार के सुखों से मुख मोड़ भगवत् चरणारविंद मे मन लगाया, अपने सिर पर एक स्वरूप श्रीठाकुरजी का पधराया जिनका नाम श्रीरामललाजी रखा और इन्हीं के प्रेम मे मगन रहकर अपने इस क्षणस्थायी जीवन को परम-संतोषपूर्वक व्यतीत किया। धन्य राजपूत-कुल कमलिनी ! धन्य सतीत्व-मानसंवर्धिनि !! धन्य नागरीदास-यशोविस्तारिनि !!! धन्य !!! आजकल की कुल-बालाओं को इनका उदाहरण लेना चाहिए, उन्हे हृदय की आँखों से देखना चाहिए कि सती साध्वी पतिव्रताओं के लिये पति कैसा आदरणीय देवता है, उन्हें चाहिए कि गोपालकुँवरि के आदर्शमय चरित्र को रात्रि दिवस अपने गले का हार बनावें। कहाँ हैं गोपाल कुंवरि और कहां गए महाराज नागरीदास ? परंतु यह उनका उज्ज्वल चरित्र आज तक यश फैला रहा है और अनंत काल तक ऐसे ही महानुभावों के चरित्र भारतवर्ष तथा क्षत्रिय कुल का गौरव सारे संसार में स्थित रखेंगे। कहिए संसार में कितने ही इनके ऐसे तथा इनसे बढ़कर लोग जन्मे और काल के कराल गाल मे विलीयमान हुए परंतु किसका नाम कौन लेता है ? किसका चिह्न पृथ्वी पर वर्तमान है ? परंतु हाँ—

कीर्तिर्यस्य स जीवति

महाराज सावंतसिंह संस्कृत, फारसी अच्छी पढे थे; भाषा पिंगल और डिंगल के तो पंडित ही थे; राग, चित्र और शस्त्र-विद्या में परम प्रवीण थे। एक दिन जब कि ये श्रीवृंदाबन से घर आए थे, इनके भ्रातुष्पुत्र कुमार बिरदसिंहजी ने कहा कि "मैंने सुना है कि आप शिकार अच्छा खेलते हैं, मुझे भी दिखाइए"। आपने उत्तर दिया कि "अब मुझे शिकार से क्या प्रयोजन, परंतु तुम कहते हो तो दिखाऊँगा।" एक हिरन के पीछे आपने घोड़ा डाला और थोड़ी दूर

जाते जाते ही उसके सींग मे अपनी कुबड़ी को लगाकर उसे रोक रखा। चित्र-कला मे ऐसे निपुण थे कि प्रिया-प्रीतम के कई एक भाव नए ढंग से चित्रित किए थे। काव्य-कला परिचय तो उनके काव्यों ही से मिलता है।

ये परम शूर वीर थे और बचपन ही से परम निर्भय थे। संवत् १७६६ मे, जब कि ये केवल १० ही वर्ष के थे, एक दिन दिल्ली मे राज्यदर्बार से लौटते समय एक मस्त हाथी, जो कि महावतो के काबू से बाहर था, इन पर टूटा। महावत लोग लाख पुकारते रहे इधर मत आओ, भागो, परंतु वीर बालक ने पीठ देना सीखा ही न था। इन्होंने हाथी से मुठभेड होते ही एक हाथ तलवार का ऐसा मारा कि वह चुपचाप दुम दबाकर पीछे भागा और आप अपने घर आए। उस समय का चित्र कृष्णगढ़ दर्बार मे है।

संवत् १७६९ मे, जब कि इनकी अवस्था केवल १३ वर्ष की थी, इन्होंने अकेले ही बूँदी के हाडा जैतसिंह को मारा था जिसमे इन्हें कुछ घाव भी लगे थे।

इसी संवत् मे दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह मरे और गद्दी के लिये जहाँदारशाह और फर्रुखसियर से लड़ाई हुई और फर्रुखसियर ने विजयी होकर दिल्ली के तख्त पर अधिकार किया। इस लड़ाई का वर्णन श्रीधर कवि ने बहुत सुंदर लिखा है। यह श्रीधर कवि, जिसका नाम मुरलीधर भी था, प्रयाग का रहनेवाला था। इसने इसी "जंगनामा" मे लिखा है--

"श्रीधर मुरलीधर उरूफ, द्विजवर बसत प्रयाग।
रुचिर कथा यह शाहि की बरनो कथन अनुराग॥

यह शृंगार और वीर रस दोनों ही की कविता सुंदर करता था। इसने उस समय के अमीर उमराओं का बहुत कुछ गुणानुवाद किया है और पारितोषिक पाया है। जिसने कुछ दिया नहीं है उसकी इसने ऐसी हजो की है कि अश्लीलता के कारण वह कविता प्रकाशित करने योग्य नहीं है।

शिवसिंह ने अपने ग्रंथ मे चार श्रीधर लिखे हैं जिनमे से एक का नाम राजा सुब्बासिंह चौहान था जो ओयल जिला खीरी के रहनेवाले थे। इनका समय संवत् १८७४ दिया है। इन्होंने "विद्वन्मोदतरंगिनी" नामक साहित्य-ग्रंथ बनाया। दूसरे श्रीधर राजपुतानावाले हैं। इनका समय १६८० दिया है। इन्होने "भवानी छंद" नाम एक दुर्गा की कथा का ग्रंथ बनाया है। शेष दोनों श्रीधर निश्चय एक ही हैं क्योंकि दोनों की कविता जो दी है वह श्रीधर उर्फ मुरलीधर कवि ही की है। शिवसिंह ने एक श्रीधर (जिनके नाम में मुरलीधर नहीं लगाया है) का समय १७८६ संवत् दिया है और लिखा है कि "शृंगार रस मे सरस कवित्त हैं" और कवित्त इनका यह दिया है—

"श्रीधर भावत प्यारी प्रवीन के रंग रँगे रथ साजन लागे।
अंग अनंग तरंगनि सों सब आपने आपने काजन लागे॥ १॥
किंकिनी पायल पैजनियाँ बिछिया घुघरू घन गाजन लागे।
मानो मनोज महीपति के दरबार सरातिबे बाजन लागे॥ २॥

यह कविता श्रीधर उर्फ मुरलीधर के ग्रंथ में मुझे ढूँढ़ने पर मिली। यह प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक के ७७ पत्रे में ३१ अंक का कवित्त है और प्रथम के एक पाद मे कुछ पाठांतर है। हस्तलिखित पुस्तक मे यह पाठ है—

श्रीधर भावतो प्यारी प्रवीन सों रंग भरे रति साजन लागे।

हम इस कवित्त के ऊपर नीचे का एक एक कवित्त उद्धृत कर देते है—

"ठाढी ही मादे ही साज सों आजु उछाह भरी मद सौति को खूँदि कै।
आँचर खूँटि खुल्यो अचका निकसे कुच कोरक कंज सी दूँदि कै॥
छाति छपावति भाव भरी तकि श्रीधर लाल रहे रस गूँदि कै।
हेरि इतै दृग फेरि गई हँसि घूघट के पट सों मुख मूँदि कै॥ ३०॥

मेरे जबै आवत हौ हँसत हँसावत हौ,
रीझत रिझावत हौ रंगनि रँगत हौ।
और कें पधारत हौ ताहि उर धारत हौ,
छलनि सुधारत हौ प्रेम सों पगत हौ॥
श्रीधर अहीरा कछु जानत न पीरा सदा,
खीरा बार हीरा मिले जगत ठगत हौ।
मीत की प्रतीति होति देखें रीति रावरे की,
नेक भीति ओट है अमीत से लगत हौ॥ ३२॥"

समय तो ठीक मिलता ही है क्योंकि संवत् १७६९ में इन्होंने जंगनामा बनाया। यथा—

"संवत सो सत्रह सै उन्हत्तरि पूल पून्यो बुध तहीं।
सन सो अग्यारह तेतिसा माहे मॉहर्रम चौदहीं" ॥ १ ॥
अरू पातसाही माहे आजर बाएसी श्रीधर कही।
सफजंग की साएति सधी साहेबजहाँ कीनी सही॥ २॥

अब यहाँ हिजरी सन् मे भ्रम है क्योंकि फर्रुखसियर की जहाँदारशाह से लड़ाई सन ११२४ मे हुई है। यह भूल लेखक की प्रतीत होती है।

दूसरे श्रीधर मुरलीधर का संवत् शिवसिंह ने नहीं दिया है, लिखा "कवि विनोद नाम पिंगल बनाया" और कवि विनोद पिंगल के ये दोहे उठाए हैं —

'श्रीधर मुरलीधर सुकवि मानि महा मन मोद।
कवि विनोद मय यह कियो उत्तम छंद विनोद॥ १॥
श्रीधर मुरलीधर कियो निज मति के अनुमान।
कवि विनोद पिंगल सुखद रसिकन के मन मान'' ॥ २॥

यही भ्रम डाक्टर ग्रिअर्सन को भी हुआ है।

अस्तु, यह तो निश्चय है कि ये दोनों एक ही श्रीधर थे।

संभव है कि इस संवत् १७६९ की लड़ाई में महाराज सावंत-सिंहजी भी रहे हों क्योंकि कृष्णगढ़ से आए हुए इतिवृत्त में लिखा है कि "इन साहिबों पर बादशाह फर्रुखसियर की बहुत मेहरबानी थी। इन साहबों के पास घोड़े फिरवाके बहुत देखता" और इधर श्रीधर अपने जंगनामा में लिखते हैं—

"सब मीर जुमिला सग है। द्वै लाख स्वार उमंग है॥
यह बंक कोतल फौज है। सावंत उर में ओज है॥"

परंतु अधिक संभव यही है कि कवि ने सावंत शब्द वीर के लिये लिखा हो, क्योंकि प्रायः ऐसा ही किया है, जैसे—

"समसेर सरकि सिरोह की सावंत ए दोऊ लरे।
घन-घाइ खाइ अँगाइ अंगनि अटल ह्वै दोऊ अरे॥"

संवत् १७७१ में जब कि महाराज सावंतसिंह १५ वर्ष के थे, जलूस महफिल हो रही थी। उस समय इनके पिता महाराज श्रीराजसिंहजी, कोटा के महाराज श्रीभीमसिंहजी, सोपर के महाराज श्रीगजसिंहजी, और महाराज भदोरिया श्रीगोपालसिंहजी प्रभृति

बैठे थे। उस समय अकस्मात् इनके जामा के दामन मे एक विषधर सर्प आ गया। आपने इसकी किसी को भी खबर न होने दी। चुपचाप उसके फन को पकड़कर मसल दिया और किसी बहाने से उठकर मृतक सर्प बाहर फेंक आए। इस भेद को उनके खिदमतगारों के अतिरिक्त और किसी ने भी न जाना।

संवत् १७७४ मे, जब कि ये १८ वर्ष के थे, थूण की गढ़ी को फतह किया। थूण की गढ़ी के स्वामी जाट बदनसिंह को पराजित करने के लिये फर्रुखसियर ने नव्वाब मुजफ्फरखाँ,* जयपुर के महाराज जयसिंह, और कोटा के महाराज भीमसिंह को भेजा था। थूण की गढ़ी में, जो मेवासा मे है, लड़ाई हो रही थी, परंतु गढ़ी कब्जे मे नहीं आती थी क्योंकि जगह बेढंग थी, चढ़ने का रास्ता न था। तब नव्वाब नौलादखाँ, खानदौरा| बख्शी के भाई ने अर्ज करके

* नवाब मुजफ्फरखाँ की वीरता के विषय में श्रीधर लिखते हैं—

'सज्यो मुजफ्फर खाँ कलह कर। समसामुद्दौला सुवीर वर''

| खानदौरा—पूर्व नाम ख्वाजा मुहम्मद आसिम, उसके पीछे अरफखाँ तत्पश्चात् शमसामुद्दौला, अमीरुलउमरा खानदौरा बहादुर मनसूरजंग की पदवी मिली। इनके पिता ख्वाजः कासिमनक्श बंदी थे। खानदौरा नादिरशाह की लड़ाई में २३ फर्वरी सन् १७३६ को जखमी हुए और चार ही दिन पीछे २७ तारीख को ६८ वर्ष की अवस्था में मरे।

See Journal Asiatc Society Bengal, Part 1, No. 1
Vol. LXVI, Page 57.

यह खानदौरा फर्रुखसियर के भी सर्दारों मे था। श्रीधर लिखते हैं—

"सज्यो खानदौरा सुबहादुर। समसामुद्दौला सिपाह पुर।
उतहिं उनको खानदौरा। इतहिं सजि यह खानदौरा॥
सँग केतिक खानदौरा। मनहुँ उनको खान दौरा॥ ३३॥"

ऐसे ही अनेक स्थानों पर लिखा है।

इन्हें भेजवाया। यह वहाँ पहुँचते ही बख्तर पहिने हुए, गोलियो की वर्षा के बीच हाथी पर सवार घुस पड़े और गढ़ी के फाटक पर पहुँच हाथियों से फाटक तोड़वा गढ़ी ले ली। पीछे से सारी फौज भी आ पहुँची। यह दिन संवत् १७७४ वैशाख बदी ६ था। इस समय एक गोली इनके शरीर से भिडती हुई निकल गई थी परंतु कुछ गहरी चोट नहीं लगी; वहाँ से पालकी मे सवार हो डेरे पर आए। उस समय नवाब और महाराज जयसिंह उनके डेरे पर आए और कहा कि यह आपही का काम था, और नवाब ने बादशाह के पास अर्जी भेजी उसमे फतह इन्हीं के नाम लिखी। बादशाह ने प्रसन्न हो बडी ही प्रशंसा की और खिलत शमसेर आदि भेजा।

संवत् १७७६ बीस वर्ष की अवस्था मे अकेले ही सिंह का शिकार किया जिसका चित्र कृष्णगढ दर्बार में है।

संवत् १७९३ मे दक्षिणी मल्हारराव गुजरात से मारवाड़ आया। इन्होंने उसे खिरणी (कर) नहीं दिया, कुछ लड़ाई भी हुई। अंत मे बाजीराव पेशवा ने मल्हारराव से कहा—

"बाजे राव मल्हार सों कहतो गयो कथाह।
और राव सब राव हैं सांवत बात अथाह॥"

यह दोहा उस देश मे अत्यंत प्रसिद्ध है।

संवत् १८०४ मे, जब कि मुहम्मदशाह दिल्ली के तख्त पर बैठ चुके थे, पठानों ने दिल्ली पर चढ़ाई की। उस समय मुहम्मदशाह ने यहाँ भी फर्मान भेजा था। इनके पिता श्रीमहाराज राजसिंहजी जाने को प्रस्तुत हुए, परंतु इन्होंने कहा कि आप बहुतेरी लड़ाइयाँ लड़ चुके हैं इस पर हमें जाने दीजिए। निदान पिता की आज्ञा से ये अपने पुत्र सरदारसिंह के साथ दिल्ली गए परंतु बादशाह ने इन्हें

मुहिम पर नहीं भेजा, अपने ही पास रख लिया। विदित होता है कि इसी समय से इनसे आनंदघनजी से मित्रता हुई। संवत् १८०५ में मुहम्मदशाह मर गए और उसी समय इनके पिता महाराज राजसिंहजी का भी परलोक हुआ और संवत् १८०५ वैशाख सुदी ५ को ये गद्दी पर बैठे।

इस घटना को एक वर्ष भी न बीता था कि ये इधर दिल्ली आए थे उधर इनके छोटे भाई बहादुरसिंहजी ने राज्य पर अधिकार कर लिया। दिल्ली की बादशाहत मे तो कुछ जोर रह ही नहीं गया था, और मरहठों का चढ़ता समय था। उन लोगों के पास सहायता लेने के लिये यह भी गए। रास्ते में अपने पुत्र सरदारसिंह को घासड़ा नगर, जो बड़गूजर जाति के राजपूतों की राजधानी था और जहाँ सरदारसिंहजी ब्याहे थे, भेज दिया और आप मरहठों के पास गए। उनके साथ आप कुमाऊँ की मुहिम पर गए।

कुमाऊँ की लड़ाई संवत् १८०८ में हुई थी; वहीं 'जुगल-भक्ति-विनोद' ग्रंथ बनाया था।

"अष्टादश सत अष्ट पुनि, संवत माघ सुमास।
जुगल भक्त गुन ग्रंथ यह, कियौ नागरीदास॥
निकट कुमाऊँ पर्वतनि, बिकट बिटप की भीर।
तहाँ ग्रंथ-रचना भई, नदी कौसिकी तीर॥"

वहाँ की लूट के विषय मे लिखते हैं—

"लाज छाँड़ि मन कों भजौ, दीजै मन कौ छूट।
कुमाऊँ की मुहिम मैं, जैसे लूटा लूट॥"

इसी के पीछे ही आपने "तीर्थानंद ग्रंथ" बनाया है और उसमे उसी सिलसिले से मुकाम भी दिए हैं, जैसे रूपनगर से साँभर

गए, वहाँ देवयानी का वर्णन किया है, जैपुर मे गलता (गालवाश्रम) का वर्णन किया है फिर वृंदाबन आए। वहाँ से अपने पुत्र को घासडा मे भेज आप मरहठों के पास गए, फिर उनके साथ कुमाऊँ। मरहठो को अपने साथ लेकर फिर श्रीवृंदावन आए, आप ते वहीं रह गए और अपने पुत्र को मरहठों के साथ लड़ने को भेज दिया। इन्हें वृंदाबन मे स्वप्न में आज्ञा हुई थी कि तुम यहीं निवास करो, राज्य तुम्हारे लड़के को मिलेगा। निदान बहुत लडाई के पीछे सवत् १८१३ मे बहादुरसिंहजी और सरदारसिंहजी ने राज्य को दो भाग करके बाँट लिया।

संवत् १८१३ के फाल्गुन में इन्होंने कुटुंबयात्रा के निमित्त प्रस्थान किया। सुनते हैं कि उस समय इनके साथ आनंदघनजी भी थे परंतु जयपुर ही से लौट आए, और इस भ्रातृ-विरोध ने कुछ ऐसा असर इनके हृदय पर किया कि फिर इन्होने राज्यगद्दी पर पैर न रखा और संवत् १८१४ द्वितीय आश्विन शुक्ल १० को अपने कुँवर सरदारसिंहजी को युवराज बना आप आश्विन सु० ११ को श्री वृंदाबन चले गए। उनके हृदय का भाव कैसा बदल गया था यह ये दोहे कहे देते हैं—

"जहाँ कलह तहाँ सुख नहीं, कलह सुखन कौ सूल।
सबह कलह इक राज मैं, राज कलह को मूल॥
मेरे या मन मूढ़ तैं, डरत रहत हौं हाय।
वृंदाबन की ओर तैं, मति कबहूँ फिरि जाय॥
लेत न सुख हरिभक्ति कौ, सकल सुखनि कौ सार।
कहा भयो नृपहू भए, ढोवत जग बेगार॥
और भौन देखौं न अब, देखूँ वृंदा भौन।
हरि सों सुधरी चाहिए, सब ही बिगरै क्यौं न॥

अज मैं ह्वै है कढ़त दिन, किते दिए लै खोय।
अब कै अब कैं कहत ही, वह अब कैं कब होय॥
राज बड़े बड़े देत हरि, दिन मैं लाख करोर।
पै काहू को नाहिं वै, खीचत अपनी ओर॥"

संवत् १८१० में 'तीर्थानंद' ग्रंथ बनाया। परंतु यह ग्रंथ संवत् १८०८ से आरंभ होकर संवत् १० मे पूरा हुआ प्रतीत होता है। यदि ऐसा न हो तो इसमे तो संदेह नहीं है कि इन्हीं दो वर्षों की कथा इसमे लिखी गई है और इसी की समालोचना मे हमारे पाठक बहुत कुछ समाचार आपके जीवनचरित्र का पावेगे। इस ग्रंथ का आरंभ यों किया है—

"जब चले स्थिति ते देस आन। विच किए देवयानी सनान॥" फिर लिखते हैं "पुनि चले तहाँ ते नाय माथ। परसे गोविंद गोकुल के नाथ॥ पुनि गालव आश्रम अति अगम्य। जहाँ भ्रमत फिरत अति मधुप झुंड॥" वहाँ से ब्रज मे आए। पहले श्रीगोवर्धन आकर रहे। यहाँ का वर्णन पाठकों के सुनने योग्य है—

"पायन प्रदच्छना दई फेर। विच रसिक संग गन गुनी घेर॥
कलगान कीरतन बन्यो रंग। बहु झाँझ झनक बाजत मृदंग॥
बन ग्वाल गऊ चले सुनत साथ। मधु पिवत श्रवन पुट कृष्ण गाथ॥
सब अनन्य मंडली छकी प्रेम। चित गए भूलि तब मन के नेम॥
आए चलि तेहि ठाँ रसिक झुंड। तहँ राधाकुंड अरु कृष्णकुंड॥
उत ते उमगे सुनि रसिकवृंद। उठि चले सामुहें बढ़ि आनंद॥
तहँ रुपे सूर सन्मुख सँभारि। बहि चले परस्पर प्रेमबारि॥
हुंकार शब्द करि गिरि निसंक। कोउ चलत धरनि धुकि भरत अंक॥
बंसीदास अरु मुरलिदास। मनु महारथी ये प्रेमरास॥
विच खेत परे मूर्छित निदान। सोए सर सज्जा गान तान॥

सुख प्रेम भक्ति को भयो प्रात । सुख सो न कछु है बरन्यो जात ।।
दंपत रस संपत बर बिहार । फिर गाय चले तन मन सँभार ।।
परकरमा दै गिरिवर सुआय । मधुपुरी चले दुख बिरह छाय ।।"

गिरिराज से श्रीमथुरा में आए। वहाँ विश्रांतघाट पर स्नान किया। साँझ को विश्रात पर श्रीयमुनाजी की आरती की बड़ी शोभा वर्णन की है। वहाँ एक वृद्धा तपस्विनी रहती थी, जो केवल दूध ही पीती थी। उनका दर्शन करके श्रीवृंदाबन आए। इस समय इनका नाम चारों ओर फैल गया था और इनके प्रेम का आस्वाद प्रेमी-मात्र को मिल चुका था, क्योंकि श्रीवृंदाबन में इनको महाराज कृष्णगढ सुनकर तो लोग उदासीन भाव से अलग ही अलग रहे परंतु जब सुना कि नागरीदासजी ये ही हैं तो दौड़ दौड़कर श्रीवन के महात्मा लोग लिपट गए।

"सुनि व्योहारक नाम मो, ठाढ़े दूर उदास ।
दौरि मिले भरि नैन सुनि, नाम नागरीदास ।।
इक मिलत भुजनि भरि दौरि दौरि । इक टेरि बुलावत और और ।।
केउ चले जात सहजै सुभाय । पद गाय उठत भोगहि सुनाय ।।
जे परे धूर मधि मत्त चित्त । तेउ दौरि मिलत तजि रीति नित्त ।।
अतिसय बिरक्त तिनके सुभाव । ते गनत न राजा रंक राव ।।
वे सिमिट सिमिट सब आय आय । फिर छाड़त पद पढ़वाय गाय ।।"

इससे विदित होता है कि उस समय तक इनकी कविता का पूरा प्रचार हो गया था और महात्मा लोग बड़े चाव से उसे पढते और याद करते थे।

वहाँ श्री बाँकेबिहारीजी (श्रीस्वामी हरिदासजी के सेव्य ठाकुर) का दर्शन किया। इस समय उन्होंने अपनी पासवान (उपस्त्री) बनीठनी (उपनाम रसिकबिहारी) का एक पद गाया—

"बनी बिहारिनि रसमनी निकट बिहारी लाल।
पान किया इन दृगनि तें अनुपम रूप रसाल ॥
तहँ पद गाए औसर संजोग। बिच रसिक बिहारी ही के भोग ॥"

जान पड़ता है कि नागरीदासजी बनीठनीजी को प्रेम से केवल बनी ही कहकर पुकारते थे और यह भी इससे स्पष्ट है कि वे प्राय: उनको साथ रखते थे तथा विशेष पर्दा आदि का विचार नहीं करते थे।

बनीठनीजी (रसिकबिहारी) को कोई संतान नहीं हुई। इन्होंने केवल ५८ पद बनाए थे और इनका देहांत श्री वृंदावन मे (क्योंकि नागरीदासजी के पीछे ये वहाँ रहीं) नागरीदासजी के १० महीना पीछे संवत १८२२ आषाढ़ सुदी १५ को हुआ।

इनकी छतरी पर यह लेख है—

"श्री बिहारीजी
श्रीबिहारिन बिहारिजी ललितादिक हरिदास।
नरहर रसिकनि की कृपा दियो बृंदाबन बास ॥
श्रीरसिकदास* गुरु की कृपा लहमा भर सत्संग।
बिष्णुहि (?) बृंदावन मिल्यो भक्त बिहार अनंग ॥
रसिक बिहारी सामरो ब्रज नागर सुरकाज।
इन पद पंकज मधुकरी......बिष्णु समाज ॥

* जान पड़ता है यह हरिदास स्वामी के शिष्य-संप्रदायांतर्गत नरहरिदासजी के शिष्य रसिकदासजी की शिष्य थीं। यह रसिकदासजी कविता में अपना नाम रसिकबिहारी देते थे, इसी से कदाचित् इन्होंने भी अपना छाप यही रखा। श्रीरसिकदासजी का देहांत संवत १७९८ सावन ब० १० को हुआ "श्रीस्वामी रसिकदास के हरि गुरु एक समान। सदाचार मैं सिद्धि गति सतनि सुखपरवान। सावन कृष्णा रोहनी सुभ दसमी रविवार। सत्रा सै अट्ठानवै पायो बिपिन बिहार।" जान पड़ता है इसी कारण नागरीदासजी ने हरिदास स्वामी के सेव्य ठाकुर बिहारीजी के सामने इन्हीं का पद गाया था।

संवत् १८२२ मिती आषाढ़ सुदी १५ तिथि बुधवार।"

हम पाठकों को उनमें से एक पद "उत्सवमाला" ग्रंथ से उद्धृत करके सुनाते हैं। इस छाप के तीन पद और चार दोहे उक्त ग्रंथ में है।

"कुंजमहल में आजु रंग होरी हो।
फाग खेल मैं बना बनी की ह्वै रही पट गठजोरी हो॥
मुदित ह्वै नारि गुलाल उड़ावैं गावैं गारि दुहुँ ओरी हो।
दूलह रसिकबिहारी सुंदर दुलहिनि नवल किसोरी हो॥१॥"

यहाँ यह भी कहे बिना नहीं रह सकते कि इनका प्रेम अधिक हरिवंशी और हरिदासी वैष्णवों से था क्योंकि इनके पदो की शैली प्रायः उनसे मिलती जुलती है और ये प्रायः श्रीवृंदावन ही में रहते थे और वहाँ इन्हीं संप्रदायों के महात्मा अधिक थे। गोकुल का वर्णन बहुत कम किया है।

गोधूलक समय ज्ञानगुदरी आए, वहां भी देर तक समाज रहा। वहाँ से जमुना पार उतरे।

"सहि गई दुर्मति दुख असहि, बहि गई बुरी बयार।
रहि गई ब्रज अवसेर हिय, उतरे जमुना पार॥"

वहाँ से श्री जमुनाजी का स्नान करके सोरूँ में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। यहाँ बुढ़गंगाजी का स्नान किया। यहीं भगवान् का श्रीवाराहावतार हुआ है, हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम उकल क्षेत्र और दूसरा शूकरक्षेत्र है।

वहाँ एक नौकर ने श्रीगंगाजी के तट पर बकरा मारा, इस पर गंगाजी ने क्रोध किया, बड़ी बाढ़ आई, फिर नागरीदासजी ने स्तुति की तब शांत हुई।

"तहँ किए एक अनुचर अधर्म। तटि हत्यो अजासुत पाप कर्म॥
कछु क्रोध कियो गंगा कृपाल। दई आन अचानक जल उछाल॥

भुव फाट गिरत अररात जोर। अति भयो भयंकर समय सोर ॥
भजि पटकि पटकि डेरा निकारि। भयभीत सकल कौतिक निहार ॥
जब करी स्तुति सिर नाय पाव। करि छमा कियो सीतल सुभाव ॥"

दूसरे दिन दीपदान किया।

वहाँ से कपिलाश्रम (कपिलग्राम) मे आए जहाँ कपिलदेवजी ने तपस्या की है। वहाँ से नाव के पुल पर गंगा पार उतरे। एक नदी रामगंगा* और मिली, उनका स्नान करके धवलागिरि के पास कौसिक नदी के तट पर कमाऊँ† में पहुँचे वहाँ बहुत दिन रहे और वहाँ से संधि करके लौटे। हम ऊपर लिख चुके हैं सवत् १८०८ मे यह ग्रंथ बनना आरंभ हुआ "जुगल भक्त विनोद" वहीं संवत् १८०८ मे बनाया है जिसका वर्णन ऊपर है।

"रहे बहुत दिवस कौसिकी तीर। करि चले तहाँ तें संधि बीर ॥"

फागुन वहीं बीता। ब्रज के फाग का ध्यान करते यह वर माँगा कि परसाल अब होरी ब्रज में ही हो। यही हुआ भी।

* Ramganga--Eastern—a river in Kumaun district N. W. P., rises on the Southern slope of the main Himalayan range at an elevation of 9,000 ft. above sea-level and falls into the Sarju at Rameshwar.

W. W. Hunter's Gazetteer of India Vol. VII, 537 Page.

† Kumaun —The principal district of the division of the same name. In 1814 it was resolved to annex it to British possessions. At the end of January, 1815, everything was ready for the attack on Kumaun. The first successful event on the British side was the capture of Almora by Colonel Nicholson, on 26th April, 1815. Population 4,259,63 Hindus, 5,569 Mussalmans in 1872. It has a mild climate. Vol. V, 471 Page. Population in 1881—4,93,641

उसी रास्ते से लौटते हुए श्रीवृंदावन के उस पार रात को पहुँचे। उस समय कोई नाव या बेडा न मिला; उधर श्रीवृंदावन का वियोग कौन सह सकता था। झट श्रीयमुनाजी में कूद पड़े और तैरकर श्रीवृंदावन पहुँचे। कुछ लोग इनके साथ आए, कुछ रह गए। आप यों लिखते है—

"देख्यो श्रीवृंदाविपिन पार। बिच बहत महा गंभीर धार॥
नहि नाव नहीं कुछ और दाँव। हे दई कहा कीजै उपाव॥
रहे वार लगनि कौं लगै लाज। गए पारहि पूजै सकल काज॥
प्रेमपंथ को पीठ दै, यह जीवो न सुहाय।
मंगल दिन है आजु कौ, प्रिय सन्मुख जिय जाय॥
यह चित्त माँझ करिकै विचार। परं कूद कूद जल मध्य धार॥
चले पैर पैर तरराय धाय। तहाँ भई लगन सब बिधि सहाय॥
तरि गए तरुनजा दयौ पार। गहि हाथ लए ब्रजनाथ वार॥
"वार रहे रहे बार ते, पार भए भए पार।
दरसे बृंदाबिपिन विच, राधा नंदकुमार॥"

वहाँ का आनंद लूटकर दिल्ली आए और यहाँ दर्बार से छुट्टी पा सांसारिक व्यवहारों को छोड़ राज्य कुटुंब से मुँह मोड़ अकेले श्रीवृंदावन वास आरंभ किया। यह समय संवत् १८०९ के आरंभ का है, क्योंकि १८०८ का फाल्गुन कुमाऊँ में हुआ और वर्षोत्सव का वर्णन आगे चलकर इस ग्रंथ में किया है उसके उपरांत अर्थात् वर्ष दिन श्रीव्रज मे रहने पीछे संवत् १८१० के माघ में यह ग्रंथ "तीर्थानंद" पूरा हुआ है।

आप दिल्ली का वृत्तांत यों लिखते हैं—

"फिर वहे बीच राजस प्रवाह। गए इंद्रप्रस्थ हिय विरह दाह॥
दिल्ली दिवार कहकहा धाम। लियो फेरि तहाँ ते मोहि श्याम॥

तजि दयो तहाँ सब प्रभृत संग। भयो ब्रज सनमुख फिर बढ़्यो रंग॥
जब कह्यो सुता लड़काय भाय। लयो बोलि मोहि वृषभानु राय॥
तब चले चरन बरसाने ओर। किए पैंड पैंड तीरथ करोर॥"

आगे फिर लिखते हैं—

"ऐसो बरसानो निरपि, गहवर आयो प्रेम।
करत दडवत लुटत रज, छुटि गए राजस नेम॥"

इसके आगे आषाढ फिर सावन मे हिंडोले का वर्णन बरसाने मे किया है। फिर भादों में श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव नंदगाँव में और ललिता-जन्मोत्सव करैला ग्राम मे किया। वहाँ से सुनहरा की कदम-खडी मे दानलीला का अनुभव किया, फिर भादों सुदी सप्तमी को बरसाने में आकर श्री राधाजन्मोत्सव का दर्शन किया। नवमी को मोरकुटी, दानगढ़, मानगढ की लीला देखी; दशमी कोकिलावन, फिसलनीशिला, साँकरीखोर मे दानलीला।

श्रीवृंदावन, आश्विन मास में साँझी, शारदीय पूर्णिमा, रासोत्सव देखा।

कार्तिक कृष्ण सप्तमी को श्री राधाकुंड आए। दीपमालिका और अन्नकूट श्री गिरिराज मे किया। गोपाष्टमी को नदगाँव में। अगहन और पूस बरसाने में रहे। बरसाने में वसंत और होली की। होली वर्णन बड़ी धूम से किया है। चैत्र वैशाख जेठ का वर्णन कुछ नहीं किया, यही लिख दिया—

"मधु माधव जेठोत्सव, याते बरन्यो नाहिं।
एक फाग आगें जिते, सब फीके दरसाहि॥"

अंत मे इन दोहों के साथ "तीर्थानंद" को पूरा किया है—

"गौर साँवरे रसिक दोउ, यह दीजै सुखरास।
कबहुँ नागरीदास अब, तजै न ब्रज को बास॥

माघ अष्टदस सत जु दस, विच बृंदावन बास।
ग्रंथ तीर्थानंद यह, कियो नागरीदास ॥"

नागरीदास जी के बनाए ग्रंथ इतने हैं—

(१) सिंगारसार वा ब्रजलीला पद प्रसंग
(२) गोपीप्रेमप्रकाश (सं० १८००)
(३) पद प्रसंग माला
(४) ब्रजवैकुंठ तुला (सं० १८०१)
(५) ब्रजसार (सं० १७९९)
(६) भोर लीला
(७) प्रात रस मंजरी
(८) विहारचंद्रिका (सं० १७८८)
(९) भोजनानंदाष्टक
(१०) जुगल रस मंजरी
(११) फूल विलास
(१२) गोधन आगमन
(१३) दोहन आनंद
(१४) लग्नाष्टक
(१५) फाग विलास
(१६) ग्रीष्म विहार
(१७) पावस पचीसी
(१८) गोपी बैन विलास
(१९) रास रस लता
(२०) रैन रूपरस
(२१) शीतसार
(२२) इश्क चिमन
(२३) मजलिस मंडन
(२४) अरिल्लाष्टक
(२५) सदा की माँझ
(२६) वर्षाऋतु की माँझ
(२७) होरी की माँझ
(२८) कृष्णजन्मोत्सव कवित्त
(२९) प्रियाजन्मोत्सव कवित्त
(३०) माँझी के कवित्त
(३१) रास के कवित्त
(३२) चाँदनी के कवित्त
(३३) दिवारी के कवित्त
(३४) गोवर्धनधारन के कवित्त
(३५) होरी के कवित्त
(३६) फाग गोकुलाष्टक
(३७) हिंडोरा के कवित्त
(३८) वर्षा के कवित्त

(३९) भक्तिमगदीपिका (सं० १८०२)
(४०) तीर्थानंद (सं० १८१०)
(४१) फाग विहार (सं० १८०८)
(४२) बालविनोद (सं० १८०९)
(४३) सुजनानंद (सं० १८१०)
(४४) बनबिनोद (सं० १८०९)
(४५) भक्तिसार (सं० १७९९)
(४६) देहदसा
(४७) बैराग वल्ली
(४८) रसिकरत्नावली (सं० १७८२)
(४९) कलिबैरागवल्ली (सं० १७९५)
(५०) अरिल पचीसी
(५१) छूटकविधि
(५२) पारायण विधि प्रकाश (सं० १७९९)
(५३) सिखनख
(५४) नखसिख
(५५) छूटक कवित्त
(५६) चरचरियाँ
(५७) रेखता
(५८) मनोरथ मंजरी (सं० १७८०)
(५९) रामचरित्र माला
(६०) पद प्रबोध माला
(६१) जुगलभक्ति विनोद (सं० १८०८)
(६२) रसानुक्रम के दोहा
(६३) शरद की माँझ
(६४) साँझी फूल बीनन समेत सवाद
(६५) बसंत वर्णन
(६६) फाग खेलन समेतानुक्रम कवित्त
(६७) रसानुक्रम के कवित्त
(६८) निकुंज विलास (सं० १७९४)
(६९) गोविंद परचई
(७०) बनजनप्रशंसा (सं० १८१९)
(७१) छूटक दोहा
(७२) उत्सवमाला
(७३) पदमुक्तावली
(७४) बैन-विलास
(७५) गुप्तरस प्रकाश

} कृष्णगढ़ के कवीश्वरजी लिखते हैं कि इन दोनों ग्रंथों का नाम नागरीदासजी की ग्रंथावली में है परंतु यहाँ मिलते नहीं।

इनमे से जिनका समय ग्रथों मे दिया है उसे उद्धृत करते हैं।

मनोरथ मंजरी (नं० ५८)

दोहा

सबत मतरा मै असी, चौदस मंगलवार।
प्रगट मनोरथ-मजरी, बदि आसू अवतार॥

रसिकरत्नावली (नं० ४८)

दोहा

सत्तरै सै वइयासिए, भादो सुदि भृगुवार।
तिथि परिवा कीनी इहै, लीजो सत सुधार॥

बिहारचंद्रिका (नं० ८)

दोहा

सत्तरै सै अठ्यासिया, संवत सावन मास।
नव विहार यह चद्रिका, करी नागरीदास॥

कलिबैरागवल्लरी (नं० ४६)

दोहा

सत्तरा सै पच्याणवे, सातु सावण मास।
कलिवल्ली बैराग की, करी नागरीदास॥

भक्तिसार (नं० ४५)

कुंडलिया

सुख पायौ पूरन भयें ग्रंथ जु भाषा चार।
सतरा सै निन्नानवै द्वैज थौस गुरुवार॥
द्वैज थौस गुरुवार मास सावन मन भावन।
कृष्णपच्छ सुभ मंत्र संत जन श्रवन सुहावन॥
भक्तिसार उद्धार कियौ निज मन समुझायौ।
नागरीदास न कहूँ विमुख काहू सुख पायौ॥

पारायण विधि प्रकाश (नं० ५२)

दोहा

सत्तरै सै निन्नानवै, संबत सावन मास।
पारायन जु प्रकास विधि, कियौ नागरादास ॥

ब्रजसार (नं० ५)

दोहा

सत्तरै सै निन्नानवै, पोस जु सुदि रविवार।
नौमी नागरीदास यह, कियो ग्रंथ ब्रजसार ॥

गोपीप्रेमप्रकाश (नं० २)

दोहा

संबत अठारै सै सुकल, पच्छ जेठ सुभ मास।
गोपी-प्रेमप्रकाश यह, कियौ नागरीदास ॥

ब्रज वैकुंठतुला (नं० ४)

दोहा

संबत अठारै सै जु इक, दिन वसंत सुभ मास।
ब्रज-बैकुंठ तुला कियौ, ग्रंथ नागरीदास ॥

भक्तिमगदीपिका (नं० ३९)

दोहा

संबत अष्टदस सत जु द्वै, कार तीज गुरु वार।
रूप-नगर विचि कृष्णपच्छ, भयो ग्रंथ विस्तार ॥

फाग विहार (नं० ४१)

दोहा

संबत अष्टदस सत जु पुन, अष्ट वर्ष मधु मास।
ग्रंथ गंग-तटि कृष्ण-पच्छ, कियो नागरीदास ॥

जुगलभक्ति बिनोद (नं० ६१)

दोहा

अष्टादस सत अष्ट पुनि, संवत माघ सुमास ।
जुगल भक्ति गुन ग्रंथ यह, कियो नागरीदास ॥
निकट कमाऊँ पर्वतनि, विकट विटप की भीर ।
तहाँ ग्रंथ-रचना भई, नदी कौसिकी तीर ॥

बनबिनोद (नं० ४४)

दोहा

समत अठारह सौ जु नव, कृष्ण-पच्छ मधु मास ।
बन बिनोद फल ग्रंथ यह, कियो नागरीदास ॥

बालविनोद (नं० ४२)

दोहा

समत अष्टदस सत जु नव, मास अस्वनि भृगु-बार ।
तिथि पष्टमि अरु शुक्ल-पच्छ, रच्यौ ग्रंथ बिस्तार ॥

तीर्थानंद (नं० ४०)

दोहा

माघ अष्टदस सत जु दस, विथि वृंदावन वास ।
ग्रंथ तीरथानंद यह, कियौ नागरीदास ॥

सुजनानंद (नं० ४३)

दोहा

समत अष्टदस सत जु दस, बरसाने के बास ।
ग्रंथ सु-सुजनानंद यह, कियो नागरीदास ॥

बनजन प्रशंसा (नं० ७०)

दोहा

अष्टादस सत दस जु नव, संवत माघ सुमास ।
बन जन-प्रसंस ग्रंथ यह, कियो नागरीदास ।।

सबसे पहला ग्रंथ जो इनका मिला वह मनोरथमंजरी है जो सं० १७८० मे बना, दूसरा रसिकरत्नावली स० १७८२ मे, तीसरा बिहारचंद्रिका सवत् १७८८ मे बना ।

इस समय जैसी सुंदर और प्रौढ़ कविता आपकी है उसे हम अपने पाठकों को "बिहारचद्रिका" का एक अंश लेकर सुनाते हैं । इसी से वे सारे ग्रंथ का गौरव समझ लेंगे ।

"उज्जल पच्छ कि रैन चैन उज्जल रस दैनी ।
उदित भयौ उडुराज अरुन दुति मन हर लैनी ।।
महा कुपित ह्वै काम अस्त्र अरुहि छोड्यो मनौं ।
प्राची दिसि तें प्रजुलित आवति अगिनि उठी जनौं ।।
दहन मानपुर भए मिलन कौं मन हुलसावत ।
छावत छिपा अमंद चंद ज्यौं ज्यौं नभ आवत ।।
जगमगाति बन जोति सोत अमृतधारा से ।
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा से ।।
स्वेत रजत की रैन चैन चित मैन उमहनी ।
तैसी मंद सुगंध पौन दिनमनि दुख दहनी ।।
मधि नायक गिरिराज पदिक बृंदावन भूषन ।
फटिकसिला मनि शृंग जगमगति दुति निदूषन ।।
सिला सिला प्रति चंद चमकि किरननि छबि छाई ।
बिंब बिंब अंब कदंब झंब झुकि पायनि आई ।।

ठौर ठौर चहुँ फेर ढेर फूलन के सोहन।
करत सुगंधित पवन सहज मन मोहत जोहन॥
बिमल नीर निर्भरत कहूँ भरना सुख करना।
महा सुगंधित सहज बास कुमकुममद हरना॥
कहुँ कहुँ हीरन खचित रचित मंडल सुरासि के।
जटित नगन कहुँ जुगल खंभ भूलनि बिलासि के॥
ठौर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी।
बिहरत बिबिध बिहार तहाँ गिरि पर गिरिधारी॥

दोहा

कहत कहत कहँ लगि कहै, अथ कवि छबि अभिराम।
प्रिया कमल पद परम हित, धरयो रूपगिरि श्याम॥ १॥"

नागरीदासजी की सभा में निम्नलिखित कवि वर्तमान थे।

(१) प्रसिद्ध कवि वृंद* (जिनकी बनाई वृंदसतसई है) के, पुत्र वल्लभ जी। इनको महाराज नागरीदास के पिता महाराज राजसिंहजी ने "सुकवि" की पदवी दी थी, अतएव ये सुकवि वल्लभ कहलाते थे।

(२) पूरब की ओर के रहनेवाले सनाढ्य हरिचरणदासजी†। इनके बनाए ग्रंथ सभाप्रकाश, कवि-वल्लभ (इन दोनों ग्रथों में काव्यप्रकाश का ठीक ठीक उलथा किया है), बिहारी सतसई की "हरिप्रकाश" नामक टीका, रसिकप्रिया की टीका, कबि-प्रिया की टीका इत्यादि हैं।

(३) करौली के सनाढ्य हीरालालजी‡। इनका बनाया "सिर-

* वृंद—No 837—The Modern Literature of Hindustan

† हरिचरणदास—No 939—Do

‡ हीरालाल—No. 918—Do.

दार सुजस" नामक ग्रंथ है, जिसमें महाराज नागरीदासजी के अनुज महाराज बहादुरसिंह ने जब राज्य छीन लिया था और नागरीदासजी ने अपने पुत्र सरदारसिंहजी के साथ कुमाऊँ आदि प्रदेश मे जाकर मरहठों को लाकर अपना राज्य लिया उसका वृत्तांत लिखा है।

(४) मुंशी कवीरामजी, इनके मीर मुंशी थे, कवि भी थे।

(५) कल्लाह पन्नालाल जी, कवि थे।

(६) वैष्णव विजयचंदजी, कवि थे।

(७) बनीठनीजी, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है।

(८) दाहिवाँ विजयरामजी, कवि थे।

(९) बाहर के बहुतेरे कवि पंडित आते थे, जिनमें से नरवरगढ़ के राव उदयनाथजी बहुत प्रसिद्ध थे। इन्होंने नागरीदासजी के सिंह के शिकार का एक ग्रंथ बनाया है। इनमें से डाक्टर ग्रियर्सन और शिवसिंह ने केवल पहले लिखे तीन कवियों का यत्किञ्चित् वर्णन किया है परंतु प्राय: समय में भ्रम है और वर्णन भी नाम मात्र है।

श्रीवृंदावन-बास पर नागरीदास जी के हृदय में कैसा संतोष हुआ था यह उनके वनजन-प्रशंसा ग्रंथ के नीचे लिखे पद से स्पष्ट झलकता है।

"हमारी सबही बात सुधारी।
कृपा करी श्री कुंजबिहारिनि अरु श्री कुंजबिहारी।
राख्यो अपने वृंदावन मैं जिहि को रूप उँज्यारी॥
नित्त केलि आनंद अखंडित रसिक संग सुखकारी।
कलह कलेस न व्यापै इहि ठाँ ठौर विश्व तें न्यारी॥
नागरीदासहिं जनम जिवायौ बलिहारी बलिहारी॥ १॥"

"ब्रज संबंध" ग्रंथ से—

"साँचो मित्र गोपाल है मेरो परम पियारौ।
जिहिं दीनो ब्रजबास लै बैकुंठ तें भारौ॥
निज साधन को संग दयो नीके तें नीकौ।
जाके पटतर क्यों लगे सुख स्वर्ग को फीकौ॥
राज कलह के मूल को विष अमल छुटायौ।
नागरिया वृंदा विपुल रस अमृत प्यायौ॥ १॥"

हम इन महानुभाव प्रेमरस छके महात्मा का चरित्र उन्हीं के इस छप्पय के साथ समाप्त करते हैं।—

"धनि वह कुल धनि नगर धन्य वह देस सुमंडल।
धन्य खंड वह द्वीप धन्य वह सकल महीतल॥
धन्य धन्य सब लोक होत जेहि पावन पावन।
मुख रसना वह धन्य करत तिनको गुन गावन॥
जाकी महिमा कहि सकै को कवि नागर मध्य छित।
करत धन्य इन नैनि को जेहि उर प्रेमानंद नित"॥ १॥

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २—सं० १९५४]

---

(३) कविवर विहारीलाल*

"सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत मे छोटे लगैं घाव करैं गंभीर॥"

भाषाकविकुलचूड़ामणि कविवर विहारीलाल के दोहों ने, ऐसा कौन भाषाज्ञ सहृदय रसिक है जिसके हृदय पर अपनी मोहिनी छटा

* इस देश म इतिहास का यथार्थ आदर न होने से प्राचीन विषयों के समय निर्णय करने मे बड़ी ही कठिनता होती है। यहाँ के लोगों की रुचि केवल गुण ही को ग्रहण करने की ओर थी, गुणियो के चरित्र आदि पर विशेष ध्यान नहीं रहता था। इसी से जब किसी विषय का निर्णय करना होता है तब बड़ी ही कठिनता पड़ती है और फिर भी संदेह की छाया रह ही जाती है। यद्यपि मैंने बहुत कुछ सोच विचारकर इस लेख को लिखा है पर तो भी अभी संदेह इसमें विराजमान हुई है। परंतु यह विचारकर कि जब तक ये विषय विद्वानों के संमुख न रखे जायँगे ठीक निश्चय नहीं हो सकता, यह प्रकाशित किया गया। जिन महाशयों को इस विषय में कुछ ज्ञात हो कृपा करके प्रकाशित करें जिसमें इसका यथार्थ निर्णय हो सके।

विहारी और केशवदास के संबंध में दो आपत्तियाँ प्रधान हैं। एक तो यह कि भाषा दोनों की नहीं मिलती, दूसरे ये दोनों ही अत्यंत प्रसिद्ध कवि थे। यदि केशवदास विहारी के पिता होते तो अवश्य ही लोक में प्रसिद्धि होती।

पहली आपत्ति के विषय में तो यही कहना यथेष्ट होगा कि केशवदास का सारा समय बुंदेलखंड ही में कटा परंतु विहारी का अधिकांश समय ब्रज में। तिस पर भी बुंदेलखंडी शब्दों और मुहाविरों ने विहारी का साथ न छोड़ा। पूज्यपाद बाबू गोपालचंद्र (गिरिधरदास) और भारतेंदुजी एक ही स्थान में आजन्म रहे, परंतु इन दोनों की भाषा मे उससे अधिक अंतर है जितना कि केशवदास और विहारी की भाषा में है। सभी कवि बाणभट्ट और उनके पुत्र के समान नहीं होते और फिर भी विज्ञ लोग दोनों की भाषा को पृथक करके कादंबरी में दिखला ही देते हैं।

न झलकाई हो ? जिसके हृदय मे भाषा कविता का कुछ भी स्थान है उसके हृदय में अवश्य ही बिहारी के दोहे स्वर्णसिंहासन पर विराजमान हैं। श्री गोस्वामी राधाचरणजी ने खूब कहा है कि "यदि 'सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास' हैं तो बिहारी पीयूषवर्षी मेघ है जिसके उदय होते ही सब का प्रकाश आच्छन्न हो जाता है, फिर जिसकी वृष्टि से कवि-कोकिल कुहकने, मनोमयूर नृत्य करने, और चतुर चातक चहकने लगते हैं, फिर बीच बीच मे जो लोकोत्तर भावों की विद्युत् चमकती है, वह हृदय छेद कर जाती है।"

खेद का विषय है कि इस इतने बड़े कविराज के जीवनचरित्र का वृत्तांत बहुत ही कम प्रसिद्ध है और जो कुछ प्रसिद्ध है वह भी ठीक नहीं। इतना पता तो ठीक ठीक लगता है कि बिहारीलाल महाराज जयसिंह के दर्बार में थे और संवत १७१९ (१६६२ ई०) में अपनी सुप्रसिद्ध सतसई को पूरा किया था और महाराज जयसिंह ने उन्हें एक एक दोहे पर एक एक अशर्फी पारितोषिक दी थी।

दूसरी आपत्ति का उत्तर यही हो सकता है कि इतिहास की ओर अरुचि होने से यह बात कुछ असंभव नहीं है कि ऐसी बात प्रसिद्ध न हो सकी हो। दूसरे केशव की प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि बुंदेलखंड से हुई थी और बिहारी की ब्रज से। उस समय रेल तार डाक का प्रबंध तो था नहीं, संभव है जिसकी जहां से प्रसिद्धि हुई हो उसे लोगो ने वहीं का अनुमान कर लिया हो। तीसरे संभव है कि बिहारी ने इस बात को प्रकाशित करना अनुचित समझा हो कि मेरे पूर्वजों ने ओड़छा में इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी और अब मुझे अनुपयुक्त स्वामी पाकर उसे छोड़ना पड़ा। इसमे अपनी और अपने पूर्व अन्नदाता की निंदा समझकर इसे दबा रखा हो। चौथे बिहारी को आत्मश्लाघा से चिढ़ थी, उनके हृदय ने यह स्वीकार न किया हो कि अपने पूर्वजों के बल पर मैं गौरव प्राप्त करूँ।

अस्तु, जो कुछ हो यह सब अनुमान ही अनुमान है। निश्चय कौन कह सकता है। परंतु इतना अवश्य है कि इसके पक्ष में जितने प्रमाण उतने विपक्ष में नहीं हैं।

"शिवसिंहसरोज"कार तथा डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने बिहारीलाल को ब्रज का चौबे माना है। परंतु यह ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि स्वयं बिहारीलालजी लिखते हैं "जनम लियो द्विजराज कुल सुबस बसे ब्रज आय। मेरे हरौ कलेस सब केशव केशवराय।" इसकी टीका हरिचरणदासजी करते हैं "केशव बिहारी को पिता और केशवराय भगवान, द्विजराज चंद्र ताके कुल में जो भगवान प्रगट भए सोई द्विजराज ब्राह्मणश्रेष्ठ के कुल मे अब ब्रज मे आए भए हैं, हमारे कलेश को हरो"। लालचंद्रिका टीका मे लल्लूलालजी लिखते हैं "श्लेषअर्थ केशव पिता अरु हरि केशवराय। वे द्विजकुल ये चंद्रकुल प्रगटे अर्थ जताय।" गोस्वामी श्रीराधाचरणजी अनुमान करते हैं कि केशव भगवान, केशवराय बिहारी के पिता, क्योंकि मथुरा मे जो भगवान की मूर्त्ति है वह केशवदेव नाम से प्रसिद्ध है। "राय" शब्द से वह अनुमान करते हैं कि ये भाट थे क्योंकि राय भाटों की पदवी है और भाट जाति ब्राह्मण से क्षत्रियों मे उत्पन्न होने के कारण अनुलोमों मे अपनी गणना करके अपने को द्विज मानते हैं। उक्त गोस्वामीजी यह भी अनुमान करते हैं कि केशवराय ही बिहारी के विद्यागुरु भी थे क्योंकि और किसी गुरु का नाम नहीं मिलता और यह दोहा सतसई के प्रायः अंत में पाया जाता है।

मेरे चित्त में इस विषय में बहुत दिनों से संदेह चला आता था और कुछ निश्चय न होता था कि क्या ठीक है। बिहारीलाल ब्राह्मण थे या भाट? ब्राह्मण थे तो ब्रज के चौबे या और कहीं के? केशवराय कौन? क्या सुप्रसिद्ध भाषासाहित्यकार केशवदास ही तो नहीं इनके पिता थे?

एक दिन मैं एशियाटिक सोसाइटी के लिये हिंदी पुस्तकों की नोटिस करा रहा था कि केशवदासजी रचित "विज्ञानगीता" हाथ

मे आई। उसमें देखा तो विदित हुआ कि केशवदास जी प्रायः अपने को केशवराय भी लिखते थे। केशवदास जी सनाढ्य ब्राह्मण बुंदेलखंड उड़छा के रहनेवाले थे और राजा मधुकरशाह के बेटे इंद्रजीतसिंह की आज्ञा से 'रसिकप्रिया' और 'रामचंद्रिका' और इंद्र-जीत के भाई वीरसिंह की आज्ञा से 'विज्ञानगीता' तथा प्रवीनराय पातुर के लिये 'कविप्रिया' बनाई थी। केशवदासजी विज्ञानगीता मे अपना वर्णन यों करते हैं।

"केशव तुंगारन्य मे नदी बेतवै तीर।
नगर ओड़छो बहु बसै पंडित मंडित भीर॥
तहाँ प्रकास सों निवासु मिश्र कृष्णदत्त को।
अनेक पंडिताग्रनी सुदास विष्णुभक्त को॥
सुकासिनाथ तासु पुत्र विज्ञ कासिनाथ को।
सनाढ्य कुंभवार अंस बंस वेदव्यास को॥
तिनके केशवराय सुत भाषा कवि मति मंद।
करी ज्ञानगीता प्रगट श्री परमानँद कंद॥
सोरह सै बीते बरस विमल सतसठा पाइ।
भई ज्ञानगीता प्रगट सबहिन को सुखदाइ॥"

इन्होंने रसिकप्रिया संवत् सोलह सौ अडतालीस में और राम-चंद्रिका सोलह सौ अट्ठावन में बनाई। केशवदासजी का प्रथम स्थान टेहरी बतलाते हैं फिर ओड़छे में कहते हैं कि राजा मधुकरशाह के दर्बार में आ रहे थे, परंतु विज्ञानगीता मे केशवदासजी ने लिखा है कि कृष्णदत्त मिश्र को राजा मधुकरशाह ने पुराण की वृत्ति दी थी। उनके पुत्र काशीनाथ और उनके केशवदास जी हुए। राजा इंद्रजीत के यहाँ प्रवीनराय पातुर एक वेश्या थी। वह बड़ी सुंदरी और कविता में निपुण थी। बादशाह अकबर ने उसको बुलवाया, राजा

इंद्रजीत ने न भेजा, इस पर बादशाह ने जुर्माना किया, तब केशवदासजी ने राजा बीरबल को जाकर यह सवैया सुनाया—

"पावक पच्छि पशू नग नाग नदी नद लोक रच्यो दशचारी ।
केशव देव अदेव रच्यो नरदेव रच्यो रचना न निवारी ॥
कै नरनाह बली बरबीर भयो कृतकृत्य महा व्रतधारी ।
दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दोऊ करतारी ॥"

बीरबल ने सिफारश कर जुर्माना माफ कराया पर प्रवीनराय को हाजिर होना पड़ा। बादशाह ने प्रवीनराय से कहा—"युवन चलत तिय देह ते चटकि चलत केहि हेतु।" प्रवीनराय ने उत्तर दिया—"मनमथ बारि मसाल कौं सैंति सिहारो लेतु ॥" फिर बादशाह ने कहा—"ऊँचे ह्वै सुर बस किए सम ह्वै नर बस कीन्ह।" प्रवीनराय ने कहा "अब पताल बलि बस करन उलटि पयानो कीन ॥" प्रवीनराय ने बादशाह से निवेदन किया "विनती राय प्रवीन की सुनिए साह सुजान (जहान ?)। जूँठी पातर भषत हैं बायस बारी स्वान ॥" बादशाह ने प्रसन्न हो उसे बिदा किया। केशवदासजी ने लिखा है कि राजा इंद्रजीत ने मुझे २१ गाँव दिए। केशवदासजी की कविप्रिया और रसिकप्रिया ही को लोग प्रथम साहित्य के नियमों का ग्रंथ मानकर उन्हें साहित्य का आचार्य्य मानते हैं और उसे पढ़कर लोग कविता करते हैं, परंतु एक ग्रंथ साहित्य का हिततरंगिणी नामक* मित्रवर श्री बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर) जी के हाथ आया है जो संवत् १५९८ का बना है और एक ग्रंथ विष्णुविलासीलाल रचित विष्णुविलास पूज्यपाद भारतेंदुजी के पुस्तकालय में वर्तमान है जो संवत् १६८० का लिखा हुआ है परंतु बनन का समय नहीं दिया है। केशवदासजी की कविता के विषय में ये दोहे प्रसिद्ध हैं—

* यह ग्रंथ भारतजीवन प्रेस बनारस में छप गया है।

"सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास॥
उत्तम पद कवि गंग को कविता को बलबीर।
केशव अर्थ गँभीर को सूर तीन गुनधीर॥"

किसी ने कहा है कि केशवदासजी की कविता नारियल के समान है कि ज्यों ज्यों छीलते जाइए, गरी निकलती आवे।

अब यह तो निश्चय हुआ कि केशवदासजी का नाम केशवराय भी था और वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। 'राय' शब्द से भाट का संदेह दूर हुआ। एक प्राचीन दोहा कवि बिहारीलाल के विषय में प्रसिद्ध है—

"जनम ग्वालियर जानिए खंड बुँदेले बाल।
तरुनाई आई सुभग मथुरा बसि ससुराल॥"

इस दोहे को उक्त गोस्वामीजी ने भी उद्धृत किया है। अब मेरा अनुमान यह कहने लगा कि बिहारीलालजी का ननिहाल या तो ग्वालियर मे था या केशवदासजी पहले ग्वालियर मे थे और वहाँ इनका जन्म हुआ फिर बाल्यावस्था बुंदेलखंड मे आई अर्थात् ओड़छे में रहे और युवावस्था मथुरा में आई। यहाँ इनकी ससुराल थी। इस दोहे से और बिहारी के "जनम लियो द्विजराज कुल" से मेल मिल गया। समय भी ठीक मिलता है संवत् सोलह सै सरसठ में केशवदास ने 'विज्ञानगीता' बनाई और संवत् १७१९ (संवत् ग्रह शशि जलधि छिति छठ तिथि वासर चंद। चैत मास पख कृश्न में पूरन आनँदकंद) में बिहारी ने सतसई संपूर्ण की। सतसई एक समय मे नहीं बनी वरंच बिहारी के जन्म भर के दोहों का संग्रह है और कई वर्षों में बनी है। यह बात प्रसिद्ध भी है और सतसई के देखने से भी यह प्रगट होता है। शिवाजी से जयसिंह ने संवत्

१७११ (१६६५ ई०) में दक्षिण मे युद्ध को रोक औरंगजेब से संधि कराई थी। उस समय विहारीलाल ने यह दोहा कहा था—

"घर घर हिंदुनि तुरकिनी, देति असीस सराहि।
पतिन राखि चादर चुरी, तैं राखी जैसाहि।"

इससे भी और पीछे काबुल पर सन् १६२८ ई० मे जयसिंह ने चढ़ाई की थी। उस समय विहारी ने कहा था—

"यों दल काढ़े बलख तें, तैं जयसाह भुआल।
बदन अघासुर के परे, ज्यों हरि गाय गुआल॥"

इसके बहुत पहले जब विहारीलाल जयसिंह के यहाँ गए, यह दोहा—

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहि काल।
अली कली ही सों रम्यो, आगे कौन हवाल॥"

लिखकर भेजा था। ये सब दोहे सतसई में संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त सतसई का क्रम एक सा कहीं नहीं मिलता। जितनी प्रतियाँ मिलेंगी सबमें भेद होगा। महाराज जयसिंह ने ता० १० जुलाई सन् १६६७ (संवत् १७२४) मे इस लोक से प्रस्थान किया था। उनके मरने के पाँच वर्ष पूर्व ही सतसई के दोहे संग्रह हो गए थे, फिर कुछ पता नहीं लगता कि उनके पीछे विहारी कहाँ रहे और क्या करते रहे और कौन सी कविता रची।

यद्यपि विहारी की युवावस्था ब्रज में आई थी और ब्रजभाषा के वे पूर्ण ज्ञाता हो गए थे तथापि बुँदेलखंडी भाषा की बू नहीं गई थी। उदाहरण के लिये कुछ दोहे उद्धृत किए जाते हैं।

"मोर चंद्रिका श्यामसिर चढ़ि कत करति गुमान।
लखबी पायन तर लुठत सुनियत राधामान॥
कंजनयनि मंजन किए बैठी ब्योरति बार।
कच अँगुरिनि बिच दीठि दै निरखति नंदकुमार॥

छुटै न लाज न लालचौ प्यौ लखि नैहरगेह ।
लटपटात लोचन खरे भरे सकोच सनेह ॥
पिय बिछुरन को दुसह दुख हरपि जाति प्यौसाल ।
दुरजोधन लौं देखियत तजति प्रान यह बाल ॥
उठि ठकठक इतनो कहा पावस के अभिसार ।
देखि परी यों जानिबी दामिनि घन अँधियार ॥
कौन भाँति रहिहै विरद अब देखिबी मुरारि ।
बीधे मोसों आनि कै गीधे गीधहि तारि ॥

दूसरा प्रमाण यह है कि विहारी जिस राजदर्बार मे रहते थे और जहाँ उनके पूर्वजों ने आदर पाया था वहाँ कोई अनुपयुक्त राजा गद्दी पर बैठा और किसी अयोग्य पुरुष का आदर बढ़ गया तथा विहारी की कविता को समझनेवाला कोई न रहा। तब विहारी ने उस देश को दुखित होकर छोड़ दिया और महाराज जयसिंह के दर्बार मे चले आए। विहारी के हृदय का भाव नीचे लिखे दोहों से स्पष्ट प्रगट होता है।

"बसै बुराई जासु तन ताही को सनमान ।
भलो भलो करि छोड़िए खोटे ग्रह जप दान ॥
बड़े न हूजै गुनन बिनु बिरद बड़ाई पाय ।
कहत धतूरे सों कनक गहनो गढ़ो न जाय ॥
संगति सुमति न पावहीं .परे कुमति के धंध ।
राखौ मेलि कपूर में हींग न होति सुगंध ॥
सबै हँसत करतार दै नागरता के नाँव ।
गयो गरब गुन को सबै बसे गँवारे गाँव ॥
अति अगाध अति औथरे नदी कूप सर बाय ।
सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय ॥

मीत न नीत गलीत है लै धरिए धन जोरि।
खाए खरचे जौ जुरै तौ जोरिए करोरि॥
जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार॥"

(इस दोहे मे पहले के राजा से वर्तमान राजा के भेद को दिखलाया है)

अरे हस या नगर मे जैयौ आपु बिचार।
कागनि सों जिन प्रीति करि कोयल दई बिडार॥
वे न इहाँ नागर बड़े जिन आदर तो आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई गाँव गुलाब॥
बहँकि बड़ाई आपनी कत राचति मति भूल।
बिनु मधु मधुकर के हिए गडै न गुडहर फूल॥

(मेरी समझ मे बिहारी ने मधुकरशाह ओड़छा के सुयोग्य राजा से अयोग्य वंशधर पर लक्ष्य करके यह दोहा कहा है।)

मरत प्यास पिंजरा परयो सुआ समै के फेर।
आदर दै दै बोलिए बायस बलि की बेर॥
नहि पावस ऋतुराज यह तजि तरवर मति भूल।
अपत भए बिनु पाइहैं क्यों नव दल फल फूल॥

(यह कदाचित् राज्य छोड़ने के समय कहा हो।)

शीतलता अरु सुगँध की महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो सोरा जानि कपूर॥
जो सिर धरि महिमा मही लहियत राजा राव।
प्रगटत जड़ता आपनी मुकुट पहिरियत पाँव॥
चले जाहु ह्याँ को करै हाथिन को ब्यौपार।
नहिं जानत यहि पुर बसैं धोबी और कुम्हार॥

करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि ।
रे गंधी मतिअंध तू अतर दिखावत काहि ।।

अस्तु, मेरे अनुमान में विहारीलाल मनाढ्य ब्राह्मण ओड़छा-निवासी परम विद्वान् मिश्र कृष्णदत्त के प्रपौत्र, काशीनाथ के पौत्र और भाषा कवि केशवदास के पुत्र थे। ओड़छा में अपनी कविता का यथार्थ आदर न पाकर इन्होंने उसे छोड़ा। कविकुलगुरु मथुरा अपनी ससुराल में जा बसे। ये परम अनुरागी ब्रजलीला के अंतरंग उपासक थे। इन्होंने कहा है—

"सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ।।"

मथुरा से आने पर जयपुर गए। जयपुर में उस समय महाराज मानसिंह के बेटे महाराज जयसिंह राज्य करते थे। उक्त महाराज अपनी आगतप्राययौवना किसी रानी के प्रेम में ऐसे मुग्ध हो रहे थे कि राजकाज सब छोड़ रात दिन रनिवास ही में निवास करते थे। बिहारी ने चट यह दोहा लिखकर महाराज के पास भेजा—

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों रम्यो, आगे कौन हवाल ।।"

महाराज अत्यंत प्रसन्न होकर बाहर निकल आए और एक सौ मुहर इन्हें इनाम दी, तथा और भी दोहे इन्हें सुनाने को कहे। इन्होंने समय समय पर दोहे सुनाए और इनाम पाया। तभी से महाराज ने इन्हें बराबर अपने साथ रखा। जब जब लड़ाई पर गए, ये बराबर साथ थे। दक्षिण की लड़ाई (संवत् १७११) में इनके साथ रहने का प्रमाण "घर घर हिंदुनि तुरकिनी" और काबुल की चढ़ाई के समय "यों काढ़े दल बलख तें" ये दोहे हैं। सं० १७१९ में इन्होंने सात सौ दोहे बन जाने पर सबका संग्रह करके सतसई नाम रख-

कर उसे पूरा किया। कुछ दोहे सात सौ के ऊपर भी इनके मिलते हैं। सतसई के दोहे ऐसे अनूठे और अद्भुत बने कि इसी पर अक्षर कामधेनु की कहावत ठीक ठीक घटती है। ४८ मात्रा के दोहा ऐसे छोटे छंद मे इतनी सुंदरता से इतने भाव का भर देना और उन भावों का मूर्त्तिमान आंख के सामने खड़ा कर देना काम विहारीलाल ही का था। अहा!

"किती न गोकुल कुलवधू, काहि न केहि सिख दीन।
कौने तजी न कुलगली, ह्वै मुरली सुर लीन॥"

इस दोहे मे समुद्र को घड़े मे भरकर विहारी ने अनहोनी को होनी कर दिखाया।

इसमें इतने भाव और अलंकार भरे हैं कि यदि केवल इसे ही कोई जी लगाकर पढ़ ले तो भाषा का अच्छा कवि हो जाय।

इस सतसई पर बहुत सी टीकाएँ हैं। "शिवसिंहसरोज"-कार लिखते हैं कि इस पर १८ तिलक तक मैंने देखे हैं। डाक्टर ग्रियर्सन इस पर इतनी टीकाओं का नाम बतलाते हैं—(१) चंद्र, (२) गोपाल शरण, (३) सूरति मिश्र, (४) कृष्ण, (५) करण, (६) अनवर खाँ, (७) जुल्फेकार, (८) यूसुफ खाँ, (९) रघुनाथ, (१०) लाल, (११) सरदार, (१२) लल्लूजीलाल, (१३) गंगाधर, (१४) रामबक्स। इनमे से सर्वोत्कृष्ट सूरति मिश्र की टीका है। और भी कई टीकाएँ छूट गई हैं जिनमें से हरिचरणदास और ठाकुर की प्रसिद्ध हैं।

इस पर कुंडलिया भी कई कवियों ने की है जिनमें पठान सुलतान की सबसे अच्छी मानी जाती है परंतु वह पूरी नहीं मिलती। लोग अनुमान करते हैं कि पूरी बनी भी नहीं थी। पंडित जोखूराम की कुंडलिया भी प्रसिद्ध है। पूज्यपाद भारतेंदुजी ने कुंडलिया

बनानी आरंभ की थी परंतु वह सौ दोहों से अधिक पर न बनी थी कि बीच ही में कई विघ्नों के कारण वह कार्य्य रुक गया। उसका नाम सतसई शृंगार है।

परमानंदजी कवि ने इसका अनुवाद संस्कृत में दोहा छंदों में किया है और संस्कृत ही में उस पर टीका भी की है। यह ग्रंथ भी बहुत ही सुंदर बना और शृंगार-सप्तशती नाम से भारतेंदुजी ने छपवाया था तथा उक्त कवि को पाँच सौ रुपया पारितोषिक भी दिया था।

सतसई में जो क्रम दोहों का अब मिलता है वह कहते हैं कि शाहजादा आजमशाह के लिये संगृहीत हुआ था और इसी से इसको अजीमशाही भी कहते हैं।

"शिवसिंहसरोज"कार लिखते हैं कि इनकी देखादेखी कइयों ने सतसई बनाई परंतु सब में विक्रम सतसई और चंदन सतसई कुछ अच्छी बनी। कोई कोई कहते हैं यह सतसई संस्कृत के "गोवर्धन सप्तशती" के ढंग पर बनी। जो हो, यह सतसई भाषा कविता की टकसाल है।

कवि बिहारीलाल का स्वभाव बड़ा ही उच्च और खरा जान पड़ता है। इन्होंने भाटों की भाँति झूठी खुशामद से अपने ग्रंथ को नहीं भरा है। जिस महाराज जयसिंह ने इनको इतना आदर और धन दिया उनकी प्रशंसा में केवल ये ही कई एक दोहे लिखे हैं जो यहाँ प्रकाशित किए जाते हैं—

"चलत पाय निगुनी गुनी धन मनि मुक्तामाल।
भेट होत जयसाह के भाग चाहियत भाल॥
रहत न लखि जयसाह मुख लखि लाखन की फौज।
जाँचि निराखर हूँ चलैं ले लाखन की मौज॥
प्रतिबिंबित जयसाहदुति दीपति दर्पन धाम।
सब जग जीतन को करयो काम ब्यूह मनु काम॥

अनी बड़ी उमड़ी लखैं असि बाहक भट भूप।
मंगल करि मान्यो हियैं भौ मुखमंगल रूप ॥

जयसिंह के साथ ये रहा करते थे, संभव है कि बादशाह औरंगजेब के दर्बार मे भी अवश्य ही गए होंगे, परंतु उनकी प्रशंसा में कुछ भी नहीं लिखा है।

विहारी श्रीवृंदावनविहारी के अंतरग विहार के उपासक थे परंतु उनका हृदय उदार भावों से परिपूर्ण था, मत मतांतर के झगड़ों और दुराग्रह को ये अच्छा नहीं समझते थे, शुद्ध प्रेमोपासक थे। उनके ये दोहे इसके प्रमाण हैं—

"जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा साँचे राँचे राम ॥
अपने अपने मत लगे बाद मचावत सोर।
ज्यों त्यों सब ही सेइवौ एकै नंदकिसोर ॥"

विहारी का अल्हड़पन भगवान् से भी चलता था। आप कहते हैं—

"मोहि तुम्हे बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज।
अपने अपने बिरद की दुहुनि निबाहत लाज ॥
समय पलटि पलटै प्रकृति को न तजै निज चाल।
भो अकरुन करुनाकरन यह कपूत कलिकाल ॥"

विहारी संस्कृत के पूरे ज्ञाता थे यह तो उनकी कविता से झलकता ही है परंतु फारसी के भी विद्वान् रहे हों तो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि फारसी के शब्द बड़े ही सौंदर्य और मौके से रखे हैं।

"मानहुँ बिधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोंछन को किए भूषन पायंदाज ॥

सब ही तन समुहाति छिन चलति सबनि दै पीठि।
वाही तन ठहराति इक किबिलनुमा लौं दीठि॥"

मुहावरे और उत्प्रेक्षा के तो विहारीलाल बादशाह थे। हिंदी मे ऐसी बोलचाल और ऐसे गठे हुए वाक्य किसी की कविता मे नहीं पाए जाते। उर्दू के कविकुलभूषण नसीम और अनीस भी कदाचित् बोलचाल में इनके सामने न ठहर सकेंगे।

विहारी ने अपने दोहों में प्राय: सभी अलंकारो तथा साहित्य के भेदों के उदाहरण दिए हैं। हरिचरणदासजी ने प्राय: इनके अलंकारों को कविप्रिया व रसिकप्रिया के वाक्यों से प्रमाणित किया है। परंतु साथ ही शांत रस तथा उपासना के जो थोड़े से दोहे इनके मिलते हैं वे भी कुछ कम नहीं हैं। नीरस वर्णन में भी रस ने विहारी की लेखनी का साथ न छोड़ा—

"गिरि तें ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पशु नरनि कौं प्रेमपयोधि पगार॥"

नीतिविषयक भी कुछ थोड़े से दोहे हैं। उस समय जब कि बड़े बड़े गुणग्राहक थे, और जिस समय का वर्णन बराबर सुनते हैं कि अमुक कवि को अमुक बादशाह वा राजा ने लाखों ही दिया उस समय भी विहारीलाल लिखते हैं कि—

"थोरे ही गुण रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भए आजु कालिह के दानि॥"

तो फिर इन दिनों के दानियों से तो परमेश्वर ही रक्षा करे।

अब हम आप लोगों का समय विशेष नष्ट नहीं करना चाहते, क्योंकि सच तो यह है कि विहारी की कविता की बहुत बड़ाई करना मानों उनका अपमान करना है; जो रस और आनंद उनकी

कविता मे है उसे वर्णन करने के लिये कदाचित् कोष मे शब्द ही न मिलेंगे।

यह सब अनुमान ही अनुमान पर लिखा गया है। इसलिये इसमे जो कुछ भूल चूक हो उसे क्षमा करके इस विषय में जो महाशय कुछ जानते होंगे और कृपा करके प्रकाशित करेंगे वे मेरे ही क्या, समस्त भाषारसिकों के धन्यवाद-भागी होंगे।

इस लेख को उक्त कवि के दोहे के साथ समाप्त करता हूँ।

''हरि कीजत तुम सों यहै बिनती बार हजार।
जिहि तिहि भाँति डरयो रहौं परयो रहौं दरबार॥''

[संवत् १९५२]

---

(४) आर्य चरित्र*

(क) कविगुरु वाल्मीकि

कविगुरु वाल्मीकिजी ने कब और कहाँ जन्म ग्रहण किया था यह निरूपण करना कठिन है। उनका प्रकृत नाम रत्नाकर था। रत्नाकर का जन्म उत्तम ब्राह्मण कुल मे हुआ था, परंतु बहुत बड़ी अवस्था तक उनका चरित्र अत्यंत दूषित रहा। एक अत्यंत नीच ज़ाति की स्त्री के साथ विवाह करके रत्नाकर ने गृह परित्याग किया। हाथ में धनुषबाण लेकर वन वन मे घूमा करते और सुयोग पाकर पथिकों का सर्वस्व लूट लेते थे। यही पापवृत्ति ही उनकी जीवन-वृत्ति थी।

एक दिन रत्नाकर दूर ही से कई एक तपस्वियों को आते देखकर अपनी दुष्प्रवृत्ति साधन करने की इच्छा से दौड़ा, और ललकारा— "खबरदार कहाँ जाते हो अब आगे न बढ़ना"। ऋषिगण रत्नाकर की भयंकर मूर्त्ति और कठोर स्वर सुनकर डर गए परंतु उपायांतर न देखकर विनयपूर्वक बोले—'महाशय आपको यज्ञोपवीतधारी देखने से बोध होता है कि आप ब्राह्मण हैं। फिर आप ऐसे भयानक वेष से क्यों हैं और क्यों ऐसे कठोर वाक्य मुँह से निकालते हैं? यह तो निश्चय ही है कि आपका कोई कुअभिप्राय नहीं है।" रत्नाकर ने कहा—"हाँ हम हैं तो ब्राह्मण ही पर स्त्री पुत्र आदि परिवार से वेष्टित हैं उन्हीं के भरण पोषण के लिये धनुषबाण लिए वन वन घूमा करते हैं और पथिक देखते ही उसका सर्वस्व लूट लेते हैं।

* यह लेखावली संवत् १९४३ में विद्याविनोद में बँगला से अनुवादित होकर प्रकाशित हुई थी।

आज बड़े भाग से तुम लोगों से भेंट हुई है। अच्छा अब तुम्हारे पास जो कुछ हो सीधे से रख दो नही तो फिर अभी हमारा विक्रम देखोगे।" ऋषियों ने कोई उपाय न देखकर कहा—"तुम्हारे कहने के अनुसार हम लोग अपना सर्वस्व देने को प्रस्तुत हैं पर हमारी एक बात का उत्तर तुम्हे देना होगा। तुम जिनके लिये हाय हाय करते हो और ऐसे घृणाकर कार्य मे प्रवृत्त हुए हो वे लोग क्या तुम्हारे इस पाप कर्म के भागी होकर परलोक मे तुम्हारी नरकयातनी मे कुछ भी लाघव करेगे? तुम घर से जाकर पूछ आओ। यदि वे लोग तुम्हारे पाप के भागी होना स्वीकार करे तो बिना बल प्रकाश किए ही हम अपना सर्वस्व तुम्हें दे देंगे। जब तक तुम न आओगे हम लोग यहीं रहेगे। यदि विश्वास न हो तो हम लोगों को बाँधकर छोड़ जाओ।" यह सुनकर रत्नाकर को कुछ चिंता उदय हुई और मैं पापकर्म करता हूँ यह कुछ कुछ समझ मे आया। तब वह घरवालो का मनोगत भाव जानने के लिये चला।

घर आकर स्त्री और बेटो को बुलाकर कहा—"हम तुम लोगों से एक बात पूछने आए हैं, सच कहना, खबरदार झूठ न बोलना।" उन लोगों के सच कहने की प्रतिज्ञा करने पर रत्नाकर ने पूछा—"हम वन वन नित्य घूमकर बहुतेरे लोगों को लूटा करते हैं जिसमें प्रायः बहुत लोगों को जान से भी मारना पड़ता है। इस प्रकार हम जो कुछ लाते हैं वह अकेले नहीं खा जाते तुम लोगों को बाँटकर खाते हैं, वरंच तुम्हीं लोगों के लिये हमको यह पापवृत्ति अवलंबन करनी पडी। अब हम यह पूछते हैं कि इसका फल अकेले हमी को भोगना पड़ेगा या तुम लोग भी इसके साथी होगे?" रत्नाकर की बात सुनकर उन लोगो ने उत्तर दिया—"हम लोग तुम्हारे अधीन हैं, हम लोगों का प्रतिपालन करना तुम्हारा मुख्य कर्तव्य है, क्योंकि

जब तुमने ब्याह किया था उसी समय भरण-पोषण की प्रतिज्ञा की थी और जब बेटा जन्माया तो उसकी रक्षा भी तुम्हारे ही सिर आई। उसके लिये तुम पाप करो या पुण्य हम लोग क्यों उसका अंश अपने सिर लेंगे ? हाँ तुम्हारे परिवार के होने से तुम्हारे कर्मानुसार लोक-समाज में घृणित या पूजित अवश्य हो सकते हैं।" घर के लोगों का उत्तर सुनकर रत्नाकर को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने समझा कि हम कैसे भयानक पापाचारी है।

रत्नाकर चटपट घर बार छोड़ ऋषियों के पास आया और धनुष बाण दूर फेंककर उन लोगों के पैरों पर गिरकर साश्रुलोचन दीन बचन से बोला—"हे दयालु महर्षिगण, हम बड़े नारकी हैं। हमारे बराबर दुराचारी संसार में कोई न होगा। आज आप लोगों की कृपा से हमें जान पड़ा कि इतने दिन हमने कैसे दुष्कर्म में खोए। अब दयाकर अपने अनुरूप कार्य कीजिए। साधुसमागम का फल हमें प्रत्यक्ष मिले। ऐसा उपाय कीजिए जिसमें घोर नरक से हमारी जान बचे। सिवाय आप लोगों के अब हमें दूसरी गति नहीं है।" दयालु-हृदय ऋषियों ने रत्नाकर की आरत बानी सुनकर आपस में विचार किया—"यद्यपि यह दुर्वृत्त साधु-समाज के उपेक्ष्य है परंतु जब कि अनुतप्त होकर शरण आया है तो सदुपदेश द्वारा इसका उद्धार करना कर्तव्य है।" रत्नाकर से कहा—"पहले तुमको मन की एकाग्रता और पवित्रता संपादन करनी चाहिए क्योंकि बिना इसके उपदेश से कोई फल न होगा इसलिये थोड़े दिन तक राम नाम जपो"। रत्नाकर के मुँह से राम के बदले आम निकलने लगा। उसकी जीभ ऐसी जड़ताभावापन्न हो गई थी कि किसी प्रकार "राम"। शब्द न निकल सका। तब ऋषियों ने उलटकर अर्थात् "मरा मरा" कहना सिख-लाया। राम नाम मुँह से न निकलने से रत्नाकर को और भी

घृणा उदय हुई। वह आहार निद्रा छोड़कर रात दिन रामनाम-जप और इद्रिय-संयम करने लगा। ऐसा अनन्यमना होकर योग साधन करने लगा कि शरीर जड़ पदार्थवत् निश्चल हो गया। पुतिकाओं (दीमकों) ने जड़ पदार्थ के भ्रम से उसके शरीर मे वल्मीक बना लिया परतु उसे कुछ न जान पड़ा।

कुछ काल के पीछे रत्नाकर को उपदेश देने की इच्छा से ऋषि लोगों ने आकर देखा कि रत्नाकर एकाग्र चित्त होकर जप मे लगा है और उसके शरीर में वल्मीक बन गई है। यह अद्‌भुत व्यापार देखकर वे लोग बहुत ही प्रसन्न हुए और उसकी बड़ो प्रशंसा करने लगे, और यथोचित सदुपदेश और शिक्षा देकर बोले—"रत्नाकर तुम्हारे शरीर मे वल्मीक बन गई है इससे तुम्हारा नाम वाल्मीकि रखते हैं।" उसी दिन से दस्युराज रत्नाकर ऋषिराज वाल्मीकि हुए। थोड़े ही काल मे सब शास्त्रों के पंडित हो गए। धीरे धीरे चारों ओर उनका यश फैल गया और नाना स्थानों से बहुतेरे शिष्यगण अध्ययन करने को आने लगे।

एक दिन महर्षि वाल्मीकि ने महा तपस्वी स्वाध्यायसंपन्न वेद्‌विद पंडिताग्रगण्य देवर्षि नारदजी से पूछा—"देवर्षि वर्तमान समय में पृथ्वी पर कौन व्यक्ति गुणवान्, विद्वान्, महाबलपराक्रांत, महात्मा, धर्मपरायण, सत्यवादी, कृतज्ञ, दृढ़व्रत और सच्चरित्र वर्तमान है? कौन व्यक्ति प्राणीमात्र के हितसाधन में तत्पर है? कौन लोकव्यवहार-कुशल, अद्वितीय सुचतुर और प्रियदर्शन है? कौन व्यक्ति क्रोध के वशवर्ती नहीं है? संग्राम में किसके क्रोध को देखकर देवतागण भी भयभीत होते हैं? हे तपोधन, कौन मनुष्य ऐसे गुणो से सपन्न हैं यह आपके अतिरिक्त कोई नही जानता। कृपापूर्वक बताइए, इसको जानने के लिये हमें बड़ी उत्कंठा है।"

त्रिलोकदर्शी महर्षि नारद ने प्रसन्न होकर कहा—"हे तपोधन, आपने जिन गुणों का वर्णन किया वे साधारण मनुष्यों में असंभव हैं। इक्ष्वाकु वंश मे श्रीरामचंद्र नामक अयोध्या के राजा हैं, वही इन सब अमानुप गुणों से विभूपित है। हम उनका वृत्तांत वर्णन करते हैं जी लगाकर सुनो"। अब नारदजी ने श्रीरामचंद्रजी का जीवनवृत्तांत वाल्मीकिजी से कह सुनाया। श्री जानकीजी के उद्धार और राज्याभिपक तक कहकर बोले—"हे ऋषिराज, अयोध्याधिपति श्री रामचद्र इस समय अपने भाइयों के साथ सिर से जटाभार उतारकर फिर से पुत्र के समान प्रजापालन मे तत्पर हैं। उनके राज्य मे प्रजा हृष्ट-पुष्ट, आधिव्याधिरहित, दुर्भिक्षभय-शून्य और धार्मिक होगी।"

वाल्मीकिजी नारदजी के मुख से सुने हुए रामचंद्रजी के वृत्तांत को सोचते हुए शिष्यों के साथ तमसा नदी के तट पर उपस्थित हुए। स्नान की इच्छा से वल्कल पहिरकर सुंदर कर्दमशून्य स्थान खोजते हुए बन मे इधर उधर घूमने लगे। वहाँ एक जोड़ा क्रौंच पक्षी मधुर स्वर से गान करता हुआ विहार कर रहा था; इतने ही मे एक व्याधे ने क्रौंच को मार डाला। क्रौंच के निहत और शोणित-लिप्त शरीर को पृथ्वी मे तड़पते देखकर क्रौंची रोने लगी। धर्मपरायण महर्षि वाल्मीकि क्रौंच की दशा देखकर विषाद-सागर में डूब गए। क्रौंची के करुण स्वर से उनका अंतःकरण विदीर्ण होने लगा। उस समय इस काम को नितांत अधर्मजनित समझकर कहने लगे—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥"

अर्थात् "हे निषाद! तैने क्रौंच मिथुन मे से एक को विनाश कर दिया, अतएव तू कभी प्रतिष्ठा-भाजन नहीं हो सकता।"

जो रत्नाकर वन वन घूमकर रात दिन मनुष्यों का जीवन नष्ट किया करते थे, आज वही रत्नाकर एक साधारण पक्षी की मृत्यु से कैसे दुःखित हुए हैं और निषाद की कितनी निंदा कर रहे हैं! ज्ञान की कैसी आश्चर्य महिमा है। साधु-संग का कैसा आश्चर्य प्रभाव है? साधु-संग के प्रभाव से आज रत्नाकर दिव्य ज्ञान लाभ करके देवताओं की श्रेणी मे परिणत हुआ। जो ज्ञानसंपन्न है वही मनुष्य है, केवल नरदेह पाने ही से मनुष्य नही होता।

वाल्मीकि निषाद को शाप देकर विचार करने लगे—हमने इस शकुनि के शोक मे यह क्या कहा! अपने प्रधान शिष्य भरद्वाज को बुलाकर कहा—वत्स! हमारा यह वाक्य चरणबद्ध है। अक्षर-वैषम्य-विरहित और स्वर-लयसहित गान करने के उपयुक्त है, विशेष करके जब कि यह शोकवेग में हमारे मुख से अनायास निकल गया है तो इसको श्लोक नाम से कहना चाहिए।" तभी से चरणबद्ध वाक्य अर्थात् पद्यमय रचना को श्लोक कहने लगे। महर्षि वाल्मीकि ने केवल यही एक श्लोक नहीं बनाया वरंच रामायण नामक सुप्रसिद्ध महाकाव्य बनाया है, जिसमें श्रीरामचरित्र का चमत्कार रूप से वर्णन किया है।

वाल्मीकिजी मन ही मन इस श्लोक पर विचार कर रहे थे उसी समय प्रजापति ब्रह्माजी उनके दर्शन के लिये उपस्थित हुए। वाल्मीकि ने उठकर अर्घ्य पाद्य आसन देकर साष्टांग दडवत् किया। भूतभावन भगवान् ब्रह्मदेव आसन पर विराजमान होकर कुशल-मंगल पूछकर सहास्यवदन बोले—"ऋषिवर, तुम्हारे मुख से जो वाक्य निकले हैं वे श्लोक ही के नाम से प्रसिद्ध होंगे तुम इसमे सदेह मत करो। यह श्लोक हमारी ही प्रेरणा से तुम्हारे मुख से निकला है, अब तुम समग्र रामचरित्र का वर्णन करो। तुमने देवर्षि नारदजी के मुख से जिस प्रकार से सुना है उसी के अनुसार धर्मशील गंभीर स्वभाव,

बुद्धिमान् श्रीरामचंद्र, लक्ष्मणजी तथा सीताजी और राक्षसों के वृत्तांत की रचना करो। इस संसार में जब तक पहाड़ नदी आदि रहेंगे तब तक तुम्हारी बनाई यह रामायण प्रचलित रहेगी और तुम्हारा कीर्ति-शरीर त्रिलोक में स्थायी रहेगा।" ब्रह्माजी यह कहकर अंतर्धान हो गए। महर्षि वाल्मीकि अर्थ धर्म काम मोक्ष प्रतिपादक समुद्र की भाँति नाना पदार्थों के आधारस्वरूप श्रवणमनोहर रामचरित्र की रचना करने लगे। जिस समय भगवान् रामचंद्र लंका विजय करके अयोध्या का राज्य कर रहे थे उसी समय महर्षि ने रामायण बनाई। अस्सी हजार वर्ष पूर्व रामायण बनने की कथा प्रवाद है। वाल्मीकिजी ने पहले रावणवध तक छः कांड बनाकर राम-तनय लव-कुश को पढ़ाया था पीछे से उत्तरकांड बनाया। लव-कुश का जन्म और पालन वाल्मीकिजी के आश्रम में हुआ था। ये जैसे सुंदर थे वैसे ही सुकंठ भी थे। वाल्मीकिजी ने अपने ग्रंथ के प्रचार के निमित्त उनको सिखलाया था। ये लोग बहुत ही शीघ्र समग्र रामायण कंठस्थ करके ब्राह्मणसमाज में गान करने लगे। एक तो वाल्मीकिजी की परम मधुर रचना, तिस पर परम रूपवान सुकंठ दोनों बालकों के गान से कुछ ऐसा चमत्कार आनंद प्राप्त होता था कि कदाचित् पृथ्वी में ऐसा मधुर गान कभी किसी ने न सुना होगा। थोड़े ही दिन में वाल्मीकिजी की रचना और बालकों की संगीत-निपुणता का यश फैल गया। जहाँ ये गान करते वहाँ इतने श्रोता आ जाते कि स्थान न मिलता। रामचंद्रजी ने भी समाचार सुनकर इन लोगों को बुलाकर आद्योपांत अपना चरित्र सुना था।

वाल्मीकि आदिकवि, "मा निषाद" आदिकविता और रामायण आदिकाव्य है। केवल भारतवर्ष ही का क्यों यह सारे संसार का आदिकाव्य है, इसी से वाल्मीकिजी का कविकुलगुरु नाम

पड़ा। अतएव यह आदि-श्लोक सबको कंठस्थ कर रखना उचित है। यह भारतवासियों क्या समग्र मानव-मंडली के अपूर्व गौरवपूर्ण इतिहास का प्रथम पृष्ठ और उच्चतर निदर्शन है। संसार में दूसरे किसी श्लोक को आदिम कहकर परिचय नहीं दिया जा सकता।

वाल्मीकि आदिकवि है केवल इतना ही नहीं वरंच वे महाकवि थे। उनकी रचना अतिमधुर, सरल और हृदयग्राही है। उत्कृष्ट कल्पना-शक्ति में वे भारत के सब कवियों में श्रेष्ठ हैं और उनका स्वभाव-वर्णन अत्यंत चमत्कारी है। एक पंडित ने कहा है—"जो एक बेर वाल्मीकिजी वर्णन कर चुके हैं उसको फिर से वर्णन करके संसार मे कोई प्रशंसा नहीं पा सकता।" उसी ने स्थानांतर में कहा है—"रामायण और महाभारत की अपेक्षा उत्कृष्ट काव्य संसार में दूसरा नहीं है।" निदान कविता के प्रथम पथप्रदर्शक होकर इन्होंने जैसा काव्य लिखा है, अनेक महाकवियों ने उत्तम रीति से शिक्षित होने पर भी उतनी सामर्थ्य नहीं पाई।

वाल्मीकिजी राजनीतिविशारद और ज्योतिष आदि विज्ञानशास्त्र मे विशेष पारदर्शी थे। भूगोल विद्या में उनका बड़ा अधिकार था।

(ख) वेदव्यास

महर्षि व्यासजी ने कब और कहाँ जन्म लिया था यह निर्णय करना कठिन है। वीरवर भीष्म पितामह की विमाता यशस्विनी सत्यवती इनकी मा और ख्यातनामा संहिताप्रणेता सुप्रसिद्ध महर्षि पराशर इनके पिता थे। बहुत ही बचपन से विद्याभ्यास मे मन लगाने के कारण थोड़े ही दिनों में वेदव्यास सर्वशास्त्र के सुपंडित हो गए। कृष्णवर्ण होने के कारण उनका एक नाम कृष्ण था,

द्वीप मे जन्म लेने के कारण एक नाम द्वैपायन और वेद का विभाग करने के कारण उनका नाम "कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास" प्रसिद्ध हुआ।

वे बहुत ही शीघ्र रचना कर सकते थे। महाभारत बनाने की इच्छा होने पर उसको शीघ्र संपूर्ण करने की इच्छा से वे एक अच्छा लेखक खोजने लगे। कहीं अच्छा लेखक न मिलने से श्रीगणेशजी को आह्वान करके उन्होंने अपना मनोगत भाव प्रकाशित किया। गणेशजी बहुत ही शीघ्र लिखते थे, अनर्गल बोलते जाने पर भी बिना एक अक्षर छोड़े बराबर लिख सकते थे। उन्होने कहा "यदि एक क्षण भी हमारी लेखनी को ठहरना न पड़े तो हम आपके लेखक हो सकते हैं।" व्यासजी ने क्षणमात्र चिंता करके कहा—"हमें स्वीकार है; परंतु हम जो कहेंगे आप उसका यथार्थ अर्थ समझे बिना न लिख सकेंगे।" गणेशजी ने इसको स्वीकार किया, क्योंकि वह केवल लेखक तो थे ही नहीं, सभी विद्याओं में पारदर्शी थे। इसी नियम पर भगवान् गणेशजी ने व्यासदेव का महाभारत लिखना आरंभ किया। व्यासजी बीच बीच मे एक एक श्लोक कूटार्थ ऐसे रचना करने लगे कि उसके समझने मे गणेशजी को कुछ समय लग जाता। उतने ही अवकाश में व्यासजी बहुत से श्लोक बना लेते। इसी प्रकार उन्होंने लक्षाधिक्य श्लोकविशिष्ट महाभारत ग्रंथ पूर्ण किया। इसमे आठ सौ कूट श्लोक हैं। इनको व्यासकूट कहते हैं। व्यासकूट अत्यंत कठिन हैं।

भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी ने महाभारत बनाकर पहले-पहल अपने शिष्य वैशंपायन को सिखलाया। वैशंपायन ने अर्जुन के प्रपौत्र राजा जनमेजय को सुनाया। तभी से महाभारत सुनने की प्रथा चली है। महाभारत अत्यंत विस्तीर्ण ग्रंथ है। इसको पुराण, इतिहास, नीतिशास्त्र वा काव्य जो चाहो कह सकते हो। सब प्रकार के विषय

इसमें पूरी रीति से लिखे हैं। धर्मनीति, राजनीति, समाजनीति, लोकयात्राविधान, वाणिज्य, कृषि, शिल्पशास्त्र के सब नियमादि, पूर्वकालीन आचार व्यवहार, राजा और ऋषि आदिकों का जीवन-वृत्तांत और वंशावली प्रभृति सभी विषय उत्तम रीति से वर्णित हैं। मनुष्य मात्र इससे सब अवस्था का उपदेश पा सकते है। यह प्रसिद्ध है कि महाभारत मे जो कुछ है वह दूसरे स्थान पर हो सकता है, परंतु उसमे जो कुछ नही है वह फिर कहीं नही है। निरपेक्ष होकर इसको आद्योपांत देखने से कोई पंडित ग्रथकर्ता के आश्चर्यजनक अध्यवसाय, असामान्य कवित्व-शक्ति और ग्रथ की गभीर भावमाधुरी की हजार मुख से प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। कल्पना-शक्ति मे व्यासजी ने पृथ्वी के अनेक कवियों को परास्त किया है। निदान महाभारत के समान दूसरा काव्य पृथ्वी मे नहीं है।

किंतु दुःख का विषय है कि हमारे नवयुवकगण उसका पाठ भी नहीं करते। उन्हें नावेल या उपन्यास रुचता है, परंतु जिस ग्रथ मे काव्य का राज्य है, भारतीय गौरव का पूर्ण निदर्शन है, मानव-माहात्म्य का अपूर्व परिचय है और जिसके पढ़ने से मनुष्य को प्रायः सभी ज्ञातव्य विषय विदित हो जाते हैं उस अमानुष ग्रंथ के पढ़ने मे उनको किंचिन्मात्र अनुराग नहीं है।

व्यासजी ने वेद का विभाग किया। वेद मे गद्य पद्य, और गीति, तीनों प्रकार की रचना है अतएव इसका दूसरा नाम त्रयी है। अंगिरावंशीय महर्षि अथर्वा ने उसमे से कुछ अंश छाँटकर अपने नाम से "अथर्ववेद" विभक्त किया। पद्यमय रचना ऋक् नाम से और गद्यमय रचना यजु नाम से एवं गीतिमय रचनावली को साम नाम से प्रसिद्ध किया। तभी से एक वेद चार नाम से विख्यात हुआ।

व्यासजी प्रथम पुराणकर्ता हैं अर्थात् इन्हीं ने पहले पहल इतिहास लिखना आरंभ किया, पूर्वकाल में जो सब राज्यवंशावली और सृष्टिविवरण प्रभृति लोगों को स्मरण और किसी किसी ग्रंथ में थे वह सब उन्होंने संग्रह किया और अपने जीवनकाल में जो जो घटनाएँ देखी थी उन सबको एकत्र करके एक पुराण बनाया। उस पुराण को लोमहर्षण को सिखलाया। अठारह पुराण और अठारह उपपुराण व्यासजी के बनाए प्रसिद्ध हैं परंतु नए पंडित लोग कहते हैं कि सब उनके बनाए नहीं है और यदि हैं तो निश्चय पीछे के पंडितों ने उनका आकार बढ़ा दिया है, अर्थात् पीछे से अनेक पंडितों ने अनेक श्लोक और अनेक अध्याय बनाकर मिला दिए हैं। जब जिस बात का जिसने प्रचार करना चाहा उसको साधारण जनसमाज में अधिक आदरणीय करने के अभिप्राय से व्यासरचित कह दिया। यदि सब पुराण व्यासजी के बनाए होते तो एक एक विषय में भिन्न भिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न मत कभी न होता। सभी ग्रंथ प्रक्षेप से पूर्ण हैं, यहाँ तक कि महाभारत में भी बहुतेरे प्रक्षिप्त श्लोक और अध्याय हैं। अतएव कौन सा और किसमें का कौन सा अंश व्यासदेव की सुललित लेखनी से निकला है यह निश्चय करना कठिन है।

वेदांत दर्शन नामक सुप्रसिद्ध दर्शनशास्त्र भी व्यासदेव-रचित है। प्राचीन दर्शनशास्त्रों में वेदांत दर्शन सर्वोत्कृष्ट है। उसमें व्यासजी ने आश्चर्यजनक क्षमता दिखाई है। यदि पृथ्वी के किसी देश में परमेश्वर का प्रकृत स्वरूप और महिमा निर्णीत हुई है तो वह भारतवर्ष ही है। वेदांत दर्शन ही उस गौरव की मूल भित्ति है। इसी मूल को अवलंबन करके सुप्रसिद्ध शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार करके बौद्ध-धर्म-निराकरण और हिंदू-धर्म-रक्षा की थी।

वेदांत दर्शन मे ईश्वर के स्वरूप, प्रकृति और कार्य आदि के सबंध मे जैसे चमत्कृत विचार हैं उनको सुनने से मोहित होना पडता है।

व्यासजी महाकवि, दार्शनिक इतिहासवित्, राजनीति-विशारद, विज्ञानाभिज्ञ, बहुभाषाज्ञ, अर्थशास्त्रवित् और व्यवहार-कुशल थे। उस समय की प्रचलित विद्यामात्र मे वे पारदर्शी थे।

(ग) महाकवि कालिदास*

लोगो का विश्वास है कि प्राय: दो हजार वर्ष हुए, भारतवर्ष को अलकृत करने के लिये कालिदास ने जन्म ग्रहण किया था, परतु आधुनिक पंडितों ने प्रमाणित किया है कि उनका जन्म १४०० वर्ष पूर्व हुआ था। कालिदास ने लड़कपन खेल कूद मे गवाँया, लिखने पढने का कभी नाम भी न लिया विवाह होने के समय तक उन्हे अक्षर का भी ज्ञान नहीं था। यह प्रवाद प्रसिद्ध है कि वह जैसे मूर्ख थे, उनकी बुद्धि भी वैसी ही स्थूल थी। उनकी बुद्धि ऐसी स्थूल थी कि एक दिन एक पेड़ की डाली पर आगे की ओर बैठकर उसी डाली की जड काटने लगे। डाल कटने से आप भी गिर पडेंगे ऐसी मोटी बात भी वे न समझ सके। यह प्रवाद अलीक जान पड़ता है क्योंकि वे मूर्ख अवश्य थे परंतु निर्बोध नहीं थे। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय उनके सब काव्यों मे जाज्वल्यमान है।

सारदानंद नामक राजा की विद्योत्तमा नाम की एक कन्या थी। वह कन्या जैसी रूपलावण्यवती थी वैसी ही विद्यावती भी थी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो उसको विचार मे जीतेगा उसी से वह विवाह करेगी, नही तो विवाह करेगी ही नहीं। नाना देशो से अनेक राज-

---

* इस विषय का निर्णय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रलिखित जीवनचरित्र में देखो।

कुमार पंडितगण आए और विचार में परास्त हुए। उन लोगों को इस प्रकार से हतनाम होकर विद्योत्तमा पर विरक्ति हुई और स्त्री की ऐसी धृष्टता और अहंकार को असह्य समझकर उन्होंने आपस मे परामर्श किया कि किसी प्रकार से महामूर्ख से इसका विवाह कर देना चाहिए। खाजते खोजते कालिदास को उन्होंने उपयुक्त पात्र ठहराया।

पंडितों ने कालिदास को, पडितवेष बनाकर, विद्योत्तमा के सामने उपस्थित किया। कौशल करके यह निश्चय किया कि मौखिक विचार न होगा, सांकेतिक विचार होगा। जिस समय कालिदास सभा में आए, सभास्थित सब राजा तथा पंडित लोग महा संभ्रम के साथ उठ खड़े हुए और महा आदर के साथ सबसे उत्तम आसन उनको दिया। यह देखकर विद्योत्तमा ने समझा, यह अवश्य कोई महाविद्वान् पंडित है। विचार आरंभ हुआ। कालिदास ने एक उँगली दिखलाई। विद्योत्तमा ने समझा, यह कहते हैं एक ईश्वर है। उसने इसके उत्तर मे तीन उँगलियाँ दिखलाईं अर्थात् ईश्वर से सत, रज, तम त्रिगुणात्मक ब्रह्मा विष्णु महेश हुए। कालिदास ने दो उँगलियाँ दिखलाईं। विद्योत्तमा ने समझा, ये पुरुष और प्रकृति की बात कहते हैं। इस प्रकार कालिदास के जो मन में आता वैसे ही अंड बंड उँगली दिखलाते। विद्योत्तमा उसका अर्थ कुछ न समझ सकती। सभास्थित पंडित लोग उन संकेतों के ऐसे चमत्कार-पूर्ण अर्थ करने लगे और कालिदास के पांडित्य की ऐसी प्रशंसा करने लगे कि विद्योत्तमा को पराजय स्वीकार करनी ही पड़ी। विचार मे विजय करने से विद्योत्तमा का विवाह महा समारोह के साथ कालिदास से हुआ।

विवाह के पीछे विद्योत्तमा और कालिदास एक साथ सोए थे कि एक ऊँट का शब्द उनके कान में पहुँचा। विद्योत्तमा ने पूछा—

यह किसका शब्द है? कालिदास ने जो उत्तर दिया उससे उनकी विद्या प्रकट हो गई। उन्होने कहा—उष्ट बोलता है। उसकी जड जिह्वा से "उष्ट्र" न निकल सका। विद्योत्तमा आश्चर्य मे हो गई। समझा कि समझने मे भ्रम हुआ है। फिर से पूछा—क्या कहा? कालिदास ने विद्योत्तमा के स्वर से समझा कि हमने अशुद्ध कहा है अतएव शुद्ध करके कहा—"उट्र बोलता है।" पहली बेर "र"-कार छोड़कर कहा था, अबकी "ष"कार न निकल सका। विद्योत्तमा सिर पीटकर रोने लगी। उसने समझा कि पडितों ने चातुरी करके घोर मूर्ख के साथ मेरा विवाह करा दिया बड़े बड़े पडितों को छोड़कर वज्र मूर्ख के साथ विवाह होने से उसे मर्मभेदी दुःख प्राप्त हुआ। मारे दुःख के अचेतन होकर नाना प्रकार के परिताप-वाक्य कह कहकर वह विलाप करने लगी। स्त्री का रोना और परिताप देखकर कालिदास अत्यत लज्जित और दुःखित हुए तथा अपने को महाघृणित जानकर उन्होने आत्महत्या का संकल्प किया किंतु बहुत सोच विचारकर अंत मे स्थिर किया कि यदि पूरी विद्या उपार्जन कर लेगे तो घर लौटेंगे नहीं तो कभी देश में मुँह न दिखावेंगे।

उसी समय कालिदास विद्या सीखने के लिये घर से चल खड़े हुए। कहीं दूर देश मे किसी अच्छे आचार्य के पास जाकर दिन-रात परिश्रम करके विद्या सीखने लगे। उनके चित्त मे ऐसी लज्जा, दुःख और घृणा उदय हुई थी कि शारीरिक क्लेश पर तनिक भी ध्यान न देकर अहोरात्र पाठ मे लगे रहते। बुद्धि और मेधा अत्यंत तीव्र थी। थोड़े ही दिनों में नाना शास्त्र-विशारद हो गए। इतने थोड़े दिनों मे इतनी अधिक विद्या उपार्जन कर ली कि लोग इनको सरस्वती का वरपुत्र समझने लगे। तब घर आकर अपनी शोक-संतप्ता सहधर्मिणी को अतुल आनंद प्रदान किया।

कालिदास का यश.-सौरभ चारों ओर देश-देशांतर मे फैल गया। उज्जयिनीपति सुप्रसिद्ध महाराज विक्रमादित्य ने इनको बुलाकर अपना सभासद बनाया, फिर तो ये उनके नवरत्न के शिरोरत्न हो गए।

कालिदास की तीक्ष्ण बुद्धि की पोपक निम्नलिखित जनश्रुति है। महाराज भाज की सभा मे कई एक श्रुतिधारी पंडित थे। कोई श्लोक या ग्रथ हो कोई एक बेर, कोई दो बेर, कोई तीन बेर सुनकर ही कठस्थ कर लेते थे। महाराज भोज ने घोषणा कर दिया था कि "जो कोई नया श्लोक बनाकर हमारी सभा मे लावेगा उसको एक लाख रुपया पारितोपिक मिलेगा।" इस पारितोपिक के लालच से बहुतेरे पंडित देश-देशांतर से नवीन श्लोक रचना करके भोज को सुनाने लगे। परतु ुतिधारी पंडित लोग उसको पुराना कहकर उपेक्षापूर्वक एक एक करके सुना देते। बेचारे पंडित निरुत्तर होकर चले जाते थे। कालिदास ने महाराज भोज की चतुरता समझ-कर निम्न श्लोक बनाकर सुनाया—

"स्वस्तिश्रीभोजराज! त्रिभुवनविजयी धार्मिकः सत्यवादी
पित्रा ते मे गृहीता नव नवतियुता रत्नकोटिर्मदीया।
तां त्वं मे देहि तूर्णं सकलबुधजनैर्ज्ञायते सत्यमेतत्
नो वा जानन्ति केचित् नवकृतमिति चेद्देहि लक्ष ततो मे॥"

अर्थात् महाराज! आपका मगल हो। आप त्रिभुवनविजयी, धार्मिक और सत्यवादी हैं। आपके पिता ने हमसे ९९ करोड स्वर्णमुद्रा लिया था, आपके सभापंडित लोग यह जानते हैं। अतएव वह हमको तुरंत दिला दीजिए और पंडित लोग न जानते हों तो यह हमारा श्लोक नया है अतएव अंगीकृत कर लाख रुपया हमे दीजिए। श्रुतिधर पंडितो ने कहा, हम नहीं जानते। इस प्रकार एक सामान्य बात में कालिदास ने पंडितों को पराजित किया। कालिदास की

बुद्धिमत्ता की परिचायक ऐसी अनेक गप्पें प्रसिद्ध हैं। वे चाहे सब सत्य न हों परंतु उनसे यह अवश्य सिद्ध होता है कि वह विलक्षण बुद्धिमान थे।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश और कुमारसंभव काव्य, अभिज्ञान शाकुंतल, विक्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र नाटक, मेघदूत, नलोदय, ऋतुसंहार और महापद्यषट्क प्रभृति खंड काव्य एवं स्मृति-चंद्रिका प्रभृति कालज्ञान ग्रंथ बनाया था। इन सब ग्रंथों मे कालिदास ने आश्चर्य कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। जो उनका ग्रंथ देखेगे उनको मानना पड़ेगा कि कालिदास के समान कवि पृथ्वी पर किसी देश मे किसी काल में नहीं जन्मा था। इँगलैंड के शेक्सपियर के अतिरिक्त संसार के किसी कवि के साथ कालिदास की तुलना नहीं हो सकती। शेक्सपियर भी मानव-हृदय-वर्णन करने मे कालिदास की तुलना कर सकते हैं, शेष विषयों में कालिदास से न्यून ही हैं। उनकी रचना में ऐसा माधुर्य है कि श्रवण मात्र से मन मोहित हो जाता है। अर्थ समझ मे न आने से भी मीठी लगती है। कहते हैं कि इनकी चार कविता सुनकर कर्नाटाधिपति ने सारा कर्नाट राज्य इनको दे दिया था। विशेष क्या कहे, जर्मन देश के प्रसिद्ध कवि गेटे ने अभिज्ञान शाकुंतल का जर्मन अनुवाद देखकर लिखा है "यदि कोई वसंत के पुष्प और शरद के फल की अभिलाषा रखता हो, यदि कोई चित्त की आकर्षण तथा वशीकरणकारी वस्तु चाहे, यदि कोई प्रीतिजनक और प्रफुल्लकर वस्तु का अभिलाषी हो, यदि कोई स्वर्ग और पृथिवी दोनों नाम एक मे समावेश करना चाहे, तो हे अभिज्ञान शाकुंतल! हम तुम्हारा ही नाम बतावेंगे और यही कहने से सब कहा गया।" जहाँ एक विदेशीय व्यक्ति ने अनुवाद का अनुवाद पढ़कर यह कहा है तहाँ हम लोग क्या कहकर उनकी

क्षमता का परिचय दें। कालिदास का नाम अत्यंत सामान्य लोग तक जानते हैं। उनके नाम का ऐसा गौरव है कि सब अपनी बनाई कविता कालिदास की बनाई कहना चाहते हैं।

कालिदास की उपमा मे अति चमत्कार है। उन्होंने ऐसे संक्षेप मे और ऐसे लोकप्रसिद्ध विषय को लेकर उपमा का संकलन किया है कि पाठक मात्र को अनायास पढ़ते ही उपमान और उपमेय मे सादृश्य हृदयंगम हो जाता है। उनकी रचना मे सर्वत्र ही मधुर शब्द-विन्यास, सुंदर उपमा और चमत्कार-पूर्ण स्वभाववर्णन दृष्ट होता है। शब्दाडंबर वा शब्दालंकार द्वारा उन्होंने कभी ग्रंथ को नीरस नहीं होने दिया है। बहुत से लोग समझते हैं कि कालिदास मे यह शक्ति नहीं थी परंतु नलोदय के पढ़ने से यह संदेह दूर हो जाता है। नलोदय में इन्होंने शब्दालंकार चूड़ांत दिखलाया है। कहते हैं विक्रमादित्य की सभा के एक रत्न घटखर्पर ने अपने नाम का एक यमक रचना-पूर्ण ग्रंथ लिखकर गर्व के साथ कहा "हमारे समान जो कोई यमक रचना कर देगा तो उसके यहाँ हम खर्पर (खप्पर) में जल भरेंगे।" कालिदास ने घटखर्पर का दर्प चूर्ण करने ही के लिये नलोदय काव्य बनाया। वास्तव में नलोदय काव्य अत्यंत ही उत्कृष्ट है।

कालिदास केवल कवि ही नहीं थे; वेदांत शास्त्र के भी पूरे पंडित थे। उनके बनाए काव्यों ही में इसके प्रमाण जाज्वल्यमान हैं। योगाकर्षणशक्ति, पदार्थ की कठिनता का कारण, जलकण-समूह के साथ सूर्यकिरणसंयोग से इंद्रधनुष की उत्पत्ति, जल के वाष्प से मेघ की उत्पत्ति, चंद्र और सूर्य का आकर्षण ही ज्वारभाटे का कारण, सूर्य की किरण चंद्रमा मे प्रतिफलित होने ही से चंद्रमा की ज्योति, पृथ्वी की छाया से चंद्रग्रहण इत्यादि अनेक विज्ञान-शास्त्र-सिद्ध बातें कालिदास के काव्यों में दिखाई देती हैं।

जब कि काव्य मे उन्होंने इसका वर्णन किया है तो फिर इस शास्त्र मे व्युत्पन्न होने में क्या संदेह है ? इन्होंने मेघदूत में पहाड़, नदी और प्रदेशो का जैसा सुंदर वर्णन किया है और रघुवंश मे रघुदिग्विजय प्रसंग मे पारस्य, चीन प्रभृति देश का जैसा वर्णन किया है उससे जान पड़ता है कि भूगोलविद्या मे भो उनका पूरा अधिकार था।

कालिदास ऐसे अलौकिक कवित्व-शक्ति संपन्न तथा ऐसे अशेष शास्त्रज्ञ होने पर भी ऐसे निरभिमान और विनीत थे और अपने को ऐसा क्षुद्र समझते थे कि सुनकर आश्चर्य होता है। उन्होंने रघुवंश के आदि मे लिखा है—

"तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।"
"मंदः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्॥
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामन.।"

अर्थात् रघुवंश-वर्णन हमारे लिये बेड़े पर दुस्तर सागर के पार करने की चेष्टा के समान है। लंबे मनुष्य का लभ्य जो फल है उसके लाभ के लिये जैसे वामन हाथ उठाकर लज्जास्पद होता है, वैसे ही हम भी कवियशप्रार्थी होकर उपहासास्पद होंगे।

(घ) बुद्ध शाक्यसिंह

शाक्यसिंह ने लगभग २५०० वर्ष हुए हिमगिरि समीपस्थ भागीरथी के तट पर कोशलराज्यांतर्गत वास्तुग्राम में मायादेवी के गर्भ से जन्म लिया। शाक्यवंशोद्भव शुद्धोदन राजा उनके जनक थे। एक दिन अगहन महीने में मायादेवी लुंबिनो नामक मनोहर उद्यान देखने गई थीं। वहीं घूमते घूमते प्रसव वेदना उपस्थित हुई। वहीं एक वृक्ष के नीचे मायादेवी ने शाक्यसिंह को प्रसव किया। जन्म

के सात ही दिन पीछे शाक्यसिंह मातृहीन हो गए। पितृव्यपत्नी गौतमी ने इनका लालन पालन किया। इनके जन्म के उपरांत शुद्धोदन राजा के सब मनोरथ सिद्ध हुए इससे उन्होंने इनका नाम सिद्धार्थ और सर्वसिद्धार्थ रखा। शाक्यवंश में ये सर्वश्रेष्ठ थे इसलिये शाक्यसिंह नाम विख्यात हुआ। असाधारण बुद्धि-प्रभाव से ये बहुत शीघ्र शस्त्र और शास्त्र विद्या में निपुण हो गए। शाक्यसिंह अपरिमित बलशाली थे। एक दिन खेल ही खेल रास्ते मे गिरे एक बड़े वृक्ष को उठाकर उन्होंने दूसरे स्थान पर रख दिया।

किशोर वयस ही मे सहाध्यायियों के साथ खेल कूद में समय नष्ट न करके वे एकांत वन मे बैठकर गंभीर चिंता में मगन रहते। राजा ने पुत्र की संसार से वैराग्य हेतुभूत अवस्था देखकर उसे बहुत शीघ्र विवाह-बंधन में बाँध दिया। मंत्रियों के विवाह का प्रस्ताव करने पर शाक्यसिंह ने कहा—"यदि मनोमत कन्या हो तो विवाह करने में कोई बाधा नहीं है।" बहुत खोजने पर गोपा नाम्नी एक असाधारण रूप-गुण-संपन्ना कुमारी सिद्धार्थ की उपयुक्त पात्री स्थिर हुई। पहले तो गोपा के पिता दंडपाणि ने शाक्यसिंह को मनुष्यत्व-विहीन और विषय-ज्ञान-शून्य समझकर अपनी सर्वगुण-संपन्ना कन्या देना अस्वीकार किया, परंतु फिर जब उनको असाधारण बुद्धिमान् और बलवीर्य संपन्न जाना तो आह्लाद से कन्यादान किया। कहते हैं कि दंडपाणि की प्रतिज्ञा थी कि जो शिल्प विद्या में निपुण होगा उसी को कन्या देंगे। शाक्यसिंह ने शिल्प विद्या में पूरी निपुणता दिखलाई थी। ऐसी सुंदर और सर्वगुणमयी स्त्री पाने पर भी शाक्यसिंह ने यशोधरा और उत्पलवर्णा नाम की और दो कन्याओं से विवाह किया था। इनमे यशोधरा के गर्भ से राहुल नाम एक पुत्र हुआ।

शाक्यसिंह ने राज्यकुल मे जन्म ग्रहण करके बाल्यकाल से सुख स्वच्छंदता मे दिन बिताए थे सही परंतु उसमे वे कभी आसक्त नहीं हुए थे। सदा बंधुगण से कहा करते—पापमय संसार मे कुछ भी स्थिर नहीं है, कुछ भी सत्य नहीं है, सब अस्थिर असत्य है। जीवन दो काठ से रगडकर निकाले अग्नि-स्फुलिंग की भाँति बहुत शीघ्र लय हो जाता है। कौन जानता है कहाँ से जीव आता है और कहाँ जाता है? जब कभी किसी वृद्ध, आतुर या मृत शरीर को देखते तो यही चिंता करते कि मनुष्य मात्र ऐसे ही जरा, रोग और मृत्यु के अधीन है। शरीर का गौरव व्यर्थ है। यह चिंता ऐसी प्रबल हुई कि वे धीरे धीरे अचैतन्य से हो गए। पुत्र की मानसिक अवस्था का ऐसा परिवर्तन अवगत होने पर राजा ने मन फेरने के लिये नाना प्रकार के उद्योग किए किंतु सब निष्फल हुआ।

उनतीस वर्ष की अवस्था मे एक दिन वे एक कृषक की कुटी मे गए। उसकी और उसके परिवार की नितांत दुरवस्था देखकर अत्यंत व्यथित होकर सांसारिक अनित्य सुख की चिंता करते करते वे वन मे जाकर एक जंबुवृक्ष के नीचे बैठ गए। बैठे बैठे वे संसार के आदि अंत और मनुष्य के क्षणस्थायी सुख की चिंता कर रहे थे कि एक संन्यासी दिखलाई पड़े। उनकी शांत मूर्त्ति मे संतोष का पूर्ण विकास देखकर युवराज ने समझा कि संन्यासाश्रम ही सर्वोत्कृष्ट है। यह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। संन्यासी का जीवन सबसे श्रेय और सब काल मे विज्ञगण-कर्तृक प्रशंसनीय है। यह विचार कर उन्होंने संन्यासधर्म लेने का संकल्प किया और घर आकर अपने पिता और सहधर्मिणी-गण से अपना कठोर अभिप्राय प्रकाश किया। उन लोगों ने बहुत कुछ उपदेश देकर इस संकल्प को दूर करना चाहा। गोपा ने प्रेम-पूर्ण वचनों से कितना समझाया, नाना प्रकार

से हृदय-विदारक खेद और आर्तनाद किया, किंतु उन्होंने एक न सुना। धर्म के लिये उन्मत्त होकर वे उसी दिन आधी रात को धीरे धीरे शय्या से उठकर अश्वशाला मे आए और वहाँ से एक वायु-वेग-गामी घोड़ा खोल उसी पर चढ़ संसार की माया और सुख का आलय परम रम्य राज्यप्रासाद छोड़ जीव के मंगल-साधन के उद्देश्य से इच्छित संन्यास धर्म अवलंबन की इच्छा से चल दिए। पहरेदार लोग सो गए थे; किसी को भी समाचार न मिला। केवल साईस को साथ लिए निशाचर-परिपूर्ण विपद-संकुल कानन-पथ में रात भर चले गए। सबेरे घोड़े से उतर अपने बहुमूल्य रत्न-जटित गहने उतार-कर साईस को दिए और उसे कपिलवस्तु नगर लौट जाने की आज्ञा दी। कहा—"पिता और बंधुगण से कह देना हमारे लिये शोकाकुल न होंगे। हम तत्त्वज्ञान लाभ करते ही फिर आकर आप लोगों का दर्शन करेंगे।"

साईस को बिदा करके वहीं शिखा मुड़ा, राजवेश त्यागकर उन्होंने गैरिक वस्त्र धारण किया। पहले वैशाल नामक नगर में आकर वे तीन सौ शिष्यों से परिवेष्टित एक सुविख्यात ब्राह्मण पंडित से धर्मशिक्षा लेने लगे। किंतु उनके उपदेश से उनको पूरी तृप्ति न हुई, अर्थात् संसार-सागर से परित्राण मिले ऐसा कोई सदुपदेश न मिला। तब मगध देश की राजधानी राजगृह में एक आचार्य ब्राह्मण के पास गए। उनसे भी इच्छित फल लाभ की संभावना न देख वहाँ से भी प्रस्थान किया। मगधराज बिंबिसार ने इनको रखने की बड़ी चेष्टा की परंतु यह किसी प्रकार से नहीं रहे। यहीं इनको पाँच शिष्य स्वमतानुयायी मिले। शाक्यसिंह ने उन पाँचों शिष्यों के साथ राज-गृह छोड़कर एक निकटस्थ वन में छः वर्ष तक कठोर तप साधन किया। छः वर्ष व्यतीत होने पर इनको विश्वास जन्मा कि तापस

व्रत आत्मा को शांत और मन को परिशुद्ध न करके धर्मपथ मे व्याघात और बाधक होता है, और अनाहार से शरीर दुर्बल और बुद्धि मे अल्पता होती जाती है। तब तो तापस व्रत के कठोर नियमादि परित्याग करके उन्होंने उत्तम रूप से पान भोजन आरंभ किया। यह देखकर उनके शिष्यों ने उन्हें धर्मत्यागी समझ उनका साथ छोड़ दिया। इसमे इन्होने कुछ भी दु:ख वा अपमान न माना वरंच तब से अकेले निर्जन स्थान मे रहकर अनन्य मन से धर्मा-लोचन करने लगे। ब्राह्मण आचार्य का सकीर्ण मत और कठोर तापस व्रत मनुष्यों को मुक्ति नहीं प्रदान कर सकता, यह विश्वास क्रमश: इनके हृदय मे दृढ़ हो गया। मुक्ति का प्रशस्त पथ कौन है और क्या करने से मानवगण ससार की दु.खराशि से विमुक्ति पा सकते हैं—अब यही चिंता इनके हृदय मे बलवती हुई। बहुत दिन तक चिंता करके जो स्थिर किया था वही उपाय मुक्ति का ठीक है इसमे इनको कुछ संदेह न रहा। तभी से इनका नाम "बुद्ध" अर्थात् ज्ञानी हुआ। इस समय इनका वय केवल ३६ वर्ष था। महर्षि कपिलकृत निरीश्वर सांख्य दर्शन ही इनके नूतन धर्म की मूल भित्ति था।

इस समय ये अपने इस मत को पृथ्वी पर मनुष्यों मे प्रचार करने के लिये उत्सुक हुए। लोग अज्ञान-कूप मे निमग्न हैं और अलीक धर्म में विश्वास करके प्रकृत पथ का अनुसरण नहीं करते, यह देखकर उन लोगों को सत्यधर्म की शिक्षा देने के लिये वे व्यग्र हुए। इस उद्देश से पहले विद्या और धर्मालोचना के प्रधान स्थान काशी मे गए। वहाँ पूर्व परित्यक्त पाँचों शिष्यों को अपने मत मे दीक्षित किया। क्रमश: सहस्रावधि नगर-वासियों ने इनका मत ग्रहण किया। वहाँ से छ: शिष्य साथ लेकर वे राजगृह गए। वहाँ कालांतक

नामक प्रसिद्ध मठ मे एक गंभीर और भावरस-पूर्ण वक्तृता करके उन्होंने ख्याति प्राप्त की, और कात्यायन प्रभृति कई एक प्रधान व्यक्तियों को परास्त करके अपने मत में मिलाया। फिर श्रावस्ती नगर में जाकर धर्मसूत्र प्रचार और कोशल के राजा प्रसेनजित् प्रभृति अनेक प्रधान व्यक्तियों को अपने मत मे दीक्षित किया। इसी भाँति मथुरा, उज्जैन, कामरूप, विन्ध्याचल प्रभृति स्थानों मे परिभ्रमण करके बहुत से लोगो को अपने मत में दीक्षित किया। गगा के उत्तर और दक्षिण तीरस्थ राजाओं मे घोर विवाद उपस्थित था, इन्होंने वह विवाद मिटाकर उन लोगों को भी अपने मत में मिलाया।

महाराज शुद्धोदन ने अपने यहाँ कपिलवास्तु मे बुलाने के लिये एक बेर आठ दूत भेजे थे परंतु शाक्यसिंह की सुमधुर वक्तृता से वे लोग ऐसे मोहित हो गए कि उनके मत में दीक्षित होकर उन्हीं के पास रह गए। तब राजा ने चर्म नामक मंत्री को भेजा, परंतु वह भी दूतों की भाँति दीक्षित होकर वहीं रह गया। अंत में राजा ने कपिलवास्तु मे न्यग्रोध नामक एक विहार बनवाया और वहीं वे पुत्र को लिवा लाए। "बुद्ध" नाम प्राप्त होने के बारह वर्ष बाद उन्होंने विहार मे आकर पिता से भेंट की। वहाँ आकर वे सब शाक्यवंशियों को अपने मत मे लाए।

इस भाँति शाक्यसिंह ने एक नए धर्म की सृष्टि और प्रचार करके अस्सी वर्ष की अवस्था में दो शाल-वृक्षों के बीच उदरामय रोग से प्राण त्याग किया। कोई आसाम के अंतर्गत कुशीग्राम और कोई काशी और पटना के मध्यवर्ती गंडक नदी के तीरस्थ कुशीनगर को उनका मृत्यु-स्थान कहते हैं। उनके आज्ञानुसार उनका शरीर उस समय के सम्राटों की प्रथा के अनुसार दग्ध हुआ। चिताभस्म के लिये मगध, प्रयाग, कपिलवास्तु आदि आठ स्थानों के निवासियों में

घोर विवाद उपस्थित हुआ। अंत मे एक ब्राह्मण ने इस भस्म के आठ भाग करके यह विवाद मिटाया। सभो ने अपने अपने देश मे इस भस्म के ऊपर एक एक चैत्य बनाया। भस्मविभागकारी ब्राह्मण ने भस्मपात्र और एक दूसरे व्यक्ति ने चितावशिष्ट अंगार लेकर जुदा जुदा एक एक चैत्य बनाया। उनमे से कई एक चैत्य अब तक वर्तमान हैं। कहते हैं इनके चार दाँत इस देश मे स्थान स्थान पर लाए गए थे। बौद्ध धर्मावलंबी गण इन दाँतों को बडा पवित्र मानते हैं।

शाक्यसिंह ने जन्म ग्रहण तो राजकुल मे किया था परंतु वृक्ष ही के नीचे वे प्रसव हुए, वृक्ष ही के नीचे बैठकर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया, और वृक्ष ही के नीचे मानव लीला का संवरण किया। उनका प्रचारित धर्म लोगों को ऐसा हृदयग्राही हुआ था कि उस समय के सभी धर्म निस्तेज हो गए थे। हिंदू धर्म भी लुप्तप्राय हो गया था। अब तक पैंतालीस करोड मनुष्य इस मत के अवलबन करनेवाले हैं। पृथ्वी पर इतने अधिक लोग किसी मत के अवलंबन करनेवाले नहीं हैं।

शाक्यसिंह केवल बौद्धों ही मे पूज्य नहीं हैं वरंच हिंदू लोग भी उनके प्रति विशेष सम्मान दिखाते हैं। हिंदू शास्त्रकारों ने बुद्ध को विष्णु का अवतार माना है। बौद्ध धर्म हिंदू धर्म के संपूर्ण विरुद्ध नहीं है केवल अंश मात्र है।

(ङ) शंकराचार्य *

हजार वर्ष से अधिक हुआ शंकराचार्य ने मलावार प्रदेश मे नांबुरी ब्राह्मण वंश मे जन्म ग्रहण किया था। कोई कोई कहते हैं इनका जन्म कर्नाट देशांतर्गत तुंगभद्रा नदीतीरवर्ती शृंगभेरि नामक नगर मे

* शंकरदिग्विजय और भारतभूषण भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रलिखित जीवनचरित देखो।

हुआ। सर्वशास्त्रविशारद शिवगुरु इनके पिता थे। अष्टम वर्ष मे उपनयन होने पर वे वेदाध्ययन मे प्रवृत्त हुए। इनकी ऐसी चमत्कार-पूर्ण मेधा, सुतीक्ष्ण बुद्धि और दृढ़ अध्यवसाय था कि बारह ही वर्ष की अवस्था मे वे सब शास्त्रो मे असाधारण व्युत्पन्न हो गए। कोई कोई कहते हैं कि पंचम वर्ष मे उपनयन हुआ और अष्टम मे वेदादि सब शास्त्रो का अध्ययन करके वे गुरुगृह से लौट आए थे। ये निखिल वेद, एवं सकल प्रकार दर्शन, पुराण, इतिहास, काव्य और अलंकार प्रभृति सब शास्त्रो मे सुपडित हो गए थे। सांख्य, पातजल प्रभृति तर्कशास्त्रों को ऐसे मनोयोग के साथ उन्होने पढ़ा था कि उनमें से तर्कजाल उठाकर बड़े बड़े पडितों को परास्त कर देते। अत्यंत सुकुमार वयस में उनकी ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि, असामान्य विद्या, और प्रौढ़ोचित विज्ञता देखकर सब लोग विस्मयापन्न होते थे।

कहते हैं शंकराचार्य ने एक वर्ष के वय मे मातृभाषा की वर्णमाला सुख से स्मरण कर ली थी, दूसरे वर्ष मे लिखे अक्षर पहिचानकर पढना सीख लिया था, तीसरे वर्ष पुराण और काव्य सुन सुनकर सीख लिया था। उनकी स्मरणशक्ति ऐसी थी कि जो एक बेर सुनते वही कंठस्थ हो जाता। उनको पढ़ाने में गुरु को कुछ भी कष्ट न होता, वरंच उनके द्वारा गुरु के श्रम में लाघव होता, क्योंकि वे प्राय: सहाध्यायियों को पाठ पढ़ा देते थे।

अत्यंत अल्प वयस में इनके पिता को परलोक प्राप्त हुआ। कोई कोई कहते हैं तीन ही वर्ष की अवस्था मे वे पितृहीन हो गए थे। अष्टम वर्ष से घर के काम काज देखने पड़े। उसी समय संसार का सारा भार इनके सिर पड़ा। इतनी समाई भी न थी कि उससे अनायास दिनपात होता। इससे जीविका और गृहस्थी के सब झगड़ों का इन्हीं को उद्योग करना पडता। शंकराचार्य ऐसी दुरवस्था में

पड़कर भी विद्याशिक्षा से विरत नहीं थे। जो समय मिलता वह केवल विद्या-शिक्षा ही मे लगाते, क्षणमात्र भी विश्राम न करते।

थोड़े ही दिन मे इनका यशसौरभ चारों ओर फैल गया। राजा लोग भी दर्शनार्थी होकर इनके घर आने लगे। केरलाधिपति ने इनके यहाँ आकर विविध धर्मोपदेश लिया था। उन्होंने इन्हे बहुत सा धन देना चाहा था परंतु अर्थ मे किंचिन्मात्र लोभ न होने से इन्होने कहा—"यह धन दरिद्रों को दान करो, हमे इसकी आवश्यकता नहीं है।" शंकराचार्य की माँ इनके गुणों से ऐसी मुग्ध हो गई थी कि इनके कारण एक दिन भी उसे वैधव्य यंत्रणा का अनुभव न हुआ।

इनको बहुत ही छोटी अवस्था में सन्यास धर्मग्रहण की इच्छा हुई। इन्होंने मन ही मन स्थिर किया था कि अकृतदार होकर ईश्वरोपासना और धर्म-चिंतन में जीवन अतिवाहित करेंगे। माता के कातर स्नेहपूर्ण वाक्यों से वे उस समय अपना मनोरथ सिद्ध न कर सके, परंतु विवाह नहीं किया। कैसे माता से आज्ञा मिले रात दिन इसी की चिंता करने लगे।

एक दिन शंकराचार्य गाँव से थोड़ी दूर पर अपने किसी आत्मीय के घर गए थे। रास्ते में एक क्षुद्र नदी पड़ती थी। उस नदी मे बहुत ही कम जल था इससे सब लोग अनायास पार चले जाते, नाव का प्रयोजन न होता। जाने के समय तो शंकराचार्य अनायास चले गए परंतु आने के समय देखा नदी बरसात के जल से उमड़ आई है, पार जाने का कोई उपाय नहीं है। थोड़ी देर सोच विचार कर नदी पार करने के अभिप्राय से हिले परंतु जल इतना बढ़ गया था कि उनके गले तक पहुँच गया। प्रबल स्रोत में बह जाने का ढंग देखकर माता पुत्र के जीने की आशंका देखकर अत्यंत भीता और कातरा हुई। शंकराचार्य ने यही सुंदर अवसर अपने मनोरथ के पूर्ण होने का देखकर कहा—"मा यदि तुम हमें संन्यास धर्म लेने की आज्ञा

दो तो इस विपद से छूटने की आशा है नहीं तो कोई आशा नहीं, क्योंकि परमेश्वर संन्यासी पर अत्यंत प्रसन्न रहते हैं। आपके सन्यास धर्म ग्रहण की आज्ञा देने से वह अवश्य हम लोगों की रक्षा करेंगे।" माँ ने उस समय विवेचना का अवसर न पाया, पुत्र के रक्षणार्थ अगत्या इस प्रस्ताव पर सम्मति दे दी। शंकराचार्य दूने साहस के साथ माँ को पीठ पर लेकर तैरकर नदी पार हुए। आत्मीय स्वजनों को एकत्र करके माता के रक्षणावेक्षण का भार उन पर छोड़कर कभी कभी आप आकर भेंट कर जायँगे इत्यादि वाक्यों से आश्वस्त कर वे ईप्सित प्रदेश की ओर चले गए।

पहिले कर्णाट देश में जाकर कुछ दिन रहे, वहाँ विविध धर्मशास्त्र और दर्शन पढ़ा। वहीं बौद्ध धर्मशास्त्र भी पढ़ा। सब शास्त्रों को देख-कर उन्हें दृढ़ विश्वास जमा कि जगत् का स्रष्टा एक ही अनादि अनंत जगदीश्वर है। भिन्न भिन्न शास्त्रकारों में किसी ने शिव, किसी ने विष्णु, किसी ने शक्ति को सृष्टिकर्ता कहकर निर्दिष्ट किया है सही परंतु ये सब भिन्न नहीं हैं, यह भी शास्त्रकारों ने स्पष्ट प्रकाशित किया है। उन्हें यह विश्वास हुआ कि साधारण मृत्पिंड की भी, प्रकृत ईश्वर समझकर, उपासना करने से उसका फल प्राप्त होता है। भिन्न भिन्न धर्मशास्त्रों में जो परस्पर-विरोधी मत हैं वे सब उनकी तीक्ष्ण बुद्धि से समान बोध हुए। किंतु बौद्धों का "ईश्वर नहीं है" यह वाक्य इन्हें अत्यंत असह्य हुआ। उस समय बौद्धधर्म का भारतवर्ष में ऐसा प्राबल्य हो गया था और हिंदू धर्म की ऐसी दुरवस्था हो गई थी कि यदि उस समय शंकराचार्य सदृश असाधारण बुद्धिशाली हिंदू धर्म के रक्षण में न कटिबद्ध होते तो हिंदू धर्म लुप्त ही हो जाता। शंकराचार्य ने अपने धर्म की ऐसी दुर्दशा देखकर बौद्धधर्म को भारतवर्ष से निकाल देने की प्रतिज्ञा की।

कांचीपुर के राजा हिमशीतल नरपति बौद्धधर्म के बड़े ही पक्षपाती थे। उनकी सभा सदा प्रधान प्रधान बौद्ध पंडितों से परिपूर्ण रहती। शंकराचार्य ने वहाँ जाकर बौद्ध धर्म की अलीकता प्रकाशित की। राजा और पंडित-मंडली अत्यंत क्रुद्ध हुई। शंकराचार्य के विचार की प्रार्थना करने पर राजा ने क्रोधपूर्वक कहा—"बौद्धधर्म की अलीकता प्रमाणित करने की चेष्टा करना बडी धृष्टता का काम है।" अंत मे वादविवाद के उपरांत यह स्थिर हुआ, कि जो कोई विचार में परास्त होगा उसे घानी पेरने का दंड भोगना पडेगा। राजा ने नाना स्थानों से बडे बड़े बौद्ध पुरोहितों को आमन्त्रण करके बुलाया। उन लोगों के साथ शंकराचार्य का विचार हुआ। इनकी अकाट्य युक्ति के आगे बौद्धों के कूट तर्कजाल छिन्न भिन्न हो गए और बौद्ध पंडितों को पराजय स्वीकार करनी पडी। राजा उन लोगों को उचित दंड देकर आप बौद्धधर्म छोड शंकराचार्य के मत के अनुवर्ती हो गए। शंकराचार्य के इस विजय का पूरा विवरण शिव कांची के श्मशानेश्वर महादेवजी के द्वार पर और भगवती नदी तीरस्थ भेरुली के देवमंदिर में पत्थर पर खुदा है। कांचीपुर से वे तिरुपति नामक स्थान मे गए। वहाँ भी बड़े बड़े बौद्ध पंडितों को परास्त किया। इसी भांति दक्षिण देश को विजय कर पश्चिमोत्तर देश विजय करने की इच्छा से विंध्याचल पार हो काशी आए। यहाँ विविध दर्शनशास्त्र-प्रणेता मंडन मिश्र को विचार मे परास्त किया। इसी भाँति काश्मीर वल्लभीपुर प्रभृति उत्तर और पश्चिम के सब प्रदेशों को जीतकर फिर कर्णाट देश को लौटे। फिर दक्षिण के सब स्थानों मे भ्रमण करके नाना कीर्ति स्थापित करके उत्तर और पूर्व देश की ओर यात्रा की। नैपाल, कामरूप आदि स्थानों के पंडितों को भी पराजित किया। अंत मे काश्मीर

राज्य मे सरस्वती पीठ मे कुछ दिन रहकर बत्तीस वर्ष की अवस्था मे केदारनाथ मे मानवलीला संवरण की। कोई कोई कहते हैं कि यवन देश की ओर गए थे फिर वहाँ से नहीं लौटे।

इसी थोड़ी सी अवस्था में नाना शास्त्रो मे विशारद होकर भारत-वर्ष के नाना स्थानों मे घूमकर पंडितो को परास्त करके अद्वैतवाद का प्रचार और स्थान स्थान पर मठ स्थापन करके वेदांत की चर्चा, वृद्धि एवं वेदांत दर्शन, कठादि उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता प्रभृति ग्रंथों के भाष्य तथा कई एक उत्कृष्ट ग्रंथो की रचना करके वे संसार मे चिरस्मरणीय हो गए। दीर्घजीवी होते तो न जाने क्या करते। शंकराचार्य जन्म ग्रहण न करते तो हिंदू धर्म का चिह्न भी कदाचित् न दिखलाई देता। हिंदू धर्म शंकराचार्य का ऋणी है। अद्वैतवाद प्रचलित करना ही इनका मुख्य उद्देश्य था। परंतु वे यह कहते थे कि जो लोग इसे समझने मे असमर्थ हैं उनको शिवादि देवताओं की पूजा करना उचित है। इसी कारण से अनेक स्थानों मे अनेक देव देवी की मूर्ति की उन्होने स्थापना की थी।

(च) चाणक्य

प्राय: बाईस सौ वर्ष पूर्व राजनीतिविशारद पंडितवर चाणक्य वर्तमान थे। ये अत्यंत कदाकार और कृष्णवर्ण थे। परंतु प्रतिभा और अध्यवसाय मे इनकी समानता कोई न कर सकता था। जिस बात के करने की मन मे लाते उसे संपन्न किए बिना कदापि निवृत्त न होते। केवल दृढ़ अध्यवसाय और तीक्ष्ण बुद्धि के बल से इन्होंने महानंद सदृश प्रबल प्रतापी नरपति को सवंश विध्वंस करके चंद्रगुप्त को मगध के सिंहासन पर बिठाया था, और असाधारण बुद्धिमान्

प्रभुभक्त राक्षस मंत्री को अपने वश मे लाकर चंद्रगुप्त के मंत्रित्व पर अभिषिक्त करा दिया था।

चाणक्य वेदादि सर्व शास्त्राध्ययन करके गुरुगृह से विवाह करने की इच्छा से घर की ओर लौट रहे थे, रास्ते मे कुशा की जड से इनका पैर कट गया और क्षताशौच के कारण उस समय विवाह रुक गया। इससे अत्यत ही क्रुद्ध होकर वहाँ से कुशा निर्मूल करने की इच्छा से एकाग्रचित्त हो कुशा उखाड़ उखाड फेकने और उसकी जड़ मे तक्र अर्थात् मठा ढालने लगे। महानंद के दूसरे मंत्री शकटार ने देखकर आश्चर्यपूर्वक पूछा—"ब्राह्मण देवता आप यहाँ इस निरर्थक व्यापार में क्यों व्यर्थ कष्ट उठा रहे हैं?" चाणक्य ने कहा—"रोग और शत्रु अति क्षुद्र होने पर भी उपेक्ष्य नहीं है।" इतना कहकर अपना परिचय और अपनी प्रतिज्ञा का वृत्तांत कह सुनाया। शकटार पहले महानंद का प्रधान मंत्री था, जाति मे शूद्र होने पर भी असामान्य बुद्धिमान् और राजनीतिज्ञ था परतु स्वभाव अत्यंत उद्धत था, इससे प्राय: राजा पर अयोग्य आधिपत्य प्रकाश कर बैठता। महानंद भी अत्यंत क्रोधी और गर्वित था। वह शकटार के आचरण से ऐसा विरक्त हो रहा था कि सहन न कर सका और एक दिन क्रोध मे आकर शकटार को सकुटुब कारावद्ध कर दिया। वहीं कारागार ही में आहाराभाव से शकटार के कुटुंबवालों ने प्राण-त्याग किया। तभी से मन ही मन शकटार नंदवंश का विषम शत्रु हो गया और इसके नाश करने की उसने प्रतिज्ञा की। फिर मंत्री पद पर अभिषिक्त होने पर भी वह प्रतिज्ञा भूल न सका, अवसर की ताक मे लगा रहा। चाणक्य की बात सुनकर और भावभगी देखकर उसने मन में विचार किया कि इसके समान स्थिरप्रतिज्ञ और अध्यवसायशाली मनुष्य तो कोई दिखाई नहीं पड़ता। इसका स्वभाव क्रोधी और यह

अत्यंत बुद्धिमान्, कार्यदक्ष और कुटिल जान पड़ता है। इसकी सहा-यता मिलने से हम महानंद को सवंश सहज में नष्ट कर सकेंगे इसमें संदेह नहीं। चाणक्य से कहा—"महाशय, यदि आप नगर में चलकर चतुष्पाठी निर्माण करके रहना स्वीकार करें तो हम अभी सब कुशा बहुत से मनुष्य लगाकर उखड़वा दें।" चाणक्य के स्वीकृति देने पर मंत्री ने वह स्थान तुरंत कुशाशून्य करा दिया और वह उन्हें घर लिवा लाया।

नगर में चतुष्पाठी स्थापित हुई। नाना स्थानों से आकर विद्यार्थी लोग विद्याध्ययन करने लगे। चाणक्य सब शास्त्रों को पढ़ाने लगे। उनकी विद्या और बुद्धि की प्रतिभा देखकर सभी ने समझा कि यह असाधारण पंडित है। थोड़े ही दिन में इनकी प्रसिद्धि सारे नगर में हो गई।

चाणक्य के जी में राजा पर किस तरह क्रोधोत्पादन करें, शकटार रात दिन इसी की चिंता करने लगा। इधर राजा के पिता के श्राद्ध का दिन आया। प्रधान मंत्री राक्षस पर चट के ब्राह्मणों को लाने का भार था। परंतु शकटार राक्षस के अज्ञात चाणक्य को चट के आसन पर बिठा आप किसी काम के बहाने वहाँ से चल दिया। राक्षस ने निमंत्रित ब्राह्मणों के साथ आकर देखा कि यहाँ तो पहले ही से एक कदाकार कृष्णवर्ण ब्राह्मण बैठा है। आश्चर्य में आकर पूछा—"महाशय! आप कौन हैं और यहा आपको कौन लाया?" चाणक्य ने कहा—"हमें शकटार मंत्री निमंत्रण देकर लिवा लाए हैं।" राक्षस यह सुनकर अपने निमंत्रित ब्राह्मण को राजा के पास ले गया। राजा श्राद्धस्थान में आ रहे थे, राक्षस ने राजा से कहा—"महाराज, हमने आपके आज्ञानुसार इस ब्राह्मण को निमं-त्रण दिया था परंतु शकटार मंत्री पहले ही से एक उदासीन ब्राह्मण

को आसन पर बिठा आप कहीं चले गए हैं। वह ब्राह्मण शास्त्रानुसार कदापि वरणीय नहीं है। कृष्णवर्ण, श्यामदंत, रक्तनेत्र ब्राह्मण को श्राद्ध मे निमत्रण देना निषिद्ध है। आगे महाराज की जो इच्छा हो करे।" एक तो महानंद महा अव्यवस्थित चित्त दूसरे शकटार पर सदा से विरक्त था ही तिस पर शकटार के बिना आज्ञा एक अपरिचित ब्राह्मण को बिठाकर आप खसक जाने से महानंद अत्यत क्रुद्ध हुआ और शीघ्रता से श्राद्धस्थान मे आकर चाणक्य का कुत्सित आकार देखकर क्रोधांध हो गया और शिखा पकड़कर उसे आसन से उठा दिया। सभा के बीच मे ऐसा अपमान कोई सह्य नहीं कर सकता। चाणक्य तो स्वभावतः तेजस्वी और क्रोधपरायण था ही, राजा के इस भाँति उठा देने पर उसकी लाल आखे' और भी रक्त वर्ण हो गई, सारा शरीर काँपने लगा और शिखा खुलकर फैल गई। बड़े क्रोध से पृथ्वी पर पदाघात करके बोला—"अरे दुरात्मा महानद! तैंने जैसा निरपराध हमे अपमानित किया है उसका प्रतिफल तुझे शीघ्र ही मिलेगा। हमारा नाम चाणक्य है। देखो तुम लोग साक्षी रहना, इसने निरपराध केशाकर्षण करके हमारा अपमान किया है। इसी उन्मुक्त शिखा को नंदवंश की काल-भुजंगिनी स्वरूप समझना। हम प्रतिज्ञा करते हैं जब तक नंदवंश का ध्वंस न कर लेगे, यह शिखा योंही खुली रहेगी।" चाणक्य यह कह तुरंत वहाँ से चला गया। सब लोग राजा के इस गर्हित व्यवहार से अत्यंत असंतुष्ट हुए परंतु कुछ बोल न सके, सिर नीचा करके मन ही मन मसूसकर रह गए।

चाणक्य मारे क्रोध के काँपता हुआ शकटार के घर गया और आनुपूर्वक सब वृत्तांत कह सुनाया। शकटार अपना मनोरथ सिद्ध देखकर अत्यंत सुखी हुआ और चाणक्य का क्रोध बढ़ाने के लिये

अपनी पूर्व दुरवस्था और राजा का असदाचरण कहने लगा। उसी दिन से दोनों नदवंशोच्छेद के उपायान्वेषण में तत्पर हुए।

चाणक्य को शकटार से विदित हुआ कि राजा को आठ बेटे हैं जिनमें सबसे बड़ा बेटा चंद्रगुप्त ही गुणवान सच्चरित्र और शस्त्र तथा शास्त्र दोनों में निपुण है। प्रजा भी इसी को विशेष चाहती है; परंतु नाइन के पेट से जन्म लेने के कारण और भाई लोग उससे घृणा करते हैं। शेष सातों बेटों में गुण कोई नहीं है केवल पिता के दोषभाग के उत्तराधिकारी हैं। महानंद का भाई सर्वार्थसिद्धि निरा अयोग्य है। राजकर्मचारियों में एक राक्षस मंत्री ही यथार्थ उपयुक्त सच्चा पंडित, सुचतुर और राजभक्त है।

यह सब समाचार पाकर चाणक्य ने चंद्रगुप्त को अपने पास बुलाया और उसको राज्यसिंहासन पर बैठाने का लालच देकर उसको और अपने शिष्यों को साथ लेकर अभीष्ट स्थान को प्रस्थान किया।

चाणक्य रसायन शास्त्र में बड़ा पंडित था, एक प्रकार का ऐसा विष बना सकता था, कि शरीर से छू जाने से ही मृत्यु हो जाती। कहते हैं राजा और राजपुत्रों के लिये चाणक्य ने शकटार के द्वारा विष मिलाकर कुछ निर्माल्य-द्रव्य भेजा जिसके स्पर्श से राजा और राजपुत्रों की मृत्यु हुई। कोई कोई कहते हैं कि शकटार ने अपने हाथ से राजा को मारा और राजपुत्रों ने थोड़े दिन राज्य किया तब चाणक्य ने चंद्रगुप्त से मिलकर उन सभों का नाश किया। राजा और राजपुत्रों के मरने पर मंत्री राक्षस ने महानंद के भाई सर्वार्थसिद्धि को सिंहासन पर बिठाया।

चाणक्य ने देखा कि बिना सैन्य-संग्रह मगध का सिंहासन अधिकृत करना असंभव है अतएव वह सैन्य-संग्रह करने के लिये देश-देशांतर में भ्रमण करने लगा। पर्वतक नामक एक जंगली राजा के साथ

चाणक्य से भेंट हुई, उससे 'मगध राज्य मिलने पर आधा राज्य बाँट देंगे' कहकर साहाय्य की प्रार्थना की। पर्वतक महा लोभी था। चाणक्य के प्रस्ताव पर तुरंत ही सम्मत हो गया, और अपने मित्र म्लेच्छ राजाओं को साथ लेकर अपने पुत्र मलयकेतु और भाई वैरोधक के साथ उसने मगध पर चढ़ाई की।

चाणक्य ने असंख्य सैन्य लेकर मगध की राजधानी कुसुमपुर को घेर लिया। पद्रह दिन तक घोर युद्ध हुआ। प्रत्येक युद्ध मे नागरिक लोग परास्त हुए। अंत मे राजा सर्वार्थसिद्धि ने राज्य की रक्षा असंभव जानकर और राज्यहीन संसार मे जीना महाक्लेशकर समझकर वैराग्य ग्रहण कर तपोवन की ओर प्रस्थान किया। राक्षस ने सोचा था कि सर्वार्थसिद्धि को साथ लेकर किसी बड़े प्रबल राजा की सहायता लेंगे परंतु सर्वार्थसिद्धि के इस भाँति वैराग्य अवलंबन करने पर वह बड़ा ही दुखी हुआ। सर्वार्थसिद्धि को फेर लाने के अभिप्राय से उसने तपोवन मे जाना आवश्यक विवेचन किया। अपने मित्र चंदनदास नामक एक धनाढ्य जौहरी के यहाँ अपने कुटुंब के लोगों को छिपाकर उसने आप तपोवन की ओर यात्रा की। चाणक्य-प्रेरित क्षपणक-वेषधारी जीवसिद्धि चाणक्य को राक्षस की तपोवन-यात्रा का समाचार देकर आप अमात्य के साथ हुआ।

चाणक्य ने सोचा यदि राक्षस ने सर्वार्थसिद्धि से मिलकर किसी बलवान् राजा का आश्रय लिया तो राज्य मे नाना प्रकार के विघ्नों के उपस्थित होने की संभावना है अतएव अभी से उसको रोकना चाहिए और जब तक सर्वार्थसिद्धि जीवित रहेगा हमारी नदवंशोच्छेद की प्रतिज्ञा भी पूरी न होगी। यह विचारकर उसने सर्वार्थसिद्धि को मारने के उद्देश्य से उसके पीछे कई एक सैनिक लगा दिए। राक्षस के तपोवन पहुँचने के पहले ही उन लोगों ने

सर्वार्थसिद्धि को खपा दिया। राक्षस इस समाचार को सुन अत्यंत शोकाकुल हुआ और कई दिन तक हताश और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर निश्चेष्ट भाव से बैठा रहा।

चाणक्य ने सोचा--"हम तो प्रतिज्ञासागर से उत्तीर्ण हो गए, परंतु चंद्रगुप्त को असहाय छोड़कर जाना उचित नहीं है। यदि मन्त्रिप्रवर राक्षस चद्रगुप्त का मंत्री होना स्वीकार करे तो फिर राज्य निष्कंटक हो जाय, और हम भी अभिलषित स्थान को जा सकें।" यह सोचकर चाणक्य ने मंत्रित्व पद ग्रहण करने के लिये राक्षस से अनुरोध किया। प्रभुभक्त राक्षस मन्त्री इस प्रस्ताव मे असम्मत हुआ। क्या राक्षस सा प्रभुभक्त कभी प्रभु के शत्रुओं का नाश किए बिना स्वस्थ हो सकता है? केवल इसी अभिप्राय को साधन करने के उद्देश्य से वह शत्रुओं के नष्ट करने के अनेक उपाय करने लगा। अंत मे उसने विचार किया कि चाणक्य को पर्वतक ही का बड़ा भरोसा है यदि वह हमारे हस्तगत हो जाय तो तुरंत कार्य सिद्ध हो। यही निश्चय कर उसने पर्वतकेश्वर के पास जाकर उसे ही मगधसिंहासन पर बिठाने का लोभ देकर चाणक्य का पक्ष छोड़ अपने साथ होने का अनुरोध किया। पर्वतक ने पूरा राज्य पाने के लोभ से राक्षस की बात अंगीकार की और उसे अपना प्रधान मंत्री बनाकर सब काम उसको सौंप दिए।

चाणक्य असाधारण बुद्धिमान् और राजनीतिविशारद था। उसके मर्म को कोई भी न जान सकता और वह शत्रुपक्ष की अत्यंत गूढ़ मंत्रणा को भी जान लेता। उसने पहले ही से अपने एक विश्वासी अनुचर को राक्षस के पास छोड़ रखा था। उसके द्वारा सब समाचार अवगत होकर उसने उसके प्रतिविधान के निमित्त चारों ओर गुप्तचर छोड़ दिए। वे सब कोई क्षपणक, कोई आहितुंडिक,

कोई भिक्षुक का वेष बदलकर कुसुमपुर और पर्वतक के महल के चारों ओर घूमने लगे। इस उपाय से चाणक्य शत्रुपक्ष का समाचार नित्य नित्य जानने लगा और इसी से वह अनायास नगरनिवासी विपक्षियों के विनाश और पर्वतक राज्य की मंत्रणा का प्रतिविधान करने मे समर्थ हुआ। उसके चमत्कार-पूर्ण नीतिकौशल से उसी के विश्वासी लोग पर्वतक के सर्वापेक्षा विश्वासपात्र बन गए थे, और उन्होने उसके हृदय पर अधिकार कर लिया था। उसके कौशल की ऐसी आश्चर्य महिमा थी कि उसी का चर उसी के दूसरे चर को अपने पक्षवाला नहीं जान सकता था।

राक्षस ने भी इसी भाँति बहुत से गुप्तचर नियुक्त करके चंद्रगुप्त का वध करना चाहा था। किंतु चाणक्य के बुद्धिबल से उन सभों का विपरीत फल हुआ। वही सब चद्रगुप्त के बदले पर्वतक और राक्षस ही के गुप्तचरो के प्राणवध के कारण हुए।

मुद्राराक्षस नामक नाटक मे उन लोगों की कार्यप्रणाली का जो विवरण लिखा है उसका संक्षिप्त मर्म यहाँ प्रकाशित करते हैं।

राक्षस ने जब देखा कि अकेले पर्वतक से चंद्रगुप्त का पराजय संभव नहीं है तब किलात, मलय, काश्मीर, सिंधु और फारस राज्य में जाकर वहाँ के राजाओं से सहायता की प्रार्थना की। इन पाँचों राजाओं के सम्मत होने पर उन लोगों की सेना ले पर्वतक की सेना के साथ कुसुमपुर पर चढ़ाई करने का उद्योग करने लगा। उसने चंद्रगुप्त के प्राणनाश और चाणक्य से अनबन कराने के लिये बहुत से उपायों का अवलंबन किया, कई एक विश्वासी अनुचरों को शिल्पी, हाथीवान, वैद्य और बंदी रूप से नियुक्त किया, और उसके वध के लिये विषकन्या का प्रयोग किया।

चाणक्य ने विषकन्या की भावभंगी देखकर उसे सद्यःप्राणहारी समझ लिया। वह पर्वतक की विश्वासघातकता और धूर्तता का

दंड देने के उपाय की खोज ही मे था कि इस उपहार के पाने से अत्यंत प्रसन्न हुआ और पर्वतकेश्वर के पास उसे भेज दिया। उसी रात पर्वतक हत हुआ। पीछे उसका बेटा मलयकेतु यदि रहेगा तो उसे आधा राज्य बाँट देना होगा इसलिये इसको भी दूर करना चाहिए, यह सोचकर भागुरायण नामक एक व्यक्ति के द्वारा उसको जमाया कि "चाणक्य ने आपके पिता को मार डाला अब आपके भी मारने के उद्योग मे है।" मलयकेतु यह सुन रात ही रात भागुरायण आदि चाणक्य ही के कई एक विश्वस्त अनुचरों के साथ अपने राज्य में भाग गया। निदान विषकन्या द्वारा चंद्रगुप्त के प्राणनाश के बदले उलटा आधे राज्य का लाभ हुआ। चाणक्य ने दूसरे दिन सारे नगर में प्रसिद्ध कर दिया कि पर्वतक ने चाणक्य की सहायता की थी इसलिये राक्षस ने उसे विषकन्या के प्रयोग से मरवा डाला। राक्षस ने पर्वतक का मंत्रित्व ग्रहण किया है यह समाचार किसी पर विदित नहीं था, अतएव सब किसी ने इस बात पर विश्वास कर लिया।

मलयकेतु के भाग जाने पर पर्वतक के भाई वैरोधक ने आधे राज्य की प्रार्थना की। चाणक्य चंद्रगुप्त और वैरोधक दोनों को राज्य पर अभिषिक्त कराने के लिये राज्यभवन मे प्रवेश का उद्योग करने लगा। रात को चंद्रगुप्त राजभवन में प्रवेश करेंगे यह समाचार नगर में प्रचारित हुआ। चारों ओर तोरण बँध गईं, सारा नगर सजाया गया, मंगल कलश सजाए गए, सारे नगर मे धूम धाम मच गई, नौबतें बैठ गईं। लोग चंद्रगुप्त के राजभवनप्रवेश को देखने के लिये उत्सुक हुए। चाणक्य ने राक्षस का कौशल जानकर पहले वैरोधक को चंद्रगुप्त के वेष से सजाकर और हाथी पर बिठा राज के अनुचरों सहित राजभवन में उसका प्रवेश कराया।

एक तो रात का समय दूसरे राज्य-परिच्छद देखकर सबको वैरोधक मे चंद्रगुप्त का धोखा हुआ। पहले फाटक पर राक्षस का अनुचर शिल्पी था और हाथीवान भी राक्षस का अनुचर ही था। ज्योंही वैरोधक फाटक के नीचे पहुँचा शिल्पी ने तोरण गिराया और चंद्र-गुप्त के धोखे से हाथीवान ने हाथी को धीरे धीरे चलाया। चंद्र-गुप्त के बदले वैरोधक मारा गया। इसी के साथ हाथीवान और शिल्पी की भी मृत्यु हुई। निदान चद्रगुप्त की हानि न होकर लाभ ही हुआ। बिना युद्ध ही आधे राज्य के भागी वैरोधक का प्राण-नाश हुआ, वैद्य प्रभृति भी इसी भाँति आपही नष्ट हुए।

चाणक्य के कौशल से सभी उपाय व्यर्थ होते देख राक्षस ने विचार किया कि किसी प्रकार चाणक्य का चंद्रगुप्त से बिगाड़ कराना चाहिए। चाणक्य जैसा अभिमानी और क्रोधी है, उसको चद्रगुप्त से किंचिन्मात्र अपमानित करा देने ही से उद्देश सिद्ध होगा। यह सोचकर कई एक विश्वस्त अनुचरों को चंद्रगुप्त की सभा का बंदी नियुक्त किया। ये लोग रात दिन चद्रगुप्त की शक्ति की प्रशंसा और चाणक्य के गर्व, अन्यायप्रभुत्व और अन्यायाचरण से राज्य के सब लोगो की विरक्ति प्रभृति कह कहकर सुनाने लगे। चाणक्य ने देखते ही समझ लिया "यह लोग हमसे और चंद्रगुप्त से बिगाड कराने के लिये राक्षस द्वारा नियुक्त हुए हैं।" किंतु इसी बिगाड़ ही से चंद्र-गुप्त का उपकार समझकर चाणक्य ने आप ही बिगाड का उपाय कर दिया। उसने कुसुमपुर के पुराने मेले कौमुदी-महोत्सव को बद कर दिया।

चाणक्य बिना हमसे पूछे सब काम करता है और हम बिना उससे पूछे कुछ नहीं कर सकते—यह समझकर चंद्रगुप्त विरक्त होता; मन ही मन सोचता ऐसे नाममात्र के राज्य की अपेक्षा

राज्य न होना ही अच्छा है। राक्षस के भेजे बंदियों ने उसके चित्त मे यह भाव जमा दिया था। यह सुअवसर पाकर इन लोगो ने और भी चिढाया। चंद्रगुप्त अत्यत धीर प्रकृति होने पर भी उस दिन न सहन कर सका। उसने चाणक्य पर अत्यत विरक्त होकर उसे बुला भेजा और कौमुदी-महोत्सव के बद करने का कारण पूछा। चाणक्य ने चद्रगुप्त को चिढ़ाने के लिये तो कौमुदी-महोत्सव बद किया था, ऐसा गर्वपूर्ण उत्तर दिया कि चद्रगुप्त चाणक्य पर अत्यंत विरक्त हो गया। जिसमे शत्रुपक्ष के हृदय मे विश्वास हो जाय कि उससे और चंद्रगुप्त से विवाद हो गया है चाणक्य ने क्रोध से उन्मत्त होकर कहा "वृषल! तुम हमारी अभी बुझी हुई क्रोधाग्नि को फिर प्रज्वलित करने की चेष्टा कर रहे हो! अच्छा हम उस पर ध्यान नहीं देते, जो तुम्हारी इच्छा राक्षस को मंत्री बनाने की है तो उसी को मंत्री बनाओ। यह लो हम जाते हैं।" यह कहकर मारे क्रोध के काँपता हुआ वह चला गया। जाने के समय मन ही मन कहने लगा "राक्षस! तुमने सोचा है कि हमारे साथ चंद्रगुप्त का बिगाड़ कराके उसे पराजित करोगे। बिगाड़ तो हुआ पर स्मरण रखना इसमे तुम्हारे ही अभिलाष के पूर्ण होने में व्याघात होगा।"

चंद्रगुप्त ने प्रचार कर दिया "आज से सब काम हमारे आदेशानुसार होंगे, चाणक्य से कोई सबंध न रहा।" बात की बात में यह समाचार राक्षस तक पहुँच गया। उसने यह उपयुक्त अवसर समझकर कुसुमपुर के घेरने का उद्योग किया। पूर्व लिखित पाँचों राजाओं की सेना के साथ मलयकेतु की सेना मिलित होकर युद्ध के निमित्त प्रस्तुत हुई। किंतु चाणक्य के बुद्धिबल से बिना युद्ध ही चंद्रगुप्त को जय-लाभ हुआ। उसने पहले ही से जो कौशल-जाल रच रखा था उसे सोचने से बुद्धि चकरा जाती है। चाणक्य

के समान बुद्धिमान्, सुचतुर, राजनीतिविशारद पंडित पृथ्वी पर कभी किसी देश मे भी कदाचित् न जन्मा होगा।

चाणक्य ने पहले ही से अपन विश्वासी अनुचर जीवसिद्धि को राक्षस का, और सिद्धार्थक को अमात्य के परम बंधु शकटदास का प्रिय सहचर बना दिया था, भद्रभट प्रभृति कई एक व्यक्ति को मलयकेतु का विश्वासी बनाकर उसके साथ भागने दिया था। उन सभो पर राक्षस और मलयकेतु का पूरा विश्वास जमाने के लिये, ऐसा कौशल अवलबन किया कि सबने समझा कि ये चाणक्य और चंद्रगुप्त के अहितकारी तथा राक्षस और मलयकेतु के परम हितकारी हैं। उसने ऐसा बहाना किया मानो उसे यह विदित हो गया है कि जीवसिद्धि, शकटदास और चदनदास राक्षस के पक्षपाती और चद्रगुप्त के विरोधी हैं। इसलिये उसने प्रकाशरूप से जीवसिद्धि को देश-निकाला देने, शकटदास को फाँसी चढाने और चदनदास को उस समय तक जब तक कि वह राक्षस के परिवार को न दे दे कारारुद्ध रखने की आज्ञा दे दी। इस आज्ञा के अनुसार जीवसिद्धि देश-निकाला पाकर राक्षस के पास गया, चदनदास कारारुद्ध हुआ और शकटदास वध्यभूमि मे लाया गया। इतने ही मे सिद्धार्थक चाणक्य के नियमानुसार शकटदास को बलपूर्वक छुडाकर राक्षस के पास ले गया। निदान जीवसिद्धि और सिद्धार्थक राक्षस और मलयकेतु के पूरे विश्वासपात्र बन गए। इसके पहले किसी भाँति चाणक्य को राक्षस की मुहर की अँगूठी हाथ लग गई थी। उसने भविष्यत समयोपयोगी एक पत्र सिद्धार्थक द्वारा शकटदास के हाथ से लिखा रखा था और उस पत्र पर वही मुहर कर उसको उस मुहर के साथ सिद्धार्थक को देकर यथाकर्तव्य उपदेश कर दिया था। सिद्धार्थक ने गुप्तभाव से वह पत्र और मुद्रा अपने पास रख छोडा था।

कुछ दिन पहले मलयकेतु ने तीन बहुमूल्य आभूषण राक्षस को दिए थे। राक्षस ने उन आभूषणों को अपने परम मित्र शकटदास को बचाने के बदले मे सिद्धार्थक को दिए थे। सिद्धार्थक ने चाणक्य के आदेशानुसार उसको ग्रहण न करके कहा "इस समय इसे इसी मुहर से अंकित करके अपने पास रहने दीजिए, पीछे हम ले लेंगे।" यह कहकर राक्षस ही की मुद्रा राक्षस को दी। राक्षस के उस मुहर को पहिचानकर अपनी कहने पर सिद्धार्थक ने कहा "यदि आपकी है तो आप ले लें।" राक्षस ने अत्यंत प्रीति के साथ अलंकारों पर मुहर करके रख दिया और अपनी मुहर ले ली। तब से वह उस मुहर के चिह्न से काम करने लगा।

चाणक्य ने चंद्रगुप्त को त्याग कर दिया यह सुनकर अच्छा अवसर समझकर राक्षस युद्ध की आयोजना करने लगा। उसने पूर्वोक्त राजाओं की और मलयकेतु की असंख्य सेना लेकर कुसुमपुर पर चढ़ाई की। कुसुमपुर के पास आकर पड़ाव डाला। शत्रुपक्षीय कोई कुछ षड्यंत्र न कर सके इसलिये मलयकेतु ने नियम किया कि कोई बिना उसकी नामांकित मुहर के डेरे के बाहर न जाने पावे और बाहर से न आने पावे। मुहर का भार भागुरायण को सौंपा गया। चाणक्य ने जो सब कौशल कर रखे थे अब उनके फलवान् होने का समय आया। उपयुक्त समय जान सिद्धार्थक शकटदास लिखित पत्र और मंत्री प्रदत्त अलंकार लेकर डेरे के बाहर जाने लगा। जीवसिद्धि भी उस समय बाहर जा रहा था। उससे बहुत पूछा गया कि कहाँ जाता है परंतु उसने न बतलाया पर जब देखा कि अब बिना कहे छुट्टी नहीं है तब उसने जो कहा उसका मर्म यही था कि राक्षस प्रथम ही से पर्वतक का शत्रु था उसी ने विषकन्या द्वारा पर्वतक को मरवाया, और चद्रगुप्त से मिलकर यह संधि करता है कि वह

उसका मंत्री होगा और मलयकेतु का राज्य और राजाओं को बाँट देगा। इसी संधि के अनुसार चाणक्य को चंद्रगुप्त ने अलग कर दिया है। यह कहकर सिद्धार्थक चला, किसी प्रकार न रुका, मंत्री का सुहृद् बनकर आज्ञा पालन करने लगा। इसी खींची खींचा मे उसके पास से राक्षस का नामांकित वह पत्र और अलकार निकल पडे। उस पत्र मे जो लिखा था उससे जीवसिद्धि की बात प्रमाणित हुई। एक तो जीवसिद्धि और सिद्धार्थक राक्षस के बड़े ही अनुगत सुहृद्, दूसरे यह पत्र राक्षस का मुद्रायुक्त और शकटदास का लिखा, और इन सभों ने इच्छापूर्वक तो कहा नहीं जब देखा कि बिना कहे प्राण नहीं बचता तब कहा, और चाणक्य ने पहले से ऐसा उपाय रच रखा था कि मलयकेतु के मन मे राक्षस की ओर से खटका हो गया था। निदान इन बातों मे मलयकेतु को तनिक भी सदेह न रहा। क्रोधांध होकर उसने राक्षस के प्राणवध का संकल्प किया, किंतु चाणक्य ने भागुरायण प्रभृति से बार बार कह दिया था कि राक्षस का किसी प्रकार बाल बाँका न होने पावे। इसी से भागु-रायण प्रभृति के कौशल से राक्षस का प्राण बचा।

मंत्रीवर राक्षस जिसके हित के लिये प्राणपण से उद्योग कर रहे थे उन्हीं के द्वारा इस भाँति अपमानित और विताड़ित होकर अत्यंत विषण्ण हुए। चाणक्य के कौशल-जाल के आगे अपने सब कौशल-जाल को छिन्न भिन्न और अपने को उस जाल में आबद्ध होते देख मारे क्षोभ और रोष के उनका अंतर विदीर्ण हो गया, उपायांतर न देखकर उन्होंने तपोवन यात्रा का विचार किया। परंतु उस समय भी चाणक्य के जाल से मुक्त न हो सके थे। चाणक्य के गुप्तचर ही उसका विश्वस्त बनकर घेरे हुए हैं, यह उसे अभी तक विदित नहीं है। चाणक्य ने उंदुरायण पर यह भार दिया था कि जिस समय अमात्य

मलयकेतु द्वारा विताड़ित हो उन्हे निर्दिष्ट स्थान पर कुसुमपुर मे किसी रीति से लिवा लावे। इसी के अनुसार उंदुरायण नाना कौशल से तथा प्रिय सुहृद् चदनदास का समाचार भी लेना चाहिए इत्यादि कहकर राक्षस को कुसुमपुर की ओर लिवा लाया।

चाणक्य ने जब राक्षस के आगमन का समय निकट देखा, अपने दो सुहृदो को भेजा कि तुम लोग चांडाल का वेष धारण करके चदन-दास को लेकर वध्यभूमि को चलो और उससे कहो कि अब भी राक्षस के परिवार को दे दो नही तो फांसी होगी और फाँसी के लिये उद्योग करो। इधर राक्षस ने निर्दिष्ट स्थान पर आकर चाणक्य-प्रेरित गुप्तचर के मुख से चंदनदास के फाँसी चढ़ने का समाचार सुनकर क्रोधपूर्वक कहा "क्या हम हाथ मे शस्त्र रहते हुए भी अपने मित्र की प्राणरक्षा नहीं कर सकते ?" उंदुरायण ने बाधा देकर कहा—"यदि मित्र का प्राण बचाना है तो इस उपाय से मनोरथ सिद्ध न होकर उलटी हानि होगी। जबसे शकटदास को वध्य-भूमि से बलपूर्वक ले गए हैं तब से पहरेदार लोग सचेत रहते हैं। आप को सशस्त्र आते देखकर तुरत ही चंदनदास को फाँसी लटका देंगे।" राक्षस ने सोचा—कहता तो ठीक है तब दूसरा कोई उपाय न देखकर आत्मसमर्पण करने का निश्चय करके "चंदनदास को मत मारना, जिसके लिये चंदनदास को मारना चाहते हो वह आपही उपस्थित है" यह कहता हुआ वध्यभूमि की ओर दौड़ा और चंदनदास को चांडालों से लेकर कहा "जाओ, चाणक्य से कहो जिसके लिये चंदन-दास का प्राणदंड होता था वह आप उपस्थित है उसी को फाँसी लट-काओ।" वे लोग राक्षस को पहिचानते थे अतएव बिना कुछ कहे उन्होंने जाकर चाणक्य से सब समाचार कहा। चाणक्य तो पहले ही से प्रस्तुत था, सुनते ही वध्यभूमि मे आ उपस्थित हुआ। राक्षस ने दूर

ही से चाणक्य को देखकर जल-भुनकर कहा—"आइए आइए शीघ्र ही हमारा प्राणदंड करके निरपराधी चंदनदास को छोड़ दीजिए।" चाणक्य ने पास जाकर राक्षस के पैर पर गिरकर कहा—"महाशय विष्णुगुप्त प्रणाम करता है आशीर्वाद दीजिए। यदि आप बंधु का प्राण बचाना चाहते हैं तो वह प्राण देने से नहीं होता। यह मन्त्रित्व का शस्त्र ग्रहण कीजिए।" यह कह चाणक्य ने राक्षस को चद्रगुप्त का मत्री बनाने के लिये जो सब उपाय अवलबन किए थे कहकर क्षमा-प्रार्थना की। चंद्रगुप्त ने भी यथोचित सम्मान-पूर्वक प्रणाम किया। तब तो राक्षस चंद्रगुप्त का मंत्रीपद अस्वीकार न कर सका। चाणक्य राक्षस को मंत्री बनाकर आप निश्चिंत हुआ।

इधर मलयकेतु ने राक्षस को निकालकर दूसरे राजाओ को भी अपमानित किया। यह देखकर उसकी सेना भी उससे बिगड़ गई। अवसर पाकर भागुरायण आदि चाणक्य के दूतों ने मलयकेतु को बाँध चद्रगुप्त के दरबार मे उपस्थित किया। बिना युद्ध बिना रक्तपात चाणक्य ने प्रबल शत्रु को पराजित किया। जब चद्रगुप्त ने चाणक्य से पूछा कि मलयकेतु के साथ क्या करना चाहिए? चाणक्य ने उत्तर दिया "अब हमसे कुछ न पूछा करो अब मंत्रीवर राक्षस से परामर्श किया करो।" तब उसने राक्षस के परामर्शानुसार मलयकेतु को छोड़ दिया और अपने राज्य को जाने दिया। चाणक्य प्रतिज्ञा-भार से मुक्त और चंद्रगुप्त को निष्कंटक करके परम सुखी हुआ। इन कामों के सिद्ध करने मे उसे जो अन्याय कार्य करने पड़े थे उसके प्रायश्चित्त के लिये उसने तपोवन की यात्रा की, और विषय-वासना मात्र का परित्याग कर दिया।

चाणक्य का दूसरा नाम विष्णुगुप्त था। बहुत से लोग अनुमान करते हैं कि "पंचतंत्र" और "हितोपदेश" नामक ग्रंथ चाणक्य ही

के बनाए हैं। इन दोनों ग्रंथों मे राजनीति, समाजनीति प्रभृति सर्व-प्रकार नीति और अर्थशास्त्र अत्यत विचित्र रूप से वर्णित हुए हैं। चाणक्यरचित श्लोक नाम से जो उत्कृष्ट श्लोक प्रसिद्ध है वे प्राय. इन दोनों ग्रंथों मे पाए जाते हैं। पचतंत्र गद्यपद्यमय ग्रथ है और हितोपदेश केवल गद्य-मय। सर विलियम जोंस लिखते हैं पंचतत्र के समान नीतिपूर्ण दूसरा कोई ग्रथ नही है। सभ्य जाति मात्र पंचतत्र और हितोपदेश का आदर करते है। सबने अपनी भाषा मे उसका अनुवाद करके अपनी भाषा का गौरव बढ़ाया है। हितो-पदेश का जितनी भाषाओ में अनुवाद हुआ है उतनी भाषाओं मे बाइबिल के अतिरिक्त किसी दूसरे ग्रंथ का अनुवाद नहीं है।

चाणक्य अशेष शास्त्रज्ञ, असाधारण बुद्धिमान्, असामान्य अर्थ और नीति शास्त्र वेत्ता, असाधारण अध्यवसायशाली, दृढ़प्रतिज्ञ, विषयलोभशून्य और महा तेजस्वी था। वह सदा बड़े बडे कठिन कामो का अनुष्ठान करता परतु स्वार्थहीन और कामनाशून्य। इतने श्रम और यत्न से जो राज्य प्राप्त किया वह अनायास चंद्रगुप्त को दे दिया। मंत्री पद भी ग्रहण न किया। निःस्वार्थ भाव से दृढ़ मनःसयोग के साथ जो काम किया जाय वह बनता है और निष्काम धर्म केवल आकाश-कुसुमवत् अलीक वाक्य नहीं है चाणक्य इसका प्रत्यक्ष दृष्टांत है।

(छ) विजयसिंह

प्रायः २५ सौ वर्ष हुए, राजकुमार विजयसिंह ने वंग देश के सिंहपुर नामक नगर मे जन्म ग्रहण किया था। उनके पिता का नाम महाराज सिंहबाहु और माता का नाम सिंहवल्ली था। विजय-सिंह के राज्यकाल का कोई वृत्तांत प्राप्त नहीं होता। युवा होने

पर पिता के साथ विवाद होने से सिंहबाहु ने क्रोधित होकर इन्हे निकाल दिया। विजयसिंह पाँच सौ सहचर साथ लेकर सदा के लिए स्वदेश से बिदा होकर जहाज पर चढे। एक जहाज पर वह और उनके सहचर लोग और एक पर उनकी स्त्रियां थी। रास्ते मे भारी तूफान आने के कारण स्त्रियो का जहाज निरुद्देश्य हो गया और पुरुषों का जहाज सिंहल द्वीप तटस्थ बालुका पर जा अड़ा। विजय-सिंह समुद्रतरंग द्वारा बालू पर अचैतन्य फेंक दिए गए। वहाँ की बालू ताम्रवर्ण है, बहुत देर तक उस पर पड़े रहने से उनके हाथ ताम्रवर्ण हो गए इससे उनकी संज्ञा ताम्रपाणि हुई।

विजयसिंह संज्ञा प्राप्त होने पर अपने श्रांत साथियों को प्रोत्सा-हित करके लंका द्वीप देखने के लिये गए इस समय लंका मे यक्ष लोग रहते थे वहाँ के राजा ने विजयसिंह का बडा आदर किया। क्रमश. यक्षराज से बडा सौहार्द हो गया और यक्षराज ने अपनी बेटी कुरनी के साथ विजयसिंह का विवाह कर दिया। परंतु विजयसिंह ने अनुग्रह का बदला बहुत बुरा दिया। उसने षड्यंत्र करके किसी पर्वोपलक्ष पर हठात् राजधानी पर आक्रमण किया और उसे अधिकृत कर लिया। विजयसिंह ने जैसी विश्वासघातकता से लंका का राज्य ले लिया वैसा ही और भी एक गर्हित कार्य किया। राज्य लेने के कुछ दिन पीछे कुरेनी को असभ्य स्त्री देखकर उन्होंने किसी आर्य रमणी से विवाह करने की इच्छा की। इसलिये भारतवर्ष मे कन्या खोजने लगा। दाक्षिणात्य पांडु राज्याधिपति ने अपनी लड़की के साथ विवाह कर दिया। विजयसिंह ने परम सुंदरी स्त्री पाकर अभागी कुरूपा कुरेनी को दो बच्चों के साथ परित्याग कर दिया। इस अनाथा रमणी ने पति से परित्यक्त होकर दु.ख और अभिमान से वन में जाकर प्राणत्याग किया। सिंहल द्वीप मे अब तक प्रवाद

है कि कुरेनी की आत्मा नित्य रात "कुरेनी गुल्ला पर्वत शिखर" पर चढ़कर अपने देश की अमंगल कामना करती है।

विजयसिंह ने ऐसे कई एक अन्याय कार्य किए सही परंतु सिंहल द्वीप का उन्नतिसाधन बहुत कुछ किया था। उसने सुंदर सुप्रशस्त राजमार्ग और सुरम्य राजप्रासादादि बनवाकर सिंहलद्वीप को सुशोभित किया और सुव्यवस्था स्थापित करके राज्य मे सुप्रणाली प्रतिष्ठित की। उनकी सिंह उपाधि से लंका का नाम सिंहल और ताम्रपाणि से ताम्रपर्णी हुआ।

रोमवालों ने इसी ताम्रपर्णी का अपभ्रंश सिंहल द्वीप का नाम "ताप्रबेन" लिखा है। विजयसिंह के पीछे अँगरेजो के अतिरिक्त और कोई सिंहल द्वीप पर अधिकार न कर सका। कई शताब्दी तक विजयसिंह का वंश सिंहलद्वीप मे राज्य करता रहा।

राजकुमार विजयसिंह का जीवनचरित्र बहुत ही कम मिलता है। जो जाना गया है उसमे महत्त्व-व्यंजक और अनुकरणीय बहुत कम है, घृणाकर और अकर्तव्य कार्य ही विशेष हैं, इसलिये इस आदर्श-चरित्र-ग्रंथ मे उनके नाम का उल्लेख आवश्यक नहीं था परंतु केवल इस बात को दिखलाने के लिये कि प्रायः लोगों का संस्कार यह है कि भारतवर्षियों ने विशेष कर बंगालियों ने बाहर जाकर कोई कीर्ति और विजय नही पाई है; वे तो निरे निस्तेज और बलहीन होते हैं, यह चरित्र प्रकाशित किया गया है। विजयसिंह का चरित्र पढ़कर उन लोगों का यह कुसंस्कार दूर होगा। इससे जीवनचरित्र पाठ का पूरा फल तो न प्राप्त होगा परंतु अपने देश का गौरव और प्रताप तथा विदेशीय राज्याधिकार करने का आनंद अवश्य लोगों के हृदय मे उदय होगा।

---

(५) ईश्वरचंद्र विद्यासागर*

परमेश्वर ने इस संसार को सुख और दुःख दोनों का आधार बनाया है। जो लोग विद्यारूपी धन बटोरकर उसका मीठा फल चखते हैं, वे सुख से अपने जीवन को बिताते और यश के भागी होते हैं। किंतु जो इससे हीन रहते है, वे जन्म भर दुःख भोगते और अंत मे अपने ऊपर कलंक का बोझ लेकर मरते हैं। आज हम जिन महात्मा का चरित्र लिखते हैं उन्हीं ने यह बात प्रत्यक्ष कर दिखाई है कि संसार मे विद्या के बल से अच्छे मार्ग पर चलकर मनुष्य क्योंकर धन और यश कमा सकता, और सुख से अपना जीवन बिताकर अपने पीछे भी अचल कीर्ति छोड़ जा सकता है।

पंडितवर ईश्वरचंद्र विद्यासागर का जन्म बंगाल जिले मेदिनीपुर के बीरसिंह नामक गाँव मे हुआ था। यह गाँव कलकत्ते से २६ कोस पर है। विद्यासागर के पिता का नाम ठाकुरदास वन्द्योपाध्याय और माता का नाम भगवती देवी था। ता० २६ सितंबर सन् १८२० ई० मंगलवार को दोपहर के समय विद्यासागर का जन्म हुआ था।

उनके दादा रामजय तर्कभूषण अपने भाइयों के झगड़े से दुखी हो देश छोड़कर तीर्थयात्रा करने चल दिए, और उनकी स्त्री दुर्गा देवी अपने दो पुत्रों और चार कन्याओं को लेकर बिना किसी के सहारे एक कुटी मे जा बैठी और सूत कात-कातकर उसी की बिक्री से अपने दिन बिताने लगी। विद्यासागर के पिता ठाकुरदास अपनी माता का ऐसा दुःख देखकर किसी काम की खोज मे चौदह

---

* यह जीवनचरित संवत् १९५५ मे लिखा गया था।

वर्ष की ही अवस्था मे कलकत्ते आए और वहाँ रहकर अँगरेजी पढ़ने लगे; क्योंकि उस समय थोडी भी अँगरजी जाने बिना कोई काम मिलना कठिन था। उस समय उनको जो जो कष्ट हुए, उन्हें सोच-कर जी कांप उठता है। बालक ठाकुरदास को किसी दिन दोनों बेर पेट भर भोजन नहीं मिलता था, कभी एक बेर और कभी दोनों बेर उन्हे भूखे रह जाना पड़ता था। किसी किसी तरह कुछ पढ़ने लिखने पर दो रुपए महीने की नौकरी लगी। मातृभक्त ठाकुरदास अपने भोजन के दुःख को सहते हुए भी वे दोनों रुपए अपनी मा के पास महीने महीने भेजने लगे। जब वे पाँच रुपया महीना मा के पास भेजने लगे, तब तो मानो मा का दुःख दरिद्र ही दूर हो गया। जिस समय विद्यासागर का जन्म हुआ था, उस समय ठाकुरदास आठ रुपए महीने पर नौकर थे।

पाँच वर्ष की अवस्था मे विद्यासागर को विद्यारंभ कराया गया। उन्होंने गाँव की पाठशाला अर्थात् गुरुजी के यहाँ की पढ़ाई तीन वर्ष मे पूरी कर डाली। फिर सन् १८२६ ई० मे उनके पिता उन्हें अपने साथ कलकत्ते ले आए। किसी ने सच कहा है कि "होन-हार बिरवान के होत चीकने पात" सोई बात ईश्वरचंद्र मे पाई गई कि उन्होंने बालकपन ही में राह चलते चलते सड़कों पर लगे हुए "माइल स्टोन" से अँगरेजी के अंक पहिचान लिए। कलकत्ते पहुँच-कर ठाकुरदास एक दिन अँगरेजी के कुछ बिलों की ठोक दे रहे थे, उस समय ईश्वरचंद्र ने वे कागज पिता से लेकर आप जोड़ लगाया और सब ठीक उतरा; यह चरित देखकर लोग अचभे मे आ गए। उसी सन् की पहली जून को विद्यासागर संस्कृत कालिज की व्याक-रण श्रेणी में भरती किए गए। वहाँ कुल छ महीने पढ़कर परीक्षा मे पास हुए और उन्हें पाँच रुपया महीना "स्कालरशिप" मिलने लगी।

व्याकरण श्रेणी मे पढ़ने के समय छ महीने तक उन्होंने अँगरेजी श्रेणी मे भी पढ़ा था। वह रात को केवल दो घटे सोते, सारी रात पढ़ने मे बिताते और जो नींद आने लगती तो सरसों का तेल आँखो मे लगा देते थे। बारहवें वर्ष मे उन्होंने रघुवंश, कुमारसभव, माघ, किरातार्जुनीय, शकुंतला, मेघदूत, उत्तररामचरित, मुद्राराक्षस, कादंबरी, दशकुमारचरित आदि काव्य पढ़ डाले। उनकी स्मरण-शक्ति ऐसी थी कि बिना पुस्तक देखे संस्कृत नाटक आदि कहते जाते थे। वह संस्कृत का अनुवाद भी बहुत अच्छा करते थे। उनकी तीव्र बुद्धि को देख सबको अचंभा होता था और अध्यापक लोग भी उनसे बड़े प्रसन्न रहते थे। परीक्षा मे सदा वे प्रथम होते थे और अक्षर उनके ऐसे सुंदर बनते थे कि उनके लिये भी वे पारि-तोषिक पाया करते। उस समय पढने लिखने के परिश्रम के सिवाय उन्हें चार आदमियों को रसोई भी करके खिलाना पड़ता था। फिर सब के खा लेने पर उन्हीं को बरतन माँजना और रसोई-घर धोना पड़ता था। बाज़ार से सौदा लाना भी उन्हीं का काम था। सोने के लिये उन्हें केवल दो हाथ लंबी और डेढ़ हाथ चौड़ी जगह मिली थी, उतने ही स्थान मे वे सिकुड़कर पडे रहते, पर इन सब कष्टों को वे कष्ट नही गिनते थे। सब कामों को प्रसन्न चित्त से करते और बिना किसी प्रकार की थकाहट के पढ़ने मे लगे रहते थे।

उसी छोटी अवस्था में उन्हे संस्कृत में कविता बनाने की भी शक्ति हो गई थी। जब कभी वे गाँव पर जाते तो लोगों के यहाँ श्राद्ध इत्यादि पर कविता बना देते और पंडितों की मडली मे संस्कृत भाषा में शास्त्रार्थ करते थे, यहाँ तक कि पंडित उस बाल-कवि की विलक्षण शक्ति देखकर आश्चर्य करने लगते।

पंद्रहवे वर्ष मे उन्होने अलकार श्रेणी मे प्रवेश किया और एक ही वर्ष मे साहित्यदर्पण, रसगगाधर आदि अलकार के ग्रथों को पढकर सबसे प्रथम पारितोषिक पाया। उस समय उन्हे आठ रुपया महीना स्कालरशिप मिलती थी। उन रुपयो को उनके पिता ले लेते और उनमे से कुछ रुपए उन्हे हाथ-खर्च के लिये देते थे। दयासागर विद्यासागर उसी रुपए से अपने साथ पढ़नेवाले बालकों की सहायता करते, किसी को कपड़े मँगा देते, किसी को पुस्तक ले देते, और यदि जलपान करते तो सभो को बॉटकर खाते। जो कोई बालक बीमार हो जाता तो वे उसकी सेवा करते, और जिस रोगी के पास कोई खडा न होता उसका मल-मूत्र तक धो देने मे भी न घिनाते। जब वे गॉव पर जाते तो वहॉ भी दीन दुखियों की यो ही सहायता करते थे। विद्यासागर की उपाधि पाने के बहुत पहले ही इस गुण से उनका नाम दयासागर प्रसिद्ध हो गया था।

सन् १८३७ ई० मे उन्होने स्मृति की श्रेणी मे प्रवेश किया और छ महीने मे उसे पूरा कर "ला कमेटी" की परीक्षा के लिये पढ़ने लगे। वह परीक्षा भी समाप्त हुई और उन्हें 'त्रिपुरा' जिले के जज-पंडित का पद मिला, पर उनके पिता ने उन्हे उतनी दूर जाने न दिया। पितृभक्त ईश्वरचद्र उस पद को छोड़ वेदान्त की श्रेणी मे पढ़ने लगे। उसी समय उन्होंने गद्य-रचना मे सबसे बड़ा सौ रुपए का पारितोषिक पाया था। उस समय उनके पिता बहुत ऋणी हो रहे थे, खर्च की ऐसी खीच थी कि एक पैसे के चने और बताशे मे सबका जलपान होता था। दूसरे वर्ष उन्होने न्याय-दर्शन की परीक्षा मे प्रथम होने से सौ रुपए और कविता बनाने मे सौ रुपए पारितोषिक पाए। जिस दर्शनशास्त्र का पढ़ना दूसरे लोग आठ दस वर्ष मे पूरा करते हैं, तीक्ष्ण-बुद्धि ईश्वरचंद्र ने उसे पाँच वर्ष में

पूरा किया। ता० १८ दिसंबर सन् १८४१ ई० को बीस वर्ष की अवस्था मे उन्होंने संस्कृत कालिज की शिक्षा समाप्त करके "विद्यासागर" की उपाधि पाई।

कालिज से निकलते ही उन्हें दिसबर सन् १८४१ ई० में "फोर्ट विलियम कालिज" मे पचास रुपए महीने पर प्रथम श्रेणी के अध्यापक का पद मिला। इस फोर्ट विलियम कालिज मे विलायत से आए सिविलियन साहब लोगो को हिंदी, बँगला, उर्दू आदि देशी भाषाओ को पढ़कर इनमे परीक्षा देनी पड़ती थी, इनमे पास होने पर उन्हें काम मिलता था। इन परीक्षाओ के कागज विद्यासागर को देखने पड़ते थे और उन्हे अँगरेजो से बहुत काम पड़ता था इसलिये उनको हिंदी और अँगरेजी सीखना आवश्यक हुआ। हिंदी तो उन्होंने थोड़े ही दिनों मे एक पंडित रखकर सीख ली और अँगरेजी ऐसी कठिन भाषा को भी बड़े परिश्रम से शीघ्र ही सीख लिया। उनका परिश्रमी स्वभाव सराहने योग्य था, कालिज के काम के सिवाय घर पर आए हुए विद्यार्थियों को संझा-सबेरे दोनों समय वे न्याय व्याकरण आदि पढ़ाते और आप भी अँगरेजी पढ़ते थे।

उस समय बँगला भाषा की उतनी उन्नति नहीं हुई थी जितनी अब है। इस भाषा को ऐसी ऊँची अवस्था पर पहुँचानेवालों मे प्रधान विद्यासागर ही हुए। उन्होंने सरल और मधुर भाषा मे "वासुदेव-चरित" बनाया और हिंदी बैताल-पचीसी का पहले पहल बँगला मे अनुवाद किया। वे तत्त्वबोधिनी मासिक पत्रिका मे भी लिखते थे, पीछे उन्होंने "संस्कृत प्रेस" स्थापित किया। उस प्रेस मे पुराने संस्कृत और बँगला ग्रंथों को शुद्ध करके छापते थे। वर्ण परिचय, कथामाला, बोधोदय, चरितावली, आख्यानमंजरी, जीवन-

चरित, शकुंतला, और सीतार वनवास आदि ग्रंथों को लिखकर उन्होने बँगला भाषा का बहुत कुछ उपकार किया। उन्होंने मुफस्सिल मे जाते समय पालकी मे पडे पड़े वर्णपरिचय नामक पुस्तकें लिखी थी और सीतार वनवास केवल चार दिन मे पूरा किया था। उनके पहले बँगला मे गद्य के ग्रंथ ऐसी सुंदर और सरल भाषा मे नही लिखे जाते थे, इसी लिये बँगला के प्रसिद्ध कवि हेमचद्र ने अपनी कविता मे उन्हे "बँगला के साहित्यगुरु" लिखा है।

उनके एक मित्र ने संस्कृत सीखने की इच्छा प्रगट की। इस पर उन्होंने सोचा कि पुरानी चाल से पढ़ाने मे तो बहुत दिन लगेगे और ये भी ऊब जायँगे, बस आपने चट एक ही दिन मे चार ताव फुलस्केप कागज पर वर्णमाला से लेकर धातु प्रत्ययादि तक मुग्धबोध व्याकरण का सारांश लिख डाला और उसी से थोड़े ही दिनों मे अपने मित्र को कुछ संस्कृत व्याकरण का ज्ञान करा दिया। वे ही "चार ताव कागज" विद्यासागर की प्रसिद्ध पुस्तक "व्याकरण की उपक्रमणिका" के मूल हैं। विद्यासागर ने अपनी नई युक्ति और बुद्धिमत्ता से जो "सीनियर" परीक्षा पाँच वर्ष मे होती थी वही अपने मित्र से ढाई वर्ष ही मे दिलवाकर पास करा दी। यह बात सारे नगर मे फैल गई और बहुत से लोग उनसे पढ़ने लगे। व्याकरण की पढ़ाई की नवीन प्रणाली का यहीं से प्रारभ है।

जब दयासागर विद्यासागर को दो रुपया महीना जलपान के लिये मिलता था तब तो उसमे से दीन दुखियों को दिए बिना उनका मन मानता ही न था और जब पचास रुपया महीना मिलने लगा तब का भला क्या पूछना था? उन्होंने अपने पिता का काम छोड़वाकर उन्हें सुख से घर रहने के लिये भेजा और फिर वे बराबर बीस रुपया महीना अपने पिता के पास भेजते, बाकी तीस रुपए मे दो

भाई, पाँच चचेरे-फुफेरे और मौसेरे भाई, एक नौकर तथा आए गए अतिथियों के साथ कलकत्ते मे रहकर अपना काम चलाते थे किंतु केवल कुटुंब पालन ही से उदार-चरित विद्यासागर के चित्त का सतोष क्योंकर हो सकता था ? वे अपने भरसक दीन दुखियों की सहायता से कभी मुँह न मोडते। इस बात के बहुतेरे उदाहरण हैं पर उनमे से एक लिखे बिना लेखनी आगे नही बढ़ती। उनके एक परोसी के नौकर को हैजा हो गया, मालिक ने घसीटकर उसे सडक पर डाल दिया। नौकर के कराहने की भनक विद्यासागर के कानों मे पडी, फिर क्या उनका कोमल हृदय स्थिर रह सकता था ? वह अपने बासे मे उसे उठा लाए और उसकी दवा कराने लगे। उन्होंने आप उसका मल-मूत्र धोया और दो चार दिन मे उसे भला चंगा करके बिदा किया।

उनकी मातृ-भक्ति का एक उदाहरण सुनिए। छोटे भाई के विवाह में उनकी माता ने उन्हे लिखा था "तुम अवश्य आओ" इस पर विद्यासागर ने कालिज के प्रिंसपल से छुट्टी माँगी पर साहब ने न दी, तब विद्यासागर से माता की आज्ञा न टाली गई और उन्होंने साहब से जाकर कहा कि "हम माँ की आज्ञा नही टाल सकते वरन अपना पद छोड़ सकते हैं; आप अपनी नौकरी लीजिए और हमारा हिसाब चुकता कर हमे बिदा कीजिए।" साहब ने उनकी सच्ची मातृ-भक्ति पर रीझकर तुरंत छुट्टी दे दी। फिर क्या था! आप उसी समय पैदल चल खड़े हुए, दिन रात बराबर चले गए, बीच मे दामोदर नद ने भयानक रूप धारण करके उनकी राह रोकी। बर-सात का दिन, महानद का ऐसा चौडा पाट और तीखा वेग कि बड़े बड़े मल्लाहों का भी साहस नाव चलाने का नही होता था, तिस पर भी उस समय घाट पर कोई नाव बेड़ा न था किंतु उस समय विद्या-

सागर के असीम हृदय मे मातृभक्ति का सागर उमड़ रहा था। वे ऐसे ऐसे नद को क्या समझते थे! लोगो के लाख रोकते रोकते भी आप धड़ाम से नद मे कूद पडे और बात की बात मे मातृ-चरण के सहारे पार जा लगे। दो दिन के कठिन परिश्रम पर नौ बजे रात को वे घर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि लडके को लेकर सब लोग विवाह करने गए हैं, केवल माता दो दिन की उपवासी बालक ईश्वरचद्र के लिये पडी पड़ी बिलख रही है। उस समय दोनों मिलकर खूब रोए और फिर साथ ही दोनो ने भोजन किया।

सन् १८४६ ई० मे विद्यासागर "फोर्ट विलियम कालिज" मे अपना पद अपने छोटे भाई को दिलाकर आप "सस्कृत कालिज" के असिस्टेट सेक्रेटरी के पद पर चले आए। उनके अच्छे प्रबंध से कालिज की बहुत कुछ उन्नति हुई परंतु सेक्रेटरी मे अनबन होने के कारण उन्होंने बिना इस बात का विचार किए कि इतने बड़े कुटुंब का पालन कैसे होगा, उस पद को छोड दिया और थोड़े दिनों तक धीरता के साथ घर बैठे रहे तथा ऋण लेकर अपना काम चलाया।

सन् १८४९ ई० के मार्च महीने मे फिर उन्हे "फोर्ट विलियम कालिज" मे अस्सी रुपए महीने पर हेड राइटर का पद मिला। वहीं से उन्होने सन् १८५० ई० मे "संस्कृत कालिज" के संस्कृत अध्यापक का पद ग्रहण किया। सन् १८५१ ई० मे वे डेढ़ सौ रुपए महीने पर प्रिंसपल नियत हुए। अँगरेजी शिक्षा का प्रचार होने से सस्कृत कालिज मे विद्यार्थी बहुत कम हो गए थे; इसलिये "कौंसिल आफ एडुकेशन" का विचार हुआ कि वह तोड़ दिया जाय, अतएव विद्यासागर से उस पर रिपोर्ट करने के लिये कहा गया। उन्होंने भी ऐसी उत्तम रिपोर्ट दी कि जिसे देखकर कौंसिलवाले बहुत ही प्रसन्न हुए और उनके लिखने के अनुसार

संस्कृत कालिज न तोड़ा गया। उसी सन् (१८५१) मे उन्होंने "व्याकरण की उपक्रमणिका" नाम की प्रसिद्ध पुस्तक बनाकर छपवाई और उसी समय मे तीन भागों मे ऋजुपाठ और चार भागों मे व्याकरण-कौमुदी बनाकर प्रकाशित की। ये ही सब ग्रंथ उस समय संस्कृत कालिज तथा युनिवर्सिटी मे कोर्स किए गए।

विद्यासागर का ध्यान देश की कुरीतियो के दूर करने की ओर झुका। वे बराबर "शुभकरी" पत्रिका मे लेख लिखा करते और स्त्री-शिक्षा के पूरे पक्षपाती थे। बीटन साहब ने लड़कियों के लिये एक कालिज स्थापित किया था, जो कि अब "बीथुन कालिज" के नाम से प्रसिद्ध है। विद्यासागर उनके प्रधान सहायक थे। उस कालिज के प्रबंध के लिये जो कमेटी बनाई गई थी, विद्यासागर उसके अवैतनिक सेक्रेटरी नियत किए गए थे। बीटन साहब के मरने पर उस कालिज का भार लार्ड डलहौजी ने अपने हाथ मे ले लिया। उस समय किसी कारण से विद्यासागर सेक्रेटरी का पद छोड़ना चाहते थे पर कमेटी के बहुत आग्रह से न छोड़ सके। वे सन् १८६९ ई० तक सेक्रेटरी रहे और उस कालिज मे पढ़ाने के लिये उन्होंने रुडीमेंट्स आफ नालेज का अनुवाद किया और उसका "बोधोदय" नाम रखा।

सन् १८५३ ई० मे उन्होंने अपनी जन्मभूमि बीरसिंह गाँव में एक स्कूल खोला था, जिसमे बिना फीस लिए लड़के पढाए जाते थे। उन लड़कों को पुस्तक, स्लेट, पेनसिल आदि भी स्कूल की ओर से दी जाती थी। दूसरा स्कूल उन्होंने किसानों के लिये खोला था जिसमे रात को पढ़ाई होती थी। और तीसरी पाठशाला लड़कियों के लिये खोली थी। उन्होंने एक अस्पताल भी खोला था जिसमे दवाओं के सिवाय रोगियों को साबूदाना आदि पथ्य

की वस्तुएँ भी बिना दाम मिलती थी, उन सभों के लिये अपने रुपए से भूमि मोल ली, घर बनवाए, और महीने महीने साढे पाँच सौ रुपए के लगभग, जो उनमे खर्च होता, अपने पास से देते रहे। सन् १८५४ ई० मे उनका वेतन डेढ सौ से तीन सौ हो गया था और पुस्तको की बिक्री से भी पाँच चार सौ रुपए महीने की बचत होने लगी। यदि ऐसे समय मे वे चाहते तो बहुत कुछ बटोर लेते परंतु जो कुछ उनकी आमदनी थी वे सब की सब परोपकार मे लगा देते थे। उनकी दयावती माता ने उन्हे ऐसी ही शिक्षा दी थी। विद्यासागर की माँ से एक दिन हैरिसन साहब ने (जिनके नाम से कलकत्ते की प्रसिद्ध सडक "हैरिसन रोड" बनी है) पूछा था कि "माँ जी! तुम्हारे पास कितना रुपया है?" उत्तर मिला "चार घडा।" फिर साहब ने पूछा "वे घडे कहाँ हैं?" इस पर उन्होंने अपने चारों लड़को को दिखलाकर कहा कि "ये ही हमारे धन हैं, और दूसरे धन का हमे काम नही है।" यह उत्तर सुन साहब प्रसन्न हुए। वह उदार-चरित्रा रमणी-रत्न जब काशी-वास करने के लिये काशी मे आकर रही थीं तब एक दिन भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र ने उनके हाथ मे चाँदी का कडा देखकर पूछा था कि "माँ जी! इतने बड़े विद्यासागर की माँ के हाथ मे चाँदी का कड़ा शोभा नही देता।" उस पर बुड्ढी ने हँसकर कहा "बेटा, विद्यासागर की माँ के हाथ की शोभा चाँदी सोने का कडा नहीं हो सकता, इन हाथो की तो शोभा भूखों को खिलाना है। देखो जब अकाल पड़ा था तब इन्ही हाथो से खिचडी बना बनाकर नित्य हजारों भूखों को खिलाती थी।" सचमुच सन् १८६६ ई० के अकाल में विद्यासागर ने जैसा दान किया था, बड़े बड़े राजाओं के किए भी वैसा न हो सका।

सन् १८५५ ई० में गवर्नमेंट की यह इच्छा हुई कि गाँव गाँव मे बँगला और अँगरेजी की पाठशालाएँ खोली जायँ। बँगला पाठ-शालाओं मे किस रीति से शिक्षा दी जाय, इस पर रिपोर्ट लिखने के लिये विद्यासागर से कहा गया। जब उन्होंने रिपोर्ट लिख कर दी तब उसे देख अफसर लोग ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हे प्रिंसपल पद के सिवाय असिस्टेंट इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स का पद भी मिला जिसके कारण दो सौ रुपया महीना उनका और बढ़ गया और फिर उस समय उन्हे सब मिलाकर पाँच सौ रुपए महीने मिलने लगे। उसी साल उनके उद्योग से पहले पहल "नार्मल स्कूल" स्थापित हुआ और फिर तो उनके उद्योग से बहुतेरे स्कूल खुले। स्कूलो के देखने के लिये उन्हे मुफस्सिल मे घूमना पड़ता था। उस अवसर मे वे बराबर जिमीदारों और धनिकों को उभाड़कर पाठ-शालाएँ स्थापित कराते। प्रायः ऐसा हुआ है कि आप पालकी पर कहीं जा रहे हैं और रास्ते मे किसी थके हुए दुखी रोगी को पड़े बिलखते देखा तो चट पालकी से उतर पड़े उसे अपनी पालकी मे डालकर चट्टी तक पहुँचा आए और आप साथ पैदल गए। फिर वहाँ पहुँचकर उसके खाने पीने का पूरा पूरा सुभीता कर तब जहाँ जाना होता वहाँ जाते। वे बराबर यात्रा के समय रुपए और रेजगारियाँ अपने पास रखते और किसी याचक को विमुख नहीं जाने देते थे। उन्होंने कितने ही अनाथ लड़कों को अपने साथ कलकत्ते लाकर उनके पढ़ने का सुभीता कर दिया था। वे समय समय पर कितने ही भले आदमियों को गुप्त दान देकर उन्हें दुःख से बचाते थे।

एक दिन विद्यासागर किसी मित्र के साथ सड़क पर टहल रहे थे, इतने में सामने से एक ब्राह्मण रोता हुआ आ निकला।

विद्यासागर ने उससे रोने का कारण पूछा किंतु ब्राह्मण ने उनका वेश देखकर अपने रोने का कारण बताना व्यर्थ समझकर कुछ न कहा। पीछे उनके विशेष आग्रह करने पर कहा कि "महाशय, हमने एक महाजन से रुपए उधार लेकर कन्या का विवाह किया था, पर ठीक वादे पर हम रुपया न दे सके, अब उसने हमारे ऊपर दो हजार चार सौ रुपए की नालिश की है जिसकी परसों तारीख है।" यह सुन विद्यासागर ने ब्राह्मण से उसके घर का पता पूछ लिया और वह चला गया। पीछे विद्यासागर ने जाँच की तो ब्राह्मण की बात सच निकली। तब उन्होंने दो हजार चार सौ रुपए ब्राह्मण के नाम से अदालत मे जमा कर दिए। ब्राह्मण ने कचहरी मे जाकर सुना कि किसी ने कुल रुपए जमा करा दिए हैं। यह अद्भुत कौतुक देख उसका चित्त कैसा गद्गद हुआ होगा इसे वह ब्राह्मण ही जानता था। फिर उसने उस महापुरुष का नाम जानना चाहा जिसने रुपए जमा कराए थे पर पता न लगा। अत को वह दीन ब्राह्मण कृतज्ञ हृदय से गद्गद कठ हो अपने गुप्तदानी को असख्य आशीर्वाद देता हुआ घर लौट आया। निदान विद्यासागर की दया की सीमा न थी जिस गाँव मे वे जा पड़ते वहाँ के लोग उनके दर्शन को दौड आते और भीड लग जाती थी।

दूसरो के दुख से दुखी होनेवाले विद्यासागर के हृदय से हिंदू-बाल विधवाओ का दु.ख नहीं देखा गया। सन् १८५४ ई० की २८ जनवरी को उन्होने "विधवा-विवाह होना उचित है कि नहीं" इस नाम की एक पुस्तक बनाकर प्रकाशित की। फिर तो सारे हिंदुस्तान मे इस बात का कोलाहल मच गया। इस नई और समाज-विरुद्ध बात के कहने के लिये उन्हे बडी बड़ी गालियाँ खानी पड़ी। यहाँ तक कि कुछ लोग उनके मार डालने की चेष्टा में भी

फिरते थे। पर दृढ-प्रतिज्ञ विद्यासागर ने जो प्रतिज्ञा की उससे जरा न हटे। उन्होने पूरा परिश्रम कर बहुत से विरोधियों को अपने पक्ष मे किया, सरकार से इस विषय का कानून पास कराया, और कई एक बाल-विधवाओ का विवाह अपने सामने कराया, यहाँ तक कि अपने पुत्र का विवाह भी एक विधवा कन्या से कर दिया। लोग कहते हैं कि इस उद्योग मे उन पर पचास साठ हजार रुपयों का ऋण हो गया था।

सन् १८५५ ई० मे कलकत्ता युनिवर्सिटी स्थापित हुई और विद्यासागर उसके फेलो चुने गए। उस समय संस्कृत उठा देने के लिये युनिवर्सिटी ने प्रस्ताव किया था, सिनेट के सब लोग उसी ओर थे किंतु अकेले विद्यासागर के उद्योग और युक्तियों से वह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ।

सिविलियनो की परीक्षा के लिये लार्ड डलहौजी ने जो "सेंट्रल कमिटी" स्थापित की थी विद्यासागर उसके भी सभासद बनाए गए थे।

सन् १८५६ ई० मे "एडुकेशन कौंसिल" उठकर उसके स्थान में "पबलिक इंस्ट्रकशन" स्थापित हुआ और डाइरेक्टर का पद बनाया गया। पहले पहल यंग साहब सिविलियन डाइरेक्टर हुए। उन्हे विद्यासागर ने बंगाल के छोटे लाट हालिडे साहब के कहने से कई महीने तक शिक्षा-विभाग का काम सिखलाया था, इस कारण यंग साहब गुरु की भाँति उनका आदर करते थे। छोटे लाट हालिडे साहब भी विद्यासागर को बहुत मानते थे। लाट साहब प्रति बृहस्पतिवार को उन्हे अपने पास बुलाते और बहुतेरी बातो मे उनसे सलाह लिया करते थे। वे लाट साहब की कोठी मे मोटे कपड़े की चादर और चटी जूता पहिरकर जाते थे। सन् १८५७ ई० मे उन्होंने छोटे लाट के कहने से कई जगह लड़कियों की

पाठशालाएँ स्थापित की किंतु जब उन पाठशालाओं के खर्च का बिल बनकर डाइरेक्टर साहब के पास गया तो उन्होने रुपए देने अस्वीकार किए। तब विद्यासागर ने यह हाल लाट साहब से कहा। उन्होने उत्तर दिया कि "तुम नालिश कर दो" किंतु विद्यासागर कचहरी के नाम से ऐसे दूर भागते थे कि उन्होने ऋण करके सब खर्च अपने पास से दे दिया पर लाट साहब के कहने से नालिश न की। विद्यासागर और डाइरेक्टर साहब मे पहले ही से कुछ अनबन चली आती थी, किंतु बिल के पचड़े से उनका जी बहुत दुखी हो गया था, उनकी ऐसी इच्छा न थी कि ऐसे संकीर्ण-हृदय अफसर के नीचे काम करे, बस चट उन्होने पाँच सौ रुपए महीने की नौकरी पर लात मार इस्तोफा दे ही दिया। छोटे लाट हालिडे साहिब आदि सरकारी प्रधान कर्मचारियों तथा बंधु-बांधवो ने उन्हें बहुत कुछ समझाया पर प्रतिज्ञा-वीर विद्यासागर ने किसी की एक न सुनी। अपने एक मित्र के खेद प्रकाश करने पर उन्होंने कहा था कि "भाई! आज इस नौकरी छोड़ने पर भी हमे अपनी पुस्तकों की बिक्री की बहुत कुछ आमदनी है किंतु पहले जब हमने संस्कृत कालिज के असिस्टेंट सेक्रेटरी का पद छोडा था उस दिन हमारे पास क्या था?" निदान सबके मना करने पर भी उन्होंने नौकरी छोड दो। उस समय पुस्तकों की बिक्री से उन्हे अच्छी आमदनी थी पर ऋण का बोझ भी उनके सिर बहुत था। सब कुछ हुआ किंतु उनके दान का व्यय कभी भी कम न हुआ। कितने ही लोगों को हजार हजार पाँच पाँच सौ रुपए देकर उनके घरों को नीलाम होने से बचा दिया था। विद्यासागर ने ऋण लेकर मेघनादवध महाकाव्य के प्रणेता, बंगभाषा के प्रसिद्ध कवि, माइकेल मधुसूदन दत्त को दस हजार रुपए दिए थे। यदि उस समय विद्यासागर ने उसकी सहायता न की होती तो बंग-

भाषा का वह अद्वितीय कवि विलायत ही मे मर गया होता। कितने ही भलेमानुसों के परिवार को वे तीस तीस चालीस चालीस रुपए महीने देते थे। यह सब खर्च कहाँ से होता था? कर्ज लेकर! यह विद्यासागर ही का काम था कि वे दूसरो को ऋण से बचाने के लिये आप ऋण के बोझ से दबे जाते थे, तिस पर उस ब्राह्मण सतान की और भी निस्पृहता सुनिए। एक समय आप बर्द्दवान देखने गए थे, उनके आने का समाचार पाते ही महाराज बर्द्दवान ने बड़े आदर से उन्हे बुलाया और बिदाई मे पाँच सौ रुपए और एक दुशाला उनके आगे रखा, पर विद्यासागर ने वह भेट नही ली और कहा कि "महाराज, ये रुपए गरीब ब्राह्मण पंडितो को दीजिए क्योंकि हम दान नहीं लेते"।

जिस गाँव (बीरसिंह) मे विद्यासागर रहते थे वह गाँव महाराज बर्द्दवान का था। उन्होने बहुत चाहा कि वह गाँव विद्यासागर की भेट कर दें पर उन्होंने न लिया और कहा कि "महाराज, हम उस समय गाँव लेंगे जब हमारी ऐसी अवस्था हो जायगी कि हम अपने पास से सब रैयतो की मालगुजारी दे सकेंगे।" यह अद्भुत उत्तर सुन महाराज सन्नाटे में आ गए।

विद्यासागर के अन्न से पढ़ पढ़कर कितने आदमी अमीर हो गए और विद्यासागर के नौकर रखवाए हुए कितने लोग बड़े बड़े पदो पर पहुँचे इसका कोई ठिकाना नहीं है।

विद्यासागर को पचास साठ हजार रुपयों का देना हो गया था, पर मरने के समय उन्होंने एक पैसा भी देना नही छोड़ा था। एक समय कई लोगों ने यह प्रस्ताव किया था कि "विद्यासागर का यह देना विधवा-विवाह के कारण हुआ है इसलिये चंदा करके यह दे दिया जाय" पर विद्यासागर ने यह बात स्वीकार न की और अपना

देना अपने ही माथे रखा। इसी लिये तेरह हजार रुपए पर अपना प्रेस बेच डाला। वे हिसाब के ऐसे साफ थे कि देनदारो को बुला बुलाकर चुकाते थे। उन्हें गवर्नमेंट के भी पॉच हजार रुपए देने थे। उन्होने गवर्नमेंट से पुस्तके छापने के लिये ली थी। गवर्नमेंट के यहाँ वह रकम खर्च खाते पड़ गई थी इसी से वह कभी उनसे मॉगी नही गई और इधर पुस्तकें भी न छपी। फिर बहुत दिन पीछे विद्यासागर ने आपही पत्र लिखकर वे रुपए गवर्नमेंट के पास भेज दिए थे।

प्रसिद्ध अँगरेजी समाचारपत्र "हिंदू पेट्रियट" के सुयोग्य संपादक बाबू हरिश्चद्र मुकुर्जी के मरने पर इस पत्र का अधिकार बाबू काली-प्रसन्नसिह ने पॉच हजार रुपए पर खरीद लिया था, पर जब उनसे वह पत्र न चल सका तो उन्होने उसका भार विद्यासागर को सौंप दिया। विद्यासागर जैसे आप गुणी थे वैसे ही गुणग्राहक भी थे। उन्होने "बृटिश इंडियन ऐसोसिएशन" के क्लार्क बाबू कृष्ण-दास पाल को होनहार और योग्य देखकर वह पत्र उन्हे सौंप दिया। उसी पत्र के द्वारा एक साधारण क्लर्क कृष्णदास दिन पाकर आनरेबुल राय कृष्णदास पाल बहादुर सी० आई० ई० हुए थे।

एक दुखी ब्राह्मण के पालन के लिये विद्यासागर ने "सोमप्रकाश" नामक बँगला साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसे पीछे से उन्होने पंडित द्वारकानाथ विद्याभूषण को दे दिया था। उस पत्र का जैसा आदर बंग भाषा मे हुआ और उसने जैसी सेवा बँगला साहित्य की की वैसी दूसरे पत्रों से होनी कठिन है।

सन् १८६४ ई० मे उन्होने कलकत्ते मे 'हिदू मेट्रापालिटन इंस्टिट्यूशन" नाम का स्कूल खोला और धीरे धीरे उसे सन् १८७२ ई० मे कालिज कर दिया। वह कालिज केवल देशी लोगों ही के प्रबध

से चलता था, और उसने कई बार प्रेसिडेंसी कालिज से बढ़कर परीक्षा का फल दिखलाया। विद्यासागर ने अपने उद्योग और प्रबंध से यह बात प्रत्यक्ष दिखला दी कि हिंदुस्तानी लोग भी पूरे तौर से सब काम चला सकते हैं। सरकारी कालिज मे फीस ज्यादे देनी पडती थी जिससे दीन दुखियों के लड़के उसमे नही पढ़ सकते थे, इसलिये विद्यासागर ने अपने कालिज की फीस बहुत कम रखी। तिस पर भी बहुतेरे गरीब लड़कों की फीस वह माफ कर देते थे। उस कालिज से बगाल मे उच्च शिक्षा के प्रचार करने मे बडा लाभ हुआ। पहले तो विद्यासागर को उस कालिज मे अपने पास से कुछ रुपए लगाने पडते थे पर अंत मे वह अपनी आमदनी से आप चलने लगा। पर विद्यासागर उसकी आमदनी मे से कभी कुछ न लेते वरन् उसका काम नौकरो की तरह करते थे।

कलकत्ते में जितने सरकारी या बेसरकारी काम होते थे उन सभी कामों मे विद्यासागर की सहायता प्रायः ली जाती थी। हिंदू धर्मशास्त्र के संबंध की कोई बात होती या कोई कानून बननेवाला होता तो उनकी सहायता अवश्य ली जाती थी। निदान सरकारी नौकरी छोड़ने पर भी सरकार उन्हे नही छोडती थी। एक बार मिस मेरी कारपेंटर, डाइरेक्टर साहब को साथ ले, लड़कियों की पाठशाला देखने गई थीं। विद्यासागर को भी उन्होने अपने साथ लिया था, लौटती बेर गाड़ी उलट गई और विद्यासागर के कलेजे मे चोट लगी। वह देर तक अचेत पड़े रहे तथा बड़ी चिकित्सा करने पर कुछ दिनों मे अच्छे हुए। बस उसी समय से उनका स्वास्थ्य बिगडा, आबहवा बदलने के लिये उन्हें फरासडाँगा जाना पड़ा फिर वहाँ से बर्दवान आए। वहाँ उस समय बड़े जोर से मलेरिया बुखार फैला हुआ था। यह देख दयासागर विद्यासागर

अपना दुख भूल गए और वहाँ हजारों रुपए खर्च कर अस्पताल खोल दिया। फिर उन्होने गवर्नमेंट तथा रईसों की सहायता से कई अस्पताल खोलवाए तथा दीन दुखियों के दवा पथ्य और कपड़े का प्रबंध किया। वह अपना रोग भूलकर दूसरे रोगियों की सेवा अपने हाथ से करते थे। एक दिन किसी बड़े दुबले भिखमगे लड़के ने विद्यासागर से एक पैसा माँगा। उन्होंने पूछा कि "जो हम चार पैसा दें तो तुम उन पैसों का क्या करोगे?" लड़के ने समझा कि ये हँसी करते हैं, बोला "आप तो ठट्ठा करते है"। इस पर उन्होंने कहा "हम ठट्ठा नही करते, सच सच बतलाओ।" लडका बोला "दो पैसे का दाना लेंगे और दो पैसे माँ को देगे" विद्यासागर ने पूछा "और जो हम दो आने दे तो?" यह सुन लड़का ठठोल-बाजी समझकर चलने लगा तब उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे उत्तर देना पड़ा। वह बोला "चार पैसे का चावल लेंगे और चार पैसे माँ को देगे।" विद्यासागर ने फिर पूछा "और जो चार आने दें तो?" लडके ने कहा "दो आने का चावल लेंगे जिससे दो दिन की छुट्टी हो जायगी और दो आने का आम लेकर बेचेंगे। उससे दो आना लाभ होगा। इसी तरह जितने दिन चल सकेगा चलावेंगे।" यह सुन करुणामय विद्यासागर ने उसे एक रुपया दिया और वह उसे ले आशीर्वाद देता चला गया। दो वर्ष पीछे फिर विद्यासागर का वर्द्वान जाना हुआ तब एक मोटे ताजे लड़के ने आकर हाथ जोड़ कहा "दीनबंधु! हमारी दूकान को अपने चरण से पवित्र कीजिए"। विद्यासागर ने कहा—"हम तो तुम्हें पहिचानते भी नहीं, तुम्हारी दुकान पर किस नाते से चले?" लड़के ने कहा "दयामय, हम वही हैं जिसे आपने एक पैसा माँगने पर एक रुपया दिया था। हमने उस रुपए मे से दो आँने के चावल लिए और

चौदह आने के आम लेकर बेचे, उससे आपके पुण्य प्रताप से बरा बर लाभ होता गया। अब हमने बिसाती की दूकान कर ली है और आपके चरणों की कृपा से माँ के साथ सुख से हमारा दिन कटता है।" यह सुन विद्यासागर बहुत ही प्रसन्न हुए और फिर उन्होने उस गरीब बालक की सहायता की।

विद्यासागर जो प्रतिज्ञा कर लेते उससे कभी नहीं हटते थे। किसी बात पर दुखी होकर उन्होंने अपनी जन्मभूमि (बीर-सिंह गाँव) मे जाना छोड़ दिया तो फिर वे जन्म भर वहाँ न गए। एक समय वे अपनी संस्कृत डिपाजिटरी के प्रबंध से अप्रसन्न होकर लोगों से बोले कि जो कोई इसे ले तो हम देकर छुट्टी पावें। इस पर एक महाशय ने कहा कि जो आप ऐसा ही किया चाहते हैं तो हमें दे दीजिए। यह सुन विद्यासागर ने प्रसन्नता के साथ उन्हे डिपाजिटरी देना स्वीकार किया। फिर कई लोगो ने विद्यासागर को डिपाजिटरी के लिये छ हजार रुपए तक देने को कहा पर सत्य-वीर विद्यासागर का मन जरा न डोला और उन्होंने बिना कुछ लिए ही जिससे पहले प्रतिज्ञा की थी उसे डिपाजिटरी दे डाली।

बंगाल में कुलीन ब्राह्मण के बहुत विवाह होते हैं, यहाँ तक कि एक एक मनुष्य अस्सी नब्बे ब्याह तक कर डालते हैं, और विवाह पीछे अपनी स्त्रियों की सुधि तक नही लेते। इस घोर अत्याचार को देख दयासागर विद्यासागर से न रहा गया और उन्होंने कई पुस्तके इस विषय पर लिख डाली। चारों ओर से आंदोलन मचवाया और बड़े बड़े लोगों के हस्ताक्षर करा कर गवर्नमेंट की सेवा में मेमोरियल भेजे। विद्यासागर के बड़े यत्न करने पर भी कानून तो न बना पर उस आंदोलन का फल यह हुआ कि यह कुरीति बहुत कम हो गई।

सन् १८७२ ई० मे कलकत्ते मे "हिंदू फैमिली आनुइटी फंड" स्थापित हुआ। इस फंड मे कुछ महीना देने से मरने पर उसके परिवारवालों को इस फंड से मासिक सहायता दी जाती है। विद्यासागर ने भी इसके स्थापित होने मे बहुत कुछ सहायता की थी और तीन वर्ष तक वह, महाराज ज्योतींद्रमोहन ठाकुर, आनरेबुल बाबू द्वारकानाथ इसके ट्रस्टी रहे। किंतु पीछे इसके प्रबंध से असंतुष्ट होकर उन्होंने इसका संबंध छोड दिया। जब विद्यासागर से इस फंड से सरोकार छोड़ने का कारण पूछा गया तो उन्होंने जिनके जिनके जो जो दोष थे वे सब साफ साफ कह दिए। वे सच कहने मे भी किसी का सकोच न करते और न किसी से डरते थे। विद्यासागर से और उस समय के लेफ्टिनेंट गवर्नर कैम्बेल साहब से एक साधारण बात पर झगडा हो गया। इस पर निडर होकर उन्होंने लाट साहब की भूल पत्रो मे छपवा दी। उस झगड़े के कारण उन्हे बहुत हानि सहनी पडी, उनकी बहुतेरी पुस्तकें कोर्स से उठा दी गईं जिससे आमदनी भी बहुत कम हो गई पर स्वाधीन-चित्त विद्यासागर ने इन बातों की कुछ भी चिंता न की।

कलकत्ते के कई बड़े बड़े लोगों ने विधवा-विवाह मे सहायता देने के लिये विद्यासागर से प्रतिज्ञा की थी पर समय पर सब निकल गए। अमीरों का ऐसा ओछापन देखकर विद्यासागर ने उन लोगों से सारा संबंध छोड़ दिया। उन्होंने अपने दामाद को कालिज मे प्रबंध करने के लिये रखा था पर उनके किसी काम से वह ऐसे अप्रसन्न हुए कि दामाद के नाते का न ख्याल कर निःसंकोच उन्हें नौकरी से छोड़ा दिया। वह न आप झूठ बोलते और न झूठे से किसी तरह का संबंध रखते थे। झूठ और झूठ बोलने-वालों से उन्हे यहाँ तक चिढ़ हो गई थी कि वे पिछली अवस्था

में कलकत्ते मे बहुत कम रहते और सौंताल परगने के "कर्मटॉड" नामक स्थान में एक बँगला बनवाकर वहीं बड़ी ही सादी चाल से रहा करते थे। वहाँ पर जंगली सौंताल लोग उनके सखा थे, उन गँवारों का सच्चा और निष्कपट व्यवहार विद्यासागर को बहुत अच्छा लगता था। वे लोग जो कभी रुष्ट होकर उन्हें गाली भी दे देते तो उन्हें मीठी जान पड़ती। निदान उन सीधे सादे सच्चे जंगली लोगों के बीच में रहकर विद्यासागर बडे सुख से अपना समय बिताते थे।

सन् १८७५ ई० मे उन्होंने अपना वसीयतनामा लिखा जिससे मरने के पीछे भी उनकी उदारता ने उनका साथ न छोडा। जिन कुटुम्बवालों या दूसरे असहायों को वे जो महीना देते थे उतने ही महीने देने का अपने मरने के पीछे भी उत्तम प्रबंध उस वसीयत-नामे के द्वारा कर गए। उसमे लगभग एक हजार रुपए प्रति महीने बाँटने की सारी व्यवस्था लिखी है।

सन् १८८० ई० में विद्यासागर के उत्तम गुणों पर रीझकर गवर्नमेंट ने उन्हें सी० आई० ई० की पदवी प्रदान की।

सन् १८६१ ई० में (बारहवीं श्रावण की रात को दो बज के अठारह मिनट पर) उन्होंने इस असार संसार को छोड़ा। आज उनका नाशवान शरीर इस नश्वर संसार मे नहीं है पर उनकी अचल कीर्ति ज्यों की त्यों विराजमान है और सदैव रहेगी। बीमारी मे उनकी बहुत कुछ दवाएँ की गईं, सडक पर गाड़ी घोड़े का शब्द न हो इसलिये उस पर सूखी घास बिछाई गई थी। म्युनिसिप्यालिटी ने अपनी स्कैवेंजर गाड़ी का उधर से आना जाना बंद कर दिया था। डाक्टर साल्जर आदि मिलकर दवा करते थे पर एक ने भी काम न किया, क्योंकि उनके दिन पूरे हो गए थे, इसलिये वे सारे

भारतवासी और विशेष कर बंगालियों को रुलाकर चल बसे। उनके मरने पर उनके शोक प्रकाश करने के लिये सैकड़ों ही सभाएँ हुईं और स्मारक चिह्न स्थापन करने के प्रस्ताव हुए। २७ अगस्त सन् १८९१ ई० को कलकत्ता टाउन हाल मे जो शोक प्रकाश के लिये सभा हुई थी उसके सभापति स्वय बंगाल के छोटे लाट सर चार्ल्स इलियट हुए थे। भारतवर्ष के हिंदी, अँगरेज़ी, सरकारी, बे-सरकारी सभी समाचारपत्रों ने उनका गुण गा गाकर शोक प्रकाश किया था। बँगला के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों ने उनके शोक मे कविताएँ लिखी थी, और कलकत्ते के कितने ही बाजार तथा सरकारी बे-सरकारी सब स्कूल और कालिज बंद हुए थे। कितने ही स्थानों मे कितने ही उनके स्मारक चिह्न स्थापित किए गए पर कलकत्ते का स्मारक चिह्न आज तक बनता ही है। हाय हिंदुस्तानी भाइयों ने अपने स्वाभाविक गुण गुण-ग्राहकता को बिलकुल ही भुला दिया कि ऐसे आदरणीय पुरुष की कुछ कद्र न की। अस्तु, कोई स्मारक स्थापन करे वा न करे, विद्यासागर की अटल कीर्ति ही उनका अचल स्मारक है। जब तक बग भाषा पृथ्वी पर रहेगी, जब तक दया और उदारता का आदर संसार मे रहेगा, और जब तक विद्यासागर की पुस्तकों की एक चिट भी बची रहेगी तब तक वह अमर रहेगे और उनका पवित्र नाम आदर के साथ लिया जायगा।

बग देश मे विद्यासागर के नाम का इतना आदर है कि गाँव गाँव गली गली घर घर स्त्रियाँ भी गँवारू गीतों मे उनका गुण गान करती हैं। बंग देश मे एक चाल के किनारे की धोती बनती है उसका नाम "विद्यासागर पाड़" है। छापेखानों में अक्षरों के रखने की एक नई चाल उन्होंने चलाई थी, वह आज तक "विद्यासागर सार्ट" के नाम से प्रसिद्ध है और बरती जाती है।

विद्यासागर के विमल चरित्र मे लोगों के सीखने योग्य बहुत सी बाते हैं। भाइयो! मनुष्य•अपने बाहुबल से आप ही क्योंकर बढ़ सकता है, यह देखना हो तो विद्यासागर का चरित देखो; सत्य और धर्म के पथ पर चलकर मनुष्य कैसे सुखी और कीर्तिमान हो सकता है, यह जानना हो तो विद्यासागर का चरित्र पढ़ो, दृढ़ता के साथ काम करने से मनुष्य असभव को कैसे सभव कर सकता है यह सीखना हो तो विद्यासागर का चरित्र पढो, सरकारी प्रियपात्र होकर भी मनुष्य किस भाँति अपने देश की भलाई कर सकता है, यह समझना हो तो विद्यासागर का चरित्र सीखो, और बाहरी चमक दमक को दूरकर उदारता, दया तथा सचाई के गुणों से मनुष्य क्योंकर शोभायमान और आदर का पात्र हो सकता है, यह हृदयंगम करना हो तो विद्यासागर का चरित्र ध्यान दे सोचो। सत्य, दया, दृढता, और परोपकार आदि गुण विद्यासागर के जीवन के मूल थे। परमेश्वर करे प्रत्येक भारतवासी जन इन गुणो को अपना जीवन-मूल बनाकर विद्यासागर का अनुकरण करते हुए इस देश का मगल करे।

---

(६) भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का जीवनचरित्र*

पिता और पूर्व पुरुष

परमेश्वर नास्तिकों का मुँह बंद करने और अपना अस्तित्व प्रमाणित करने ही के लिये कभी कभी पृथ्वी पर ऐसे लोगों को जन्माता है जिनकी अद्‌भुत प्रतिभा देखकर लोग आश्चर्य मे आ जाते हैं। हमारे चरित्रनायक भी वैसे ही एक पुरुषरत्न थे कि जिनके चरित्र मे

* "खङ्गविलास" यन्त्रालय की ढील से उकताए हुए मित्रों के आग्रह से मैंने पूज्य भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्रजी के जीवनचरित्र की बाते जो मुझे याद आई, उन्हे "सरस्वती" पत्रिका द्वारा चार वर्ष हुए प्रकाशित किया था, तब से प्रायः लोगों का आग्रह उसे पुस्तकाकार छापने का होता रहा परंतु अब तक उसका अवसर न आया। इधर गत कार्तिक मास में "दिल्ली दर्बार चरितावली'" के लेखक जगदीशपुर ज़िला शाहाबाद-निवासी बाबू हरिहरप्रसादजी काशी आए और उन्होंने अत्यंत ही आग्रह करके अपने सामने ही छपने का प्रबध कराया अतएव इसके छपने के मूल कारण उक्त महाशय ही हैं, इसलिये मैं उन्हे धन्यवाद देता हूँ।

इस छोटे ग्रंथ मे जहाँ तक सामग्री मुझे मिली, मैंने उसका दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। संभव है कि बहुतेरी आवश्यक बाते इसमें छूट गई हों, क्योंकि मेरे पास जो कुछ सामग्री थी उसमे से अधिकांश "खङ्गविलास" यंत्रालय के स्वामी स्वर्गवासी बाबू रामदीनसिंहजी जीवनी प्रकाश करने की इच्छा

' इस ग्रंथ मे भारत-सम्राट् महाराजाधिराज सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक महोत्सव के उपलक्ष में जो दिल्ली मे दर्बार हुआ था उसका वृत्त दिल्ली के इतिहास सहित सरल हिंदी भाषा मे वर्णित है। उक्त ग्रंथ बाबू साहब के पास बाबू गुलाबचन्द्रजी की कोठी, दौलतगज-छपरा इस पते से मिलता है।

ईश्वर की ईश्वरता का साक्षात् प्रमाण मिलता है। ऐसे लोगों के जीवनचरित्र के पढ़ने से लोग बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि उनका चरित्र लोगो को एक अच्छा रास्ता दिखलाता और संसार मे यश कमाने का अच्छा उपदेश देता है।

जगत्-प्रसिद्ध कविश्रेष्ठ गिरिधरदास, प्रसिद्ध नाम बाबू गोपालचंद्र, का जन्म काशी मे मिती पौष कृष्ण १५ स० १८९० को हुआ था और मृत्यु मिती वैशाख सु० ७ सं० १९१७ को। उन्होने इस २६ वर्ष ४ महीने ७ दिन की ऐसी छोटी अवस्था मे कितने बड़े काम किए हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है। हिंदुस्तान मे जिस अवस्था मे धनवानों के लड़कों को पूरी तरह पर बात करने का भी ज्ञान नहीं होता और जिस भयानक अवस्था के वर्णन मे उचित रूप से कहा गया है कि—

से ले गए थे। "सरस्वती' म जो जीवनी छपी थी उसके पीछे और जिन बातो का पता लगा वे इसमें बढ़ा दी गई है। आशा है कि इससे हिंदी और पूज्य भारतेंदु के प्रेमियों को कुछ आनंद प्राप्त होगा।

पूज्य भारतेंदुजी की जीवनी लिखना मुझे उचित न था, इसमें आत्मश्लाघा का दोषी बनना पड़ता है, परन्तु यह सोचकर कि यदि और लोगों की भाँति आलस्य में, वे बात जो मुझे विदित है लिखने से रह गईं और मेरा शरीर भी न रहा तो उनका पता लगना भी दुर्घट हो जायगा और यह लालसा मेरी मन की मन ही में रह जायगी, इसलिये मैंने यह धृष्टता की है। आशा है कि सज्जन क्षमा करेंगे।

हर्ष की बात है कि हिंदीहितैषी बाबू रामदीनसिंहजी के योग्य पुत्र बाबू रामरणविजयसिंह का ध्यान अपने पिता की इस इच्छा को पूरा करने की ओर गया है। आशा है कि वे अपने पिता की संगृहीत सामग्रियों से इस जीवनी की पूर्ति करेंगे।

"भारतमित्र"-संपादक सुहृद्वर बाबू बालमुकुंद गुप्त भी एक जीवनी लिखनेवाले है। यदि उक्त दोनों जीवनियों में कुछ भी सहायता मेरी लिखी इस जीवनी से मिलेगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

[संवत् १९६१

"यौवनं धनसम्पत्ति. प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥"

उस अवस्था मे इस प्रांत के प्रसिद्ध सेठ हर्षचद्र के एकमात्र पुत्र गोपालचद्र ने बचपन मे ही पितृहीन होकर भी विद्वत्ता और सच्चरित्रता का ऐसा उदाहरण छोड़ा है कि जिसे देखकर ईश्वर की महिमा स्मरण आती है। इसके पहले कि हम इनका कुछ चरित्र लिखे, इनके सुप्रसिद्ध वश का बहुत ही सत्तेप से वर्णन कर देना उचित समझते हैं, जिसमे हमारे पाठकों को इनका और इनके पुत्र हिंदी-प्रेमियों के एकमात्र प्रेमाराध्य भारतेदु हरिश्चंद्र का पूरा परिचय मिल जाय।

भारतेदु जी स्वरचित "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" मे निज वंश-परंपरा यों वर्णन करते हैं—

"वैश्य अग्र-कुल मैं प्रगट बालकृष्ण कुल पाल।
ता सुत गिरिधरचरनरत, वर गिरधारीलाल ॥ १ ॥
अमीचद तिनके तनय, फतेचंद ता नंद।
हरखचंद जिनके भए, निज कुल सागर चंद ॥ २ ॥
श्री गिरिधर गुरु सेइके, घर सेवा पधराइ।
तारे निज कुल जीव सब, हरि पद भक्ति दृढ़ाइ ॥ ३ ॥
तिनके सुत गोपाल ससि, प्रगटित गिरिधरदास।
कठिन करम गति मेटि जिन, कीनो भक्ति प्रकास ॥ ४ ॥
मेटि देव देवी सकल, छोडि कठिन कुल रीति।
थाप्यो गृह मैं प्रेम जिन, प्रगटि कृष्ण पद प्रीति ॥ ५ ॥
पारवती की कूख सो, तिन सों प्रगट अमंद।
गोकुलचदाग्रज भयो, भक्त-दास हरिचद ॥ ६ ॥"

वंश-वृक्ष
राय बालकृष्ण
दलपतराय
सिरोधरलाल
लक्ष्मीराम
गिरधारीलाल
फकीरचंद
हरिविलास
सूरतसिंह
रूपचंद
अनूपचंद
शोभाचंद
सेठ अमीचंद
चंद्रविलास
राजा गोविंदचंद
राय रतनचंद बहादुर
डालचंद
मोहनचंद
विष्णुचंद
राय हुकुमचंद
सीतलचंद
राजा आनंदचंद
पूर्णचंद
बाबू रायचंद
गोपीचंद
नान्हकचंद

बाबू फतहचंद्र
बाबू हर्षचंद्र
यमुना बीबी
राय प्रह्लाददास
गगा बीबी
श्रीराधाकृष्णदास
बाबू गोपालचद्र उपनाम गिरिधरदास
मुकुदी बीबी
भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
बाबू गोकुलचंद्र
गोविंदी बीबी
राय गोपीकृष्ण
विद्यावती
सरस्वती
कृष्णावती
बाबू कृष्णचंद्र
बाबू व्रजचंद्र
व्रजरमनदास
रेवतीरमनदास
व्रजजीवनदास
मोहनदास
व्रजभूषणदास
जीवनचंद्र
छोटा बच्चा

दिल्ली के शाही घराने से इनके प्रतिष्ठित पूर्वजो का बहुत ही घनिष्ठ संबंध था। जब शाहजहाँ का बेटा शाह शुजा सन् १६५० के लगभग विशाल बंगाल का सूबेदार होकर आया, तब इनके पूर्वज भी उसके साथ दिल्ली छोड़ बगाल मे चले आए, और जैसे जैसे मुसलमानी राजधानी बंगाल मे बदलती गई वैसे वैसे ये लोग भी अपना प्रवासस्थान परिवर्तन करते गए। राजमहल और मुर्शिदाबाद मे अब तक इनके पूर्वजो के उच्च प्रासादो के अवशिष्ट चिह्न पाए जाते हैं। इसी विशाल वंश के सेठ बालकृष्ण के प्रपौत्र तथा सेठ गिरिधारीलाल के पुत्र सेठ अमीचंद के समय मे इस देश मे अँगरेजो का राजत्वकाल प्रारंभ हुआ। उस समय अँगरेजों के सहायकों मे से ये भी एक प्रधान सहायक थे। उस समय इनका इतना मान था कि इनके दस बेटों में से तीन को "राजा" और एक को "रायबहादुर" की पदवी प्राप्त थी। इन पुत्रो मे से वंश केवल बाबू फतहचंद्र का चला। सेठ अमीचंद का वृत्तांत इतिहासों मे इस प्रकार प्रसिद्ध है।

सेठ अमीचंद

सेठ अमीचंद का चार लाख रुपया कलकत्ते मे लूटा गया था, और भी बहुत कुछ हानि हो गई थी; परंतु नव्वाब की ओर से उसकी कुछ भी रक्षा न हुई। निदान यों ही देश को दुखित देख जब लोगों ने अँगरेजों की शरण ली तो ये भी उनमे एक प्रधान पुरुष थे। इनसे अँगरेजों से यह दृढ़ प्रतिज्ञा हो गई थी कि सिराजुद्दौला के कोष से जो द्रव्य प्राप्त होगा उसमे से पाँच रुपया सैकड़ा तुम्हे मिलेगा, और दो प्रतिज्ञापत्र लिखे गए। लाल कागज पर जो लिखा गया उस पर सेठ अमीचंद को ५) रुपया सैकड़ा देने को लिखा गया था, परंतु सफेद कागज पर जो लिखा गया था उस पर इनका नाम

तक न लिखा गया। जब हस्ताक्षर होने के हेतु कौंसिल मे ये पत्र उपस्थित हुए तो 'एडमिरल' ने लाल कागज पर हस्ताक्षर करना सर्वथा अस्वीकार किया पर कौंसिलवालो ने उनका हस्ताक्षर बना लिया। बंगाल-विजय के पश्चात् जब खजाना सहेजा गया तब डेढ़ करोड़ रुपया निकला। सेठ अमीचद ने तीस पैंतीस लाख रुपया मिलने का हिसाब जोड रक्खा था। जब प्रतिज्ञापत्र पढा गया और इनका नाम तक न निकला तो इन्होंने उस षड्चक्र से घबराकर कहा "साहब, वह लाल कागज पर था"। लार्ड क्लाइव ने उत्तर दिया "यह आपको सब्जबाग दिखाने को था। असिल यही सफेद है"। सेठ अमीचद इस वाक्य के व्याघात से मूच्छित होकर गिर पड़े। लोग उन्हे पालकी मे डालकर घर लाए। इसी प्रबल पीड़ा से डेढ़ वर्ष के पश्चात् वे परमधाम सिधारे।

राजा शिवप्रसाद लिखते हैं कि "अफसोस है, क्लाइव ऐसे आदमी से ऐसी बात जहूर मे आवे, पर क्या करे, ईश्वर को मजूर है कि आदमी का कोई काम बेऐब न रहे। इस मुल्क मे अँगरेजी अमल्दारी की सचाई मे, जो मानों धोबी की धोई हुई सफेद चादर रही है, केवल उसी अमीचंद ने उसमे एक छोटा सा धब्बा लगा दिया है *"।

---

* मीर जाफर, अमीचंद (अमियचंद्र) ("A man of vast wealth") और खोजा वजीद ये तीन जन थे कि जिनकी सहायता से पलासी युद्ध में अँगरेज विजयी हुए। मीर जाफर (सेनापति) को नवाब बनाने की लालच दी गई और सेठ अमीचंद को उनका बहुत रुपया, जिसे सिराजुद्दौला ने अन्याय से ले लिया था, युद्ध जीतने और कोष पाने पर देने का वादा किया गया। पीछे रुपया देख क्लाइव लोभ में आ गया। इसी लोभ ने हेस्टिंग्स का नाम चिरस्मरणीय बनाया और इसी ने यह हत्या करा कल्पांत के लिये उनके और शुभ्र अँगरेजी राज्य के नाम में कलंक लगा दिया। कितने अँगरेज इतिहासलेखकों ने यद्यपि एक स्वजाति की करनी को बड़ी बड़ी बातें बना

सेठ अमीचंद उस समय कलकत्ते के प्रधान महाजनों मे थे, इनका इतिहास बाबू अक्षयकुमार मैत्र ने "सिराजुद्दौला" नामक ग्रंथ मे लिखा है, हम उसी को यहाँ उद्धृत करते हैं।

"हिंदू वणिकों मे उमाचरण का नाम अँगरेजों के इतिहास में उमीचाँद (अमीचद) कहकर प्रसिद्ध है। अँगरेज ऐतिहासिकों ने इन्हे लोक-समाज मे धूर्तता की मूर्ति कहकर प्रसिद्ध करने मे कोई बात उठा नही रखी है और लार्ड मेकाले ने तो इन्हे "धूर्त बगाली" कहने मे कुछ भी आगा पीछा नही किया है, परतु ये बंगाली नही थे, ये पश्चिम देशीय हिंदू वणिक थे। केवल बंगाल बिहार मे वाणिज्य करने के लिये बंगाल मे रहते थे। इन्हे केवल वणिक कहने से इनका पूरा परिचय नही होता। इनकी नानाविध सामानों से सुसज्जित राजपुरी, इनका कुसुमदाम-सज्जित प्रसिद्ध पुष्पोद्यान (बाग़), इनका मणिमाणिक्य से भरा इतिहास मे प्रसिद्ध राजभण्डार, इनका हथियारबंद सैनिकों से घिरा हुआ सुंदर सिहद्वार देखकर दूसरे की कौन कहे, अँगरेज़ लोग भी इन्हे एक बडा राजा कहकर मानते थे*। सेठों में जैसे जगतसेठ थे वणिकों मे वैसे ही इनका

गोपन रखना चाहा है तथापि कितने न्यायशीलों ने क्लाइव को साफ दोषी ठहराया है। अधर्म सभी स्थल और सभी समय अधर्म है। राज सेक्रेटरी T. Talboys Wheeler कहते है :—"But the action of Clive, although it did not put a penny in his pocket, has been condemned to this day as a stain upon his character as an English gentleman."

* The extent of his habitation, divided into various departments, the number of his servants continually employed on various occupations, and a retinue of armed men in constant pay, resembled more the state

मान और पद गौरव नवाब के दर्बार मे था। अँगरेज वणिक् जब विपद मे पड़ते तभी इनके शरणापन्न होते थे, और कई बार केवल इन्ही की कृपा से इनकी लज्जा-रक्षा होने का कुछ कुछ प्रमाण पाया जाता है* ।

अँगरेज लोग केवल इन्ही की सहायता पाकर बंगाल देश मे अपना वाणिज्य फैला सके थे। इन्ही की सहायता से गाँव गाँव में अँगरेज लोग दादनी देकर रुई और कपड़े लेकर बहुत कुछ धन उपार्जन करते थे। यह सुविधा न मिलती तो इस अपरिचित विदेश मे अँगरेजों को अपनी शक्ति फैलाने का अवसर मिलता कि नहीं इस मे संदेह होता है। परतु देशी लोगों के साथ जान पहिचान हो जाने पर दैव-कोप से अँगरेज लोग इनकी उपेक्षा करने लगे। जिस समय सिराजुद्दौला गद्दी पर बैठे उस समय अँगरेज लोग अमीचंद का उतना विश्वास नही करते थे। इन दोनों के मन में जो मैल आ गई थी वह धीरे धीरे बहुत ही दृढ हो गई।

उस समय इस देश के लोगों की प्रकृति ऐसी सरल थी कि वे अँगरेजों का अध्यवसाय, अकुतोभयता और विद्या-बुद्धि देखकर बे-खटके विश्वास करके उनके पक्षपाती हो गए थे। इसी से अँगरेजों का रास्ता इस देश मे सुगम हो गया था।

अँगरेजों के उद्धतपने से चिढ़कर नवाब सिराजुद्दौला ने यद्यपि यह निश्चय कर लिया था कि एक न एक दिन इनको दबाने का

---

of a prince, than the condition of a merchant—ORME, VOL. II, 50

* He had acquired so much influence with the Bengal Government, that the Presidency, in times of difficulty, used to employ his mediation with the Nowab—ORME, VOL II, 50

उपाय करना होगा, परंतु एक बेर और दूत भेजकर समझाना उचित जानकर चर देश के राजा राय रामसिंह पर दूत भेजने का भार दिया। अँगरेज लोग नवाब से ऐसे सशंकित थे कि इनका कोई मनुष्य कलकत्ते मे घुसने नहीं पाता था, इसलिये राय रामसिह ने अपने भाई को फेरीवाले के छद्मवेष मे एक डोंगी पर बैठाकर कलकत्ते भेजा। वह सेठ अमीचद के यहाँ ठहरा और उन्ही के द्वारा अँगरेजों के पास नवाब का सँदेसा लेकर उपस्थित हुआ, पर अँगरेजों ने उसकी कुछ बात न मानकर बडे अनादर के साथ उसे निकाल दिया। यद्यपि बाहरी बनाव सेठ अमीचंद का अँगरेजों से था, परंतु भीतर से अँगरेज लोग इनसे बहुत ही चिढे हुए थे। इस घटना के विषय मे उन लोगों ने लिखा है कि "एक राजदूत आया तो था पर वह नवाब सिराजुद्दौला का भेजा दूत है यह हम लोग कैसे समझ सकते थे? वह एक साधारण फेरीवाले के छद्मवेष मे आकर हम लोगों के सदा के शत्रु अमीचंद के यहाँ क्यों ठहरा था। अमीचद के साथ हम लोगों का झगड़ा था इससे हम लोगों ने समझा था कि अपनी बात बढ़ाने के लिये ही इन्होंने यह कौशलजाल फैलाया है, इसी लिये राजदूत की उपेक्षा की गई थी। जो कहीं तनिक भी हम लोग जानते कि स्वयं नवाब सिराजुद्दौला ने दूत भेजा है तो हम लोग क्या पागल थे कि उसका ऐसा अपमान करते?" निदान अँगरेज लोग हरएक बात मे सब दोष इन पर डालकर अपने बचाव का रास्ता निकाल लेते थे, परंतु वास्तविक बात और ही थी। यदि उन्हें यह निश्चय था कि यह कौशलजाल अमीचद का है तो वे कासिम बाजार मे वाट्स साहब को क्यों लिखते कि वहाँ सावधान रहे और देखे कि दूत को निकाल देने का क्या फल नवाब के दर्बार मे होता है?*

* The Governor returning next day summoned

अँगरेजों के इन उद्धत व्यवहारो से चिढ़कर सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढाई की। अमीचद के मित्र राजा राय रामसिंह ने गुप्त पत्र लिखकर एक दूत के हाथ अमीचंद के पास भेजा कि वह तुरत कलकत्ते से हट जायँ जिसमे उन पर कोई आपत्ति न आवे परतु वह पत्र बीच ही मे दूत को धमकाकर अँगरेजों ने ले लिया। इसका कुछ भी समाचार अमीचंद को न विदित हुआ। अँगरेजो ने तुरत सेना भेजकर इन्हे बंदी किया और कारागार को ले चले। सारे नगर के लोग हाहाकार करने लगे।

"अमीचद के यहाँ उनके एक सबधी हजारीमल्ल कार्य्याध्यक्ष थे। उन्होने डरकर धन, रत्न और परिवार के लोगो को लेकर भागने का विचार किया। अँगरेजो से यह न देखा गया। श्रेणी की श्रेणी अँगरेजी सेना आने और अमीचद के घर को घेरने लगी। इनका जमादार एक सद्वंश-जात क्षत्रिय था, वह इनके नौकर बरकंदाजों तथा और नौकरों को इकट्ठा करके रक्षा का उपाय करने लगा। फिरगियों न आकर सिहद्वार पर हाथाबाही आरम्भ की। लहू की नदी बहने लगी। अंत मे इनके बर्कंदाज न ठहर सके। एक एक करके बहुतेरे भूतलशायी हो गए, जहा तक मनुष्य का साध्य था इन लोगों ने किया। फिरगियों की सेना महा कोलाहल के साथ जनाने मे घुसने लगी। अब तो जमादार का रक्त उबलने लगा। हैं!

---

a council, of which the majority being prepossessed against Omichand concluded that the messenger was an engine prepared by himself to alarm them and restore his importance . .
but letters were despatched to Mr Watts, instructing him to guard against any evil consequences from this proceeding—ORME, VOL II, 54

जिस आर्यमहिला के अंत.पुर मे भगवान् सूर्यनारायण अत्यंत आदर के साथ प्रवेश करते हैं वहाँ म्लेच्छ-सेना का पदस्पर्श होगा ? जिस मालिक के परिवार के निष्कलक कुल की, अवगुठनवती कुल-कामिनियों को पर-पुरुष की छाया भी नहीं छू सकी है उनकी पवित्र देह म्लेच्छों के हाथ से कलकित होगी ? इससे तो हिंदू बालाओं को मौत की गोद ही कोमल फूल की सेज है, यह प्राचीन हिंदू गौरव-नीति तुरत जमादार के हृदय मे उदय हुई। उसने कुछ भी आगा-पीछा न सोचकर चट एक बडी चिता जला दी और फिर क्या किया—फिर एक एक करके प्रभु-परिवार की १३ स्त्रियों का सिर धड़ से अलग कर वह चिता मे डालता गया और अंत मे उसी सतीशोणित-भरी तलवार को अपने कलेजे मे घुसाकर आप भी वहीं लोट गया। अनुकूल वायु पाकर उस चिता-ज्वाल ने चारों ओर अपनी लोल जिह्वा से लपलपाकर उस राजपुरी को सिंहद्वार तक अपने पेट मे डाल लिया ! फिरंगी लोग उठाकर जमादार को बाहर लाए, परंतु घर के भीतर न घुस सके। अमीचंद का इन्द्रभवन श्मशान-भस्म से भर गया ! केवल इस शोक समाचार को आमरण कीर्तन करने के लिये ही उस बूढे जमादार की प्राण वायु न निकली।"*

अँगरेजों की अंत मे हार हुई। नवाब की सेना ने कलकत्ते पर अधिकार किया। सेनापति हालवेल साहब अँगरेजों के किले

* The head of the peons, who was an Indian of a high caste, set fire to this house, and in order to save the women of the family from the dishonour of being exposed to strangers, entered their apartments, and killed, it is said, thirteen of them with his own hand, after which he stabbed himself but, contrary to his intention, not mortally—ORME IV, 60.

की रक्षा के उपाय करने लगे पर कोई उपाय चलता न देखकर अंत मे फिर अँगरेजों के गाढे समय के मीत अमीचंद के शरण मे गए, बहुत कुछ रोए गाए। दयार्द्र-चित्त अमीचंद ने अँगरेजों के दुष्ट व्यवहार का विचार न करके उन्हे आश्वासन दिया और नवाब के सेनापति राजा मानिकचद के नाम पत्र लिखकर हालवेल साहब को दिया। पत्र मे लिखा कि "बस अब बहुत शिक्षा हो चुकी, अब जो आज्ञा नवाब देंगे अँगरेज लोगव ही करेगे" आदि*। हालवेल साहब ने उस पत्र को किले के बाहर गिरा दिया। किसी ने उसे ले लिया पर कुछ उत्तर न आया (कदाचित् नवाब तक नही पहुँचा)। सध्या को अँगरेजों की सेना ने पश्चिम का फाटक खोल दिया। नवाब की सेना किले मे घुस आई और बिना युद्ध जितने अँगरेज थे सब पकड़े गए। नवाब ने किले मे दर्बार किया। अमीचंद और कृष्णवल्लभ को ढूँढने की आज्ञा दी। दोनों साम्हने लाए गए। नवाब ने कुछ क्रोध प्रकाश न करके दोनों का यथोचित आदर किया और बैठाया।

जो अँगरेज बंदी हुए थे वे एक कोठरी मे रात को रक्खे गए। १४६ अँगरेज थे और १८ फुट की कोठरी मे रक्खे गए थे। इनमे से १२३ रात भर मे दम घुटकर मर गए। यह घटना अँगरेजो मे अंधकूप हत्या के नाम से प्रसिद्ध है। इस कोठरी का नाम ब्लैक-होल (Black-hole) प्रसिद्ध है। यह सब बात सिवाय हालवेल साहब के किसी अँगरेज या मुसलमान ऐतिहासिक ने नहीं लिखी है इसलिये अक्षय बाबू इसकी सत्यता में बड़ा संदेह करते हैं। हालवेल साहब अनुमान करते हैं कि जो निर्दय व्यवहार अमीचंद के साथ किया गया था उसी का बदला लेने के लिये उन्होने राजा मानिकचंद से कहकर अँगरेजों की यह दुर्गति कराई थी, परंतु धन,

* Halwell's India tracts, page 330

कुटुंब सब नष्ट होने पर भी जो सिफारशी चिट्ठी अमीचद ने राजा मानिकचंद के नाम लिख दी थी उसकी बात हालवेल साहब भूल गए ।* परंतु अमीचंद के साथ जो अन्याय बर्ताव किया गया था उसे हालवेल को भी मानना पड़ा है ।†

हारने पर भी अँगरेजों ने कलकत्ते की आशा नहीं छोड़ी । पलता मे डेरा डाला । मद्रास से सहायता माँगी । वहाँ से सहायता आने का समाचार मिला । इधर सिराजुद्दौला ने भी फिर शान्तरूप धारण किया । जहाज पर कौंसिल बैठी, उसी समय आरमनी वणिक के द्वारा अमीचंद का पत्र अँगरेजो को मिला जिसमे लिखाथा "मैं जैसा सदा से था वैसा ही अँगरेजो का भला चाहनेवाला अब भी हूँ । आप लोग राजा राजवल्लभ, राजा मानिकचद, जगतसेठ, ख्वाजा वजीद आदि जिससे पत्र व्यवहार करना चाहें उसका मैं प्रबंध कर दूँगा । और आपके पास उत्तर ला दूँगा ।"‡ अँगरेज लोग इतिहास लिखने के समय अमीचद के सिर चाहे जैसी कटूक्ति करें वा उसे दोषी ठहरावे परंतु ऐसे कठिन समयों में उनकी

* Halwell's India tracts, page 330.

† But that the hard treatment, I met with, may truly be attributed in a great measure to Omichand's suggestion and insinuations I am well assured from the whole of his subsequent conduct, and this further confirmed me in the three gentlemen selected to be my companions, against each of whom he had conceived particular resentment and you know Omichand can never forgive—Halwell's letter

‡ Consulations on board the Rhomia Schooner, Fulta August 22, 1756.

सहायता वे बडे हर्ष से लेते रहे हैं और केवल संदेह ही संदेह पर अपना काम निकल जाने पर उनके साथ असद्व्यवहार करते रहे हैं। यदि इनकी सहायता न मिलती तो नवाब के दर्बार या राजा मानिकचद प्रभृति तक उनके पत्र भो नहीं पहुँच सकते थे। जो राजा मानिकचंद अँगरेजों के खून के प्यासे थे वे केवल अमीचंद के उद्योग से अँगरेजो का दम भरने लगे।*

जगतसेठ और अमीचद हर एक प्रकार से अँगरेजो की मंगल-कामना नवाब के दर्बार मे करने लगे। अमीचद ने लिखा कि "नवाब के डर से कोई बोल नही सकता है पर ख्वाजा वजीद आदि प्रसिद्ध सौदागर लोग अँगरेजो के फिर आने के लिये उत्सुक हैं।"†

निदान फिर अँगरेजो का कलकत्ते मे प्रवेश हुआ। अब नवाब की इच्छा अँगरेजों से सधि कर लेने की हुई। वह स्वयं कलकत्ते आए और अमीचद के बाग मे दर्बार हुआ। अँगरेजो के दे। प्रतिनिधि आए और सधि की बातें निश्चित हुईं।‡ परतु कुचक्रियों ने

---

* Omichand and Manik Chand were at this time in friendly correspondence with the English. They negotiated at this time between the Nawab and the English understanding how to run with the bore and keep with the hound—Read Long

† Omichand writes from Chunsura that Coja Wafid and other merchants would be glad to see the English return were it not for the fear of the Nawab—Read Long

‡ February 4, 1757, at seven in the evening the Subah gave them audience in Omichand's garden, where he affected to appear in great state, attended by the best looking men amongst his Officers,

अँगरेजों को भड़का दिया, अनायास रात को अँगरेजों की तोप छूटने लगी। नवाब पहले तो घबड़ाए पर अत मे अपने मंत्रियों तथा सेनापति मीर जाफर की चाल समझ गए। ऐसे विश्वासघाती लोगों के भरोसे अँगरेजों से लडना उचित न समझकर वहाँ से पीछे लौट आए और दूसरे स्थान पर डेरा डालकर अँगरेजो से संधि की बात करने लगे। अंत मे सधि हो गई। इस संधि के द्वारा वाणिज्य का अधिकार मिला, कलकत्ते मे किला बनाने और टकसाल खोलने की आज्ञा मिली और कलकत्ते की लूट मे जो हानि अँगरेजो की हुई थी वह नवाब ने देना स्वीकार किया।

सधि के विरुद्ध सिराजुद्दौला के आदेश के विपरीत अँगरेजो ने फरासीसियों के किले चंदननगर पर चढ़ाई की। एक तो फरासीसी भी दृढ थे, दूसरे महाराज नंदकुमार भारी सेना लिए पास ही डेरा डाले थे। सामने पहुँचकर अँगरेजो को महा कठिनता हुई परंतु उस समय भी सेठ अमीचद ही काम आए। उन्होंने जाकर नंदकुमार को समझाया और वह वहाँ से हट गए। अँगरेजो की जय हुई।*

सिराजुद्दौला अँगरेजों की इस धृष्टता पर बहुत ही चिढ़ गए। फिर अँगरेजों को दंड देने के लिये तयारियाँ होने लगी, परंतु इस समय तक सारा देश सिराजुद्दौला के अत्याचार से दुखित था, नवाब के सभी मंत्री विरुद्ध हो रहे थे। गुप्त मंत्रणा होकर

hoping to intimidate them by so warlike an assembly.
——Strafton's Reflections.

* Nuncoomer had been bought by Omichand for the English and on their approach the troops of Sirajudoulah were withdrawn from Chandannagar—Thomson's History of the British Empire, Vol. I, p. 223.

एक गुप्त सधिपत्र लिखा गया। इसमे ईस्ट इंडिया कंपनी को एक करोड, कलकत्ते के अँगरेज और आरमनी वणिकों को ७० लाख और सेठ अमीचद को. ३० लाख रुपया मिलने की बात थी। इनके सिवाय और जिनको जो मिलना था वह अलग फर्द पर लिखा गया। संधिपत्र का मसौदा भेजने के समय वाटसन साहब ने लिखा था कि 'अमीचद जो चाहते हैं उसको देने मे आगा-पीछा करने से काम न बनेगा, वह सहज मनुष्य नही है सब भेद नबाव से खोल देगा तो कोई काम भी न होगा।' बस इसी पर अँगरेज लोग अमीचद से चिढ़ गए, और उनके सारे उपकारों को भुलाकर जाली संधिपत्र बनाया और अमीचंद को धोखा दिया। पलासी की लड़ाई, ऑगरेजो की विजय और सेठ अमीचद को प्रतारित करने का इतिवृत्त इतिहासों मे प्रसिद्ध ही है। अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये ऑगरेज इतिहासिकों ने सारा दोष अमीचंद पर थोपकर यथेष्ट गालिप्रदान की उदारता दिखलाई है परतु विचार कर देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये आदि से अत तक अँगरेजो के सहायक रहे और उनके हाथ से अनेक अन्याय्य बर्ताव होने पर भी उनके हित साधन से उन्होने मुँह न मोड़ा और अँगरेज लोग केवल सदेह कर करके सदा इनका अनिष्ट करते रहे, परंतु यह संदेह केवल अपने को दोषमुक्त करने के लिये था वास्तव मे इनके भरोसे और विश्वास पर ही इनका सब काम चलता था। कसम खाकर मीर जाफर ने संधिपत्र पर हस्ताक्षर किया परतु अँगरेजो को विश्वास नही हुआ, जब जगतसेठ और सेठ अमीचद ने जमानत किया तब ऑगरेजों को विश्वास हुआ।*

---

* "जामिन उसके वही दोनो महाजनान मजकूर हुए" मुताखरीन का उर्दू अनुवाद।

बाबू फतहचंद

सेठ अमीचंद के पुत्र सुयोग्य सेठ फतहचंद इस घटना से अत्यंत उदास होकर काशी चले आए। इनका विवाह काशी के परम प्रसिद्ध नगरसेठ गोकुलचद साहू की कन्या से हुआ। सेठ गोकुलचंद के पूर्वजों ने काशी के वर्तमान राज्यवश को काशी का राज्य, मीर रुस्तमअली को पदच्युत कराके, अवध के नव्वाब से प्राप्त कराने मे बहुत कुछ उद्योग किया था और तभी से वे उस राज्य के महाजन नियत हुए, तथा प्रतिष्ठापूर्वक उन्हे "नौपति" की पदवी प्राप्त हुई।

जिन नौ महाजनों ने उस समय काशिराज के मूल पुरुष राजा मनसाराम को राज्य दिलाने मे सब प्रकार सहायता दी थी, उन्हे नौपति की उपाधि दी गई थी। यह "नौपति" पदवी अब तक प्रसिद्ध है, परतु अब उन नवों वशों मे केवल इसी एक वंश का पता लगता है। और उसी समय से इनके यहाँ विवाहादि शुभ कर्म्मों, तथा शोकसमय शोकसंमिलन तथा पगड़ी बँधवाने के हेतु, स्वयं काशिराज उपस्थित होते हैं। यह मान इस वंश को अब तक प्रतिष्ठापूर्वक प्राप्त है। सेठ गोकुलचंद के और कोई संतान न होने के कारण बाबू फतहचंद उनके भी उत्तराधिकारी हुए*।

---

* ये हनुमान जी के बड़े भक्त थे। प्रति मंगलवार को काशी भदैनी हनुमानघाट वाले बड़े हनुमान जी के दर्शन को जाया करते थे। काशी में बड़े हनुमान जी का मंदिर परम प्राचीन और प्रसिद्ध है। यहाँ केवल एक विशाल प्रस्तरमूर्त्ति हनुमान जी की है। एक दिन इन्हे जो प्रसाद मे माला मिली वह पहिरे हुए घर चले आए। यहाँ आकर जो माला उतारी तो उसमे से एक हनुमानजी की स्वर्णप्रतिमा छोटी सी अंगुष्ठ प्रमाण गिर पड़ी। उसी समय से इस प्रतिमा की सेवा बड़ी भक्ति से होने लगी और अब तक इस वंश में कुलदेव यही महावीर जी हैं। यह मूर्त्ति साधारण हनुमान जी की भाँति नहीं है, वरंच बिलकुल वानराकृति है और एक हाथ में लड्डू लिए हुए है।

फारसी मे एक ग्रंथ ता. २८ सफर सन् १२५४ हिज्री का लिखा है जिसमे गवर्नर-जेनरल की ओर से प्रधान राजा महाराजा और रईसों को जैसे कागज और जिस प्रशस्ति से पत्र लिखा जाता था उसका संग्रह है उसमे इनकी प्रशस्ति यो लिखी है ।

بابو فتح چند ساهب—بابو صاحب مهرباں دوستاں سلامت
خاتمه—کاغذ افساں مهر خورد

अर्थात् बाबू साहब मेहरबान दोस्तान सलामत (अंत) विशेष —कागज़ सोनहले छिड़काव का छोटी मोहर

बाबू फतहचद ने अँगरेजो को राज्यादि के प्रबंध करने मे बहुत कुछ सहायता दी थी । सुप्रसिद्ध "दवामी बंदोवस्त" के समय डकन साहब ने इनकी सहायता का पूर्ण धयवाद दिया है । इनके काशी आ बसने के कुछ काल उपरांत इनके बड़े भाई राय रत्नचद बहादुर भी मुर्शिदाबाद से यहाँ ही चले आए । उनके साथ डका, निशान, सतरी का पहरा, माही मरातिब नकीब आदि रियासत के पूरे ठाठ थे ।

राय रत्नचद बहादुर ने रामकटोरेवाले बाग मे आकर निवास किया । वहाँ इनके श्रीठाकुर जी, जिनका नाम श्री लालजी है, अब तक वर्तमान हैं । यही बाग काशी जी मे इस वश का पहला स्थान समझा जाता है तथा अब तक प्रत्येक विवाह और पुत्रोत्सव के पीछे डीह डीहवार (गृह देवता) की पूजा यही होती है । प्रतीत होता है कि ये उस समय तक श्रीसंप्रदाय के अनुयायी थे, क्योंकि ठाकुर जी की मूर्ति तथा सामने गरुडस्तभ और मंदिर के ऊपर चक्र-स्थापन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत है । इस वश मे "नकीब" की प्रथा बाबू गोपालचद तक थी । बाबू फतहचद का व्यवहार देन लेन का था ।

बाबू हर्षचंद

बाबू फतहचंद के एकमात्र पुत्र बाबू हर्षचंद हुए। ये काशी मे काले हर्षचंद के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनके प्रशसनीय गुणानुवाद अब तक साधारण जन तथा स्त्रियाँ ग्राम्यगीतो में गाया करती हैं।

बाबू हर्षचंद के बाल्यकाल ही मे इनके पूजनीय पिता ने परलोक प्राप्त किया। लोगों ने इनकी उमग का अच्छा अवसर उपस्थित देख इन्हे राय रत्नचद बहादुर से लडा दिया। परतु ज्योंही इन्होने धूर्त्तों की धूर्त्तता समझी, चट पितृव्य के पावो पर जा गिरे और अपराध क्षमा कराकर प्रेमपल्लव को प्रवर्धित किया। राय रत्नचंद के बेटे बाबू रायचंद निस्संतान मरे। इससे उनकी भी सपूर्ण संपत्ति के उत्तराधिकारी ये ही हुए।

इनका सम्मान काशी मे कैसा था इसी से समझ लीजिए कि, सन् १८४२ मे गवर्न्मेंट ने आज्ञा दी कि काशी की प्राचीन तौल की पंसेरियाँ उठा कर अँगरेजी पंसेरी जारी हो। काशी के लोग बिगड़ गये और हरताल कर दी, तीन दिन तक हरताल रही; अंत मे उस समय के प्रसिद्ध कमिश्नर गबिंस साहब ने बाबू हर्षचंद (सरपंच), बाबू जानकीदास और बाबू हरीदास साहू को पच माना। काशी के लोगों ने भी इसे स्वीकार किया। बाग सुंदर-दास में बड़ी भारी पंचायत हुई और अंत में यही फैसला हुआ कि तिलोचन आदि की पंसेरियाँ ज्यों की त्योंही जारी रहे। गबिंस साहब भी इससे सम्मत हुए और नगर मे जय जयकार हो गया। इस बात के देखनेवाले अब तक जीवित हैं कि जिस समय पुरानी पंसेरियों के जारी रहने की आज्ञा लेकर उक्त तीनो महाशय हाथी पर सवार होकर चले, बीच मे बाबू हर्षचंद बैठे थे, मोरछल होता

था, बाजे बजते थे, सारे शहर की खिलकत साथ थी और स्त्रियाँ खिड़कियों से पुष्पवर्षा करती थी, तथा इस सवारी को लोगों ने इसी शोभा के साथ नगर मे घुमाया था।

बुढ़वामगल के प्रसिद्ध मेले को उन्नति देनेवाले यही थे। पहले लोग वर्ष के अतिम मंगल को, जिसे बूढ़ा मगल कहते थे, दुर्गाजी के दर्शनों को नाव पर सवार होकर जाया करते थे। धीरे धीरे उन नावों पर नाच भी कराने लगे और अंत मे बाबू हर्षचंद तथा काशिराज के परामर्शानुसार बुढवामगल का वर्तमान रूप हुआ और मेला चार दिन तक रहने लगा। मैंने कई बेर काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर को भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र से कहते सुना है कि इस मेले का दूलह तो तुम्हारा ही वश है। इनके यहाँ बुढ़वामगल का कच्छा बडी ही तैयारी के साथ पटता था और बड़े ही मर्यादापूर्वक प्रबंध होता था। बिरादरी मे नाई का नेवता फिरता था और सब लोग गुलाबी पगडी और दुपट्टे तथा लडको को गुलाबी टोपी दुपट्टे पहिनाकर ले जाते थे। नौकर आदि भी गुलाबी ही पगडी दुपट्टे पहिनते थे। जिनके पास न होता उनको यहाँ से मिलता। गंगाजी के पार रेत मे हलवाईखाना बैठ जाता और चारों दिन वही बिरादरी की जेवनार होती। काशिराज हर साल मोरपंखी पर सवार हो इनके कच्छे की शोभा देखने आते। यह प्रथा ठीक इसी रीति पर बाबू गोपालचद्र के समय तक जारी रही।

ये काशिराज के महाजन थे तथा और बहुतेरे प्रबंध उस रियासत के इनके सुपुर्द थे। राज्य की अशर्फियाँ इनके यहाँ रहती थीं और उनकी अगोरवाई मिलती थी। काशिराज इन्हें बहुत ही मानते थे, राजकीय कामों मे प्राय. इनकी सलाह लिया करते थे।

बुढ़वामंगल की भाँति होली का उत्सव भी धूम धाम से होता और बिरादरी की जेवनार, महफिल होती। वर्ष मे अपने तथा बाबू गोपालचंद्र के जन्मदिवस को भी ये महफिल जेवनार करते।

बिरादरी में इनका ऐसा मान्य था कि लोग बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिको के रहते भी इन्हे अपना चौधरी मानते थे और यह प्रतिष्ठा इस वंश को आज तक प्राप्त है।

चौखम्भास्थित अपने प्रसिद्ध भवन मे इन्होंने ही सुंदर दीवानखाना बनवाया था। सुनते हैं कुछ ऐसा विवाद उस समय उपस्थित हो गया था कि जिसके कारण इस बड़े दीवानखाने की एक मंजिल इन्होंने एक रात्रि मे तैयार कराई थी।

उस समय इनकी सवारी प्रसिद्ध थी। जब ये घर के बाहर कहीं जाते, बिना जामा और पगडी पहिने न जाते, तामजाम पर सवार होकर जाते, नकीब बोलता जाता। आसा, बल्लम, छडी, तलवार, बंदूक आदि बाँधे पचास साठ सिपाही साथ मे होते। यह प्रथा कुछ कुछ बाबू गोपालचंद्र तक थी।

ये गोस्वामी श्री गिरिधरजी महाराज के शिष्य हुए। श्री गिरिधरजी महाराज की विद्वत्ता तथा अलौकिक चमत्कार शक्ति लोकप्रसिद्ध है। श्री गिरिधरजी महाराज इन पर बहुत ही स्नेह रखते थे, यहाँ तक कि इनकी बेटी श्रीश्यामा बेटी जी इन्हे भाई के तुल्य मानती और भाईदूज को तिलक काढ़ती थीं। जिस समय श्री गिरिधरजी महाराज श्रीजी द्वार से श्री मुकुंदराय जी को पधराकर काशी लाए, सब प्रबंध इन्हीं को सौंपा गया था। बड़ी धूम धाम से बारात सजा कर श्री मुकुंदरायजी को नगर के बाहर से पधरा लाए थे। इसका सविस्तर वर्णन उक्त महाराज की लिखाई "श्री मुकुंदराय जी की वार्ता" मे है। जब कभी महाराज बाहर पधारते,

मदिर इन्ही के सुपुर्द कर जाते। उक्त महाराज तथा श्रीश्यामा बेटी जी के लिखे मुख्तारनामा आम इनके तथा बाबू गोपालचद्र जी के नाम के अब तक रक्षित हैं।

इन्होने उक्त महाराज की आज्ञा से अपने घर मे श्री वल्लभकुल के प्रथानुसार ठाकुरजी की सेवा पधराई और उनके भोग राग का प्रबध राजसी ठाठ से किया। ठाकुरजी की परम मनोहर मूर्ति, युगल जोड़ी, धातु विग्रह है, तथा नाम "श्री मदन मोहन जी" है। वर्तमान शैली से सेवा होते हुए ८५ वर्ष से अधिक हुआ, परतु सुनते हैं कि ठाकुर जी और भी प्राचीन हैं। पहले इनकी सेवा गोकुलचद्र साह के यहाँ होती थी। बाबू हरिश्चद्र और बाबू गोकुलचद्र मे जिस समय हिस्सा हुआ, उस समय एक बाग, बडा मकान, एक बडा ग्राम माफी और पचास हजार रुपया ठाकुर जी के हिस्से मे अलग कर दिया गया और ठाकुर जी का महा प्रसाद नित्य ब्राह्मण वैष्णव तथा सद्गृहस्थ लेते है।

इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम चम्पतराय अमीन की बेटी से। चम्पतराय का उस समय बडा जमाना था। सुनते हैं कि वे इतने बडे आदमी थे कि सोने के थाल मे भोजन करते थे। जिस समय चम्पतराय की बेटी ब्याह कर आईं तो यहाँ उन्हें मामूली बर्तन बर्तने पड़े। इस पर उन्होने कहा "हाय, अब हमको इन बर्तनो मे खाना पड़ेगा"। अब एक चम्पतराय अमीन के बाग के अतिरिक्त और कोई चिह्न इनका नही है। इनसे बाबू हर्षचंद को कोई संतान नही हुई। दूसरा विवाह इनका बाबू वृंदावनदास की कन्या श्यामा बीबी से हुआ। इन्ही से इनको पाँच संतान हुईं, जिनमे से दो कन्या तो बचपन ही मे मर गईं, शेष तीन का वश चला। यह बाबू वृंदावनदास भी उस समय के बड़े धनिकों मे थे,

परंतु पीछे इनका भी वह समय न रहा। इनके दो बाग थे, एक मौजा कोल्हुआ पर और दूसरा महल्ला नाटीइमली पर। ये दोनो बाग बाबू हर्षचद को मिले। बाबू वृंदावनदास को हनुमान जी का बड़ा इष्ट था। इनके स्थापित हनुमान जी अब तक नाटीइमली के बाग मे हैं।

एक समय श्री गिरिधरजी महाराज को चालीस सहस्र रुपए की आवश्यकता हुई। उन्होने बाबू हर्षचद से कहा कि इसका प्रबध कर दो। उन्होने कहा महाराज इस समय इतना रुपया तो प्रस्तुत नही है। कोल्हुआ और नाटीइमली का बाग मैं भेट कर देता हूँ, इसे बेच कर काम चला लीजिए। श्री महाराज का ऐसा प्रताप था कि एक कोल्हुआ का बाग चालीस हजार मे बिक गया और नाटीइमली का बाग बच गया। इस बाग का नाम महाराज ने मुकुंदविलास रक्खा। यह अद्यावधि मंदिर के अधिकार मे है और काशी के प्रसिद्ध बागों मे एक है। इस वश से इस बाग से अब तक इतना सम्बन्ध शेप है कि काशी के प्रसिद्ध भरतमिलाप के मेले मे इसी बाग के एक कमरे मे बैठ कर इस वंश के लोग भगवान् का दर्शन करते हैं और इसमे भगवान् का विमान ठहरता है, तथा इस वंशवाले जाकर पूजा आरती करते, भोग लगाते और १) भेट करते हैं। दो दिन और भी श्रीरामचंद्र जी की पहुनई होती है। एक दिन बाग रामकटोरा मे और एक दिन चौकाघाट पर जिस दिन हनुमान जी से भेट होती है।

यहाँ पर इस रामलीला का संक्षिप्त इतिहास लिख देना भी हम उचित समझते हैं। जब काशी मे जगल बहुत था (बनकटी के समय), उस समय यहाँ एक मेघा भगत रहते थे। उन्हे श्री भगवान् के दर्शन की बड़ी लालसा हुई। उन्होने अनशन व्रत लिया।

एक दिन रामचंद्र जी ने स्वप्न मे आज्ञा दी कि इस कलियुग मे इस चाक्षुष जगत मे हमारा प्रत्यक्ष दर्शन नही हो सकता। तुम हमारी लीला का अनुकरण करो। उसमे दर्शन होगा, तथा धनुष बाण वहाँ प्रत्यक्ष छोड़ गए, जिसकी पूजा अब तक होती है। मेघा भगत ने लीला आरम्भ की और उनकी मनोवासना पूरी हुई। यह लीला चित्रकूट की लीला के नाम से प्रसिद्ध हुई। जिस दिन श्री रामचंद्र की झलक मेघा भगत को झलकी थी, वह भरतमिलाप का दिन था और तभी से यह दिन परम पुनीत समझा गया, तथा अब तक लोगो का विश्वास है कि उस दिन रामचद्र जी की झलक आ जाती है। इस लीला के पीछे गोस्वामी तुलसीदास जी ने लीला आरम्भ की, जो अब अस्सी पर तुलसीदासजी के घाट पर होती है, और उसके पीछे लाट भैरो की लीला आरम्भ हुई। इस लाट भैरो की लीला मे 'नककटैया' (शूर्पनखा की नाक काटने की लीला) मसजिद के भीतर होती है, जो मुसलमानों की अमलदारी से चली आती है, और प्राय. जिसके लिये काशी मे हिंदू मुसलमानों मे झगडा हुआ है। निदान मेरी समझ मे रामलीला की प्रथा सर्वप्रथम संसार मे मेघा भगत ने आरम्भ की। इस लीला की यहाँ प्रतिष्ठा बहुत ही अधिक है। सब महाजन लोग इसमे चिट्ठा भरते हैं और प्रतिष्ठित लोग बिना कुछ लिए सब सेवा करते हैं। इस चिट्ठे का आरम्भ पहले बाबू जानकीदास और उक्त बाबू हर्षचंद के वशवाले करते हैं और फिर नगर के सब महाजन यथाशक्ति लिखते हैं। पहले तो विजया दशमी के दिन यहाँ के बड़े बड़े महाजन, रात्रि को जब विमान उठता था, जामा पगड़ी पहिर कर कन्धा लगाते थे। अब तक भी बहुत लोग कन्धा देते हैं। विजया दशमी और भरत-मिलाप मे अब तक प्राचीन मर्यादावाले लोग पगड़ी पहिन

कर दर्शन को जाते हैं। भरतमिलाप यहाँ के प्रसिद्ध मेलों मे है। सारा शहर सूना हो जाता है और भरतमिलाप के स्थान से लेकर 'अयोध्या' तक, जिसमें लगभग आधो मील का अंतर होगा, मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते हैं। भरतमिलाप ठीक गोधूली के समय होता है। इस दिन दर्शनों के लिये काशिराज भी आया करते हैं।

सुनते हैं, एक समय किसी अँगरेज हाकिम ने कहा कि हनुमान जी तो समुद्र पार कूद गए थे, तब हम जानें जब तुम्हारे हनुमान जी वरुणा नदी पार कूद जायँ। हनुमान जी चट कूद गए, परतु उस पार जाते ही उनका प्राणांत हो गया। उस अँगरेज की सार्टि-फिकेट अब तक महंत के पास है।

बाबू हरिकृष्णदास टकमाली ने अपने ग्रथ "गिरिधर चरितामृत" मे उनका चरित्र वर्णन करते समय लिखा है कि ये कविता भी करते थे, परंतु अब तक इनकी कविता हम लोगों के देखने मे नहीं आई।

इनका स्वभाव बडा ही अमीरी और नाजुक था, जनाने मर्दाने सब घरों मे फौवारे बने थे। गर्मियों मे जहाँ वह बैठते, फौवारे छूटा करते। एक दिन बाबू जानकीदास ने कहा कि आप बीमा का रोज-गार क्यों नहीं करते, यह बिना गुठली का मेवा है। इन्होंने उत्तर दिया "सुनिए बाबू साहब, हम ठहरे आनंदी जीव, अपनी जान को बखेड़े मे कौन फँसावे, सावन भादों की अँधेरी रात मे आनंद से सोए हैं, पानी बरस रहा है, हवा के झोंके आ रहे हैं, उस समय ध्यान आया नावों का, प्राण सूख गया, बिचारा इस समय हमारी दस नावें गंगाजी में हैं, कहीं एक भी डूबी तो दस हजार की ठुकी, चलो सब आनंद मिट्टी हुआ"।

जौनपुर के राजा शिवलाल दूबे से इनसे बहुत ही स्नेह था, नित्य मिलने और हवा खाने जाने का नियम था।

सन् १८६० ई० मे गवर्मेंट ने इनकम टैक्स लगाया था और काशी से सवा लाख रुपया वसूल करने की आज्ञा दी थी। इसके प्रबंध के लिये एक कमिटी बनाई गई थी जिसका प्रबंध इनके हाथ मे था।

गोपालमदिर के दोनों नकारखाने इन्हीं के यहाँ से बने हैं। एक तो बाबू गोपालचद्र के जन्म पर बना था और दूसरा बाबू हरिश्चन्द्र के जन्म पर।

हम श्री मुकुंदरायजी के मंदिर तथा श्री गिरिधर जी महाराज के विषय मे ऊपर लिख चुके हैं परतु कुछ आवश्यक बाते और भी लिखने को रह गई हैं।

जिस समय मदिर बनकर तैयार हुआ और श्री मुकुंदरायजी यहाँ पधारे, यहाँ के महाजनों ने, जिनमे ये प्रधान थे, विचार किया कि इस मदिर के व्यय-निर्वाहार्थ कुछ प्रबंध होना चाहिए। सभो ने सम्मति करके एक चिट्ठा खडा किया और सवा पाँच आना सैकडा मंदिर सब व्यापारी काटने लगे। यह कमखाब बाफता आदि यावत् बनारसी कपडे, गोटे पट्टे और जवाहिरात इत्यादि पर कटता था। यह चिट्ठा बहुत दिनों तक चलता रहा और हिंदू मुसलमान सभी व्यापारी इसे देते रहे परंतु श्री गिरिधर जी महाराज के पोछे यह शिथिल हो चला है। अब तक सवा पाँच आने सैकड़े सब व्यापारी काट तो लेते हैं परंतु कोई मदिर मे देता है, कोई नहीं और कोई उसे दूसरे ही धर्मार्थ कार्य मे लगा देता है।

श्री गिरिधर जी महाराज का ऐसा शुद्ध चरित्र और चमत्कार था कि काशी ऐसी शैव नगरी मे उन्हीं का प्रताप था जो वैष्णवता की जड़ जमी और इस मंदिर की इतनी उन्नति बिना किसी राज्याश्रय के हुई, परंतु इनका स्वभाव इतना सादा था कि आत्मोत्कर्ष और आत्मसुख की ओर इनका तनिक भी ध्यान न था।

बाबू हर्षचंद्र ने बहुत तरह से निवेदन किया कि जैसे श्री वल्लभकुल के अन्यान्य प्रतापी गोस्वामी बालकों का जन्मदिनोत्सव होता है वैसे ही आपका भी हो, परंतु महाराज इसे स्वीकार नहीं करते थे। जब बहुत दिनों तक यह आग्रह करते रहे तब महाराज ने स्वीकार किया परंतु इस प्रतिबंध के साथ कि इस उत्सव पर हम मंदिर से कुछ व्यय न करेंगे। निदान पौष कृष्ण तृतीया को महाराज के जन्मदिन का उत्सव होने लगा, श्री गोपाल लाल जी, श्री मुकुंदराय जी तथा श्री गोपीनाथ जी का साठन का बागा (वस्त्र) श्री गिरिधर जी महाराज का बागा सब यहीं से जाता और वहीं धराया जाता, तथा महाराज के केसर स्नान मे भोग, निछावर, आरता तथा भेट आदि इन्हीं की ओर से होता है। अब यह उत्सव श्री मुकुंदराय जी के घर के सब सेवक मानते हैं।

सन् १८३४ ई० में गवर्मेंट की ओर से महाजनों से व्यापार की अवस्था और सोना चाँदी की बिक्री की कमी का कारण पूछा गया था। उन प्रश्नों का जो उत्तर बाबू हर्षचंद्र ने दिया था, वह पुराने कागज़ों मे मुझे मिला। उससे देश-दशा का ज्ञान होता है इसलिये उसका अनुवाद यहाँ प्रकाशित करता हूँ।

१ प्रश्न—सन् १८१९ से चाँदी और सोने की खरीद कम हुई है या अधिक और इसका कारण क्या है?

उत्तर—सन् १८१९ से चाँदी और सोने की खरीद बहुत कम हो गई है। चाँदी की खरीद में कमी का कारण यह है कि जब बनारस मे टकसाल जारी थी, चाँदी का लेन देन जारी था, इससे भाव भी उसका महँगा था और जब से टकसाल बंद हुई तब से इसकी बिक्री कम हो गई इससे भाव भी गिर गया।

सोने की खरीद कम होने का कारण यह है कि उस समय इस प्रांत के लोग सुखी थे और देहाती लोग भी बडा लाभ उठाते थे इसलिये सोने की बाहरी खरीदारी अधिक होती थी और भाव भी महँगा था। और अब चारों ओर दरिद्रता फैल गई है तो सोने की खरीद कहाँ से हो ?

२प्रश्न—क्या कोई ऐसा दस्तूर नियत हुआ है जिससे चाँदी सोने का लेन देन कम होकर हुंडी और किसी दूसरे प्रकार का एवज मवावज. जारी हुआ है ?

उत्तर—सोने चाँदी के बदले मे कोई दस्तूर हुंडी का जारी नही हुआ है, व्यापार की कमी कि जिसका कारण चौथे प्रश्न के उत्तर मे लिखा जायगा और भाव के गिरने से यह कमी हुई है।

३प्रश्न—टकसाल बंद होने से बाहरी सोने चाँदी की आमदनी कम हो गई है या नही ?

उत्तर—टकसाल बंद हो जाने से एकबारगी बाहरी आमदनी सोने चाँदी की कम हो गई है।

४प्रश्न—इस बात पर विचार करके लिखिए कि सन् १८१३ व १८१४ से अब तक भाव हुंडियावन का बड़े बड़े देसावरों मे पर्ता फैलाने से कमी के कारण व्यापार मे अंतर पड़ा है, या सन् १८१८ व १८१९ मे सोने चाँदी की आमदनी की कमी से ?

उत्तर—सन् १८१३ से १८२० व १८२२ तक इस प्रांत के लोग बड़ा लाभ उठाते थे और हर तरह का रोजगार जारी था। और भाव हुंडियावन उस सन् से अब कम नहीं है। वरन् अधिक है, यद्यपि उन सनों मे बनारस के पुराने सिक्के की चलन थी जिसकी चाँदी मे बट्टा नही था। जबसे

फरुखाबादी सिक्का चला उसके बट्टा के कारण हुंडियावन का भाव हर देसावर मे बढ़ गया। हाँ, इन दिनों अवश्य फरुखाबादी सिक्का जारी रहने पर भी भाव हुंडियावन गिर गया है। रोजगार की कमी के कारण नीचे निवेदन करता हूँ।

१—परम उपकारी कंपनी बहादुर की सरकार से कि जो उपकार का भडार और प्रजा-पोषण की खानि है सूद की कमी हो गई कि सन् १८१० तक सब लोग सर्कार मे रुपया जमा करके छ रुपया सैकड़ा वार्षिक सूद लेते थे अब पॉच रुपया से होते होते चार रुपए तक नौबत पहुँच गई। प्रजा का काम कैसे चले ?

२—अँगरेज साहबों के कारबार बिगड़ जाने से, कि जिनकी ओर से हर जिले मे नील की बडी खेती होती थी और उससे जमींदारों को बडा लाभ होता था, जमीदारो को कष्ट है और खेती पडी रह गई।

३—अदालत के अप्रबंध और रुपए के वसूल होने में अदालत के डर के कारण कारबार देन लेन महाजनी कि जिससे सूद का अच्छा लाभ था एकदम बंद हो गया।

४—साहब लोगों के बहुत से हाउस बिगड़ जाने से बहुतेरे हिंदुस्तानियों के काम, लाखों पया मारे जाने के कारण, बंद हो जाने से दूसरा काम भी नहीं कर सकते।

५—विलायत से, असबाब आने और सस्ता बिकने के कारण यहाँ के कारीगरों का सब काम बंद और तबाह हो गया।

६—सर्कार की ओर से, इस कारण से कि विलायत मे रुई पैदा न हुई, यहाँ से रुई की खरीद हुई इससे भी कुछ लाभ था पर वह भी बंद हो गया।

इन्ही कारणों से रोजगार मे कमी हो गई है।

५ प्रश्न—चलन के रुपया के रोजगार के काम मे आमदनी कलकत्ता से होती है या नही? यदि होती है तो उसका खर्च अनुकूल और प्रतिकूल समय मे क्या पड़ता है?

उत्तर—कलकत्ता से बहुत रुपया चलान नही आता और यदि कुछ रुपया आता है तो लाभ नही होता वरंच बीमा और सूद की हानि के कारण घाटा पडता है इसी से रुपए के बदले मे हुंडो का आना जाना जारी है।

द० बाबू हर्षचद्र

ता० २९ जूलाई सन् १८३४

एक बेर यह श्री जगन्नाथ जी के दर्शन को पुरी गए थे। तब तक रेल नही चली थो, अतएव खुशकी के रास्ते गए थे। बंगाल के प्रसिद्ध लाला बाबू* से इनके वंश से, मुर्शिदाबाद ही से, बहुत

---

* इस वंश के अधिष्ठाता दीवान गगागोविंद सिंह थे जो कि वारेन हेस्टिंग्ज के बनियाँ थे और बड़ी संपत्ति छोड मरे थे। बंगाल मे ये पाइक-पाडा के राजा के नाम से प्रसिद्ध है। परंतु इनका मुख्य वासस्थान मौजा काँदी जिला मुर्शिदाबाद है। इन्होने अपनी माता के श्राद्ध मे २० लाख रुपया व्यय किया था और उसमें समग्र बगाल के राजा महाराजा आए थे। ऐसा श्राद्ध कभी नहीं हुआ था। इनके वंश मे राजा कृष्णचद्र सिह, प्रसिद्ध नाम लाला बाबू, हुए। उन्होने अपने राज्यैश्वर्य को छोड़कर श्री वृंदावन में वास किया। वहाँ वे मधुकरी माँगकर खाते थे। इन्होंने श्री ठाकुरजी का मंदिर और वैभव काँदी और श्री वृंदावन मे बहुत बढ़ाया (See Growse's Mathura)। इनके विषय मे भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी अपने उत्तरार्द्ध भक्तमाल में लिखते हैं—

लाला बाबू बंगाल के वृंदावन निबसत रहे।
छोड़ि सकल धन धाम वास ब्रज को जिन लीनो॥

संबंध था। एक दिन ये उनके यहाँ मेहमान हुए। वहाँ इनके ठाकुर श्री कृष्णचंद्र जी का बहुत भारी मंदिर और वैभव है। सुना है कि इनके पहुँचते ही उनकी ओर से श्री ठाकुर जी का बालभोग महाप्रसाद आया जो कि सौ चाँदी के थालो मे था। सब प्रसाद फलाहारी था और एक सौ ब्राह्मण लाए थे, जो सबके सब एक ही रंग का पीतांबर उपरना पहिरे हुए थे।

इनका नाम तैलग देश मे बहुत प्रसिद्ध है। जो बडा दीवानखाना इन्होने बनवाया, उसके ऊपर एक छोटा मदिर भी श्री ठाकुर जी का है। उस पर स्वर्णकलश लगे हुए हैं। उसी से सारे तैलग देश मे इनका नाम नवकोटि नारायण* नाम से प्रसिद्ध हो गया है और यावत् तैलंगी लोग इस कलश के दर्शनार्थ आते और हाथ जोड़ जाते हैं। यह बात काशी के यावत् यात्रावालो को विदित है; जहाँ उन्होने नवकोटि नारायण का नाम लिया, वह यहाँ ले आए।

बाबू हर्षचंद्र एक वसीयतनामा लिख गए थे जिसके द्वारा कोठी के प्रबंध का भार बिजीलाल को सौंप गए थे। बाबू गोपालचद्र की अवस्था उस समय केवल ११ वर्ष की थी। बिजीलाल प्रबंध

माँगि माँगि मधुकरी उदर पूरन नित कीनो।
हरि-मंदिर अति रुचिर बहुत धन दै बनवायो॥
साधु संत के हेत अन्न को सत्र चलायो।
जिनकी मृत देहहु सब लखत ब्रज रज लोटत फल लहे॥

* तैलंग देश में कोई नवकोटि नारायण बडे धनिक हो गए है। इन्हे वहाँ के लोग एक अवतार मानते है और इनके विषय मे नाना किवदंतियाँ उस देश मे प्रसिद्ध है। इनका पूरा इतिहास Indian Antiquary में छपा है।

करने लगे परंतु प्रबंध संतोषदायक न हो सका और उस समय जैसी कुछ क्षति इस घर की हुई वह अकथनीय है। उस समय काशी के रईसो मे बड़ा मेल था। बाबू वृंदावनदास (बाबू गोपालचद्र के मातामह) ने राय खिरोधर लाल की सहायता से कोठो मे ताला बद कर दिया और अदालत मे कोठी के प्रबंध के लिये दर्खास्त दी परतु वसीयतनामा के कारण ये लोग हार गए और प्रबंध बिजीलाल ही के हाथ मे रहा। इस समय कोठी की बहुत कुछ हानि हुई तथा और भी अधिक होती परतु बाबू गोपालचद्र की बुद्धि चमत्कारिणी थी। उन्होंने १३ वर्ष की ही अवस्था मे अपना कार्य आप सँभाल लिया और फिर किसी की कुछ न गलने पाई।

बाबू गोपालचंद्र

बाबू हर्षचंद्र की बड़ी अवस्था हो गई और कोई पुत्र सतान न हुई। एक दिन यह श्री गिरिधर जी महाराज के पास बैठे हुए थे। महाराज ने पूछा बाबू, आज तुम उदास क्यों हो ? लोगों ने कहा कि इनकी इतनी अवस्था हुई, परंतु कोई सतान न हुई, वंश कैसे चलेगा, इसी की चिता इन्हे है। महाराज ने आज्ञा की कि तुम जी छोटा न करो। इसी वर्ष तुम्हे पुत्र होगा। और ऐसा ही हुआ। मिती पौष कृष्ण १५, सवत् १८९० को कविकुल-चूड़ामणि बाबू गोपालचंद्र का जन्म हुआ। केवल श्री गिरिधर जी महाराज की कृपा से जन्म पाने और उनके चरणारविंदों मे अटल भक्ति होने के कारण ही इन्होने कविता मे अपना नाम गिरिधरदास रखा था।

विवाह

बाबू हर्षचंद्र को एक पुत्र के अतिरिक्त दो कन्या भी हुईं, बड़ी का नाम यमुना बीबी (जन्म भादों ब० ८, सं० १८९२) और छोटी गंगा बीबी (जन्म भादों ब० ४ स० १८९४)

बाबू हर्षचंद्र ने अपनी तीन संतानों में से दो का विवाह अपने हाथों किया। पहले यमुना बीबी का पीछे बाबू गोपालचंद्र का। गंगा बीबी का विवाह बाबू गोपालचंद्र के समय में हुआ।

यमुना बीबी का विवाह काशी के प्रसिद्ध रईस, राजा पट्टनीमल बहादुर के पौत्र राय नृसिंहदास से हुआ। राजा पट्टनीमल, पटने के महाराज ख्यालीराम बहादुर के पौत्र थे। यह महाराज ख्यालीराम बिहार के नायब सूबेदार थे। इनका सविस्तर वृत्तांत बंगाल और बिहार के इतिहासों में मिलता है। राजा पट्टनीमल ऐसे प्रतापी हुए कि ये छोटी ही अवस्था में पिता से कुछ अप्रसन्न होकर चले आए और फिर लखनऊ गए। वहाँ उस समय अँगरेज गवर्मेंट से और नवाब लखनऊ से सुलह की शर्तें तै हो रही थीं। परंतु नवाब के चालाक अनुचरवर्ग कभी कुछ कह देते, कभी कुछ; किसी तरह बात तै न होने पाती। निदान उन शर्तों को तै करने के लिये राजा पट्टनीमल नियत किए गए। इन्होंने पहले ही यह नियम किया कि हम जुबानी कोई बात न करेंगे, जो कुछ हो लिखकर तै हो। अब तो कोई कला उन लोगों की न चलने लगी। नवाब की ओर से राजा साहब के उस्ताद मौलवी साहब भेजे गए। राजा साहब ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और पूछा क्या आज्ञा है। मौलवी साहब ने एक लाख रुपए की अशर्फियाँ राजा साहब के आगे रख दीं और कहा कि आप नवाब पर रहम करें। हिंदू मुसलमान तो एक ही हैं, ये फरंगी परदेसी

हमारे कौन होते हैं। सुलहनामे मे नवाब के लाभ की ओर विशेष ध्यान रखें, अथवा आप इस काम से अलग ही हो जायँ। राजा साहब ने बहुत ही अदब के साथ निवेदन किया कि आप उस्ताद हैं, आपको उचित है कि यदि मैं कोई अनुचित कार्य करूँ तो मुझे ताडना दे, न कि आप स्वय ऐसा उपदेश दें। यह सेवकधर्म-विरुद्ध काम मुझसे कभी न होगा और देशी तथा विदेशी क्या, हमारे लिये तो जब विदेशी की सेवा स्वीकार कर ली, तो फिर वह लाख देशियो से बढकर है। निदान मौलवी साहब मुँह ऐसा मुँह लेकर चले आए। कहते हैं कि राजा साहब को आगरे के किले से बहुत धन मिला, जिसका ठीका उन्होने राय ज्योतिप्रसाद ठीकेदार के साझे मे लिया था। उन्होने मथुरा वृंदावन मे दीर्घविष्णु का मदिर, शिव तालाब कुंज आदि (See Growse's Mathura), आगरे मे शीशमहल, पीली कोठी आदि, दिल्ली मे आलीशान मकानात, काशी मे कीर्त्तिवासेश्वर का मदिर, हरतीर्थ, कर्मनाशा का पुल आदि सैकड़ो ही कीर्ति के कामो के अतिरिक्त एक करोड की संपत्ति छोड़ी, और इनका पुस्तकालय तथा औषधालय भी बहुत प्रसिद्ध था (भारतेदु बाबू हरिश्चद्र लिखित "पुरावृत्तसग्रह" देखो)। हम राजा साहब के उदार हृदय का उदाहरण दिखाने के लिये केवल एक घटना का उल्लेख करके प्रकृत विषय का वर्णन करेगे. राजा साहब के मुख्तार बाबू बेनीप्रसाद राजा साहब के किसी कार्यवश कलकत्त गए थे। वहाँ लाख रुपए पर दस दस रुपए की चिट्ठी पड़ती थी। एक चिट्ठी इन्होने भी राजा साहब के नाम से डलवाई और राजा साहब को लिख दिया। राजा साहब ने उत्तर मे लिखा कि मैं जूआ नहीं खेलता, यह तुमने ठीक नहीं किया, खैर अब तुम इस रुपए को खर्च मे लिख दो। संयोगवश वह चिट्ठी राजा साहब के नाम ही

निकल आई और लाख रुपया मिला। बाबू बेनीप्रसाद ने फिर राजा साहब को लिखा। राजा साहब ने उत्तर मे लिखा कि हम पहले ही लिख चुके हैं कि हम जूआ नहीं खेलते, अतएव हम जूए का रुपया न लेंगे, तुम्हारा जो जी चाहे करो। उसी रुपए के कारण उक्त बाबू बेनीप्रसाद के वंशधर काशी मे बड़े गृह और जमींदारी के स्वामी हैं। इस विवाह मे राजा साहब जीवित थे। सुना है कि बड़ी धूम से विवाह हुआ था और बड़ी ही शोभा हुई थी।

यमुना बीबी को कई संतति हुईं, परंतु कोई भी न जीई। इससे अंत मे राय प्रह्लाददास और उनकी कनिष्ठा भगिनी सुभद्रा बीबी अपने ननिहाल मे पले। राय प्रह्लाददास इस समय काशी मे आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। ननिहाल के ससर्ग से इनकी रुचि सस्कृत की ओर अधिक हुई और ये अच्छी संस्कृत जानते हैं। सुभद्रा बीबी का विवाह काशी के सुप्रसिद्ध धनिक साहु गोपालदास के वशज बाबू वैद्यनाथप्रसाद के साथ हुआ था। परतु अब वे दोनों ही पति पत्नी जीवित नहीं है। केवल उनके पुत्र बाबू यदुनाथप्रसाद उनके उत्तराधिकारी हैं।

गंगा बीबी का विवाह प्रबंधलेखक के पिता बाबू कल्यानदास के साथ हुआ। यह विवाह बाबू गोपालचद्र जी ने किया था। इन्हे दो पुत्र और एक कन्या हुई। ज्येष्ठ पुत्र जीवनदास का बचपन ही मे परलोकवास हुआ। कन्या लक्ष्मीदेवी का विवाह बाबू दामोदरदास बी० ए० के साथ हुआ था जो कि नि सतान ही मर गईं। तीसरा पुत्र इस प्रबंध का लेखक है।

बाबू गोपालचंद्र का विवाह दिल्ली के शाहजादो के दीवान राय खिरोधरलाल की कन्या पार्वती देवी से संवत् १९०० मे हुआ। राय खिरोधरलाल का वंश फारसी मे विशेष विद्वान् था और इन्हे

वंशपरंपरागत राय की पदवी दिल्ली दर्बार से प्राप्त थी। राय साहब को एक ही कन्या थी। इधर बाबू हर्षचंद्र को एक ही पुत्र। विवाह बडी धूमधाम से हुआ। बाबू हर्षचंद्र के चौखम्भास्थित घर से राय खिरोधरलाल का शिवालास्थित भवन तीन मील से कम नही है, परंतु बारात इतनी भारी निकली थी कि वर अपने घर ही था कि बारात का निशान समधी के घर पहुँचा, अर्थात् तीन मील लंबी बारात थी। राय साहब ने भी ऐसी खातिर की थी कि कूओ मे चीनी के बोरे छुड़वा दिए थे। यह विवाह काशी मे अब तक प्रसिद्ध है।

यह पार्वती देवी अत्यंत ही सुशीला थी। प्राचीन स्त्रियाँ इनके रूप और गुण की प्रशंसा करते नही अघाती। इन्हे चार सतति हुई। मुकुंदी बीबी, बाबू हरिश्चंद्र, बाबू गोकुलचंद्र और गोविंदी बीबी।

अपनी संतानों मे केवल बड़ी कन्या मुकुंदी बीबी का विवाह इन्होंने काशी के सुप्रसिद्ध रईस बाबू जानकीदास साहु के पुत्र बाबू महावीरप्रसाद के साथ, अपने सामने, किया था।

बाबू हरिश्चद्र का विवाह शिवाले के रईस लाला गुलाब राय की कन्या श्रीमती मन्नो देवी से, बाबू गोकुलचंद्र का विवाह बाबू हनुमानदास की कन्या श्रीमती मुकुंदी देवी से और श्रीमती गोविंदी बीबी का विवाह पटना के सुप्रसिद्ध नायब सूबा महाराज ख्यालीराम के वंशधर राय राधाकृष्ण राय बहादुर के साथ हुआ। इनके पुत्र राय गोपीकृष्ण बहुत ही योग्य और होनहार थे। बी० ए० पास किया था। २५ ही वर्ष की छोटी अवस्था मे गवर्मेंट और प्रजा के परम प्रीतिपात्र हो गए थे, परतु हाय! निर्दय काल ने इस खिलते हुए कमल को उखाड़ फेंका! इनकी असमय मृत्यु पर सारे पटने मे हाहाकार मच गया था। लेफ्टिनेट गवर्नर बंगाल

ने शोक प्रकाश किया और वृद्ध पिता राय राधाकृष्ण को आश्वासन देने के लिये वे स्वयं आए थे।

राय खिरोधरलाल को श्रीमती पार्वती देवी के अतिरिक्त और कोई सतति न थी इसलिये उनकी स्त्री श्रीमती नन्ही देवी ने दौहित्र बाबू गोकुलचंद्र को अपने पास रखा था और उन्हीं को अपनी संपत्ति का उत्तराधिकारी किया।

श्रीमती पार्वती देवी के मरने पर इनका दूसरा विवाह उसी वर्ष फाल्गुन सवत् १८१४ मे बाबू रामनारायण की कन्या मोहन बीबी से हुआ। मोहन बीबी से इन्हे दो सतान हुए। प्रथम पुत्र हुआ। नाम उसका श्यामचंद्र रखा गया था, परंतु तीन ही महीने का होकर मर गया। द्वितीय कन्या हुई जो कि प्रसूतिगृह मे ही मर गई मोहन बीबी की मृत्यु संवत् १८३८ के माघ कृष्ण १० को हुई।

बाबू हर्षचद्र का परलोकवास ४२ वर्ष की अवस्था मे संवत् १८०१, मिती बैसाख बदी १३, को हुआ। बाबू गोपालचद्र की अवस्था उस समय केवल ११ वर्ष ही की थी। कविता की कमनीय कांति का अनुराग बाबू गोपालचंद्र को बाल्यावस्था ही से था। इसी से आप लोग समझ लीजिए कि १३ ही वर्ष की अवस्था मे संवत् १८०३ मे बृहत् बाल्मीकीय रामायण का भाषा छंदोबद्ध अनुवाद इन्होंने किया, परंतु दुर्भाग्यवश अब इस अनुवाद का पता कहीं नही लगता है। केवल अस्तित्व के प्रमाण के लिये ही मानो "बाला-बोधिनी" में इसका एक अंश छपा है। हिंदी और संस्कृत की कविता इनकी प्रसिद्ध है। परंतु कभी कभी उर्दू की भी कविता करते थे। उन्होंने एक "गजल" मे लिखा है।

"दास गिरिधर तुम फकत हिदी पढ़े थे खूब सी,
किस लिये उर्दू के शायर मे गिने जाने लगे।"

शिक्षा और चरित्र

पाठक स्वय विचार सकते हैं कि इतने बडे धनिक के एकमात्र पुत्र सतान का लालन-पालन कितने लाड चाव से हुआ होगा और हमारे देश की स्थिति के अनुसार इनकी सी अवस्था के बालक, जिनके पिता भी बचपन ही मे परलोकगामी हुए हों, कैसे सुशिक्षित और सच्चरित्र हो सकते हैं। परतु आश्चर्य है कि इनके विषय मे सब विपरीत ही हुआ। इनका सा विद्वान् और सच्चरित्र ढूँढ़ने से कम मिलेगा। इसका कारण चाहे भगवत्कृपा समझिए, या ऋषितुल्य गुरु श्री गोस्वामी गिरिधर जी महाराज का आशीर्वाद, सहवास और शिक्षा। जो कुछ हो, इनकी प्रतिभा विलक्षण थी। नियमपूर्वक शिक्षा न होने पर भी संस्कृत और भाषा के ये ऐसे विद्वान थे कि पंडित लोग इनका आदर करते थे। चरित्र इनका ऐसा निर्मल था कि काशी के लोग इन्हे बहुत ही भक्तिभाव से देखते थे, यहाँ तक कि प्रसिद्ध कमिश्नर मिस्टर गबिंस ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा था कि "बाबू गोपालचंद्र परकटा फरिश्ता है"। सन् ५७ के बलवे मे रेजिडेसी के चाँदी सोने के असबाब आसा बल्लम आदि इन्हीं की कोठी मे रखे गए थे। क्रोध तो इन्हे कभी आता ही न था, पर जब कोई गोपालमंदिर आदि धर्मसंबंधी निंदा करता तो बिगड जाते। राय नृसिंहदास प्राय. चिढ़ाया करते थे। इनके विचार कैसे थे, यह पाठक पूज्य भारतेंदु-जी के निम्नलिखित वाक्यों से, जो उन्होंने 'नाटक' नामक ग्रंथ मे लिखे हैं, जान सकते हैं। "विशुद्ध नाटक रीति से पात्र-प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य चरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचद्र जी) का है। मेरे पिता ने बिना अँगरेजी शिक्षा पाए इधर क्यों दृष्टि

दी, यह बात आश्चर्य की नहीं है। उनके सब विचार परिष्कृत थे। बिना अँगरेजी की शिक्षा के भी उनको वर्तमान समय का स्वरूप भली भाँति विदित था। पहले तो धर्म ही के विषय मे वे इतने परिष्कृत थे कि वैष्णव व्रत पूर्ण के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उन्होने उठा दिया था। टामसन साहब लेफ्टिनेंट गवर्नर के समय काशी मे पहला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बडी बहिन को इन्होने उस स्कूल मे प्रकाश्य रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय मे बहुत कठिन था, क्योंकि इसमे बड़ी ही लोकनिंदा थी। हम लोगों को अँगरेजी शिक्षा दी। सिद्धांत यह कि उनकी सब बातें परिष्कृत थीं और उनको स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है। . . केवल २७ वर्ष की अवस्था मे मेरे पिता ने देहत्याग किया, किंतु इसी अवस्था मे ४० ग्रंथ बनाए।" विद्या की इन्हें ऐसी रुचि थी कि बहुत धन व्यय करके बृहत् सरस्वती भवन का संग्रह किया था जिसमे बड़े अलभ्य और अमूल्य ग्रंथो का संग्रह है। डाक्टर राजेंद्रलाल मित्र इस पुस्तकालय का मूल्य एक लाख रुपया दिलवाते थे। इन ग्रंथों का पहाड़ बनाकर उस पर सरस्वती देवी की मूर्ति स्थापन करके आश्विन शुक्ला सप्तमी से तीन दिन तक उत्सव करते थे जो अब तक होता है।

अपने चौखंभास्थित भवन मे इन्होंने एक पाई बाग श्री ठाकुर जी के निमित्त बहुत सुंदर बनवाया था।

बाग रामकटोरा के सामने सड़क पर रामकटोरा तालाब का जीर्णोद्धार बहुत रुपया लगाकर किया था। यह तालाब चारो ओर से पक्का बँधा है। पहले इसमे कटोरे की तरह पानी भरा रहता था पर अब म्यूनिसिपैलटी की कृपा से नल ऊँची हो जाने से पानी

कम आता है। इस तालाब पर एक मंदिर बनवाकर सब देवताओ की मूर्ति स्थापन करने की इच्छा थी पर पूरी न हो सकी। मूर्तियाँ अत्यत सुंदर बनवाई थी जो अब तक रखी हैं।

बाग का भी इन्हे शौक था। सन् १८६४ मे यहा एक ऐग्री-कल्चरल शो (कृषिप्रदर्शिनी) हुई थी उसमे इन्हें इनाम और उत्तम सार्टिफिकेट मिला था।

दिनचर्या

व्यसन इन्हे भगवत्सेवा या कविता के अतिरिक्त कोई भी न था। जाड़े के दिनों मे सबेरे तीन बजे से उठते और मंदिर के भृत्यो को बुलवाते; और गर्मी के दिनों मे पाँच बजे शौचादि से निवृत्त होकर कुछ कविता लिखते। शौच जाते तब कलम दावात कागज बाहर रखा रहता। यदि कुछ ध्यान आ जाता तो शौच से निकलते ही हाथ धोकर लिख लेते, तब दतुयन करते। कभी घर मे श्री ठाकुर जी की सेवा मे स्नान करने के पहले श्री मुकुंद-राय जी के दर्शन को तामजाम पर बैठकर जाते और कभी अपने यहाँ शृंगार की सेवा मे पहुँचकर तब जाते। घर मे भी ठाकुर जी की शृंगार की सेवा से निकलकर कविता लिखते, लेखक चार पाँच बैठे रहते और उनको लिखवाते, राजभोग आरती करके दस ग्यारह बजे श्री ठाकुरजी की महाप्रसादी रसोई खाते। भोजनो-परांत कुछ देर दर्बार करते और घर के कामकाज देखते थे फिर दोपहर को कुछ देर सोते। तीसरे पहर को फिर दर्बार लगता। कवि कोविदों का सत्कार करते, कविता की चर्चा रहती, संध्या को हवा खाने जाते, गाड़ी तक तामजाम पर जाते।

रामकटोरावाले बाग मे भाँग पीते। शौच होकर घर आते। हवा खाकर आने पर फिर दर्बार लगता। रात्रि को दस बजे तक भोजन करके सोते। सबेरे बिना कम से कम पाँच पद बनाए भोजन न करते। संध्या को सुगंधित पुष्प का गजरा या गुच्छा पास मे अवश्य रहता। रात्रि को पलग के पास एक चौकी पर कागज, कलम, दावात रहती, शमेदान रहता, एक चौकी पर पानदान और इत्रदान रहता। रात्रि को कविता कुछ अवश्य लिखते। स्वभाव हँसोड बहुत था, इसलिये जब बैठते, हँसी दिल्लगी होती, परंतु दर्बार के समय नही। प्रति एकादशी को जागरण करते। बड़ा उत्सव करते थे।

इनकी एक मौसी थी। वह स्वभाव की चिड़चिड़ही अधिक थी और इन्ही के यहाँ रहती थी। इन्हे ये प्रायः चिढ़ाया करते थे। इन्हें चिढ़ाने के लिये यह कविता बनाई थी—

घड़ी चार एक रात रहे से उठो घड़ी चार एक गंग नहाइत है।
घडी चार एक पूजा पाठ करी घड़ी चार एक मदिर जाइत है॥
घड़ी चार एक बैठ बिताइत है घड़ी चार एक कलह मचाइत है।
बलि जाइत है ओहि साइत की फिर जाइत है फिर आइत है॥

कवियों का आदर

इनके दर्बार में कवियों का बड़ा आदर होता था। इनके यहाँ से कोई कवि विमुख न फिरता। यद्यपि इनके दर्बारी कवियों का पूरा वृत्तांत उपलब्ध नहीं है, तथापि दो तीन कवियों का जो पता लगा है, वह प्रकाशित किया जाता है।

एक कविजी को (इनका नाम कदाचित् ईश्वर कवि था) एक चश्मे की आवश्यकता थी। उन्होंने एक कवित्त बनाकर दिया। उन्हें तुरंत चश्मा मिला। उस कवित्त का अंतिम चरण यह है—

"खसमामुखो के मुख भसमा* लगाइवे को
एहो धनाधीश हमे चाहत एक चसमा"।

एक कवि जी की यह कविता उपलब्ध हुई है—

परभूलिया छंद

"बैठे हैं विराजो राज मदिर मो कियो साज
सर्म को साज आसय आजिम अचल है।
दविता को रहे अरि सविता का सागर मो
कविता कमलता के सचिता सबल है॥
कहै कविराज कर जोरे प्रभू गोपालचद
ए बचन बिचारो मेरो विद्या की विमल है।
बगर बड़ाई कोरु सर सोलताई को
सुभाजन भलाई को सभाजन सकल है॥ १॥

दोहा

जहाँ अधिक उपमेय है छीन होत उपमान।
अलकार वितरेक को किज्जत तहाँ बिनान॥

जथा—बुध सो विरोधे मकल कलानिधि देखो
दु:पश्य निर्मल सो न आदर सहै।
गुरु से ईस मै गुरुज्ञान मे विलोकियतु
कविता अनेक कविताई को सरस है॥
द्वार आगे हैं राजत गजराज फेरियत
रीझि रीझि दीजियत पायन परसतु (स ?) है।
कहैं सभू महाराज गोपालचद्र जू धरम-
राज की सभा तें सभा रावरी सरस है॥"

---

*मुखरा सरस्वती के मुख में भस्म लगाने के लिये अर्थात् कविता लिखने के लिये।

पंडित हरिचरण जी अपने संस्कृत पत्र मे लिखते हैं:—

"यशोदागर्भजे देवि चतुर्वर्गफलप्रदे ।
श्रीमद्गोपालचंद्राख्यश्चिरायुष्क्रियतां त्वया ॥
सावर्णिरित्याद्यारभ्य सावर्णिर्भविता मनुः ।
इत्यन्तशतसख्यात पाठ संकल्प्य दीयताम्"॥

सुप्रसिद्ध कवि सरदार ने इनके बलिरामकथामृत के आदि से "स्तुति प्रकाश" को लेकर उस पर टीका लिखी है। उसमे उक्त कवि ने इनके विषय मे जो कुछ लिखा है उसे हम उद्धृत करते हैं।

छप्पै

"विमल बुद्धि कुल बैस बनारस वास सुहावन ।
फतेचंद आनंदकंद जस चंद बढ़ावन ॥
हरपचद ता नंद मंद बैरी मुख कीने ।
तासुत श्री गोपालचंद कविता रस भीने ॥
दश कथा अमृत बलराम मैं अस्तुति उह भूषन दियो ।
तेहि देखि सुबुध सरदार कवि बुधि समान टीका कियो ॥

दोहा

लोक विभू ग्रह संभु सुत रद सुचि भादव मास ।
कृष्णजन्म तिथि दिन कियो पूरन तिलक बिलास ॥"

इस ग्रंथ का कुछ अंश भी हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं।

"स्तुति प्रकाशिका कवि सरदार कृत टीका आदि टीका का ।

श्री गोपीजनवल्लभाय नम. ।

दोहा

सुमन हरष धारे सुमन बरषत सुमन अपार ।
नँद नंदन आनंद भर वदत कवि सरदार ॥ १ ॥

गिरिधर गिरिधरदास को कियो सुजस ससि रूप ।
तिहि तकि कवि सरदार मन बाढ़ो सिंधु अनूप ॥ २ ॥
कुबुधि भूमि लोपित ललित उमग्यो वारि विचार ।
करन लग्यो रचना तिलक उर धरि पवनकुमार ॥ ३ ॥
पवनपुत्र पावन परम पालक जन पन पूर ।
अरि घालन सालन सदा दस सिर उर सस सूर ॥ ४ ॥

मूल । प्रभु तव वदन चद सम अमल अमंद ।
तमहारी रतिकारी करत अनंद ॥

टीका प्रभु इति । उक्ति ब्रह्मा की है । प्रभु तुमारो बदन चद सम अमल अमंद तम हरन रति करन प्रीति करन आनंद करन है । वदन उपमेय चंद उपमान । सम वाचक । अमल । आदिक साधारन धर्म । तातें पूर्णोपमालकार । प्रश्न । साधारन धर्म का कहावै । जो उपमान उपमेय दोउन मे होय । सो अमलता और अमंदता चंद्रमा में दोऊ नाही यातें उपमेय मे अधिकता आए तें बितरेक काहे न होइ । उत्तर ॥ जब क्षीर समुद्र ते चंद्रमा निकरो ता समय अमल अमद रहो । यातें इहाँ पूरन उपमा होइ है ताको लच्छन । भारतीभूषने ।

दोहा

उपमानरु उपमेय जहँ उपमा वाचक होइ ।
सह साधारन धर्म के पूरन उपमा सोइ ॥ १ ॥

जथा । मुख सुखकर निसिकर सरिस सफरी से चल नैन । छीन लंक हरिलंक सी ठाढ़ी ऐनो ऐन ॥ मुख उपमेय सुखकर धर्म निसिकर उपमान । सरिस वाचक । पुन॰ सफरी उपमान । से वाचक । चल धर्म । नैन उपमेय । पुनः छीन धर्म लंक उपमेय हरिलंक उपमान । सो वाचक यातें पूर्णोपमा । तहाँ प्रश्न कै ब्रह्मा ने अन्य गुन छोड़ि अलंकार मैं स्तुति करी । ताको अभिप्राय । उत्तर । कंसादि-

कन के त्रासतें अन्य ठाॅव दूषन भरि गए एक प्रभु के निकट भूषन रहो। अलकारप्रियो विष्णुः यह पुरान मे लिखते हैं। सो उनको प्रसन्न करनो है यासों अलकारमय स्तुति करी यद्वा। आगे व्रज मे अवतार लेके शृंगार रस प्रधान लीला करनी है तासों भूषन अर्पन करत हैं। पुन. प्रश्न। पूरन उपमा अलंकार तें काहे क्रम बाॅधो। उत्तर। षोडश कला परिपूर्ण अवतार की इच्छा। अर्थांतरे।

दोहा

भौंहैं कुटिल कमान सी सर से पैने नैन।
वेधत व्रजबालान ही बंशीधर दिन रैन॥

इत्यादि जानिए।"

पूज्य भारतेंदुजी इनके मुख्य सभासदों के नाम एक याददाश्त मे इस प्रकार लिखते हैं—

पडित ईश्वरदत्त जी (ईश्वर कवि), सरदार कवि, गोस्वामी दीनदयाल गिरि, कन्हैयालाल लेखक, पंडित लक्ष्मीशंकर व्यास, बाबू कल्यानदास, माधोरामजी गौड, गुलाबराम नागर और बाल-कृष्णदास टकसाली।

साधु महात्माओं का समागम

इन पर उस समय के साधु महात्माओं की भी बड़ी कृपा रहती थी और ये भी सदा उन लोगों की सेवा शुश्रूषा मे तत्पर रहते थे। एक पुर्जा उस समय का मुझे मिला है जो अविकल प्रकाशित किया जाता है—

"रामकिंकर जी, अयोध्या के महंत जिनका नाम जाहिर है आपने भी सुना होगा, बड़े महात्मा हैं सो राधिकादास जी के स्थान पर तीन चार रोज से टिके हैं अभी उनके साथ सहर मे

गए हैं और चाहिए कि दो तीन घडी मे आपकी भेट को आवै क्योंकि राधिकादास जी की जुबानी आपके गुन सुने और सहस्र नाम की पोथी देखी उत्कंठा मालूम होती है और हैं कैसे 'कौपीन-वतः खलु भाग्यवंत' ।'

राधिकादास जी, रामकिंकर जी, तुलाराम जी, भागवतदास जी आदि उस समय बड़े प्रसिद्ध महात्मा गिने जाते थे। इन लोगो से इनसे बहुत स्नेह था, वरच इन लोगो से भगवत् सबधी चुहलबाजी भी होती थी। एक दिन इन्ही मे से किसी महात्मा से इन्होंने कहा कि 'भगवान श्रीकृष्णचद्र मे भगवान श्रीरामचद्र से दो कला अधिक थीं अर्थात् इनमे सोलहो कला थी।" उक्त महानुभाव ने उत्तर दिया "जी हाँ, चोरी और जारी"। कई महात्माओं की कथा भी धूमधाम से हुई थी।

बुढ़वामंगल

यह हम ऊपर लिख आए हैं कि बाबू हर्षचद्र के समय से बुढवामगल का कच्छा इनके यहाँ बहुत तयारी के साथ पटता था और बिरादरी मे नेवता फिरता था, तथा गुलाबी पगड़ी दुपट्टा पहिरकर यावत बिरादरी और नौकर आदि कच्छे पर आते थे। वैसी ही तयारी से यह मेला बाबू गोपालचंद्र के समय मे भी होता था। एक वर्ष कच्छे के साथ के कटर पर संध्या करने के लिये बाबू साहब आए थे और कटर के भीतर संध्या करते थे। छत पर और सब लोग बैठे थे। संध्या करके ऊपर आए, सब लोग ताजीम के लिये खड़े हो गए। इस हलचल मे नाव उलट गई और सब लोग अथाह जल में डूब गए। उस समय उसी नाव पर एक नौकर की गोद मे बड़ी कन्या मुकुंदी बीबी भी थी। यह दुर्घटना चौसट्ठी

घाट पर हुई थी। इस घाट पर चतु षष्ठि देवी का मंदिर है और होली के दूसरे दिन यहाँ धुरहडी को बहुत बड़ा मेला लगता है। इस घाट पर अथाह जल है और रामनगर के किले से टकराकर पानी यहाँ आकर लगता है, इससे यहाँ पानी का बड़ा वेग रहता है; उस पर इनको तैरना भी नहीं आता था—और भी आपत्ति यह कि लडके साथ मे। त्राहि भगवन्, उस समय क्या बीती होगी! परन्तु रक्षा करनेवाले की बाँह बड़ी लंबी है। उसने सभो को ऐसा उबारा कि प्राणियों की कौन कहे, किसी पदार्थ को भी हानि न होने पाई। बाबू गोपालचंद्र मेरे पिता बाबू कल्याण-दास से लिपट गए। यह बड़े घबराए कि अब दोनों यहीं रहे। परन्तु साहस करके इन्होंने उनको अपने शरीर से छुडाकर ऊपर की ओर लोकाया। सौभाग्यवश नौकाएँ वहाँ पहुँच गई थी। लोगों ने हाथों हाथ उठा लिया। मुकुंदी बीबी अपनी सोने की सिकरी को हाथ से पकड़े नौकर के गले से चिपटी रही। निदान सब लोग निकल आए, यहाँ तक कि जितने पदार्थ डूबे थे वे सब भी निकल आए। एक सोने की घडी, चाँदी का चश्मे का खाना और बाँह पर बाँधने का एक चाँदी का यत्र अब तक उस समय का जल मे से निकला हुआ रखा है। कविवर गोपालचंद्र की कवित्वशक्ति उस समय भी स्थगित न हुई और उन्होंने उसी अवस्था मे एक पद बनाया। अंतिम पद उसका यह है—

"गिरिधर दास उबारि दिखायो भवसागर को नमूना"।

चार दिन बुढवामगल के अतिरिक्त, होली और अपने तथा पुत्रों के जन्मोत्सव के दिन बडा जलसा और बिरादरी की जेवनार कराते थे, कि जिसकी शोभा देखनेवाले अब तक भी वर्तमान हैं, और

कहते हैं वैसी शोभा अब अच्छे अच्छे विवाह की महफिलों मे भी नही दिखाई देती।

एक बेर ये हाथी से भी गिरे थे और उसी दिन उस हाथी को काशिराज की भेट कर दिया।

गयायात्रा

बचपन से श्रीठाकुरजी की सेवा और दर्शन का ऐसा अनुराग था कि उन्हे छोडकर कभी कही यात्रा का विचार नही करते। केवल पॉच वर्ष की अवस्था मे मुडन कराने के लिये पिता के साथ मथुरा जी गए थे, तथा श्री दाऊजी के मंदिर मे मुंडन हुआ था और वहाँ से लौटकर श्री वैद्यनाथ जी गए थे, वहाँ चोटी उतरी थी। स्वतंत्र होने पर कभी कभी चरणाद्रि श्रीमहाप्रभु जी के दर्शन को जाते, परंतु पहले दिन जाते, दूसरे दिन लौट आते। केवल बाबू हरिश्चंद्र के जन्मोपरांत संवत् १९०७ मे पितृऋण चुकाने के लिये गया गए थे। गया जाने के लिये बडी तयारियाँ हुईं। महीनों पहले से सब पुराणों, धर्मशास्त्रो से छाँटकर एक सग्रह बनवाया गया। रेल थी नहीं, डाक का प्रबंध किया गया। सैकड़ो आदमियों का साथ था। पंद्रह दिन की गया का विचार करके गए, परतु वहाँ जाने पर प्रभुवियोग ने विकल किया। दिन रात रोवै, भोजन न करैं, सेवा का स्मरण अहर्निशि रहै। निदान किसी किसी तरह तीन दिन की गया करके भागे रात दिन बराबर चले आए और आकर श्री चरणदर्शन से अपने को तृप्त किया। इस यात्रा मे मेरी माता साथ थीं।

ग्रंथ

इनका सबसे पहला ग्रंथ वाल्मीकि-रामायण है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। परंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि इनके ग्रंथ ऐसे अस्त-व्यस्त हो गए हैं कि जिनका कुछ पता ही नहीं लगता। केवल पूज्य भारतेंदुजी के इस दोहे से—

"जिन श्रीगिरिधरदास कवि रचे ग्रंथ चालीस।
ता सुत श्रीहरिचंद को को न नवावै सीस"॥

इतना पता लगता है कि उन्होंने चालीस ग्रंथ बनाए थे, परंतु उनके नाम या अस्तित्व का पता नहीं लगता।

पूज्य भारतेंदु जी ने अपनी याददाश्त में इतने ग्रंथों के नाम लिखे हैं—

१ वाल्मीकि-रामायण (सातों कांड छंद में अनुवाद)। २ गर्गसंहिता। ३ भाषा एकादशी की चौबीसों कथा। ४ एकादशी की कथा। ५ छंदार्णव। ६ मत्स्यकथामृत। ७ कच्छपकथामृत। ८ नृसिंहकथामृत। ९ बावनकथामृत। १० परशुरामकथामृत। ११ रामकथामृत। १२ बलरामकथामृत। १३ बुद्धकथामृत। १४ कल्किकथामृत। १५ भाषा व्याकरण। १६ नीति। १७ जरासंधवध महाकाव्य। १८ नहुषनाटक। १९ भारतीभूषण। २० अद्भुत रामायण। २१ लक्ष्मी नखसिख। २२ रसरत्नाकर। २३ वार्ता संस्कृत। २४ ककारादि सहस्रनाम। २५ गयायात्रा। २६ गयाष्टक। २७ द्वादश दल-कमल। २८ कीर्तन की पुस्तक "स्तुति पंचाशिका" कवि सरदार कृत टीका का वर्णन ऊपर हो चुका है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित संस्कृत स्तोत्रों पर संस्कृत टीका कवि लक्ष्मीराम कृत मुझे मिली हैं—

१ सकर्षणाष्टक । २ दनुजारिस्तोत्र । ३ वाराहस्तोत्र । ४ शिव-स्तोत्र । ५ श्रीगोपालस्तोत्र । ६ भगवत्स्तोत्र । ७ श्रीरामस्तोत्र । ८ श्रीराधास्तोत्र । ९ रामाष्टक । १० कालियकालाष्टक । इनके ग्रथों के लुप्त होने का विशेष कारण यह जान पडता है कि इनके अक्षर अच्छे नही होते थे, इसलिये वे स्वय पुर्जों पर लिखकर सुंदर अक्षरों मे नकल लिखवाते और सुंदर चित्र बनवाते थे । तब मूल कापी का कुछ भी यत्न न होता और ग्रंथ का शत्रु वही उसका चित्र होता । मैंने वाल्मीकि-रामायण और गर्गसंहिता की सचित्र कापी बचपन मे देखी थी, परंतु उसे कोई महाशय पूज्य भारतेंदु जी से ले गए और फिर उन्होने इसे न लौटाया । कीर्तन की पुस्तक मुंशी नवलकिशोर के प्रेस से खो गई और "नहुषनाटक" का कुछ भाग "कविवचन-सुधा" प्रथम भाग मे छपकर लुप्त हो गया । खेद है कि पूज्य भार-तेंदु जी की असावधानी ने इनको बहुत हानि पहुँचाई ।

दशावतार-कथामृत मानो उन्होने भाषा मे पुराण बनाया था । पुराण के सब लक्षण इसमे हैं । बलिरामकथामृत बहुत ही भारी ग्रथ है । वह ग्रथ सं० १९०६ से १९०८ तक मे पूरा हुआ था । भारतीभूषण अलकार का अद्भुत ग्रंथ है । अच्छे अच्छे कवि अपने विद्यार्थियों को यह ग्रंथ पढ़ाते हैं । नहुषनाटक भाषा का पहला नाटक है । भाषा व्याकरण-छंदोबद्ध भाषा का व्याकरण अत्यंत सुगम और सरल ग्रंथ है । जरासंधवध महाकाव्य और रसरत्नाकर अधूरे ही रह गए । इन दोनों को पूज्य भारतेंदु जी पूरा करना चाहते थे, परंतु खेद कि वैसे ही रह गए । जरासंधवध महाकाव्य बहुत ही पांडित्यपूर्ण वीररसप्रधान ग्रथ है । भाषा मे यह ग्रथ एम० ए० का कोर्स होने योग्य है । इसकी तुलना के भापा मे बिरले ही ग्रथ मिलेगे । इस ढंग का ग्रथ केवल कविवर केशवदास कृत रामचंद्रिका ही है ।

इनकी कविता की प्रशंसा फ्रांस देश के प्रसिद्ध विद्वान् गार्सिन दी तासी ने अपने ग्रंथ मे की है और डाक्टर ग्रिअर्सन तथा बाबू शिवसिंह ने (शिवसिंहसरोज मे) इनकी विद्वत्ता को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है ।

कविता

इनकी कविता पाडित्यपूर्ण होती थी । इन्हें अलकारपूर्ण श्लेष, यमक इत्यादि की कविता पर विशेष रुचि थी । परंतु नीति शृंगार और शांत रस की कविता इनकी सरल और सरस भी अत्यंत ही होती थी । हम उदाहरण के लिये कुछ कविताएँ यहाँ उद्धृत करते हैं—

सवैया

सब केसव केसव केसव के हित के गज सोहते सोभा अपार हैं ।
जब सैलन सैलन सैलन ही फिरैं सैलन सैलहि सीस प्रहार हैं ॥
गिरिधारन धारन सों पद के जल धारन लै बसुधारन फार हैं ।
अरि वारन बारन बारन पै सुर बारन बारन बारन वार हैं ॥ १ ॥

मुकरी

अति सरसत परसत उरज उर लगि करत विहार ।
चिह्न सहित तन को करत क्यों सखि हरि नहि हार ॥१॥

सख्यालकार

गुरुन को शिष्यन पात्र भूमि देवन को,
मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सों ।
सुत को संन्यासिन को वर जिजमानन को,
सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सों ॥
सत्रुन को मित्रन को पित्रन कों जग बीच,
तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सों ।

गिरिधर दास दासै स्वामी को अधीको आसु,
रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सों ॥

यथासंख्य

असतसंग, सतसंग, गुन, गंग, जग कहँ देखि ।
भजहु, सहजु, सीखहु सदा, मज्जहु लरहु बिसेखि ॥

अविकृतशब्द श्लेषमूल वक्रोक्ति

मानि कही रमनी सुलै हैा परसत तुव पाय ।
मानिक हार मनी सुलै देहु पतुरियै जाय ॥ १ ॥
मानत जोगहि सुमति बर पुनि पुनि होति न देह ।
जोगी मानहि जोग को नहिं हम करत सनेह ॥ २ ॥

स्वभावोक्ति

गौनो करि गौनो चहत पिय विदेश बस काजु ।
सासु पासु जोहत खरी आँखि आँसु उर लाजु ॥ १ ॥

समस्यापूर्ति

जीवन यैं सगरे जग को हमते सब पाप औ ताप की हानी ।
देवन कों अरु पितृन कों नर कों जड कों हमही सुखदानी ॥
जो हम ऐसो कियो तेहि नीच महा सठ को मति लै अघसानी।
हाय विधाता महा कपटी इहि कारन कूप मैं डोलत पानी ॥१॥
बातन क्यों समुझावति हौ मोहि मैं तुमरो गुन जानति राधे ।
प्रीति नई गिरिधारन सों भई कुंज मैं रीति के कारन साधे ॥
घूँघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट ह्वै आधे ।
नेह न गोयो रहै सखि लाज सों कैसे रहै जल जाल के बाँधे॥२॥

जरासंधवध महाकाव्य से

चले राम अभिराम राम इष धनु टकारत ।
दीनबंधु हरिबंधु सिधु सम बल बिस्तारत ॥

जाके दशसत-सिरन मध्य इक सिर पर धरनी।
लसति जथा गज सीस स्वल्प सरसप सित बरनी ॥
विक्रम अनंत अतंक अधिक सुजस अनंत अनंत मति।
परताप अनंत अनंत गुन लसे अनंत अनंत गति ॥१॥

पद

प्रभु तुम सकल गुन के खानि।
हौं पतित तुव सरन आयो पतित-पावन जानि ॥
कब कृपा करिहौ कृपानिधि पतितता पहिचानि।
दास गिरिधर करत बिनती नाम निश्चै आनि ॥ १ ॥

खड़ी बोली का पद

जाग गया तब सोना क्या रे।
जो नर तन देवन को दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे ॥
ठाकुर से कर नेह अपाना इंद्रिन के सुख होना क्या रे।
जब बैराग ज्ञान उर आया तब चाँदी औ सोना क्या रे ॥
दारा सुपन सदन मे पड़ के भार सबों का ढोना क्या रे।
हीरा हाथ अमोलक पाया काँच भाव में खोना क्या रे ॥
दाता जो मुख माँगा देवे तब कौडी भर दोना क्या रे।
गिरिधरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे ॥१॥

विदुर नीति से

पावक, वैरी, रोग, रिन सेसहु राखिय नाहि।
ए थोड़े हू बढ़हि पुनि महाजतन सो जाहिं ॥ १ ॥

वाल्मीकिरामायण से

पति देवत कहि नारि कहँ और आसरो नाहि।
सर्ग सिढ़ी जानहु यही वेद पुरान कहाहि ॥ १ ॥

नीति के छप्पय (स्वहस्त लिखित एक पुर्जे से)

धिक नरेस बिनु देस देस धिक जहँ न धरम रुचि।
रुचि धिक सत्य विहीन सत्य धिक बिनु बिचार सुचि ॥
धिक बिचार बिनु समय समय धिक बिना भजन के।
भजनहु धिक बिनु लगन लगन धिक लालच मन के ॥
मन धिक सुंदर बुद्धि बिनु बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति।
धिक ज्ञान भगति बिनु भगति धिक नहि गिरिधर पर प्रेम अति ॥१॥

मुझे खेद है कि न तो मैंने इनके सब ग्रंथों को पढा है और न इतना अवसर मिला कि उत्तमोत्तम कविता छाँटता। यत्किंचित् उदाहरण के लिये उद्धृत कर दिया और चित्रकाव्य को छापने की कठिनता से सर्वथा ही छोड दिया है।

धर्मविश्वास—वैष्णव धर्म पर इन्हें ऐसा अटल विश्वास था कि और सब देव देवियों की पूजा अपने यहाँ से उठा दी थी। भारतेंदु जी ने लिखा है कि "मेटि देव देवी सकल छोड़ि कठिन कुल रीति। थाप्यो गृह मे प्रेम जिन प्रगट कृष्ण पद प्रीति ॥" मरने के समय भी घर का कोई सोच न था केवल श्वास भरकर ठाकुरजी के सामने यही कहा था कि "दादा ! तुम्हे बडा कष्ट होगा ॥"

रोग और मृत्यु

बचपन से लोगों ने उन्हे भंग पीने का दुर्व्यसन लगा दिया था। वह अति को पहुँच गया था। ऐसी गाढ़ी भाँग पीते थे कि जिसमे सीक खड़ी हो जाय। और अंत मे इसी के कारण उन्हे जलोदर रोग हो गया। बहुत कुछ चिकित्सा हुई, परंतु कोई फल न हुआ। कोठी की ताली और प्रबंध राय नृसिंहदास को सौंप गए थे और उन्होंने बाबू गोकुलचंद्र की नाबालगी तक कोठी को सँभाला था।

स० १९१७ की बैसाख सु० ७ को अंत समय आ उपस्थित हुआ। पूज्य भारतेंदु जी और उनके छोटे भाई बाबू गोकुलचंद्र जी को सीतला जी का प्रकोप हुआ था। दोनों पुत्रों को बुलाकर देखकर बिदा किया। इन लोगों के हटते ही प्राण पखेरू ने पयान किया। चारों ओर अंधकार छा गया, हाहाकार मच गया। पूज्य भारतेंदु जी कहते थे कि "वह मूर्ति अब तक मेरी आँखों के सामने विराजमान है। तिलक लगाए बड़े तकिए के सहारे बैठे थे। दिव्य कान्ति से मुखमडल दीप्त था, मुख प्रसन्न था, देखने से कोई रोग नही प्रतीत होता था। हम लोगों को देखकर कहा कि सीतला ने बाग मोड दी। अच्छा अब लो जाव।" इनकी अंत्येष्टि क्रिया एक संबधी (नन्हू साव) ने की थी।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म

मि० भाद्रपद शुक्ल ७ (ऋषि सप्तमी) स० १९०७ ता० ९ दिसबर सन् १८५० को हुआ, जिस समय इनके पूज्य पिता का वियोग हुआ उस समय इनकी अवस्था केवल ९ वर्ष की थी, परंतु "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस लोकोक्ति के अनुसार बालक हरिश्चंद्र ने पाँच छ वर्ष की अवस्था ही मे अपनी चमत्कारिणी बुद्धि से अपने कविचूड़ामणि पिता को चमत्कृत कर दिया था। (पिता गोपालचद्र) बलराम-कथामृत की रचना कर रहे थे, बालक (हरिश्चद्र) खेलते खेलते पास आ बैठे, बोले हम भी कविता बनावैंगे। पिता ने आश्चर्यपूर्वक कहा तुम्हे उचित तो यही है। उस समय बाणासुरवध का प्रसंग लिखा जा रहा था। बाल-कवि ने तुरत यह दोहा बनाया—

"लै ब्योंडा ठाढे भए श्री अनिरुद्ध सुजान ।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान ॥"

पिता ने प्रेमगद्गद होकर प्यारे पुत्र को कंठ लगा लिया और अपने होनहार पुत्र की कविता को अपने ग्रंथ मे सादर स्थान दिया और आशीर्वाद दिया "तू हमारे नाम को बढ़ावैगा"। हाय! कहाँ है उनकी आत्मा! वह आकर देखे कि उनके पुत्र ने उनका ही नही वरन उनके देश का भी मुख उज्ज्वल किया है!

एक दिन अपने पिता की सभा मे कवियों को अपने पिता के 'कच्छपकथामृत' के मंगलाचरण के इस अंश पर—

"करन चहत जस चारु कछु कछुवा भगवान को"

व्याख्या करते देख बालक हरिश्चद्र भी आ बैठे। किसी ने "कछु कछु वा (उस) भगवान को" यह अर्थ कहा, और किसी ने यों कहा "कछु कछुवा (कच्छप) भगवान को"। बालक हरिश्चंद्र चट बोल उठे "नही नहीं बाबू जी, आपने कुछ कुछ जिस भगवान को छू लिया है उसका जस वर्णन करते हैं" (कछुक छुवा भगवान को) बालक की इस नई उक्ति पर सब सभास्थ लोग मोहित हो उछल पड़े और पिता ने सजलनेत्र प्यारे पुत्र का मुख चूमकर अपना भाग्य सराहा।

इनकी बुद्धि बचपन ही से प्रखर और अनुसंधानकारिणी थी। एक दिन पिता को तर्पण करते देख आप पूछ बैठे "बाबू जी पानी मे पानी डालने से क्या लाभ?" धार्मिकप्रवर बाबू गोपालचंद्र ने सिर ठोका और कहा "जान पड़ता है तू कुल बोरैगा"। देवतुल्य पिता के आर्शीर्वाद और अभिशाप दोनों ही एक एक अंश मे यथा-समय फलीभूत हुए, अर्थात् हरिश्चद्र जैसे कुल-मुखोज्ज्वलकारी हुए, वैसे ही निज अतुल पैतृक संपत्ति के नाशकारी भी हुए।

शिक्षा

नौ वर्ष की अवस्था मे पितृहीन होकर ये एक प्रकार से स्वतत्र हो गए। जिनकी स्वतत्र प्रकृति एक समय बड़े बड़े राजपुरुषो और स्वदेशीय बड़े बडे लोगों के विरोध से न डरी, उनको बालपन मे भी कौन पराधीन रख सकता था, विशेषकर विमाता और सेवकगण ? तथापि पढ़ने के लिये वे कालिज मे भरती किए गए। यथासमय कालिज जाने लगे। उस समय अँगरेजी स्कूलों मे लड़कों के चरित्र पर विशेष ध्यान रखा जाता था। पान खाकर कालिज मे जाने का निषेध था। पर परम चपल और उद्धत-स्वभाव ये कब मानने लगे थे, पान का व्यसन इन्हे बचपन ही से था; खूब पान खाकर जाते और रास्ते मे अपने बाग (रामकटोरा) में ठहरकर कुल्ला करके तब कालिज जाते। पढ़ने मे भी जैसा चाहिए वैसा जी न लगाते, परंतु ऐसा कभी न हुआ कि ये परीक्षा मे उत्तीर्ण न हुए हों। एक दो बेर के सुनने और थोड़े ही ध्यान देने से इन्हे पाठ याद हो जाता था और इनकी प्रखर बुद्धि देखकर अध्यापक लोग चमत्कृत हो जाते थे। उस समय अँगरेजी शिक्षा का बड़ा अभाव था। रईसों मे केवल राजा शिवप्रसाद अँगरेजी पढे थे, अतएव इनका बड़ा नाम था। ये भी कुछ दिनो तक उनके पास अँगरेजी पढ़ने जाया करते थे। इसी नाते ये सदा राजा साहब को 'पूज्यतर, गुरुवर' लिखते और राजा साहब इन्हे प्रियवर, मित्रवर, लिखते थे। तीन चार वर्ष तक तो पढ़ने का क्रम चला। कालिज में अँगरेजी और संस्कृत पढ़ते थे, पर रसिकराज हरिश्चंद्र का झुकाव उस समय भी कविता की ओर था। परंतु वही प्राचीन ढर्रे की शृंगार रस की। उस समय का उनका लिखा एक संग्रह मिला है, जिसमे प्रायः शृंगार ही की

कविताएँ विशेष संगृहीत हैं, तथा स्वयं भी जो कोई कविता की है तो शृंगार या धर्मसंबधी।

जगदीश-यात्रा—रुचि-परिवर्तन

इसी समय स्त्रियों का आग्रह श्री जगदीश-यात्रा का हुआ। सं० १९२२ (स० १८६४-६५) मे ये सकुटुंब जगदीश-यात्रा को चले। यही समय इनके जीवन मे प्रधान परिवर्तन का हुआ। बुरी या भली जो कुछ बाते इनके जीवन की संगिनी हुईं, उनका सूत्रपात इसी समय से हुआ। पढ़ना तो छूट ही गया था। उस समय तक रेल पूरी पूरी जारी नही हुई थी। उस समय जो कोई इतनी बडी यात्रा करते तो उन्हे पहुँचाने के लिये जाति कुटुब के लोग तथा इष्ट-मित्र नगर के बाहर तक जाते थे। निदान इनका भी डेरा नगर के बाहर पडा। नगर के रईस तथा आपस के लोग मिलने के लिये आने लगे। बड़े आदमियों के लड़को पर प्रायः नगर के अर्थलोलुप लोगों की दृष्टि रहती ही है, विशेषकर पितृहीन बालक पर। अतएव वैसे ही एक महापुरुष इनके पास भी मिलने के लिये पहुँचे। ये वही महाशय थे जिनके पितामह ने बाबू हर्ष-चद्र की नाबालगी मे इनके घर को लुटाया और उन्ही महापुरुष के पिता ने बाबू गोपालचद्र की नाबालगी का लाभ उठाया था। और अब इनकी नाबालगी मे ये महात्मा क्यो चूकने लगे थे? अत-एव ये भी मिलने के लिये आए। शिष्टाचार की बातें होने पर वे इनको एकांत मे लिवा ले गए और उन्हें दो अशर्फियाँ देने लगे। यह देख बालक हरिश्चद्र अचभे मे आ गए और पूछा "इन अशर्फियों से क्या होगा?" शुभचिंतक जी बोले "आप इतनी बड़ी यात्रा करते हैं, कुछ पास रहना चाहिए"। इन्होंने उत्तर दिया "हमारे

साथ मुनीब गुमाश्ते रुपए पैसे सभी कुछ हैं, फिर इन तुच्छ दो अशर्फियों से क्या होगा ?" शुभचिंतक जी ने कहा "आप लड़के हैं, इन भेदों को नहीं जानते। मैं आपका पुश्तैनी 'नमकख्वार' हूँ। इसलिये इतना कहता हूँ। मेरा कहना मानिए और इसे पास रखिए। काम लगे तो खर्च कीजिएगा नही तो फेर दीजिएगा। मैं क्या आपसे कुछ माँगता हूँ। आप जानते ही हैं कि आपके यहाँ बहू जी का हुक्म चलता है। जो आपका जी किसी बात को चाहा और उन्होंने न दिया तो उस समय क्या कीजिएगा ? कहावत है कि 'पैसा पास का जो वक्त पर काम आवे'।" होनहार प्रबल होती है, इसी से उस धूर्त की धूर्तता के जाल मे फँस गए। और उन्होंने उसकी अशर्फियाँ रख ली। एक ब्राह्मण युवक उनके साथ थे, वही खजांची बने। ऋण लेने का यहीं से सूत्रपात हुआ। फिर तो उनकी तबियत ही और हो गई, मिजाज मे भी गरमी आ गई। रानीगंज तक तो रेल मे गए, आगे बैलगाड़ी और पालकी का प्रबंध हुआ। बर्दवान मे आकर किसी बात पर ये मा से बिगड़ खड़े हुए और बाले "हम घर लौट जाते हैं"। इस पर लोगो ने समझा कि इनके पास तो कुछ है नही तो फिर ये जायँगे कैसे ? यह सोचकर लोगों ने उनकी उपेक्षा की। बस चट आप उन ब्राह्मण देवता को साथ लेकर चल खड़े हुए, जिन्हें उन्होंने अशर्फी का खजाची बनाया था। बाजार मे आकर एक अशर्फी भुनाई और स्टेशन पर जा पहुँचे। यह समाचार जब छोटे भाई बाबू गोकुलचद्र को मिला तब वह सजल-नेत्र स्टेशन पर जाकर भाई से लिपट गए। तब तो हरिश्चंद्र का स्नेहमय हृदय सम्हल न सका, उसमे भ्रातृस्नेह उछल पड़ा। दोनों भाई गले लगकर खूब रोए, फिर दोनों डेरे पर लौट आए। लौट तो आए पर उसी समय से इनके हृदय मे जो

स्वतंत्रता का स्रोत उमड़ पड़ा वह फिर न लौटा। धीरे धीरे दोनो अशर्फियाँ खर्च हो गईं और फिर ऋण का चसका पडा। उन्ही दो अशर्फियों के सूद ब्याज तथा अदला बदली मे उक्त पुश्तैनी 'नमक-खार' के हाथ इनकी एक बड़ी हवेली, जो पन्द्रह हजार रुपए से कम की नहीं है, लगी।

इसी समय से इनकी रुचि गद्य-पद्यमय कविता की ओर झुकी। वह एक 'प्रवास नाटक' लिखने लगे। परंतु अभाग्यवश वह अपूर्ण और अप्रकाशित ही रह गया। इसी समय 'झूलत हरीचंद जू डोल' 'हम तो मोल लए या घर के', आदि कविताएँ बनी और इसी समय इन्होने बँगला सीखी।

श्री जगन्नाथ जी के सिहासन पर चिरकाल से भैरव-मूर्ति भोग के समय बैठाई जाती थी। मूर्ख पंडों का विश्वास था कि बिना भैरव-मूर्ति के श्री जगन्नाथ जी की पूजा सांग हो ही नहीं सकती। इन्हे यह बात बहुत खटकी। इन्होने नाना प्रमाणो से उसका विरोध किया। निदान अंत मे भैरव-मूर्ति को वहा से हटा ही छोड़ा। 'तहकीकात पुरी की तहकीकात!' इसी झगड़े का फल है।

स्कूल का स्थापन

उस यात्रा से लौटने पर इनकी रुचि कविता और देश-हित की ओर विशेष फिरी। इनको निश्चय हुआ कि बिना पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और मातृभाषा के उद्धार के इस देश का सुधार होना कठिन है। उस समय नगर मे कोई पाठशाला न थी। सरकारी पाठशाला या पादरियों की पाठशाला मे लडकों को भेजना और फ़ीस देकर पढ़ाना साधारण लोगो के लिये कठिन था। इसलिये इन्होंने अपने घर पर लड़कों को पढ़ाना आरंभ किया। दोनो

भाई मिलकर लड़कों को पढ़ाते थे। फीस कुछ देनी नहीं पड़ती थी। पुस्तक स्लेट आदि भी बिना मूल्य ही दी जाती थी। इस कारण धीरे धीरे लड़कों की संख्या बढ़ने लगी और इनका भी उत्साह बढ़ा। तब एक अध्यापक नियुक्त कर दिया जो लड़कों को पढ़ाने लगा। परन्तु थोड़े ही दिनों मे लड़कों की इतनी सख्या अधिक हुई कि सन् १८६७ ई० मे नियमित रूप से "चौखंभा स्कूल" स्थापित किया और उसका सब भार अपने सिर रखा। उसमें अधिकाश लड़के बिना फीस दिए पढ़ने लगे, पुस्तकादि भी बिना मूल्य वितरित होने लगी, यहाँ तक कि अनाथ लड़कों को खाना कपड़ा तक मिल जाया करता था। इस स्कूल ने काशी ऐसे नगर मे अँगरेजी शिक्षा का कैसा कुछ प्रचार किया, यह बात सर्व साधारण पर विदित है। पहले यह 'अपर प्राइमरी' था, किंतु भारतेंदु के अस्त होने पर 'मिडिल' हुआ। थोड़े दिन तक हाई स्कूल भी रहा परंतु सहायता न होने से फिर मिडिल हो गया।

हिंदीउद्धार व्रत का आरंभ, "कविवचनसुधा" का जन्म

मातृभाषा का प्रेम और कविता की रुचि तो बालकपन ही से इनके हृदय मे थी। अब उसके भी पूर्ण प्रकाश का समय आया। कवि, पंडित और विद्यारसिकों का समारंभ तो दिन रात ही होता रहता था, परंतु अब यह रुचि 'कविवचनसुधा' रूप मे प्रकाश्य रूप से अंकुरित हुई। सन् १८६८ ई० मे 'कविवचनसुधा' मासिक पत्र के आकार में निकला। प्राचीन कवियों की कविताओं का प्रकाश ही इसका मुख्य उद्देश्य था। कवि देवकृत 'अष्टयाम', दीनदयाल गिरि कृत 'अनुरागबाग', चंदकृत 'रायसा', मलिक मुहम्मदकृत 'पद्मावत', 'कबीर की साखी', 'बिहारी के दोहे', गिरिधरदासकृत

'नहुषनाटक', तथा शेख सादीकृत 'गुलिस्ताँ' का छंदोमय अनुवाद आदि ग्रंथ अंशत: प्रकाशित हुए। परंतु केवल इतने ही से संतोष न हुआ। देखा कि बिना गद्य-रचना इस समय कुछ उपकार नहीं हो सकता। इस समय और प्रांत आगे बढ़ रहे हैं, केवल यही प्रांत सबसे पीछे है, यह सोच देशभक्त हरिश्चंद्र ने देशहित-व्रत धारण किया और "कविवचनसुधा" को पाक्षिक, फिर साप्ताहिक कर दिया तथा राजनैतिक, सामाजिक आदि आंदोलन आरंभ कर दिया और "कविवचनसुधा" का सिद्धांत-वाक्य यह हुआ—

"खल-गनन सों सज्जन दुखी मति होहिं, हरिपद मति रहै।
उपधर्म छूटैं, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, जग आनँद लहै।
तजि ग्रामकविता, सुकविजन की अमृत बानी सब कहै॥"

यद्यपि इस समय इन बातों का कहना कुछ कठिन नहीं प्रतीत होता है, परंतु उस अंधपरंपरा के समय में इनका प्रकाश्य रूप से इस प्रकार कहना सहज न था। नव्य शिक्षित समाज को 'हरि-पद मति रहै' कहना जैसा अरुचिकर था, उससे बढ़कर पुराने 'लकीर के फकीरों' को 'उपधर्म छूटैं' कहना क्रोधोन्मत्त करना था। जैसा ही अँगरेज हाकिमों को 'स्वत्व निज भारत गहै, कर (टैक्स) दुख बहै' कहना कर्णकटु था, उससे अधिक 'नारि नर सम होहिं' कहना हिंदुस्तानी भद्र समाज को चिढ़ाना था। परंतु वीर हरिश्चंद्र ने जो जी में ठाना उसे कह ही डाला, और जो कहा उसे आजन्म निबाहा भी। इन्हीं कारणों से वे गवर्न्मेंट के क्रोध-भाजन हुए, अपने समाज में निंदित हुए और समय समय पर नव्य समाज से भी बुरे बने, परंतु जो व्रत उन्होंने धारण किया उसे अंत तक नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि 'कविवचनसुधा' से अपना संबंध छोड़ने पर भी

आजन्म यही व्रत रखा। 'विद्यासुंदर' नाटक की अवतारणा भी इसी समय हुई। नाना प्रकार के गद्यपद्यमय ग्रंथ बनने और छपने लगे। उस समय हिंदी का कुछ भी आदर न था। इन पुस्तकों और इस समाचारपत्र को कौन मोल लेता और पढ़ता? परंतु देश-भक्त उदार हरिश्चंद्र को धन का कुछ भी मोह न था। वह उत्तमोत्तम कागज पर उत्तमोत्तम छपाई मे पुस्तके छपवाकर नाम मात्र को मूल्य रखकर बिना मूल्य ही सहस्राधिक प्रतियाँ बाँटने लगे। उनके आगे पात्र अपात्र का विचार न था, जिसने माँगा उसने पाया, जिसे कुछ भी सहृदय पाया उसे उन्होंने स्वयं दिया। यह प्रथा बाबू साहब की आजन्म रही। उन्होंने लाखों ही रुपए पुस्तकों की छपाई मे व्यय करके पुस्तके बिना मूल्य बाँट दीं और इस प्रकार से हिंदी के प्रेमियों की सृष्टि की और हिंदी पढ़नेवालों की संख्या बढ़ाई।

गवर्मेंट मान

इसी समय आनरेरी मैजिस्ट्रेटी का नया नियम बना था। ये भी अपने और मित्रों के साथ आनरेरी मैजिस्ट्रेट (सन् १८७० ई० मे) चुने गए। फिर म्युनिसिपल कमिश्नर भी हुए। हाकिमो मे इनका अच्छा मान होने लगा। परंतु ये निर्भीक चित्त से यथार्थ बात कहने या लिखने मे कभी चूकते न थे और इसी से दूसरे की बढ़ती से जलनेवालों को 'चुगली' करने का अवसर मिलता था। इस समय भारतेश्वरी महारानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा भारत-संदर्शनार्थ आए। काशी मे इनका महामहोत्सव हुआ। इस महोत्सव के प्रधान सहायक यही थे। इनके घर की सजावट की शोभा आज तक लोग सराहते हैं। स्वयं ड्यूक ने इसकी प्रशंसा की थी। ड्यूक को नगर दिखाने का भार भी इन्हीं पर अर्पित किया

गया था। इस समय सब पडितो से कविता बनवा और 'सुमनोंजलि' नामक पुस्तक मे छपवाकर इन्होने राजकुमार को समर्पण की थी। इस ग्रंथ पर महाराज रीवॉ और महाराज विजयनगरम् बहादुर ऐसे प्रसन्न हुए थे कि इन्होने इसके रचयिता पंडितो को बहुत कुछ पारितोषिक बाबू साहब के द्वारा दिया था। इसी समय पडितों ने भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करने के लिये एक प्रशसापत्र बाबू साहब को दिया था जिसका सार मर्म यह था—

"सब सज्जन के मान को, कारन एक हरिचंद।
जिमि स्वभाव दिन रैन को कारन एक हरिचंद॥"

बाबू साहब की गुणग्राहकता पंडित-मंडली के इन वाक्यों से प्रत्यक्ष विदित होती है। वास्तव में इन्हे अपनी प्रतिष्ठा का उतना ध्यान न था जितना दूसरे उपयुक्त सज्जनों के सम्मानित करने का।

इस समय ये गवर्न्मेंट के भी कृपापात्र थे। 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चद्रचंद्रिका' और 'बालाबोधिनी' की सौ सौ प्रतियॉं शिक्षा-विभाग मे ली जाती थीं। 'विद्यासुंदर' आदि की सौ सौ प्रतियाँ ली गईं। उसी समय ये पंजाब युनिवर्सिटी के परीक्षक नियुक्त हुए।

'कविवचनसुधा' का आदर न केवल इस देश मे वरंच योरप मे भी होने लग गया था। सन् १८७० ई० मे फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् गार्सन दी तासी ने अपने प्रसिद्ध पत्र "ली लैंगुआ डेस हिदुस्तानिस" मे मुक्तकंठ से बाबू साहब और 'कविवचनसुधा' की प्रशंसा की थी।

चंद्रिका और बालाबोधिनी

परतु देशहितैषी हरिश्चद्र इन थोथे सम्मानों मे भूलकर अपने लक्ष्य से चूकनेवाले न थे। इन्होंने देखा कि बिना मासिक पत्रों के

निकाले और अच्छे अच्छे सुलेखको के प्रस्तुत किए भाषा की यथार्थ उन्नति न होगी। यह सोच उन्हे केवल 'कविवचनसुधा' से संतोष न हुआ, और सन् १८७३ ई० मे "हरिश्चंद्र मैगजीन" का जन्म हुआ। ८ संख्या तक इसकी निकली, फिर यही 'हरिश्चद्रचद्रिका' के रूप मे निकलने लगा। मैगजीन के ऐसा सुंदर पत्र आज तक हिंदी में नहीं निकला। जैसा ही सुंदर आकार वैसा ही कागज, वैसी ही छपाई और उससे कहीं बढकर लेख। उस समय तक कितने ही सुलेखको को उत्साह देकर बाबू साहब ने प्रस्तुत कर लिया था। मैगजीन के लेख और लेखक आज भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। हरिश्चंद्र का 'पॉचवॉ पैगबर', मुशी ज्वाला-प्रसाद का 'कलिराज की सभा', बाबू तोताराम का 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', मुशी कमलाप्रसाद का 'रेल का विकट खेल', आदि लेख आज तक लोग चाह के साथ पढ़ते हैं। लाला श्रीनिवासदास, बाबू काशीनाथ, बाबू गदाधरसिंह, बाबू ऐश्वर्यनारायण सिंह, पंडित ढुंढिराजशास्त्री, श्रीराधाचरण गोस्वामी, पडित बदरीनारायण चौधरी, राव कृष्णदेवशरण सिंह, पंडित बापूदेव शास्त्री, प्रभृति विद्व-ज्जन इसके लेखक थे। इसी समय सन् १८७४ ई० मे इन्होने स्त्रीशिक्षा के निमित्त 'बालाबोधिनी' नाम की मासिक पत्रिका भी निकाली, जिसके लेख स्त्रीजनोचित होते थे। यही समय मानो नवीन हिंदी की सृष्टि का है। यद्यपि भारतेंदु जी ने सन् १८६४ ई० से हिंदी गद्य पद्य का लिखना आरभ किया था और सन् १८६८ मे 'कविवचनसुधा' का उदय हुआ, परंतु इसे स्वयं भारतेदु जी हिंदी के उदय का समय नहीं मानते। वह मैगजीन के उदय (सन् १८७३ ई०) से ही हिंदी का पुनर्जन्म मानते हैं। उन्होंने अपने 'काल-चक्र' नामक ग्रंथ मे लिखा है। "हिंदी नए चाल मे ढली (हरि-

श्चंद्री हिंदी *) सन् १८७३ ई० ।" वास्तव मे जैसी लालित्यमय हिंदी इस समय से लिखी जाने लगी वैसी पहले न थी ।

पेनी रीडिंग

इसी समय इन्होने 'पेनी रीडिंग' (Penny Reading) नामक समाज स्थापित किया था जिसमे स्वय भद्र लोग तरह तरह के अच्छे अच्छे लेख लिखकर लाते और पढते थे । मैगजीन के प्राय: सभी अच्छे अच्छे लेख इस समाज मे पढ़े गए थे । स्वयं भारतेंदु जी की दो मूर्तियाँ आज तक आँखों के सामने घूमती हैं—एक तो प्रात पथिक बनकर आना और गठरी पटक पैर फैलाकर बैठ जाना आदि । और दूसरी पाँचवे पैगंबर की मूर्ति। इस समाज के प्रोत्साहन से भी बहुत से अच्छे अच्छे लेख लिखे गए । इसी समय के पीछे 'कर्पूरमंजरी', 'सत्य हरिश्चद्र' और 'चंद्रावली' की रचना हुई, जो कि सच पूछिए तो हिंदी की टकसाल हैं । जैसा ही अपने ग्रंथों पर इन्हे स्नेह था उससे कही बढ़कर इनका प्रेम दूसरे उपयुक्त ग्रंथकारों पर था । कितने ही नवीन और प्राचीन ग्रथ इनके व्यय से मुद्रित और बिना मूल्य वितरित हुए । वास्तव मे यदि हरिश्चद्र सरीखा उदार-हृदय, रुपए को मिट्टी समझनेवाला, गुणग्राही नायक हिदी की पतवार को उस समय न पकडता और सब प्रकार से स्वार्थ छोडकर तन मन धन से इसकी उन्नति मे न लग जाता, तो आज दिन हिंदी का इस अवस्था पर पहुँचना कठिन था । हरिश्चद्र ने हिदी तथा देश के लिये सारे ससार की दृष्टि मे अपने को मिट्टी कर दिया ।

---

* खेद का विषय है कि (हरिश्चंद्री हिंदी) इतना लेख जो स्वयं भारतेंदु जी ने लिखा था उसे कालचक्र छपने के समय खड्गविलास प्रेस वालों ने छोड़ दिया है ।

उदारता—ऋण

उस समय के 'साहित्यसंसार' की कुछ अवस्था आप लोगों ने सुनी। अब कुछ 'व्यावहारिक संसार' मे भी हरिश्चंद्र को देख लीजिए। जगदीश यात्रा के पीछे उदारहृदय हरिश्चद्र का हाथ खुला। हम ऊपर कह ही चुके हैं कि बड़े आदमियों के लड़कों पर धूर्तों की दृष्टि रहती ही है, अतः इन्हे भी लोगों ने घेरा। एक तो यह स्वाभाविक उदार, दूसरे इनका नवीन वयस, तीसरे यह रसिकता के आगार, फिर क्या था, धन पानी की भाँति बहने लगा। एक ओर साहित्यसेवा मे रुपए लग रहे हैं, दूसरी ओर दीन दुखियो की सहायता मे, तीसरे देशोपकारक कामो के चंदों मे, चौथे प्राचीन रीति के धर्मकार्यों मे और पाँचवे यौवनावस्था के आनंद विहारो मे। द्रव्य की ओर इनकी दृष्टि न रहने के कारण, इन सभो से बढकर अप्रबंध तथा अर्थलोलुप विश्वासघातकों के चक्र ने इनके धन को नष्ट करना आरभ कर दिया। एक धार से बहने पर तो बड़े बड़े नदी नद सूख जाते हैं, तो फिर जिसके शत धार हों उसका कौन ठिकाना! घर के शुभचिंतकों ने इन्हें बहुत कुछ समझाया, परंतु कौन सुनता था? स्वयं काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण-सिह बहादुर ने कहा "बबुआ! घर को देखकर काम करो"। इन्होने निर्भीक चित्त हो उत्तर दिया "हुजूर! इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा"। महाराज अवाक्य रह गए। शौक इन्हें संसार के सौंदर्य मात्र ही से था। गाने बजाने, चित्र-कारी, पुस्तक संग्रह, अद्भुत पदार्थों का सग्रह (Museum), सुगंधि की वस्तु, उत्तम कपड़े, उत्तम खिलौने, पुरातत्त्व की वस्तु, लैंप, आलबम, फोटोग्राफ इत्यादि सभी प्रकार की वस्तुओं का ये आदर करते और उन्हे संगृहीत करते थे। इनके पास कोई गुणी

आ जाय तो वह विमुख कभी न फिरता। कोई मनोहर वस्तु देखी और द्रव्य-व्यय के विचार बिना चट उसका संग्रह किया। बालिग होते होते उन्होंने लाखों रुपए व्यय कर डाले। लोगों ने देखा कि इनके हाथ में यदि कुबेर का भंडार भी होगा तो रहने न पावेगा, इसलिये इस घर की रक्षा का उपाय इनका भाग अलग कर देना ही है। अतएव ता० २१ मार्च सन् १८७० ई० को दोनों भाइयों में तकसीमनामा हुआ। जो लाखों रुपए अब तक व्यय हो चुके थे उसे छोड़कर अब जो बचा था उसमे तीन सम भाग हुए, दो दोनों भाइयों का और तीसरा श्री ठाकुरजी का। यह ठाकुर जी लगभग ८०, ६० वर्ष से इनके यहाँ स्थापित हैं और इनकी सेवा श्री वल्लभ-कुलस्थ सेवा की रीति पर होती है। जिसका सारा संसार अपना ही कुटुंब है, और जिसे सारे संसार की संपत्ति भी व्यय करने के लिये थोड़ी है, उसके लेखे वह छोटा भाग क्या था? देखते ही देखते धन घटने और ऋण बढ़ने लगा। थोड़े ही दिनों में सब नकदी धन की इतिश्री हो गई। फिर जायदाद रिहन पड़ने लगी। बनारस के 'शाइलाकों' ने एक एक देकर तीन तीन की हुँडियाँ लिखवाना आरंभ किया। एक महाशय ने एक कटर (नाव) और कुछ थोड़ा सा रुपया देकर इनसे तीन हजार की हुंडी लिखवा ली, और उसी की सबसे पहले इन पर नालिश हुई। उस समय सुप्रसिद्ध सर सैयद अहमद खाँ बहादुर बनारस के सदरआला थे, उन्हीं के यहाँ नालिश हुई। सैयद साहब सब कुछ वृत्तांत सुन चुके थे। एक रईस के घर का बिगड़ना, विशेषकर भारतहितैषी हरिश्चंद्र का विपद्ग्रस्त होना, उसी व्रत मे व्रती सैयद साहब को बहुत क्लेश-कर हुआ। उन्होने चाहा कि महाजन का जितना मूल-धन है उसी की डिक्री दी जाय। यह विचारकर उन्होंने बाबू साहब को आदर के

साथ अपने बगल मे बुलाकर आसन दिया और पूछा 'आपने असिल मे इनसे कितना रुपया पाया ?' प्रशस्तहृदय सत्यसंध हरिश्चद्र ने उत्तर दिया 'पूरा रुपया पाया है' । सैयद साहब ने पूछा 'जो कटर इन्होंने लगा दिया है वह कितने का है' ? आप बोले 'जितने का मैंने लेना स्वीकार कर लिया' । सैयद साहब ने टेबुल पर हाथ पटककर कहा 'बाबू साहब, आप भूलते हैं। जरा बाहर घूम आइए, समझ बूझकर उत्तर दीजिए' । बाहर आए तब वकीलों ने, घर के लोगों ने, और इष्ट मित्रो ने बहुत कुछ समझाया कि जितना पाया है आप उतना ही कह दें । इस पर आप चुप रहे । फिर इजलास पर गए और पूछे जाने पर आपने फिर वही उत्तर दिया। सैयद साहब खेद प्रकाश करने लगे तो आप बोले "सुनिए सैयद साहब ! मैं अपने धर्म और सत्य को साधारण धन के लिये नहीं बिगाडने का, मुझसे इस महाजन ने जबर्दस्ती हुडी नही लिखवाई और न मैं बच्चा ही था कि समझता न था, जब कि मैंने अपनी गरज से समझ बूझकर उसका मूल्य तथा नजराना आदि स्वीकार कर लिया, तो क्या अब देने के भय से मैं उस सत्य को भग कर दूँ ?" धन्य हरिश्चद्र धन्य ! 'सत्यहरिश्चद्र' लिखने के उपयुक्त पात्र तुम्हीं थे। ये वाक्य तुम्हारी ही लेखनी से निकलने योग्य थे—

"चद टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिचंद को, टरै न सत्य विचार ॥"

उनकी यह दृढ़ता और यह सत्यता अंत समय तक रही। वह पास द्रव्य न होने से दे न सके परंतु अस्वीकार कभी नहीं कर सकते थे । थोड़े ही दिनो मे उनकी सारी पैतृक संपत्ति जाती रही और वह धन खोने के कारण 'नालायक' समझे जाने लगे। इनके मातामह की लाखों की संपत्ति थी, जिसके उत्तराधिकारी

यही दोनों भाई थे। इनकी मातामही ने ५ मे सन् १८६२ ई० को इन दोनो भाइयों के नाम अपनी समग्र संपत्ति का वसीयत-नामा लिख दिया था। परंतु अब तो ये नालायक ठहरे; इनके हाथ जाने से कोई सपत्ति बच न सकेगी, बड़ों का नाम-निशान मिट जायगा, इसलिये १४ एप्रिल सन् १८७५ ई० को मातामही ने दूसरा वसीयतनामा लिखा, जिसके अनुसार इन्हे कुछ भी अधिकार न देकर सर्वस्व छोटे भाई बाबू गोकुलचद्र को दिया। निस्पृह हरिश्चद्र को न पहले वसीयतनामे से संपत्ति पाने का हर्ष था, न इसके अनुसार उसके खोने का खेद हुआ। वकीलों की सम्मति से हिंदू अबीरा स्त्री का इन्हे भागरहित करना सर्वथा कानून के विरुद्ध था, इसमे स्वयं इनकी स्वीकृति की आवश्यकता थी, अतएव २८ अक्तूबर सन् १८७८ ई० को मातामही ने एक बखशीशनामा छोटे भाई बाबू गोकुलचंद्र के नाम लिख दिया और उदारहृदय हरिश्चंद्र ने उस पर अपनी स्वीकृति करके हस्ताक्षर कर दिया। जिस स्वर्गीय हरिश्चंद्र को सुमेरु भी उठाकर किसी दीन दुखी को देने में संकोच न होता, उसे इस तुच्छ सपत्ति को अपने सहोदर छोटे भाई को देना क्या बडी बात थी! कहने के साथ हस्ताक्षर कर दिया। इस बखशिशनामे के अनुसार इन्हे केवल चार हजार रुपया मिला था। इस प्रकार थोड़े काल मे नगरसेठ हरिश्चद्र राजा हरिश्चंद्र की भाँति धनहीन हरिश्चद्र हो गए। 'सत्य हरिश्चंद्र' की रचना के समय पंडित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी जी ने सत्य कहा था कि—

"जो गुन नृप हरिचद मे, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचंद मे, लखहु प्रतच्छ सुजान॥"

परंतु इतना होने पर भी इनकी उदारता या इनके अपरिमित व्यय मे कभी कमी न हुई। मरने के समय तक ये हजारों ही

रुपए महीने मे व्यय करते थे और वह परमेश्वर की कृपा से कही न कहीं से आ ही जाते थे। सपत्तिनाश के पीछे ये बीस बाईस वर्ष और जिए, इतने समय मे इन्होंने कम से कम तीन चार लाख रुपए व्यय किए, और लाखों ही रुपए ऋण किए, परतु जिस जगत्पिता जगदीश्वर की संतान के उपकार के लिये इनका धन व्यय होता था उसकी कृपा से न तो कभी इनका हाथ रुका और न मरने के समय ये ऋणी ही मरे।

हिंदी के राजभाषा बनाने का उद्योग

अब फिर साधारण हितकर कार्यों तथा साहित्य-चर्चा की ओर झुकिए। जब विद्यारसिक सर विलियम म्योर की लाटगिरी का समय आया, उस समय हिदी को राजभाषा बनाने के लिये बहुत कुछ उद्योग किया गया, परंतु सफलता न हुई। ये इस उद्योग मे प्रधान थे। सभाएँ की थीं, प्रार्थनापत्र भेजे थे, समाचारपत्रो मे आंदोलन किया था। हिदी के उत्तम ग्रंथों के लिये पारितोषिक देने की व्यवस्था की गई, परतु उसमे भी सिफारिश का बाजार गर्म हुआ। "रत्नावली", 'उत्तररामचरित्र' आदि के अनुवाद ऐसे भ्रष्ट निकले कि हिदी साहित्य को लाभ के बदले बड़ी हानि पहुँची। उन अनुवादकों को बहुत कुछ पारितोषिक दिया गया, किंतु उत्तम ग्रंथों की कुछ भी पूछ न की गई। केंपसन साहब उस समय शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर थे, राजा शिवप्रसाद उनके कृपापात्र थे। इधर राजा साहब का हृदय अपने सामने के एक 'छोकरे' की उन्नति से जला हुआ था, उधर बाबू साहब का हृदय 'हाकिमी' अन्याय से क्रुद्ध गया था, दूसरा एक कारण राजा साहब से इनके विरोध का यह हुआ कि राजा साहब ने फारसी आदि मिश्रित खिचड़ी

हिंदी की सृष्टि करके उसे चलाना चाहा, और बाबू साहब ने शुद्ध हिंदी लिखने का मार्ग चलाया और सर्व साधारण ने इसी को रुचि के साथ ग्रहण किया। अब इसे रोकने और उसे चलाने का उपाय गवर्न्मेंट की शरण बिना असंभव जान राजा साहब ने हाकिमों को उधर ही झुकाया। यही एक प्रधान कारण उस समय हिंदी राजभाषा न होने का भी हुआ था। यदि भाषा का झगड़ा न होकर अक्षरों ही का होता तो संभव था कि सफलता हो जाती।

इसके पीछे एजूकेशन कमीशन के समय भी इन्होने बड़ा उद्योग किया था। वे प्रयाग हिंदू समाज के पूरे सहायक थे जिसने इस विषय मे बड़ा उद्योग किया था।

गवर्न्मेंट का कोप

बाबू साहब का स्वभाव कौतुकप्रिय और रहस्यमय तो था ही। इन्होंने तरह तरह के पंच लिखने आरंभ किए। इधर हाकिमों के कान भरे जाने लगे। एक लेख 'लेवी प्राणलेवी' तो निकला ही था, जिसमे लेवी दर्बार मे हिंदुस्तानी रईसों की दुर्दशा का वर्णन था, दूसरा एक 'मर्सिया' निकला जिसका कटाक्ष सर विलियम म्योर पर घटाया गया। बस, फिर क्या था, बरसों की भरी भराई बात निकल पड़ी, गवर्न्मेंट की कोपदृष्टि इन पर पड़ी। इस लेख के कारण 'कविवचनसुधा', जो गवर्न्मेंट लेती थी वह, बंद किया गया। 'हरिश्चंद्रचंद्रिका' यह कहकर बंद की गई कि इसमे 'कवि-हृदय-सुधाकर' ऐसा घृणित ग्रंथ छपता है। उक्त ग्रंथ में एक यती और वेश्या का संवाद है। एक योग, ज्ञान आदि की बड़ाई करता और दूसरा भोग-विलास की। अंत में जय यती की हुई। यह उपदेशमय ग्रंथ कुरुचि-उत्पादक समझा गया। 'बालाबोधिनी' यह

कहकर बंद की गई कि आवश्यकता नही है। अँगरेजो मे चारो ओर इन्हे डिसलायल (राजविरोधी) कहकर धारणा होने लगी। इनका स्वाधीन और उन्नत हृदय इस लाछना को सहन न कर सका। पहले ते इन्होंने उद्योग किया कि इस अनुचित विचार को दूर करावे, परतु इसमे कृतकार्य न होने पर इन्होने राजपुरुषों से सारा संबंध छोड़ना ही उचित समझा, क्योंकि जिस व्रत को इन्होंने धारण किया था उसमे हाकिम-समागम से बहुत कुछ बाधा पडती थी। आनरेरी मैजिस्ट्रेटी आदि सरकारी कामो को छोड़ अपने उदार उद्देश्यो की ओर लगे। वास्तव मे जिन लोगो ने इनको अपदस्थ करना चाहा था, उन्होंने इस देश तथा स्वय उनके साथ बड़ा उपकार किया; क्योंकि यदि यह घटना न होती तो ये न तो 'भारतनक्षत्र' (स्टार आफ इंडिया) के बदले मे 'भारतेदु' (मून आफ इंडिया) होते, और न सच्चे सहृदय हरिश्चंद्र को पाकर यह देश ही इतना लाभ उठा सकता।

राजभक्ति

यहाँ कुछ विचार इसका भी करना आवश्यक है कि ये राजद्रोही थे या राजभक्त। यदि इनके लिखे 'भारतदुर्दशा' नाटक को विचारपूर्वक देखा जाय तो इस प्रश्न का उत्तर सहज मे मिल सकता है। उसमे स्पष्ट दिखला दिया है कि हाकिम लोग राजद्रोह उसे समझे हैं जो वास्तविक राजभक्ति है। केवल 'करदुख बहै' इतना कहना ही राजद्रोह का चिह्न समझा जाता है। इस बात को राजा शिवप्रसाद ने मुक्त कंठ से अपनी जुबिली की वक्तृता मे कह दिया है, परंतु राजभक्त भारतहितैषी हरिश्चद्र ऐसा कहना पूरी राजभक्ति का चिह्न समझते थे। वह प्रजा के दुखो को राजा

के कानों तक पहुँचाना राजहित समझते थे। जो व्यक्ति 'भारत-जननी,' 'भारतदुर्दशा' ग्रंथों मे जिनमे उसके राजनैतिक विचार स्पष्ट रूप से वर्णित हैं, मुक्तकंठ से यों कहता है—

"पृथीराज जयचद कलह करि यवन बुलायो।
तिमिरलग चंगेज आदि बहु नरन कटायो॥
अलादीन औरगजेब मिलि धरम नसायो।
विषय वासना दुसह मुहम्मदसह फैलायो॥
तब लों बहु सोए वत्स तुम जागे नहि कोऊ जतन।
अब तौ रानी विक्टोरिया, जागहु सुत भय छाँडि मन॥"

क्या वह कभी भी राजद्रोही हो सकता है जो यह कहकर—

"अँगेरज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी॥"

अपने देशवासियों को व्यापार की उन्नति करने को उत्तेजित करता है? इनके बलिया आदि के व्याख्यान, कविता, नाटक, लेखादि जिसे देखिएगा, उसमे ब्रिटिश शासन से भारत के कल्याण का प्रमाण मिलेगा। हाँ, इनकी बुद्धि में जो बातें प्रबध की त्रुटि के विषय की आतीं, उन्हे ये मुक्तकंठ से कह डालते और इस सुखमय शासन का वास्तविक लाभ जो अभागे भारतवासी नहीं उठाते, उस पर अवश्य परिताप करते थे। राजभक्त हरिश्चद्र अपनी सर्कार के दुःख और सुख को अपना दु ख और सुख मानते थे। कौन ऐसा अवसर था जब राजा के दु·ख मे दु.ख और सुख मे सुख इन्होंने नहीं प्रकाश किया। ड्यूक आए तब इन्होंने महामहोत्सव किया और 'सुमनों-जलि' भेट की। प्रिंस आफ वेल्स आए तब भारत की यावत् भाषाओं में कविता बनवाकर 'मानसोपायन' भेट किया। इँगलैंड की रानी ने जब भारत की सम्राज्ञी का पद ग्रहण किया, तब भी उन्होने महा-

महोत्सव किया और 'मनोमुकुलमाला' अर्पण की। काबुल-विजय पर 'विजयवल्लरी' बनी, मिस्र-विजय पर 'विजयिनी विजय वैजयंती' उड्डीयमाना हुई, प्रिंस या महारानी कोई राजपरिवार में रुग्न हुए तब उनकी आरोग्य कामना के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई, कविता बनी। जब महारानी किसी दुष्ट की गोली से बची तब इन्होने महामहोत्सव मनाया, जिसकी सराहना स्वय भारतेश्वरी ने की। जातीय संगीत (National Anthem) के लिये जो प्रतिष्ठित कमेटी बनी, उसके ये सभ्य हुए और उसका इन्होने अनुवाद किया। ड्यूक आफ अलबेनी की मृत्यु पर इन्होने शोकप्रकाशक महासभा की। प्रति वर्ष महारानी की वर्षगाँठ पर ये अपने स्कूल का वार्षिकोत्सव करते थे। निदान भारतेश्वरी के कोई सुख या दुःख का ऐसा अवसर न था जब इन्होंने अपनी सहानुभूति न प्रकाश की हो। हाँ साथ ही ये 'भारत-भिक्षा' ऐसे ग्रथो के द्वारा अपनी उदार सरकार से 'भिक्षा' अवश्य माँगते थे; वह चाहे भले ही राजद्रोह समझा जाय। यों तो विरोधियों को ड्यूक आफ अलबेनी के अकाल ग्रसित होने पर इनका शोक-प्रकाशक सभा करना भी राजद्रोह सुझाई पड़ा। उन महापुरुषो ने सभा को अपरिणामदर्शी हाकिम की सहायता से रोक दिया, जिसके लिये भारतेंदु से राजा शिवप्रसाद के द्वारा काशिराज से भी झगड़ा हो गया और बड़े बखेड़े के पीछे तब फिर से सभा हुई। हम इनकी राजभक्ति के विषय मे और कुछ नहीं कहा चाहते, वरन् इसका विचार पाठकों के ही उदार और न्यायपूर्ण निर्णय पर छोड़ते हैं।

समाज सुधार

हमारे पाठकों ने इन्हें उस समय के साहित्य-संसार, व्यावहारिक वा पारिवारिक संसार और राजकीय संसार में देखा, अब कुछ सामाजिक

संसार में भी देखे। इन्होंने हिंदू समाज की वैश्य-अग्रवाल जाति मे जन्म ग्रहण किया था और धर्म श्रीवल्लभीय वैष्णव था। जो समय इनके उदय का था वह इस प्रांत मे एक विलक्षण संधि का समय था। एक ओर पुरानी लकीर के फकीरो का जोर, दूसरी ओर नव्य समाज की नई रोशनी का विकास। पुराने लोग पुरानी बातों से तिलमात्र भी हटने से चिढ़ते और नास्तिक, किरिस्तान, भ्रष्ट आदि की पदवी देते, नए लोग एकबारगी पुराने लोगो और पुरानी रीति नीति को रसातल भेज, ईश्वर के अस्तित्व मे भी संदेह करनेवाले थे। हरिश्चद्र इन दोनों के बीच विषम समस्या मे पड़े। प्राचीन मर्यादावाले बड़े घराने मे जन्म लेने के कारण प्राचीन लोग इन्हे जामा पगड़ी पहिना तिलक लगाकर परंपरागत चाल की ओर ले जाना चाहते थे। और नवीन संप्रदाय इनकी बुद्धि का विकास तथा रुचि का प्रवाह देखकर इनसे प्राचीन धर्म और प्राचीन संप्रदाय को तिरस्कृत करने की आशा करते थे। परंतु दोनों ही अंशत निराश हुए। इनका मार्ग ही कुछ निराला था। इन्हे गुण से पयोजन था, ये सत्य के अनुगामी थे। किसी का भी क्यो न हो, दोष देखा और मुक्तकठ हो कह दिया; असत्य का लेश आया और पूर्ण विरोधी हुए। हिंदू जाति, हिंदू धर्म, हिंदू साहित्य इनको परम प्रिय था। श्रीवल्लभीय वैष्णव संप्रदाय के पूरे अनुगामी थे। जाति-भेद को मानकर अपनी वैश्य जाति के ऊपर पूर्ण प्रेम रखते थे, परंतु साथ ही बुरी बातों की निंदा डंके की चोट कर देते थे, नि.शंक होकर ऐसे ऐसे वाक्य लिख देते थे—

"रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माहि घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगट चलाए॥

.. . ...

विधवा ब्याह निषेध कियो विभिचार प्रचारयो॥

रोकि विलायत गमन कूप-मडूक बनायो।
औरन को ससर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो॥
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सो सब विमुख किए हिंदुन घबराई॥
अपरस सोल्हा छूत रचि भोजन प्रीति छुड़ाय।
किए तीन तेरह सबै चौका चौका लाय" ॥

"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" मे लिख दिया—

"पियत भट्ट के ठट्ट अरु गुजरातिन के बृ द।
गौतम पियत अनद सों पियत अग्र के नद ॥"

"प्रेमयोगिनी" में मदिरों तथा तीर्थवासी ब्राह्मण आदि का रहस्योद्घाटन पूरी रीति पर कर दिया। "अँगरेज-स्तोत्र" लिखा, जिसका अपढ़ समाज मे उलटा फल फला कि यह तो 'किरिस्तान' हो गए। जैनमंदिर मे जाने के कारण लोग नास्तिक, धर्मबहिर्मुख कहकर निंदा करने लगे (इसी पर "जैन-कुतूहल" बना)। नवीन वयस, रसिकतामय स्वभाव, विलासप्रियता, परम स्वतत्र प्रकृति—निदान चारों ओर से लोग इनकी चाल व्यवहार पर आलोचना करते और कटाक्षों और निंदा की बौछारों का ढेर लगा देते थे। कोई कहता "दुइ चार कवित्त बनाय लिहिन, बस हो गया", कोई कहता "पढ़िन का है दुइ चार बात सीख लिहिन, किरिस्तानी मते की"। ऐसी बातों से हरिश्चद्र का हृदय व्यथित होता था। उन्होने निज चरित्र तथा उस समय की अवस्था दिखाने के लिये "प्रेम-योगिनी" नाटक लिखना आरंभ किया था जो अधूरा ही रह गया, परंतु उस उतने ही से उस समय का बहुत कुछ पता लगता है। उसमे इन्होने अपने मन का क्षोभ दिखलाया है। इस इतने विरोध और निंदावाद पर भी आश्चर्य की बात

यह है कि लोग इन्हे अजातशत्रु कहते हैं और यह उपाधि इनकी सर्ववादिसम्मत है ।

आदि कविता

अब हम सत्तेपत. इनके उन कामो का वर्णन करते हैं जिन्होंने इन्हे लोकप्रिय बनाया । यह हम ऊपर कह ही आए हैं कि इन्होंने अत्यंत बाल्यावस्था से कविता करनी आरंभ की थी । अब इनकी कुछ आदि कविताएँ उद्धृत करते हैं । सबसे पहला पद यह बनाया—

"हम तो मोल लिए या घर के ।
दास दास श्री वल्लभकुल के चाकर राधावर के ॥
माता श्री राधिका पिता हरि बंधु दास गुनकर के ।
हरीचद तुमरे ही कहावत, नहि विधि के नहि हर के ॥"

सबसे पहली सवैया यह है—

"यह सावन सोक नसावन है, मन भावन यामे न लाजै भरो ।
जमुना पैं चलौ सु सबै मिलि कै, अरु गाइ बजाइ के सोक हरो ॥
इमि भाषत हैं हरिचद पिया, अहो लाडिली देर न यामे करो ।
बलि झूलो झुलाओ झुको उझको, एहि पाखैं पतिव्रत ताखैं धरो ॥"

सबसे पहली ठुमरी यह बनाई—

"पछितात गुजरिया घर मे खरी ॥
अब लग श्यामसुंदर नहि आए दुखदाइन भई रात अँधरिया ।
बैठत उठत सेज पर भामिनि पिया बिना मोरी सूनी सेजरिया ॥"

सबसे पहले अपने पिता का बनाया ग्रथ "भारतीभूषण" शिला-यत्र (लीथोग्राफ़) मे छपवाया । सब से पहला नाटक "विद्यासुंदर" बनाया ।

नवीन रसों की कल्पना

इनकी बुद्धि का विकास अत्यत अल्प वय मे ही पूरा पूरा हो गया था। संस्कृत मे कविता रचने की सामर्थ्य थी, समस्यापूर्ति बात की बात मे करते थे। उस समय की इनकी समस्याएँ "कवि-वचन सुधा" तथा मेगजीन मे प्रकाशित हुई हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। सबसे बढकर आश्चर्य की घटना सुनिए। पंडित तारा-चरण तर्करत्न काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर के सभा-पंडित थे, कविताशक्ति इनकी परम आदरणीय थी। ऐसे कवि इस समय कम होते हैं। विद्वान् ऐसे थे कि स्वामी दयानंद सरस्वती सरीखे विद्वान् से इनका शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। उन पडितजी ने "शृगाररत्नाकर" नामक सस्कृत मे शृंगाररस-विषयक एक काव्य-ग्रथ काशिराज की आज्ञा से सवत् १६१६ (सन् १८६२) मे बनाकर छपवाया है। उस समय बालक हरिश्चद्र की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी, परंतु इस बालकवि की प्रखर बुद्धि ने प्रौढ कवि तर्करत्न को मोहित कर लिया था, उन्हे भी इनकी युक्ति-युक्त उक्तियों को आदर के साथ मान्य करके अपने ग्रथ मे लिखना पड़ा था। साहित्यकारों ने सदा से नव ही रसों का वर्णन किया है, परंतु हरिश्चंद्र की सम्मति मे ४ रस और अधिक होने चाहिएँ। वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनद रस अधिक मानते थे। इनका कथन था कि इन चारों का भाव शृगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत और शांत, इन नवों रसों मे से किसी में समाविष्ट नही होता, अतएव इन चारो को पृथक् रस मानना चाहिए। इनके अकाट्य प्रमाणो से मुग्ध होकर तर्करत्न महाशय ने अपने उक्त ग्रथ मे लिखा है "हरिश्चद्रस्तु वात्सल्यसख्यभक्त्यानंदाख्यमधिकं रस-चतुष्टयं मन्यते"। आगे चलकर इन्होने उदाहरण भी दिए हैं। यों ही

शृगार रस मे भी ये अनेक सूक्ष्म भेद मानते थे, जैसे ईर्षामान के दो भेद, विरह के तीन, शृंगार के पाँच, नायिका के पाँच. और गर्विता के आठ, यों ही कितने ही सूक्ष्म विचार हैं जिनको तर्करत्न महाशय ने सोदाहरण इनके नाम से अपने उक्त ग्रथ मे मानकर उद्धृत किया है। इनके इन नए मतों पर उस समय पडितमडली मे बहुत कुछ लिखा-पढी हुई थी, इसका आंदोलन कुछ दिनो तक, सुप्रसिद्ध "पंडित" पत्र मे, जो "काशी-विद्या-सुधानिधि" के नाम से सस्कृत कालेज से निकलता है, चला था। खेद का विषय है कि इस विषय का पूरा निराकरण वह किसी अपने ग्रथ मे न कर सके। उनकी इच्छा थी कि अपने पिता के अधूरे ग्रथ "रसरत्नाकर" को पूरा करे और उसी मे इस विषय को लिखे। इसे उन्होने आरंभ भी किया था और नाम मात्र को थोड़ा सा "हरिश्चद्र मैगजीन" के ७-८ अक मे प्रकाशित भी किया था कि जिसको देखने ही से बटुए के एक चावल की भाँति पूरे ग्रंथ का पता लगता है। परतु उनकी यह इच्छा मन की मन ही मे रह गई और इसमे उन्होने अपने उस बड़े दोष को प्रत्यक्ष कर दिखाया जिसे स्वय ही "चद्रावली नाटिका" की प्रस्तावना मे पारिपार्श्वक के मुख से कहलाया था कि "वह तो केवल आरंभ-शूर है"। बाबू साहब ने इन रसों का कुछ सक्षिप्त वर्णन अपने "नाटक" नामक ग्रथ मे किया है। अस्तु, जो कुछ हो, परंतु ऐसे गभीर विषय पर एक १२ वर्ष के बालक का मत प्रकाश करना और एक बड़े पंडित को मना देना क्या आश्चर्य की बात नहीं है?

काशी में होमियोपैथिक का प्रचार

होमियोपैथिक चिकित्सा का नाम तक काशी मे कोई नहीं जानता था, पहले पहल इन्होने ही अपने घर मे इसे आरंभ किया

और इसके चमत्कारिक गुणों से मोहित हो "होमियोपैथिक दातव्य चिकित्सालय" (सन् १-६८) स्थापित कराया, जिसमे बराबर तन मन धन से ये सहायता देते रहे। इस चिकित्सालय मे १२०) वार्षिक चदा सन् १८६८ से ७३ तक देते रहे। बाबू लोकनाथ मैत्र बगाल के प्रसिद्ध होमियोपैथिक चिकित्सक थे, वही पहले डाक्तर काशी मे आए और उनसे भारतेंदु जी से बड़ा बंधुत्व था। इनके पीछे डाक्तर ईश्वरचंद्र राय चौधरी इनके चिकित्सक थे। अंत मे भी इन्ही की दवा होती थी। इन्हें भारतेंदु जी सदा नागरी अक्षर और बंग-भाषा मे पत्र लिखा करते थे।

"कविता-वर्द्धिनी सभा"

"कविता-वर्द्धिनी सभा" वा कवि सभा का जन्म सवत् १-६२७ मे हुआ था जिससे कितने ही गुणियों का मान बढ़ाया जाता था और कितने ही कवियों को प्रशसापत्र दिए जाते थे, कितने ही नवीन कवि प्रोत्साहित करके बनाए जाते थे। पंडित अंबिकादत्त व्यास साहित्याचार्य को 'पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवी रहौ विकटोरिया रानी" पूर्ति पर प्रशसापत्र तथा सुकवि की पदवी दी गई थी, जिसका प्रभाव उक्त पंडित जी पर कैसा कुछ हुआ यह उनके चरित्रालोचन ही से प्रगट है। उस समय कवियों का अभाव नही था; सेवक, सरदार, नारायण, हनुमान, दीनदयाल गिरि, दत्त (पंडित दुर्गादत्त गौड़), द्विज मन्नालाल, आदि अच्छे अच्छे कवि जीवित थे, प्राय: सभी आते और विलक्षण समागम होता था। इससे जो प्रशंसापत्र दिया जाता था वह यह था—

प्रशंसापत्र

यह प्रशसापत्र को कवि सभा की ओर से इस हेतु दिया जाता है कि आज की समस्या को (जो, पूर्ण करने के हेतु दी गई थी) इन्होंने उत्तमता से पूर्ण किया और दत्त विषय की कविता इनने प्रशंसा के योग्य की है इस हेतु मिती की काव्यवर्द्धिनी सभा के सभापति, सभाभूषण, सभासद और लेखाध्यक्षों ने अत्यत प्रसन्नतापूर्व्वक आदर से इनको यह पत्र दिया है।

मि० सवत् १९२७

ह० ह०

सभापति लेखाध्यक्ष

मुशायरा

यद्यपि ये हिंदी के जन्मदाता और उर्दू के शत्रु कहे जाते हैं, परतु गुण ग्रहण करने मे शत्रु मित्र का विचार नहीं करते थे। उर्दू कवियों के प्रोत्साहन के लिये सन् १२८४ हिज्री (सन् १८६६ ई०) मे इन्होंने "मुशाइरा" स्थापित किया था, जिसमें उस समय के शाइर इकट्ठे होते और समस्या-पूर्ति करते। स्वयं बाबू साहब भी कविता (उर्दू) करते थे। अपना नाम उर्दू कविता मे "रसा" (पहुँचा हुआ) रखते थे।

धर्मसभा तथा तदीय समाज

काशिराज महाराज की ओर से काशी मे "धर्मसभा" संस्थापित हुई थी। इसके द्वारा परीक्षाएँ होती थीं, अनेक धर्म-कार्य होते थे, इसके ये संपादक और कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए थे।

संवत् १६३० मे इन्होंने "तदीय समाज" स्थापित किया था। यद्यपि यह समाज प्रेम और धर्म सबंधी था, परन्तु इससे कई एक बड़े बड़े काम हुए थे। इसी समाज के उद्योग से दिल्ली दर्बार के समय गवर्न्मेंट की सेवा मे सारे भारतवर्ष की ओर से कई लाख हस्ताक्षर कराके गोवध बंद करने के लिये अर्जी गई थी। गोरक्षा के लिये 'गोमहिमा' प्रभृति ग्रंथ लिखकर बराबर ही आंदोलन मचाते रहे। लोग स्थान स्थान मे 'गोरक्षिणी सभाओं' तथा गोशालाओं के स्थापित होने के सूत्रधार मुक्तकठ से इनको और स्वामी दयानद सरस्वती को मानते हैं। इस समाज ने हजारों ही मनुष्यों से प्रतिज्ञा लेकर मद्य और मास का व्यवहार बंद कराया था। उस समय तक यहाँ कहीं Total Abstinence Society का जन्म भी नहीं हुआ था। इस समाज की ओर से हजारो पुस्तके दो प्रकार की चेक बही की भाति छपवाकर बॉटी गई थीं, जिनमे से एक पर दो साक्षियों के सामने शपथपूर्वक प्रतिज्ञा लिखाई जाती थी कि मैं इतने काल तक शराब न पीऊँगा और दूसरे पर मांस न खाने की प्रतिज्ञा थी। कुछ दिन तक इसका बड़ा जोर था। इस समाज ने बहुत से लोगों से प्रतिज्ञा कराई थी कि जहाँ तक सभव होगा वे देशी पदार्थों ही का व्यवहार करेंगे। स्वयं भी इस प्रतिज्ञा का पालन यथासाध्य करते रहे। इस समाज से "भगवद्भक्ति-तोषिणी" मासिक पत्रिका भी निकली थी जो थोड़े ही दिन चलकर बद हो गई। इस समाज के नियमादि विशेष रोचक हैं इसलिये प्रकाशित किए जाते हैं।

इस समाज को मि० श्रावण शुक्ल १३ बुधवार सं० १६३० को आरंभ किया था। इसके नियम ये थे—

१ श्री तदीय समाज इसका नाम होगा।

२　यह प्रति बुधवार को होगा ।

३　कृष्णपक्ष की अष्टमी को भी होगा ।

४　प्रत्येक वैष्णव इस समाज मे आ सकते हैं परतु जिनका शुद्ध प्रेम होगा वे इसमे रहेगे ।

५　कोई आस्तिक इस समाज मे आ सकता है पर जब एक सभासद उसके विषय मे भली भाँति कहेगा ।

६　जो कुछ द्रव्य समाज मे एकत्रित होगा धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया जायगा ।

७ समाज क्या करेगा—

(क) समाज का आरभ किसी प्रेमी के द्वारा ईश्वर के गुणानुवाद से होगा ।

(ख) गुरुओं के नामों का संकीर्तन होगा ।

(ग) एक वक्ता कोई सभासद गत समाज के चुने हुए विषय पर कहेगा ।

(घ) एक अध्याय श्री गीता जी का और श्रीमद्भागवत दशम का एक अध्याय, पढे जायँगे ।

(ङ) समाज की समाप्ति मे नाम-सकीर्तन होगा और दूसरे समाज के हेतु विषय नियत किया जायगा और अंत मे प्रसाद बँटेगा ।

८　इसके और भी क्रम सामाजिकों की आज्ञा से बढ़ सकते हैं ।

९　यद्यपि इस समाज से जगत् और मनुष्यों से कुछ संबंध नहीं तथापि जहाँ तक हो सकेगा शुद्ध प्रेम की वृद्धि करेगा और हिसा के नाश करने मे प्रवृत्त होगा ।

इसके ये महाशय सभासद थे, १ श्री हरिश्चद्र २ राजा भरतपूर (राव श्री कृष्णदेवशरण सिंह,—अच्छे कवि और विद्वान् थे)

३ श्री गोकुलचंद्र ४ दामोदर शास्त्री (संस्कृत हिंदी के प्रसिद्ध कवि) ५ तिलवणकर (?) ६ तारकाश्रम (अच्छे विरक्त थे) ७ प्रयागदत्त (सच्चरित्र ब्राह्मण थे) ८ शुकदेव मिश्र (श्री गोपाललाल जी के मदिर के कीर्तनिया) ९ हरीराम (प्रसिद्ध वीणकार वाजपेयी जी) १० व्यास गणेशराम जी (श्रीमद्भागवत के अच्छे वक्ता थे, बड़े उत्साही थे, भागवत सभा, कान्यकुब्ज पाठशाला के संस्थापक थे) ११ कन्हैया-लाल जी (बाबू गोपालचद्र जी के सभासद) १२ शाह कुंदनलाल जी (श्री वृंदावन के प्रसिद्ध कवि और महानुभाव) १३ मिश्र राम-दास (?) १४ बाबा जी (?) १५ विट्ठल भट्ट जी (बड़े विद्वान् और भावुक वक्ता थे) १६ गोरजी (प्रसिद्ध तीर्थोद्धारक गोरजो दीक्षित) १७ रामचद्र पंत (?) १८ रघुनाथ जी (जंबू राजगुरु बड़े विद्वान् और गुणी थे) १९ शीतल जी (काशी गवर्नमेट कालिज के सुप्रसिद्ध अध्यापक, पंडित-मडली मे मुख्य और सस्कृत हिंदी के कवि) २० बेचनजी (गवर्नमेंट कालिज के प्रधानाध्यापक, पडित मात्र इन्हे गुरुवत् मानते थे और अग्रपूजा इनकी होती थी, महान् विद्वान् और कवि थे) २१ बीसू जी (काशी के प्रसिद्ध रईस, परम वैष्णव और सतसगी) २२ चिंतामणि (कविवचन-सुधा के सपादक) २३ राघवाचार्य (बडे गुणी थे) २४ ब्रह्मदत्त (परम विरक्त ब्राह्मण थे) २५ माणिक्यलाल (अब डिपटी कलकटर हैं) २६ रामायण-शरण जी (बड़े महानुभाव थे, समग्र तुलसी-कृत रामायण कंठ थी, पचासों चेले लिए रामायण गाते फिरते थे, बड़े सुकंठ थे, काशिराज बड़ा आदर करते थे, काशी के प्रसिद्ध महात्माओं मे थे) २७ गोपालदास २८ वृंदावन जी २९ बिहारीलाल जी ३० शाह फुंदनलाल जी (शाह कुंदनलाल जी के भाई, बड़े महानुभाव थे) ३१ पंडित राधाकृष्ण, लाहौर (पंजाब केशरी महाराज रणजीतसिंह

के गुरु पडित मधुसूदन के पौत्र, लाहौर कालिज के चीफ पंडित) ३२ ठाकुर गिरिप्रसाद सिह (वेसवाँ के राजा, बड़े विद्वान् और वैष्णव थे) ३३ श्री शालिग्रामदास जी लाहौर (पंजाब मे प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं, सुकवि थे) ३४ श्री श्रीनिवासदास लाहौर ३५ परमेश्वरीदत्त जी (श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध वक्ता थे) ३६ बाबू हरिकृष्ण दास (श्री गिरिधरचरितामृत आदि ग्रथों के कर्त्ता) ३७ श्री मोहन जी नागर ३८ श्री बलवतराव जोशी ३९ व्रजचद्र (सुकवि हैं) ४० छोटूलाल (हेडमास्टर हरिश्चंद्र स्कूल) ४१ रामू जी।

इसमे बिना आज्ञा कोई नही आने पाता था। काशी के प्रसिद्ध जज पंडित हीराचद चौबे जी के वशधर पंडित लोकनाथ जी ने जो स्वयं बडे कवि थे, नाथ नाम रखते थे, टिकट मिलने के लिये यह दोहा लिखा था।

"श्री व्रजराज समाज को तुम सुदर सिरताज।
दीजै टिकट नेवाज करि नाथ हाथ हित काज॥"

(२२ जनवरी १८७४)

स्वयं इस समाज मे तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव की पदवी ली थी। उसका प्रतिज्ञा-पत्र यहाँ प्रकाशित होता है—

"हम हरिश्चंद्र अगरवाले श्री गोपालचंद्र के पुत्र काशी चौखंभा महल्ले के निवासी तदीय समाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव का पद स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों का आजन्म मानना स्वीकार करते हैं।

१ हम केवल परम प्रेममय भगवान् श्री राधिकारमण का ही भजन करेगे।

२ बड़ो से बड़ी आपत्ति मे भी अन्याश्रय न करेगे।

३ हम भगवान् से किसी कामना के हेतु प्रार्थना न करेगे और न किसी और देवता से कोई कामना चाहेगे।

४ जुगल स्वरूप मे हम भेद दृष्टि न देखेगे।

५ वैष्णव मे हम जाति-बुद्धि न करेगे।

६ वैष्णव के सब आचार्य्यों मे से एक पर पूर्ण विश्वास रखेंगे परंतु दूसरे आचार्य्य के मत विषय मे कभी निंदा वा खंडन न करेगे।

७ किसी प्रकार की हिंसा वा मांस भक्षण कभी न करेगे।

८ किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खायँगे न पीयेंगे।

९ श्रीमद्भगवद्गीता और श्री भागवत को सत्य शास्त्र मानकर नित्य मनन शीलन करेगे।

१० महाप्रसाद मे अन्न बुद्धि न करेगे।

११ हम आमरणांत अपने प्रभु और आचार्य पर दृढ़ विश्वास रखकर शुद्ध भक्ति के फैलाने का उपाय करेगे।

१२ वैष्णव मार्ग के अविरुद्ध सब कर्म करेगे और इस मार्ग के विरुद्ध श्रौत स्मार्त वा लौकिक कोई कर्म न करेगे।

१३ यथाशक्ति सत्य शौच दयादिक का सर्वदा पालन करेगे।

१४ कभी कोई वाद जिससे रहस्यउद्घाटन होता हो अनधिकारी के सामने न कहेगे। और न कभी ऐसा वाद अवलंबन करेगे जिससे आस्तिकता की हानि हो।

१५ चिह्न की भाँति तुलसी की माला और कोई पीत वस्त्र धारण करेगे।

१६ यदि ऊपर लिखे नियमो को हम भग करेगे तो जो अपराध बन पड़ेगा हम समाज के सामने कहेगे और उसकी क्षमा चाहेगे और उसकी घृणा करेगे।

मिती भाद्रपद शुक्ल ११ सवत् १९३०

हरिश्चद्र

साक्षी

पं० बेचनराम तिवारी	हस्ताक्षर तदीय नामांकित अनन्य
पं० ब्रह्मदत्त	वीर वैष्णव
चिंतामणि	यद्यपि मैंने लिख दिया है तथापि
दामोदर शर्मा	इसकी लाज तुम्हीं को है
शुकदेव	(निज कल्पित अक्षर मे)
नारायणराव	मुहर तदीय समाज
माणिक्यलाल जोशी शर्मा	

लोक-हितकर सभा आदि

इस समाज के अतिरिक्त "हिंदी डिबेटिंग क्लब", "यंग मेंस एसोसिएशन", "काशी सार्वजनिक सभा", "वैश्यहितैषिणी सभा", अदालतों मे हिंदी जारी कराने के लिये सभाएँ आदि कितनी ही सभा सोसाइटिएँ इन्होने स्थापित की थीं कि जिनका अब पूरा पूरा पता तक नहीं लगता।

इन अपनी सभा सोसाइटियों के अतिरिक्त जितने ही देशहित-कर तथा लोकहितकर कार्य होते थे सभो मे ये मुख्य सहायक रहते थे। "बनारस इंस्टिट्यूट" के ये संस्थापकों मे से थे। इस 'इंस्टिट्यूट' मे इनसे और राजा शिवप्रसाद से प्राय: चोट चलती थी। "कारमाइकल लाइब्रेरी" तथा "बाल-सरस्वती-भवन" के

संस्थापन मे प्रधान सहायक थे, हजारों ही ग्रंथ दिए थे। "काशी-पत्रिका", "भारतमित्र", "मित्रविलास", "आर्यमित्र" आदि यावत् प्राचीन हिंदी पत्रो को प्रोत्साहन तथा लेखादि सहायता द्वारा जन्म देने के ये प्रधान कारण थे। खानदेश के अकाल में सहायता देने के लिये ये बाजार मे खप्पर लेकर भीख माँगते फिरे थे, हजारों ही रुपए उगाह कर भेजे थे। काशी के कंपनी बाग मे लोगों के बैठने को लोहे की बेचे अपने व्यय से रखवाई थी। मणिकर्णिका कुंड मे हजारों यात्री गिरा करते थे, उसमे लोहे का कटघरा अपने व्यय से लगवा दिया। माधोराय के प्रसिद्ध धरहरे पर छड़ नही लगे थे, जिससे कभी कभी मनुष्य गिरकर चूर हो गए हैं, उस पर छड़ अपने व्यय से लगवाया। इन कामो के लिये म्यूनिसिपैलिटी ने धन्यवाद दिया था। म्यो मेमोरिअल मे १५००) रु० दिया था। फ्रांस और जर्मन की लड़ाई का इतिहास तथा सर विलियम म्योर की जीवनी, गोरक्षा पर उपन्यास आदि कितने ही ग्रथरचना के लिये पारितोषिक नियत किया था। प्रात.स्मरणीया मिस मेरी कारपेंटर के स्त्रीशिक्षा संबधी उद्योग मे प्रधान सहायक थे। विवाह आदि मे अपव्ययता कम करने के आन्दोलन के सहकारी थे। मिस्टर शेरिंग डाक्टर हार्नली, डाक्टर राजेद्रलाल मित्र, पडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर प्रभृति कितने ही ग्रंथकारों के कितने ही ग्रंथों की रचना मे ये सहायक रहे हैं, जिन्हे उन्होंने निज ग्रथो मे धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया है। थिआसोफिकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नेल आलकाट और मैडेम ब्लैवेट्स्की का काशी मे जब जब आना हुआ तब तब ये उनके सहायक रहे। अपने स्कूल के छात्र दामोदरदास के बी० ए० पास करने पर सोने की घड़ी और काशी संस्कृत कालेज से आचार्य परीक्षा मे पहले पहल जितने लडके पास हुए थे सभो को घड़िएँ

पारितोषिक दी थी। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रांतो मे जितनी लड़कियाँ अँगरेजी परीक्षाओं मे उत्तीर्ण हुई थी सभी को शिक्षाविभाग द्वारा साडिएँ पारितोषिक दी थी। इनमे से कलकत्ता बेथुन कालेज की लडकियों को जो साडिएँ भेजी गई थी उन्हे श्रीमती लेडी रिपन ने अपने हाथ से बाँटा था। बगाल के डाइरेक्टर सर आलफ्रेड क्राफ्ट साहब ने लिखा था कि जिस समय श्रीमती ने हर्षपूर्वक यह आपका उपहार कन्याओं को दिया था, उस समय आनंदध्वनि से सभास्थल गूँज उठा था। ब्राह्म विवाह पर जिस समय कानून बन रहा था उस समय इन्होने जो सहायता दी थी उसके लिये उक्त समाज के नेता स्वर्गीय केशवचंद्र सेन ने अपने पत्र द्वारा हृदय से इन्हे धन्यवाद दिया था। सन् १८८२ ई० मे भारतबंधु लार्ड रिपन के समय मे जो इलबर्ट बिल का आंदोलन उठा था उसे इन्होंने अपने "काल-चक्र" मे "आर्यों मे ऐक्य का संस्थापन (इलबर्ट बिल) सन् १८८३" लिखा था। वास्तव मे उसी समय से हिंदुस्तानियों मे कुछ ऐक्य का बीजारोपण हुआ। उस समय सुप्रसिद्ध बाबू सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने एक "नैशनल फंड" स्थापित किया था, उसके लियं वह काशी भी आए थे, ये उसके प्रधान सहायक हुए और बाबू सुरेंद्रनाथ को एक "ईवनिंग पार्टी" भी दी थी। इसके पीछे ही "नैशनल कांग्रेस" का जन्म हुआ, अत. यह आंदोलन भी उसी मे विलीन हो गया। जिस समय सर विलियम म्योर के स्वागत मे काशी मे गगातट पर रोशनी हुई थी उस समय इन्होंने एक नाव पर Oh Tax और दूसरी पर—

"स्वागत स्वागत धन्य प्रभु, श्री सर विलियम म्योर।
टिकस छोडावहु सबन को, बिनय करत कर जोर ॥"

यह रोशनी में लिखवाया था। निदान जितने ही देश-हितकर तथा लोक-हितकर कार्य होते सभी मे ये जी-जान से सहायक होते थे।

श्री मुकुंदराय जी के छप्पन भोग के उत्सव के निमित्त ११००) रु० की सेवा की थी। स्ट्रेंजर्स होम, सोलजर्स सोसाइटी, जौनपुर की बाढ़ की सहायता, आदि जो अवसर आते उनमे ये मुक्तहस्त हो सहायता करते थे।

प्रसिद्ध बग कवि हेमचद्र बनर्जी, राजकृष्ण राय, द्वारिकानाथ विद्याभूषण, बकिमचद्र चटर्जी, पजाब यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार तथा हिंदी के सुलेखक नवीनचंद्र राय, हिंदू-पेट्रियट-सपादक कृष्णदास पाल, रईस-रैयत-सपादक डाक्तर शभुचंद्र मुकर्जी, पूना-सार्वजनिक सभा के सस्थापक गणेश वासुदेव जोशी, बंबई के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्तर भाऊ दाजी और पंजाब के प्रसिद्ध रईस और विद्यारसिक सर अतरसिंह भदौड़िया आदि से इनसे विशेष स्नेह था और इनके कामो मे वे बराबर सहायक होते थे।

गुणियो का आदर

यह हम ऊपर कह आए हैं कि गुणियों का आदर और गुण-ग्राहकता इनका स्वभाव था। काशी मे कोई गुणी आकर इनसे आदर पाए बिना नही जाता था। कवियों के तो ये कल्पतरु थे। कवि परमानंद को बिहारी सतसई के संस्कृत अनुवाद करने पर ५००) पारितोषिक दिया था। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदीजी को निम्नलिखित दोहे पर १००) और अँगरेजी रीति पर अपनी जन्मपत्री बनवाकर ५००) दिया था—

"राजघाट पर बँधत पुल जहॉ कुलीन की ढेर।
आज गए कल देख के आजहि लौटे फेर॥"

इस प्रकार से कितनों का क्या क्या सत्कार किया इसका ठिकाना नही। परंतु कुछ गुणियो के गुण का यहाँ पर वर्णन करना परमावश्यक है, क्योंकि ऐसे अद्भुत गुणों का भारतवासियों मे होना

परम गौरव की बात है। अब वे गुणी नहीं हैं, परतु उनकी कीर्ति इतिहास मे रहनी चाहिए। सुप्रसिद्ध विद्वान् भारतमार्तंड श्री गट्टू-लालजा की विद्वत्ता, आशु कविता और शतावधान आदि आश्चर्य शक्तियाँ जगत्-प्रसिद्ध हे, इसका वर्णन निष्प्रयोजन है। इन गट्टू-लालजो के सम्मान मे इन्होने काशी मे महती सभा की थी, जिसमे यूरोपीय विद्वान् भी आकर अचभित हुए थे। एक दक्षिणी विद्वान् आए थे, इनका नाम नारायण मार्तंड था, इनकी गणित मे विलक्षण शक्ति थी, गणित के ऐसे बड बड़े हिसाब, जिनको अच्छे अच्छे विद्वान् पॉच चार दिन के परिश्रम मे भी नहीं कर सकते उन्हे, यह पॉच मिनिट के भीतर करते थे और विशेषता यह थी कि उसी समय कोई उनके साथ ताश खेलता, कोई शतरंज, कोई चौसर, कोई उनको बकवाता और तरह तरह के प्रश्न करता जाता परतु इन सब कामो के साथ ही वह मन ही मन हिसाब भी कर डालते और वह हिसाब अभ्रांत होता। इनका बाबू साहब के कारण काशी मे बडा आदर हुआ। काशिराज ने भी इन्हे आदर दिया था। एक मद्रासी ब्राह्मण वेकट सुप्पैयाचार्य आए थे, इनका गुण दिखाने के लिये अपने बाग रामकटोरा मे सभा की थी। उसमे बनारस कालिज के प्रिंसिपल ग्रिफिथ साहब तथा अन्य यूरोपीय और देशीय सज्जन एकत्र थे। धनुर्विद्या के आश्चर्य गुण इन्होंने दिखाए। अपनी आँखों मे पट्टी बॉधकर उस तीक्ष्ण तीर से जिससे लोहे की मोटी चादरों मे छेद हो जाय, एक व्यक्ति की आँख पर तिनका बाँधकर उसमे मोम से दुअन्नी चपकाकर केवल शब्द पर बाण मारा, दुअन्नी उड गई और तिनका ज्यों का त्यों रहा; जैसे अर्जुन ने महाभारत मे जयद्रथ का सिर तीरों के द्वारा उड़ाकर उसके पिता के हाथ मे गिराया था, वैसे ही इन्होंने एक नारंगी को तीरों के द्वारा उड़ाया

और लगभग तीस चालीस कोस की दूरी पर खड़े एक मनुष्य के हाथ मे गिरा दिया, अँगूठी को कूए मे फेंककर बीच ही से तीरों के द्वारा रहट की भाँति उसे बाहर ला गिराया, निदान ऐसे ही आश्चर्य तमाशे किए थे। यूरोपियनों ने मुक्तकंठ हो कहा था कि महाभारत मे लिखी बाते इसको देखकर सच्ची जान पड़ती हैं। एक पहलवान तुलसीदास बाबा आए थे, इनका कौतुक नार्मल स्कूल मे कराया था। हाथी बाँधने का सूत का रस्सा पैर के अँगूठे मे बाँधकर तोड डालते, मोटे से मोटे लोहे के रभो को मोम की बत्ती की तरह दोहरा कर देते, दो कुर्सियों पर लेटकर छाती को अधड़ में रखकर उस पर छ इंच मोटा पत्थर तोडवा डालते, नारियल को जटा सहित सिर पर मारकर तोड डालते, निदान मानुषी पौरुष की पराकाष्ठा थी। पडितवर बापूदेव शास्त्री जी को नवीन पंचांग की रचना पर दुशाले आदि से पुरस्कृत किया था।

प्रसिद्ध वीणकार हरीराम वाजपेयी कितने ही दिनो तक इनसे ५०) रु० मासिक पाते रहे। निदान अपने वित्त से बाहर गुणियों का आदर करते। इनके अत्यन्त कष्ट के समय मे भी कोई गुणी इनके द्वार से विमुख न जाता।

पुरातत्त्व

पुरातत्त्व के अनुसंधान की ओर इनकी पूरी रुचि थी। इनके द्वारा डाक्तर राजेंद्रलाल मित्र को बहुत कुछ सहायता मिलती थी। इनके आविष्कृत कितने ही लेख "एशियाटिक सोसाइटी" के 'जर्नल तथा प्रोसीडिंग' में छपे हैं। इनके पुस्तकालय की प्राचीन पुस्तको से उक्त सोसाइटी को बहुत कुछ सहायता मिलती थी। गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित संस्कृत-ग्रंथों की सूची तथा पुरातत्त्व संबंधी ग्रंथ इन उपकारों के बदले गवर्नमेंट इन्हे उपहार देती थी। इन्होने एक

अत्यत प्राचीन भागवत को 'एशियाटिक सोसाइटी' मे उपस्थित करके इस बात का निर्णय करा दिया कि श्रीमद्भागवत बोपदेव कृत नही है। प्राचीन सिक्कों और अशर्फियों का संग्रह भी अमूल्य किया था, परंतु खेद का विषय है कि किसी लोभी ने उसे चुराकर उनको अत्यंत ही व्यथित कर दिया। अब भी पैसे रुपए तथा स्टांप का अच्छा सग्रह है। पुरातत्त्व विषयक अनेक लेख भी लिखे हैं।

परिहास-प्रियता

परिहास-प्रियता भी इनकी अपूर्व थी। अँगरेजी मे पहली अप्रैल का दिन मानों होली का दिन है। उस दिन लोगों को धोखा देकर मूर्ख बनाना बुद्धिमानी का काम समझा जाता है। इन्होने भी कई बेर काशीवासियों को योंही छकाया था। एक बेर छाप दिया कि एक यूरोपीय विद्वान् आए हैं जो महाराज विजयानगरम् की कोठी मे सूर्य्य चद्रमा आदि को प्रत्यक्ष पृथ्वी पर बुलाकर दिखलावेगे। लोग धोखे मे गए और लज्जित होकर हँसते हुए लौट आए। एक बेर प्रकाशित किया कि एक बड़े गवैए आए हैं, वह लोगों को 'हरिश्चंद्र स्कूल' मे गाना सुनावेगे। जब हजारो मनुष्य इकट्ठे हो गए तब पर्दा खुला। एक मनुष्य विचित्र रंगों से मुख रँगे, गदहा टोपी पहिने, उलटा तानपूरा लिए, गदहे की भाँति रेंक उठा। एक बेर छाप दिया था कि एक मेम रामनगर से खड़ाऊँ पर चढकर गगा पार उतरेगी। इस बेर तो एक भारी मेला ही लग गया था। परंतु संध्या को कोलाहल मचा कि "एप्रिल फूल्स"। लड़कपन मे भी अपने घर के पीछे अँधेरी गली मे फासफरस से विचित्र मूर्त्ति और विचित्र आकार लिखकर लोगों को डरवाते थे। मित्रों के साथ नित्य के हास-परिहास उनके परम मनोहर होते थे। श्री

जगन्नाथ जी को जो फूल की टोपी पहिनाई जाती है वह इतनी बड़ी होती है कि मनुष्य उसमे छिप जाय। इन्होंने यह कौतुक किया कि आप तो टोपी मे छिप गए और छोटे भाई बाबू गोकुलचंद्र ने लोगो से कहा कि श्री जगदीश का प्रत्यक्ष प्रभाव देखो कि टोपी आप से आप चलती है, बस टोपी चलने लगी। लोग देखकर अचभे मे आ गए। अंत मे आपने टोपी उलट दी तब लोगों को भेद खुला।

उदारता—धन के बिना कष्ट

इनकी उदारता जगत्-प्रसिद्ध है। हम केवल दो चार बाते उदाहरण स्वरूप यहाँ लिखते हैं। हिस्सा होने के थोड़े ही दिन पीछे महाराज बितिया के यहाँ से इनके हिस्से का छत्तीस हजार रुपया वसूल होकर आया। इन्होने उसको अपने दर्बारी एक मुसाहिब के यहाँ रख दिया। कुछ थोडा बहुत द्रव्य उसमे से आया था कि उन्होंने रोते हुए आकर कहा "हुजूर! मेरे यहाँ चोरी हो गई। आपके रुपए के साथ मेरा भी सर्वस्व जाता रहा"। उनके रोने चिल्लाने से घबराकर इन्होने कहा 'तो रोते क्या हो? गया सो गया, यही गनीमत समझो कि चोर तुम्हे उठा न ले गए"। चलिए मामला तै हुआ। लाख लोगों ने चाहा कि इन्हे तग करके रुपया वसूल किया जाय, परंतु भारतेंदु जी ने कुछ न किया और कहा "चलो, बिचारा गरीब इसी से कमा खायगा"। कुछ करने की कौन कहे, उन्हे अपनी मुसाहिबी से भी नही निकाला। उक्त व्यक्ति एक दिन इतना बढा कि लखपति हो गया। कुछ दिनों पीछे जब द्रव्याभाव हो गया था और प्राय कष्ट उठाया करते थे उस अवस्था मे एक दिन बहुत से पत्र और पैकेट लिखकर रखे थे कि उनके एक मित्र के छोटे भाई (लाला जगदेवप्रसाद,

गौड) उनसे मिलने आए। उन्होंने पूछा "बाबू साहब ! ये सब पत्र डाक में क्यों नहीं गए ?" उत्तर मिला "टिकट बिना"। उक्त महाशय ने २) रु० के टिकट मँगाकर उन सभों को डाक मे छुड़वाया। उस २) को भारतेंदु महोदय ने उन्हे कम से कम दस बेर दिया। उक्त महाशय का कथन है कि "जब मैं मिलने गया २) रु० टिकटवाला मुझे दिया, मैंने लाख कहा कि मैं कई बेर यह रुपया पा चुका हूँ, पर उन्होने एक न माना। कहा तुम भूल गए होगे; मैंने विशेष आग्रह किया तो बोले अच्छा, क्या हुआ, लडके तो हैा, मिठाई ही खाना"। एक आलबम चित्रों का इन्होंने अत्यत ही परिश्रम के साथ सग्रह किया था, जिसमे बादशाहों, विद्वानों, आचार्यों आदि के चित्र बड़े व्यय और परिश्रम से सग्रह किए थे। एक शाहजादे महाशय उस आलबम की एक दिन बडी ही प्रशंसा करने लगे। आपने कहा कि "जो यह इतना पसद है तो नजर है"। बस फिर क्या था, उक्त महोदय ने उठकर लबी सलाम की और लेकर चलते बने। उदार-हृदय हरिश्चंद्र को कभी किसी पदार्थ को देकर दु ख होते किसी ने नही देखा, परतु इस आलबम का उन्हे दु ख हुआ। पीछे वह इसका मूल्य ५००) रु० तक देकर लेना चाहते थे, परतु न मिला। एक दिन आप कहीं से एक गजरा फूलों का पहिने आ रहे थे। एक चौराहे पर उसे लपेटकर रख दिया। जो नौकर साथ मे था उसे कुछ संदेह हुआ। वह इन्हे पहुँचाकर फिर उसी चौराहे पर लौट आया, तो उस गजरे को ज्यों का त्यों पाया। उठाकर देखा तो उसमे पॉच रुपए लपेटकर रखे हुए थे। एक दिन जाड़े की ऋतु मे रात को आप आ रहे थे। एक दीन दु:खी सड़क के किनारे पड़ा ठिठुर रहा था। दयार्द्रचित्त हरिश्चंद्र से यह उसका दु:ख न देखा

गया, बहुमूल्य दुशाला जो आप ओढे हुए थे उस पर डाल चुपचाप चले आए। ऐसा कई बार हुआ है। एक दिन मोतियों का कंठा पहिनकर गोस्वामी श्री जीवनजी महाराज (मुबईवाले) के दर्शन को गए। महाराज ने कहा ' बाबू ! कंठा तो बहुत ही सुंदर है"। आपने चट उसे भेट कर दिया। कितने व्यक्तियों को हजारो रुपए के फोटोग्राफ उतारने के सामान, तथा जादू के तमाशे के सामान लेकर दे दिए कि जिनसे वे आज तक कमाते खाते हैं। निदान कितने ही उदाहरण ऐसे हैं जिनका पता लगाना या वर्णन करना असभव है। लिफाफे मे नोट रखकर या पुडिया मे रुपया बॉधकर चुपचाप देना तो नित्य की बात थी। कोई व्यक्ति दो चार दिन भी इनके पास आया और इन्हे उसका खयाल हुआ, आप कष्ट पाते परंतु उसे अवश्य कुछ न कुछ देते। यह अवस्था इनकी मरने के समय तक थी। सन् १८७० मे इन्होने अपना हिस्सा अलग करा लिया था, परतु चार ही पॉच वर्ष मे जो कुछ पाया सब खो बैठे। लगभग १४, १५ वर्ष वह इस पृथ्वी पर इस प्रकार से रहे कि न तो इनके पास कोई जायदाद थी और न कुछ द्रव्य। कभी कभी यह अवस्था तक हो गई है कि चबैना खाकर दिन काट दिया, परंतु उदार-प्रकृति वीर हरिश्चंद्र की दातव्यता कभी बद नही हुई। आज पैसे पैसे के लिये कष्ट उठा रहे हैं, और कल कहीं से कुछ द्रव्य आ जाय तो फिर उसकी रक्षा नही, वह भी वैसे ही पानी की भॉति बहाया जाता, दो ही तीन दिन मे साफ हो जाता। धनहीनता से बहुत कुछ कष्ट पाने पर भी इन्हे धन न रहने का कुछ दु.ख न होता, सिवाय उस अवस्था के जब कि हाथ मे धन न रहने से किसी दयापात्र वा किसी सज्जन का क्लेश दूर न कर सकते, अथवा कोई धनिक इनके आगे अभिमान करता। ऋण इनके जीवन का साथी

था। ऋण करना और व्यय करना। परंतु आश्चर्य यह है कि न तो मरने के समय अपने पास कुछ छोड़ मरे और न कुछ भी उचित ऋण देने बिना बाकी रह गया! इनकी इस दशा पर महाराज काशिराज ने जो दोहा लिखा था हम उसे उद्धृत कर देते हैं—

"यद्यपि आपु दरिद्र सम, जानि परत त्रिपुरार।
दीन दुखी के हेतु सोइ, दानी परम उदार॥"

लेखनशक्ति

लेखनशक्ति इनकी आश्चर्य थी, कलम कभी न रुकता। बातें होती जाती हैं कलम चला जाता है। डाक्तर राजेंद्रलाल मित्र ने इनकी यह लीला देखकर इनका नाम Writing Machine (लिखने की कल) रखा था। उर्दू अँगरेजीवालों से कई बेर बाजी लगाकर हिंदी लिखने मे जीता था। सबसे बढकर आश्चर्य यह था कि इतना शीघ्र लिखने पर भी अक्षर इनके बड़े सुंदर और साँचे मे ढले से होते थे। नागरी और अँगरेजी के अक्षर बहुत सुंदर बनते थे। इनके अतिरिक्त महाजनी, फारसी, गुजराती, बँगला और अपने बनाए नवीन अक्षर लिख सकते थे। कलम, दावात और कागजों का बस्ता सदा उनके साथ चलता था। दिन भर लिखने पर भी सतोष न था, रात को उठ उठकर लिखा करते। कई बार ऐसा हुआ कि रात को नोद खुली और कुछ कविता लिखनी हुई, कलम दावात नही मिली तो कोयले या ठीकरे से दीवार पर लिख दिया, सबेरे हम लोग उसकी नकल कर लाए। कितनी ही कविता स्वप्न मे बनाते थे, जिनमे से कभी कभी कुछ याद आने से लिख भी लेते थे। 'प्रेमतरंग' मे एक लावनी ऐसी छपी है। इस लावनी को विचारपूर्वक देखिए तो सपने की कविता और जागने पर पूर्ति

जो की है वह स्पष्ट विदित होती है। कागज कलम दावात का कुछ विशेष विचार न था। समय पर जैसी ही सामग्री मिल जाय वही सही। टूटे कलम से तथा कुछ न प्राप्त होने पर तिनके तक से लिखा करते थे, परंतु अक्षर की सुघरता नहीं बिगड़ती थी।

आशु कविता

कविताशक्ति इनकी विलक्षण थी। कई बेर घड़ी लेकर परीक्षा की गई कि चार मिनट के भीतर ही समस्यापूर्ति कर लेते थे। बड़े बड़े समाजो और बड़े बड़े दर्बारों मे इस प्रकार समस्यापूर्ति करना सहज न था। इतने पर आधिक्य यह कि किसी से दबते न थे, जो जी मे आता था उसे प्रकाश कर देते थे। उदयपुर महाराणाजी के दर्बार मे बैठकर निम्न लिखित समस्यापूर्ति का करना कुछ सहज काम न था—

राधाश्याम सेवैं सदा वृंदावन बास करे,
    रहैं निहचित पद आस गुरुबर के।
चाहैं धनधाम ना आराम सों है काम,
    हरिचंदजू भरोसे रहैं नंदराय घर के॥
एरे नीच धनी! हमे तेज तू दिखावे कहा,
    गज परवाही नाहि होंय कबौं खर के।
होइ लै रसाल तू भलेई जगजीव काज,
    आसी ना तिहारे ये निवासी कलपतरु के॥ १॥

काशिराज के दर्बार मे एक समस्या किसी ने दी थी, किसी से पूर्ति न हुई, ये आ गए। महाराज ने कहा "बाबू साहब, इस समस्या की पूर्ति आप कीजिए, किसी कवि से न हो सकी"। इन्होंने तुरत लिखकर सुना दी, मानों पहले ही से याद थी। कवियो

को बुरा लगा। एक बोल उठे "पुराना कवित्त बाबू साहब को याद रहा होगा"। बस इन्हें क्रोध आ गया, दस बारह कवित्त तुरंत बनाते गए और कवि जी से पूछते गए "क्यों कवि जी! यह भी पुराना है न ?" अंत मे काशिराज के बहुत रोकने पर रुके। इनके इन्हो गुणो से काशिराज इन पर मोहित थे। इनसे अत्यत स्नेह करते थे। काशिराज को सोमवार का दिन घातवार था, उस दिन वह किसी से नही मिलते थे। एक बेर इन्होने भी लिख भेजा कि "आज सोमवार का दिन है इमसे मैं नही आया"। काशिराज ने उत्तर मे यह दोहा लिखा—

"हरिश्चंद्र को चद्र दिन तहाँ कहा अटकाव।
आवन को नहि मन रह्यौ इहै बहाना भाव ॥"

इसके अच्छर अच्छर से स्नेह टपकता है। सुप्रसिद्ध गट्टूलाल जी इनकी समस्यापूर्ति पर परम प्रसन्न हुए थे। वृंदावनस्थ श्रीशाह कुंदनलालजी की समस्या पर इनकी पूर्ति और इनकी समस्या पर उनकी पूर्ति देखने योग्य है। काशिराज के पौत्र के यज्ञोपवीत के उपलच्छ मे "यज्ञोपवीत परमं पवित्र" पर कई श्लोक बड़े धूमधाम के कोलाहल के समय बात की बात मे बनाए थे। केवल समस्या-पूर्ति ही तत्काल नहीं करते थे, ग्रथ-रचना मे भी यही दशा थी। अंधेर नगरी' एक दिन मे लिखी गई थी। 'विजयिनी विजय-वैजयती' टाउनहाल की सभा के दिन लिखी गई थी। बलिया का लेकचर और हिदी का लेकचर (पद्यमय) एक दिन मे लिखा गया। ऐसे ही उनके प्राय: काम समय पर ही हुआ करते थे, परंतु आश्चर्य यह है कि उतनी शीघ्रता मे भी त्रुटि कदाचित् ही होती रही हो। देशहित नसों में भरा हुआ था। कदाचित् ही कोई ग्रथ इनके ऐसे होंगे जिसमे किसी न किसी प्रकार से इन्होंने देशदशा पर

अपना फफोला न निकाला हो। कहाँ धर्मसंबंधी कविता "प्रबोधिनी" और कहाँ "बरसत सब ही विधि बेबसी अब तौ जागौ चक्रधर"। अपने बनाए ग्रथों मे निम्नलिखित ग्रंथ इन्हे विशेष रुचते थे।

काव्य—प्रेमफुलवारी

नाटक—सत्यहरिश्चंद्र, चद्रावली

धर्म सबधी—तदीयसर्वस्व

ऐतिहासिक—काश्मीर कुसुम (इसमे बडा परिश्रम किया था)

देशदशा—भारतदुर्दशा।

एक दिन एक कवित्त बनाया, जिसके भावों के विषय मे उनका विचार यह था कि ये नए भाव हैं, परंतु मैंने इन्ही भावों का एक कवित्त एक प्राचीन सग्रह मे देखा था, उसे दिखाया, इन्होने तुरंत उस अपने कवित्त को (यद्यपि उसमे प्राचीन कवित्त से कई भाव अधिक थे) फाड़ डाला और कहा "कभी कभी दो हृदय एक हो जाते हैं। मैंने इस कवित्त को कभी नही देखा था, परतु इस कवि के हृदय से इस समय मेरा हृदय मिल गया, अतः अब इस कवित्त के रहने की कोई आवश्यकता नही"। वह प्राचीन कवित्त यह था—

जैसी तेरी कटि है तू तैसी मान करि प्यारी,
जैसी गति तैसी मति हिय ते बिसारिए।
जैसी तेरी भौह तैसे पन्थ पैं न दीजै पॉव,
जैसे नैन तैसिए बडाई उर धारिए॥
जैसे तेरे ओंठ तैसे नैन कीजिए न, जैसे,
कुच तैसे बैन मुख तें न उचारिए।
एरी पिकबैनी! सुन प्यारे मन मोहन सों,
जैसी तेरी बेनी तैसी प्रीति बिसतारिए॥ १॥

उनका कथन था कि "जैसा जोश और जैसा जोर मेरे लेख मे पहले था वैसा अब नही है, यद्यपि भाषा विशेष प्रौढ़ और परिमार्जित होती जाती है, तथापि वह बात अब नही है"। वास्तव मे सन् ७३-७४ के लगभग के इनके लेख बडे ही उमंग से भरे और जोशवाले होते थे। यह समय वह था जब कि ये प्राय रामकटोरा के बाग मे रहते थे। अस्तु, इनकी इस अलौकिक शक्ति तथा इनके ग्रंथो की रचना पर आलोचना की जाय तो एक बडा ग्रथ बन जाय।

ग्रंथ-रचना

यह हम पहले कह आए हैं कि जिम समय इन्होने हिंदी की ओर ध्यान दिया, उस समय तक हिंदी गद्य मे कुछ न था। अच्छे ग्रथों मे केवल राजा लक्ष्मणसिंह का शकुंतलानुवाद छपा था और राजा शिवप्रसाद के कुछ ग्रंथ छपे थे। इन्होने पहले पहल शृगार-रस की कविता करनी आरभ की और कुछ धर्म सबंधीय ग्रथ लिखे। उस समय कुछ निज रचित और कुछ दूसरों के लिखे ग्रथ तथा कुछ सग्रह इन्होने छपवाए। 'कार्तिक कर्म विधि', 'मार्गशीर्ष महिमा', 'तहकीकात पुरी की तहकीकात', 'पचकोशी के मार्ग का विचार', 'सुजान शतक', 'भागवतशका निरासवाद' आदि ग्रंथ सन् १८७२ के पहले छपे। इसी समय 'फूलों का गुच्छा' लावनियों का ग्रंथ बनाया। उस समय बनारस मे बनारसी लावनीबाज की लावनियो की बडी चर्चा थी। उसी समय 'सुदरी तिलक' नामक सवैयों का एक छोटा सा संग्रह छपा। तब तक ऐसे ग्रथो का प्रचार बहुत कम था। इस ग्रंथ का बड़ा प्रचार हुआ, इसके कितने ही सस्करण हुए, बिना इनकी आज्ञा के लोगों ने छापना और बेचना आरंभ किया, यहाँ तक कि इनका नाम

तक टाइटिल पर से छोड़ दिया। परतु इसका उन्हे कुछ ध्यान न था। अब एक सस्करण खड्गविलास प्रेस मे हुआ है जिसमे चौदह सौ के लगभग सवैया हैं, परतु इन सवैयों का चुनाव भारतेंदुजी की रुचि के अनुसार हुआ या नहीं यह उनकी आत्मा ही जानती होगी। 'प्रेमतरग' और 'गुलजारपुरबहार' के भी कई संस्करण हुए, जो एक स दूसरे नही मिलते, जिनमे से खड्गविलास प्रेस का संस्करण सबसे बढ गया है। इस प्रकार कुछ काल तक चलने पर ये यथार्थ मे गद्य-साहित्य की ओर झुके। 'मैगजीन' के प्रकाश के अतिरिक्त पहले नाटकों ही की ओर रुचि हुई। सन् १८६८ ई० मे रत्नावली नाटिका का अनुवाद आरभ किया था, पर वह अधूरा रह गया। इससे भी पहले 'प्रभास नाटक' लिखते थे, वह भी अधूरा ही रह गया। सबसे पहला नाटक 'विद्या सुंदर', फिर 'वैदिकी हिंसा हिसा न भवति', फिर 'धनंजयविजय' और फिर 'कर्पूरमजरी'। 'कर्पूरमजरी' की भाषा सरल भाषा की टकसाल कहने योग्य है। इसी समय 'प्रेमफुलवारी' भी बनी इस समय वास्तव मे ये 'प्रेम-फुलवारी' के पथिक थे, अत. इसकी कविता भी कुछ और ही हुई है। इसके पीछे 'सत्य हरिश्चद्र' और 'चंद्रावली नाटिका' बनी और पूरे नाटकों मे से सबसे अंतिम 'नीलदेवी' तथा 'अंधेर नगरी' हैं और अधूरे मे 'सती प्रताप' तथा 'नवमल्लिका'। 'नवमल्लिका' को महा नाटक बनाना चाहते थे और उसके पात्रो तथा अको की सूची बना ली थी, परतु मूल नाटक थोड़ा ही सा बना था कि रह गया। हिंदी नाटकों के अभिनय कराने का भी इन्होंने बहुत कुछ यत्न किया, स्वय भी सब सामान किया था और भी कई कंपनियो को उत्साहित कर अभिनय कराया था। इनके बनाए 'सत्य हरि-श्चद्र', 'वैदिकी हिंसा', 'अंधेरनगरी' और 'नीलदेवी' का कई बेर

कई स्थानों पर अभिनय हुआ है। उपन्यासों की ओर पहले इनका ध्यान कम था। इनके अनुरोध और उत्साह से पहले पहल 'कादंबरी' और 'दुर्गेशनंदिनी' का अनुवाद हुआ। स्वयं एक उपन्यास लिखना आरंभ किया था जिसका कुछ अंश 'कवि-वचनसुधा' में छपा भी था। नाम उसका था 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती'। इसमें वह अपना चरित्र लिखना चाहते थे। अंतिम समय में इस ओर ध्यान हुआ था। 'राधा रानी' 'स्वर्णलता' आदि का उन्हीं के अनुरोध से अनुवाद हुआ। 'चंद्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' को अनुवाद कराके स्वयं शुद्ध किया था। 'राणा राजसिंह' को भी ऐसा ही करना चाहते थे। अनुवाद पूरा हो गया था, प्रथम परिच्छेद स्वयं नवीन लिखा, आगे कुछ शुद्ध किया था। नवीन उपन्यास 'हमीरहठ' बड़े धूम से आरंभ किया था, परंतु प्रथम परिच्छेद ही लिखकर चल बसे। इनके पीछे इसके पूर्ण करने का भार स्वर्गीय लाला श्रीनिवासदासजी ने लिया और उनके परलोक-गत होने पर पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने; परंतु संयोग की बात है कि ये भी कैलासवासी हुए और कुछ भी न लिख सके। यदि भारतेंदुजी कुछ दिनों और भी जीवित रहते तो उपन्यासों से भाषा के भंडार को भर देते; क्योंकि अब उनकी रुचि इस ओर फिरी थी। यहाँ पर हमें यह भी लिख देना आवश्यक जान पड़ता है कि इनके ग्रंथों में तीन प्रकार के ग्रंथ हैं—(१) आदि से अंत तक अपने लिखे, (२) कुछ अपना लिखा और कुछ दूसरों से लिखवाया ("नाटक" नामक पुस्तक में ऐसा ही है), (३) दूसरे से अनुवाद कराया स्वयं शुद्ध किया हुआ (गो-महिमा, चंद्रप्रभा-पूर्णप्रकाश आदि)। इनके अतिरिक्त कुछ ग्रंथ ऐसे हैं जो उन्होंने अधूरे छोड़े थे और फिर औरों के द्वारा पूरे होकर छपे। (दुर्लभ-

बंधु, सतीप्रताप, राजसिंह आदि)। एकाध ऐसे भी हैं जो उनके हुई नहीं हैं, धोखे से प्रकाशक ने उनके नाम से छाप दिए (माधुरी रूपक)। पहले को छोड़ शेष ग्रंथों की भाषा आदि मे जो भिन्नता कही कही पाई जाती है वह स्वाभाविक है। 'चद्रावली नाटिका' मे अपने तरंग के अनुसार कही खड़ी बोली और कहीं ब्रजभाषा लिखकर कवियों की स्वेच्छाचारिता प्रत्यक्ष कर दी। इसको पूरी पूरी ब्रजभाषा मे इनके मित्र राव श्रीकृष्णदेवशरणसिंह (राजा भरतपुर) ने किया था और संस्कृत अनुवाद पडित गोपाल शास्त्री उपासनी ने। इस नाटिका के अभिनय की इनकी बड़ी इच्छा थी, परतु वह जी ही मे रह गई। एक बेर लिखने के पीछे उसे ये पुनर्वार लिखते कभी नहीं थे और प्राय: प्रूफ के अतिरिक्त पुनरावलोकन भी नहीं करते थे, तथाच प्रूफ मे भी प्राय. कापी से कम मिलाते थे, यों हीं प्रूफ पढ जाते थे। इन कारणों से भी कही कही कुछ भ्रम हो जाना संभव है। अस्तु, फिर प्रकृत विषय की ओर चलिए। धर्म संबंधीय ग्रर्थो की ओर तो इनकी रुचि बचपन ही से थी, 'कार्तिक कर्म विधि', 'कार्तिक नैमित्तिक कर्म विधि,' 'मार्गशीर्ष महिमा', 'वैशाख माहात्म्य', 'पुरुषोत्तम मास विधान', 'भक्ति सूत्र वैजयंती', 'तदीय सर्वस्व' आदि ग्रथ प्रमाण हैं। धर्म के साथ ऐतिहासिक खोज पर भी ध्यान था, ('वैष्णवसर्वस्व' 'वल्लभीयसर्वस्व' आदि) इस इच्छा से कि नाभाजी के 'भक्तमाल' मे जिन भक्तो का नाम छूटा है या जो उनके पीछे हुए हैं उनके चरित्र संग्रह हो जायँ, 'उत्तरार्ध भक्तमाल' बनाया। धर्म के विषय मे उनके कैसे विचार थे इसका कुछ पता 'वैष्णवता और भारतवर्ष' से लग सकता है। धर्मविषयक जानकारी इनकी अगाध थी। एक बेर स्वयं कहते थे कि इस विषय पर यदि कोई सुननेवाला

उपयुक्त पात्र मिले तो हम भारतीय धर्म के रहस्यों पर दो वर्ष तक अनवरत व्याख्यान दे सकते हैं। संस्कृत तथा भाषा के कवियो के जीवनचरित्र भी इन्हे बहुत विदित थे। सब धर्मों की नामावली तथा उनके शाखा प्रशाखा का वृक्ष, तथा सब दर्शनो और सब सम्प्रदायों के ब्रह्म, ईश्वर, मोक्ष, परलोक आदि मुख्य मुख्य विषयों पर मतामत का नकशा वह बनाते थे जो अधूरा अप्रकाशित रह गया। इस थोड़े ही लिखे ग्रथ से उनकी जानकारी और विद्वत्ता का पूर्ण परिचय मिलता है। यह सब अधूरे और अप्रकाशित ग्रथ 'खड्ग-विलास प्रेस' सेवन कर रहे हैं, संभव है कि किसी समय रसिक समाज का कौतूहल निवारण कर सकें। इतिहास और पुरातत्त्वानुसधान की ओर इनका पूरा पूरा ध्यान रहा। जिस विषय को लिखा पूरी खोज और पूरे परिश्रम के साथ लिखा। 'काश्मीर कुसुम', 'बादशाह दर्पण', 'कवियों के जीवनचरित्रादि' इसके प्रमाण हैं। भाषारसिक डाक्तर ग्रिअर्सन ने इनके इस गुण पर मोहित होकर इन्हे स्पष्ट ही "The only critic of Northern India" लिखा है। इतिहास की ओर इनका इतना अधिक झुकाव था कि नाटक, कविता तथा धर्मसबंधी ग्रंथादि मे जहाँ देखिएगा कुछ न कुछ इसका लपेट अवश्य पाइएगा। कविता के विषय में हम ऊपर कई स्थलों पर बहुत कुछ लिख चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही लिखना चाहते है कि शृंगार-प्रधान भगवल्लीला के अतिरिक्त इनका उरझान जातीय गीत की ओर अधिक था। यदि विचार कर देखा जाय तो क्या धर्मसबधी, क्या राजभक्ति (राजनैतिक), क्या नाटक क्या स्फुट प्रायः सभी चाल की कविता मे जातीयता का अंश वर्तमान मिलेगा। हृदय का जोश उबला पड़ता है, विषाद की रेखा अलक्षित भाव से वर्तमान है, नित्य के ग्राम्य गीत (कजली,

होली, आदि) मे भी जातीय संगीत प्रचलित करना चाहते थे। " काहे तू चौका लगाए जयचँदवा", "टूटे सोमनाथ के मंदिर केहू लागै न गुहार", "भारत मे मची है होरी", "जुरि आए फाके मस्त होरी होय रही", आदि प्रमाण हैं। इस विषय मे एक सूचना भी दी थी कि ऐसे जातीय संगीत लोग बनावे, हम इनका संग्रह छापेगे। उर्दू की स्फुट कविता के अतिरिक्त हास्यमय "कानून ताजीरात शौहर" बनाया, बँगला मे स्फुट कविता के अतिरिक्त "विनोदिनी" नाम की पुस्तिका बनाई थी, सस्कृत मे "श्रीसीतावल्लभ-स्तोत्र" आदि बनाए, अँगरेजी मे एज्यूकेशन कमीशन की साक्षी ग्रथ रूप मे लिखी (स्फुट कविता मेगजीन मे छपी है), भक्तसर्वस्व गुजराती अक्षरों मे छपा, गुजराती कविता इनकी बनाई "मानसोपायन" मे छपी है, पंजाबी कविता "प्रेमतरंग" में छपी है, महाराष्ट्री मे "प्रेमयोगिनी" का एक अंक ही लिखा है। शरीर की रुग्नता के कारण एक वर्ष कार्तिकस्नान नही कर सके तो नित्य कुछ कविता बनाई, उसका नाम "कार्तिकस्नान" रखा। राजनैतिक, सामाजिक तथा स्फुट विषयो पर ग्रथ और लेख जो कुछ इन्होंने लिखे थे और उन पर समय समय पर जो कुछ आंदोलन होता रहा या उनका जो प्रभाव हुआ उसका वर्णन इस छोटे से लेख मे होना असंभव है। हम तो इस विषय मे इतना भी लिखना नहीं चाहते थे, किंतु हमारे कई मित्रों ने आग्रह करके लिखवाया। वास्तव मे यह विषय ऐसा है कि उनके प्रत्येक ग्रंथ का पृथक् पृथक् वर्णन किया जाय कि वे कब बने, क्यो बने, कैसे बने, क्या उनका प्रभाव हुआ, कितने रूप उनके बदले, कितने संस्करण हुए और उनमे क्या क्या परिवर्तन हुए और अब किस रूप मे हैं तब पाठकों को पूरा आनद आ सकता है। अस्तु, हमने मित्रों के आग्रह से आभास मात्र दे दिया।

हिंदी तथा वैष्णव परीक्षा

हिंदी की एक परीक्षा इन्होंने प्रचलित की थी जो थोड़े ही दिन चलकर बंद हो गई। इस पर एक रिपोर्ट इन्होंने राजा शिव-प्रसाद इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स के नाम लिखी थी जो देखने योग्य है। उस रिपोर्ट से इनके हृदय की उमंग और हिंदी यूनीवर्सिटी बनाने की वासना तथा देशवासियों के निरुत्साह से उदासीनता प्रत्यक्ष झलकती है। एक परीक्षा वैष्णव ग्रथो की भी जारी करना चाहा परतु कुछ हुआ नही। उसकी सूचना यहाँ प्रकाशित होती है।

श्रीमद्वैष्णवग्रंथों में

परीक्षा

वैष्णवो के समाज ने निम्नलिखित पुस्तकों मे तीन श्रेणियों मे परीक्षा नियत की है और १५०) प्रथम के हेतु और १००) द्वितीय के हेतु और ५०) तृतीय के हेतु पारितोषिक नियत है। जिन लोगों को परीक्षा देनी हो, काशी मे श्रीहरिश्चंद्र गोकुलचंद्र को लिखें। नियत परीक्षा तो स० १९३२ के वैशाख शुक्ल ३ से होगी पर बीच मे जब जो परीक्षा देना चाहे दे सकता है।

श्रेणी	श्रीनिबार्क	श्रीरामानुज	श्रीमध्व	श्रीविष्णुस्वामि
प्रविष्ट	वेदांत-रत्नम-जूषा, वेदांत-रत्न-माला, सुरद्रुम-मंजरी	यतींद्रमतदी-पिका, शत-दूषणी	वेदांत-रत्न-माला, तत्त्व-प्रकाशिका	षोड़श ग्रंथ, षोडश वाद, संप्रदाय-प्रदीप

श्रेणी	श्रीनिबार्क	श्रीरामानुज	श्रीमध्व	श्रीविष्णुस्वामि
प्रवीण	वेदांत कौस्तुभ और प्रभा, षोडशी-रहस्य, पंचकालानुष्ठान	श्रुति-सूत्र-तात्पर्य्य-निर्णय, प्रस्थान-त्रय का भाष्य	भाष्य सुधा, न्यायामृत	विद्वन्मंडन, स्वर्णसूत्र, निबंध आवर्णभंग वा-प्रहस्त, पंडित-करभिंदिपाल, बहिर्मुख मुख मर्दन
पारंगत	अभ्यास गिरि-वज्रसेतुका, जाह्नवी-मुक्तावली	वेदाताचार्य्य का लघु भाष्य, बृहच्छतदूषणी	सहस्रदूषिणी	अणु भाष्य, भाष्य-प्रदीप, भाष्यप्रकाश, प्रमेय रत्नार्णव*

भारतेंदु की पदवी

इनके गुणों से मोहित होकर इनका कैसा कुछ मान देशीय और विदेशीय सज्जन इनके सामने तथा इनके पीछे करते थे यह लिखने की आवश्यकता नहीं। हम केवल दो चार बाते इस विषय मे लिख देना चाहते हैं। सन् १८८० ई० के 'सारसुधानिधि' मे एक लेख छपा कि इन्हे 'भारतेंदु' की पदवी देनी चाहिए। इसको एक स्वर से सारे देश ने स्वीकार कर लिया और सब लोग इन्हें भारतेदु लिखने लगे, यहाँ तक कि भारतेंदुजी इनका उपनाम ही हो गया। इस पदवी को न केवल इस

* यदि रश्मि में परीक्षा दे तो ४००) रु० पारितोषिक मिले।

देश के लोगों ही ने स्वीकार किया, वरच योरप के लोग भी बराबर इन्हे भारतेंदु लिखने लगे। विलायत के विद्वान् इन्हे मुक्तकंठ से Poet Laureate of Northern India (उत्तरीय भारत के राजकवि) मानते और लिखते थे। एज्यूकेशन कमीशन के साक्षी नियुक्त हुए। लार्ड रिपन के समय मे राजा शिवप्रसाद से बिगड़ने पर हजारों हस्ताक्षर से गवर्नमेंट की सेवा मे मेमोरियल गया था कि इनको लेजिस्लेटिव कौंसिल का मेंबर चुनना चाहिए। बलिया-निवासियों ने इनके बनाए सत्यहरिश्चंद्र नाटक का अभिनय किया था, उस समय इन्हें भी बुलाया था। बलिया मे इनका बड़ा सत्कार हुआ था, इनका स्वागत धूमधाम से किया गया था, ऐड्रेस दिया गया था। इनके इस सम्मान मे स्वयं जिलाधीश राबर्ट्स साहब भी सम्मिलित थे। इनकी बीमारियों पर कितने ही स्थानों पर प्रार्थनाएँ की गई थी, आरोग्य होने पर कितने ही जलसे हुए थे, कितने 'कसीदे' बने थे और ऐसी ही कितनी ही बातें हैं।

नए चाल के पत्र

हिंदी मे कितने ही चाल के पत्र, कितनी ही चाल की नई बातें इन्होंने चलाईं। प्रति वर्ष एक छोटी सी सादी नोट बुक छपवाकर अपने मित्रो में बाँटते थे जिस पर वर्ष की अँगरेजी जंत्री रहती थी और "हरिश्चंद्र को न भूलिए," "Forget me not" छपा रहता तथा, और भी तरह तरह के प्रेम तथा उपदेश-वाक्य छपे रहते थे। जब से इन्होने १०० वर्ष की जंत्री (वर्षमालिका) छपवाकर प्रकाशित की तब से इसका छपना बंद हुआ। इस नोटबुक की कमिश्नर कारमाइकल साहब ने बड़ी सराहना की है। पत्रों के

लिये प्रत्येक वार के अनुसार जुदा जुदा रंग के कागज पर जुदा जुदा शीर्षक छापकर काम मे लाते थे। यथा—

रविवार को गुलाबी कागज पर—

"भक्त कमल दिवाकराय नम"

"मित्र पत्र बिनु हिय लहत छिनहूँ नहि विश्राम।
प्रफुलित होत न कमल जिमि बिनु रवि उदय ललाम ॥"

सोमवार को श्वेत कागज पर—

"श्रीकृष्णचद्राय नम"

"बधुन के पत्रहि कहत अर्ध मिलन सब कोय।
आपहु उत्तर देहु तौ पूरो मिलनो होय ॥"

सोमवार का यह दोहा भी छपवाया था—

"ससिकुल कैरव सोम जय, कलानाथ द्विजराज।
श्री मुखचंद्र चकोर श्री, कृष्णचद्र महराज ॥"

मगल को लाल कागज पर—

"श्रीवृंदावनसार्वभौमाय नम:"

"मगल भगवान् विष्णु मंगल गरुड़ध्वजम्।
मंगलं पुंडरीकाक्ष मगलायतनं हरिम् ॥"

बुध को हरे कागज पर—

"बुधराधितचरणाय नम"

"बुध जन दर्पण मे लखत दृष्ट वस्तु को चित्र।
मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिंब विचित्र ॥"

गुरुवार को पीले कागज पर—

"श्रीगुरु गोविंदाय नम"

"आशा अमृत पात्र प्रिय विरहातप हित छत्र।
वचन चित्र अवलंबप्रद कारज साधक पत्र ॥"

शुक्रवार को सफेद कागज पर—

"कविकीर्तियशसे नम·"

"दूर रखत कर लेत आवरन हरत रखि पास ।
जानत अतर भेद जिय पत्र पथिक रसरास ।।"

عحلہ کسا ے حال دل دوسدار ھے
دمردر کی دصودر ھے ھحرب مس یار ھے

शनिवार को नीले कागज पर—

"श्रीकृष्णाय नमः"

"और काज सनि लिखन मैं होइ न लेखनि मंद ।
मिलै पत्र उत्तर अवसि यह बिनवत हरिचद ।।"

इनके अतिरिक्त और भी प्रेम तथा उपदेशवाक्य छपे हुए कागजों पर पत्र लिखते थे। इनके सिद्धांत वाक्य अर्थात् माटो निम्नलिखित थे—

(१) "यतो धर्मस्तत· कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जय "
(२) "भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यद्विडबनम्"
(३) "The Love is heaven and heaven is love"

इन्होंने सिद्धांत चिह्न अर्थात् मोनोग्राम भी बनाए थे ।

लिफाफों के ऊपर पत्र के आशय को प्रगट करनेवाले वाक्यों के 'वेफर' छपवा रखे थे, जिन्हे यथोचित साट देते थे। इन पर "उत्तर शीघ्र", "जरूरी", "प्रेम" आदि वाक्य छपे थे। ऐसी कितनी ही तबीयतदारी की बाते रात दिन हुआ करती थीं ।

स्वभाव

स्वभाव इनका अत्यत कोमल था, किसी का दुःख देख न सकते थे। सदा प्रसन्न रहते थे। क्रोध कभी न करते। परंतु जो कभी क्रोध आ जाता तो उसका ठिकाना भी न था। जिन महाराज काशिराज का इन पर इतना स्नेह था और जिन पर ये पूर्ण भक्ति रखते थे, तथाच जिनसे इन्हे बहुत कुछ आर्थिक सहायता मिलती थी, उनसे एक बात पर बिगड गए और फिर यावज्जीवन उनके पास न गए। महारानी विक्टोरिया के छोटे बेटे ड्यूक आफ आलबेनी की अकाल-मृत्यु पर इन्होंने शोक-समाज करना चाहा। साहब मैजिस्ट्रेट से टाउनहाल मॉगा। उन्होने आज्ञा दी, सभा की सूचना छपकर बँट गई, परतु दिन के दिन राजा शिवप्रसाद ने साहब मैजिस्ट्रेट से न जाने क्या कहा-सुना कि उन्होंने सभा रोक दी और टाउनहाल देना अस्वीकार किया, लोग आ आकर फिर गए। लोगों को बडा क्रोध हुआ और दूसरे दिन बनारस-कालिज मे कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने एक कमेटी की जिसमे निश्चय हुआ कि शोक-समाज कालिज मे हो। मैजिस्ट्रेट की कार्रवाई की रिपोर्ट गवर्नमेंट मे की जाय और राजा शिवप्रसाद को किसी सभा सोसाइटी मे न बुलाया जाय। साहब मैजिस्ट्रेट को समाचार मिला। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की और आग्रह करके सभा टाउनहाल मे कराई। राजा साहब बिना निमत्रण भी उस सभा मे आए और उन्होंने कुछ कहना चाहा, परंतु लोगों ने इतना कोलाहल किया कि वह कुछ कह न सके। इस पर चिढ़कर राजा साहब ने काशिराज से इनको पत्र लिखवाया कि आपने जो राजा साहब का अपमान किया यह मानो हमारा अपमान हुआ, इसका कारण क्या है ? महाराज का अदब करके इसका उत्तर तो कुछ न लिखा, परतु ज़ुबानी कहला भेजा कि

महाराज के लिये जैसे हम वैसे राजा साहब, हमारे अपमान से महाराज ने अपना अपमान न माना और राजा साहब के अपमान को अपना समझा, तो अब हम आपके दरबार मे कभी न आवेगे। यद्यपि ये अत्यंत ही नम्र स्वभाव के थे और अभिमान का लेश भी न था, परंतु जो कोई इनसे अभिमान करता तो ये सहन न कर सकते। शील इनका सीमा से बढ़ा हुआ था। कोई कितनी भी हानि करे, ये कभी कुछ न कह सकते और न उसको आने से रोकते। एक महापुरुष प्राय चीजें उठा ले जाया करते। जब पकड़े जाते तब दुर्गति करके इनके अनुज बाबू गोकुलचद्र ड्योढी बंद कर देते। परतु जब भारतेदुजी बाहर से आने लगते यह साथ ही चले आते। यों ही बीसों बेर हुआ, अंत मे भारतेदुजी ने भाई से कहा कि "भैया, तुम इनकी ड्योढी न बद करो, यह शख्स कद्र करने के योग्य है, इसकी बेहयाई ऐसी है कि इसे कलकत्ता के 'अजायबखाने' मे रखना चाहिए।" निदान फिर उनके लिये अविमुक्त द्वार ही रहा। इन्होने अपने स्वभाव को एक कवित्त मे स्वयं कहा है, उसी को हम उद्धृत करते हैं। इस पर विचार करने से उनकी प्रकृति तथा चरित्र का पूरा पता लग सकता है—

सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
हरीचद नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह नेही
नेह के दिवाने सदा सूरत-निवानी के।
सरबस रसिक के सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के॥

हमारे इस लेख मे ऊर्ध्वोक्त स्वभावो का बहुत कुछ परिचय पाठक पा चुके हैं। गुनीजन की सेवा, चतुरों का सम्मान, कवियों की मित्रता, नम्रता तथा उग्रता, लापरवाही आदि गुणों के विषय मे कुछ विशेष कहना व्यर्थ है। अब केवल उक्त पद के अंतिम भाग की समालोचना शेष है। "दिवाने सदा सूरत-निवानी के" यही एक विषय है जिस पर तीव्र आलोचना हो सकती है और इसी को कोई भूषण तथा कोई दूषण की दृष्टि से देखते हैं, तथाच इनके जीवन-चरित्ररचना मे यही एक प्रधान बाधक विषय रहा। वास्तव मे ऐसा कोई सभ्य देश नही है जो सौदर्योपासक न हो, परंतु इसकी मात्रा का कुछ बढ जाना ही भूषण से दूषण तथा मनुष्य को कष्ट-कर होता है, और गुलाब मे काँटे की तरह खटकता है। इस विषय को सोचकर उनके प्रेमी उनके चरित्र-सकलन मे कुछ संकुचित होते हैं, परतु उस महानुभाव उदार चरित्र को इसका कुछ भी संकोच न था, क्योंकि शुद्ध हृदय, शुद्ध प्रेम जो जी मे आया सच्चे जी से किया। हम लोग आगा पीछा जितना चाहे करे, परंतु उन्होने जैसे ही यहाँ इन वाक्यों को साभिमान कहा है, वैसे ही इसके भीतर जो कुछ दुखदायकता वा दूषण है उसे भी इस दोहे मे स्पष्ट कह दिया है—

"जगत जाल में नित बँध्यो परयो नारि के फद।
मिथ्या अभिमानी पतित झूठो कवि हरिचद॥"

अस्तु, इस विषय मे हम केवल एक घटना का उल्लेख करके इसको यही छोडेंगे। एक दिन अपने कुछ अंतरग मित्रो के साथ बैठे थे और एक वारविलासिनी भी वर्तमान थी। उसने कुछ ऐसे हावभाव कटाक्ष से देखा कि इन्हे कुछ नवीन भाव स्फुरण हुआ और तुरंत एक कविता बनाई, और उसे उन मित्रों को सुनाकर कहा कि

"हम इन सभों का सहवास विशेष कर इसी लिये करते हैं। कहिए यह सच्चा मजमून कैसे लब्ध हो सकता था?" निदान जो कुछ हो, उनके इस आचरण का भला या बुरा फल उन्हीं के लिये था, दूसरों को उससे कोई लाभ नहीं। वह संसार को क्या समझते थे और उनके आचरण किस अभिप्राय के होते थे इसे उन्हीं के वाक्य कुछ स्पष्ट कर सकते हैं। "प्रेमयोगिनी" के नांदी-पाठ मे कहते हैं—

"जिन तृन सम किय जानि जिय, कठिन जगत जजाल।
जयतु सदा सो ग्रंथ कवि, प्रेमजोगिनी बाल॥"

आगे चलकर उसी नाटिका मे सूत्रधार कहता है—

"क्या सारे संसार के लोग सुखी रहें और हम लोगों का परम-बधु, पिता, मित्र, पुत्र, सब भावनाओं मे भावित, प्रेम की एक मात्र मूर्ति, सौजन्य का एक मात्र पात्र, भारत का एक मात्र हित, हिंदी का एक मात्र जनक, भाषा नाटकों का एक मात्र जीवनदाता हरिश्चंद्र ही दुखी हो? (नेत्र मे जल भरकर) हा सज्जन-शिरोमणि! कुछ चिंता नहीं, तेरा तो बाना है कि कितना भी दुःख हो उसे सुख ही मानना। लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्ति तक का परित्याग कर दिया है और जगत् से विपरीत गति चल के तूने प्रेम की टकसाल खडी की है। क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आकर अपने अंक मे रखकर आदर नही देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निंदा करते हैं और तू संसारी वैभव से सुचित नहीं है, तुझे इससे क्या, प्रेमी लोग जो तेरे हैं और तू जिन्हे सरवस है, वे जब जहाँ उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेगे और तेरी रहन सहन को अपनी जीवनपद्धति समझेंगे। (नेत्र से आँसू गिरते हैं)

मित्र ! तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो, तुम्हे इनकी निंदा से क्या ? इतना चित्त क्यों क्षुब्ध करते हो ? स्मरण रखो ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोकबहिष्कृत होकर भी इनके सिर पर पैर रखके विहार करोगे। क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए—'कहैंगे सबैही नैन नीर भरि भरि पाछें प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी' ? मित्र ! मैं जानता हूँ कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ है।"

अस्तु, अब इस विषय मे अधिक न लिखकर इसका विचार हम सहृदय पाठकों ही पर छोड़ते हैं। अब अंतिम पद पर "सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा-रानी के" ध्यान दीजिए। जिसका यह साभिमान वाक्य है—

"चंद टरै सूरज टरै टरैं जगत के नेम।
पै दृढ़ श्री हरिचंद को टरै न अविचल प्रेम॥"

उसकी रसिकता और प्रेम का क्या कहना है। इनका हृदय प्रेमरंग से रँगा हुआ था। प्राय. देखा गया है कि जिस समय उनके हृदय मे प्रेम का आवेश आता था, देहानुसधान न रह जाता। उस प्रेमावस्था में कितने पदार्थ लोग इनके सामने से उठा ले गए हैं, इन्हे कुछ भी सुधि नहीं। आहा! सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा-रानी के, इसमे कितनी धृष्टता और कितना अदब भरा हुआ है! इसे लिखने का अधिकार उसी को हो सकता है जो पुकारकर यह कहता हो—

"श्रीराधा माधव युगल प्रेम रस का अपने को मस्त बना,
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा।
इतबार न हो तो देख न ले क्या हरीचंद का हाल हुआ,
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा॥"

निदान इनकी रसिकता, अनन्यता तथा भगवद्भक्ति इनके प्रत्येक पद और ग्रंथ से झलकती है तथाच इस विषय मे ऊपर भी लिखा जा चुका है, अत यहाँ इतने ही पर विश्राम लेते हैं।

संतति

संतति इन्हे तीन हुई, दो पुत्र और एक कन्या। पुत्र दोनो शैशवावस्था ही मे जाते रहे। कन्या के ईश्वरानुग्रह से पॉच पुत्र विद्यमान हैं परतु आप स्वर्ग-गामिनी हो गई।

रोग

भारत-गौरव, हिंदूपति, मेवाड-नरेश महाराणा सज्जनसिंह का इन पर अत्यत स्नेह था और वह बहुत काल से इनसे मिलने को उत्सुक थे। अत उनके आग्रह और श्रीनाथजी के दर्शन की लालसा से सन् १८८२ ई० मे उदयपुर गए। वहॉ से लौटने पर बीमार हुए, श्वास कास और ज्वर का वेग हुआ, जीवन का सशय हो गया। इसी बीच एक दिन बड़े जोर से हैजा हुआ, सर्वांग ऐंठ गया, घड़ी साइत का ठिकाना न रहा; परंतु अभी परमेश्वर को इनसे कुछ कार्य कराने शेष थे, इस समय कराल काल से छुट्टी पाई, इसी समय "नाटक" नामक ग्रथ की पूर्ति की, उसके समर्पण मे स्वय लिखते हैं—

"नाथ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्यजीवन का अंतिम अक हो चुकता। किंतु न जाने क्या सोचकर और किस पर अनुग्रह करके उसकी आज्ञा नहीं हुई .... यद्यपि संसार के कुरोगों से मन प्राण तो नित्य ग्रस्त थे ही, किंतु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त तुम्हारा—हरिश्चंद्र—......"

रोग पूरा पूरा निवृत्त न होने पाया, चलने फिरने लगे कि फिर शरीर की चिता कौन करता है, अविरल लिखने पढ़ने का परिश्रम चलने लगा। योही कुछ दिनो लस्टम फस्टम चले, कि मरने से एक वर्ष पहले श्वास और खाँसी का वेग बढा, समझा कि दमा हो गया है। शरीर नित्य नित्य क्षीण होने लगा, यहाँ तक कि थोड़े दिन पहले चलने फिरने की शक्ति इतनी घट गई कि पालकी पर बाहर निकलते थे। लोग दमा के धोखे मे रह गए, वास्तव मे क्षय रोग हो गया था। अधिक पान खाने के कारण कफ के साथ रक्त का तो पता लगता न था, केवल श्वास कास की दवा होती थी। निदान अंतिम समय बहुत निकट आने लगा। मरने से महीना डेढ महीना पहले इनका हृदय कुछ शात रस की ओर अधिक फिर गया था। "हरिश्चद्र चद्रिका" की अतिम सख्याओ मे प्रकाशित शांतरस की कविता सब इसी समय की बनी हुई हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, निम्नलिखित पद के पीछे कोई कविता नही की—

"डका कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पथी सब तुम क्यो रहे भुलाई॥
जब चलना ही निहचै है तो लै किन माल लदाई।
हरीचद हरि पद बिनु नहि तौ रहि जैहौ मुँह बाई॥"

इसी समय प्राय: नित्य ही, वह पद्माकर कवि का निम्नलिखित कवित्त कहते और घटो तक रोते रह जाते थे,—

"व्याध हूँ ते बिहद, असाधु हौ अजामिल लौं,
ग्राह ते गुनाही, कहो तिन मे गिनाओगे।
स्योरी हौं, न शूद्र हौं, न केवट कहूँ को त्यो,
न गौतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे॥

राम सों कहत पदमाकर पुकारि तुम,
मेरे महापापन को पार हूँ न पाओगे।
झूठो ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी,
(नाथ!) हौं तो साँचो हूँ कलकी ताहि कैसे अपनाओगे"॥

मृत्यु

धीरे धीरे, सन् १८८४ समाप्त हुआ। सन् १८८५ आया। दूसरी जनवरी को एकाएक भयानक ज्वर आया, ज्वर आठ पहर भोगकर उतरा कि पसली मे दर्द उठा, इस दर्द मे डाक्तर लोग जीवन का संशय करते थे, परंतु राम राम करते यह दर्द दूर हुआ, फिर आशा हुई। तीसरे दिन खाँसी बड़े जोर से आरंभ हुई, बलगम का बड़ा वेग रहा, कफ मे रुधिर दिखाई पड़ा, बड़ा कष्ट हुआ, परतु इससे भी छुटकारा मिला। ता० ६ जनवरी को सबेरे शरीर बहुत स्वस्थ रहा। जनाने से मजदूरिन खबर पूछने आई, आपने हँसकर कहा "हमारे जीवन नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है; पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खाँसी की सीन हो चुकी, देखैं लास्ट नाइट कब होती है"। उसी दिन दोपहर को एक दस्त आया, काला मल गिरा, उसी समय से कुछ श्वास बढ़ा। बस उसी समय से उन्होंने संसार की ओर से मन को फेरा, घर का कोई सामने आता तो मुँह फेर लेते। दो बजे दिन को अपने भ्रातुष्पुत्र कृष्णाचद्र को बुलाया। कहा, अच्छे कपड़े पहिनकर आओ। कपड़े पहिनकर आने पर कहा "नहीं, इससे भी अच्छे कपड़े पहिन आओ।" तुरत आज्ञा पालन हुई; आप आरामकुर्सी पर लेटे और बच्चे को गोद में बिठाकर अंगूर खिलाए, फिर दोनों हाथ उसके सिर पर रख कुछ देर तक ध्यानावस्थित रहे और तब

उसे बिदाकर कहा "जाओ खेलो"। इसके पीछे सांसारिक माया से कुछ वास्ता न रखा। श्वास बढ़ता ही गया, बेचैनी से नींद आने की इच्छा वैद्य डाक्टरो से प्रगट करते रहे। धीरे धीरे रात को नौ बज गए—समय आन पहुँचा—एकाएकी पुकार उठे "श्रीकृष्ण! राधाकृष्ण! हे राम! आते हैं, मुख दिखलाओ"। कंठ कुछ रुकने लगा, कुछ दोहा सा कहा, परंतु स्पष्ट न समझाई दिया, केवल इतना समझ मे आया "श्रीकृष्ण......सहित स्वामिनी"—बस गरदन झुक गई, पौने दस बजे इस भारत का मुखोज्ज्वलकारी भारतेंदु अस्त हो गया, चारो ओर अंधकार छा गया। बस, लेखनी अब उस दु:खमय कथा को लिख नही सकती।

शोकप्रकाश

भारतवर्ष के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक हाहाकार मच गया। काशी का तो कहना ही क्या था, पेशावर से लेकर नैपाल तक और कलकत्ते से लेकर बंबई तक सैकड़ो ही स्थानों मे शोक-समाज हुए। शोकप्रकाशक तार और पत्रों का ढेर लग गया, कितने ही समाचारपत्रों की ओर से अनियत पत्र प्रकाशित हुए, कितने ही शोकपत्र जन साधारण की ओर से वितरित हुए। हिंदी समाचारपत्रो का तो कहना ही क्या था, महीनो तक कितनो ही ने शोकचिह्न धारण किया, कितने ही शोकलेख, कितनी ही शोक-कविता, कितनी ही शोकसमस्या छपी, कितने ही चित्र छपे, कितने ही जीवनचरित्र छपे। अँगरेजी, उर्दू, बँगला, गुजराती, महाराष्ट्री के कोई पत्र नही थे जिन्होंने हार्दिक शोक प्रकाश न किया हो। चारो ओर कितने ही दिनो तक शोक ही शोक छाया रहा। भारतवर्ष मे बहुतेरे बड़े बड़े लोग मरे और बहुत कुछ लोगो ने किया,

परंतु ऐसा हार्दिक शोक आज तक किसी के लिये प्रकाशित नहीं हुआ। शत्रु भी इनकी मृत्यु पर अश्रुवर्षण करते थे, मित्रों की कौन कहे। राजा शिवप्रसाद से आजन्म इनसे झगडा चला, परंतु जिस समय वह मातमपुर्सी को आए थे आँखों मे आँसू भरे हुए थे, और कहते थे कि "हाय! हमारा मुकाबिला करनेवाला उठ गया।" पंडित लोग यह कहकर रोते थे कि क्या फिर वैश्यकुल मे कोई ऐसा जन्मेगा जिससे हम लोग धर्मशास्त्र की व्यवस्था पर सलाह लेने जायँगे! निदान इनका शोक अकथनीय था। इस विषय मे लाहौर के "मित्रविलास" ने जो कुछ लिखा था उसका कुछ अश हम प्रकाशित किए देते हैं, इसी से उस समय के शोक का पता लग जायगा—

'हाय हरिश्चंद्र! तू हम लोगों को छोड़ जायगा इस बात का तो किसी को ध्यान मात्र भी न था, और अभी तक भी तेरा नाम स्मरण करके यह निश्चय नहीं होता है कि कलम दावात लिए, 'बस्ता' सामने धरे उसमे से कागज रूपी बिखड़े रत्नों को हास्यमुख के साथ एक लडी मे पिरो रहा है और सोच रहा है कि किस आशावान की झोली इससे भरूँ! 'गोदड़ो में लाल' सुना करते थे परतु देखे तेरे ही पास। हा! अब कौन उनको परख सकेगा और कौन उनकी माला बनावेगा?

"प्यारे हरिश्चंद्र! काशी मे, जहाँ और बड़े बड़े तीर्थ हैं, वहाँ तू भा एक तीर्थ स्वरूप ही था। काशी जी मे जाकर और तीर्थ पीछे स्मरण होते हैं, तू पहले मन मे स्थान कर लेता था। और तीर्थों पर पाधा पुरोहित घाटियों को प्रसन्न करने, अपनी नामवरी कमाने वा दान दक्षिणा देने को यात्री लोग जाते हैं, पर तेरे पास सब भिक्षा ही के लिये आते थे, और किसकी भिक्षा?

प्रेम की भिक्षा, दर्शन की भिक्षा, सत्परामर्श की भिक्षा। तेरे दर्वाजे से कभी कोई विमुख नही गया, तू इस संसार मे इसलिये नहीं आया था कि अपना कुछ बना जावे, किंतु इसलिये आया था कि बना बनाया भी दूसरो को सौंप दे और उनका घर भरे। तेरे चरित्रो से स्पष्ट दिखाई देता था कि तू हर घड़ी इस संसार को छोड़ने ही का ध्यान रखता था। और इसी लिये किसी संसारी लोगों की दृष्टि मे तेरी अपनी वस्तु की तूने कभी रत्तीमात्र भी पर्वा न की। यश कमाने तू आया था, वह तुझसा दूसरा कौन कमावेगा। शेष सब पदार्थो का आना जाना तूने तुल्य और एक सा समझ रखा था।

"प्यारे हरिश्चद्र! आपके यह संसार त्यागने पर लोग शोक-प्रकाश कर रहे हैं। परतु हम पर यह सामर्थ्य नही है। आपके हमे छोड़कर चले जाने से जो कुछ हम पर बीत रही है, हम जानते नहीं कि तुम्हें किस नाम से पुकारे, हमे जो कुछ शोक है वह ऐसा पर्दों के पर्दो मे छिपा हुआ है कि उसका प्रकाश करना हमारे लिये असभव है। यह महाशय भाषा के उत्तम कवि थे इस प्रकार के वाक्य लिखकर जो लोग आपके बिछोड़े पर शोक प्रगट करते हैं, वह हमारे कलेजे के टुकड़े उड़ाते हैं, वह हमारे प्यारे हरिश्चंद्र की हतक करते हैं, हमसे यह सहन नहीं हो सकता। हम कहते हैं कि जो लोग प्यारे भारतेंदु के विषय मे इतना ही जानते हैं वह चुप रहे, ऐसे फीके वाक्य कहकर हरिश्चंद्र और भारतेंदु के चकोरों को दुःख न दे।"

इनके स्मारक-चिह्न स्थापन की चर्चा चारों ओर होने लगी, परंतु जैसा हतभाग्य यह देश है वैसा कोई देश नही। चार दिन का हौसला यहाँ होता है, फिर तो कोई ध्यान भी नहीं रहता। फिर

भी यह हरिश्चंद्र ही थे कि जिनके स्मारक की कुछ चर्चा तो हुई। नाम मात्र के लिये कानपूर और अलीगढ़ भाषासंवर्धिनी सभा मे "हरिश्चद्र पुस्तकालय" स्थापित हुए परंतु वास्तविक स्मारक उदयपुर मे "हरिश्चंद्रार्य विद्यालय" हुआ जो आज तक वर्तमान है और जिसमे कुछ द्रव्य भी संचित है कि जिससे उसके चले जाने की आशा है। काशी मे इनका स्थापित जो स्कूल है वह उस समय "चौक स्कूल" कहलाता था, परतु इनकी मृत्यु पर उसके पारितोषिक वितरण के उत्सव मे राजा शिवप्रसाद ने प्रस्ताव किया कि 'इस स्कूल का नाम अब से इसके सस्थापक बाबू हरिश्चंद्र के स्मारक स्वरूप "हरिश्चंद्र स्कूल" होना चाहिए। सभापति मिस्टर ऐडम्स (कलेक्टर) ने इसका अनुमोदन किया और तब से यह स्कूल "हरिश्चंद्र एडेड-स्कूल" कहलाता है। हिदी समाचार पत्रो की ओर से "मित्रविलास" के प्रस्ताव पर इनके नाम से "हरिश्चंद्र सवत्" चला। उदयपुर मे कई वर्ष तक इनके श्राद्ध-समय मे "हरिश्चद्र सभा" होती रही, जिसमे इनके विषय मे भाषा तथा सस्कृत कविता पढ़ी जाती थी। दमोह जिला गया से कुछ दिनों तक "हरिश्चद्र कौमुदी" मासिक पत्रिका निकलती थी। "खड्गविलास प्रेस" बाँकीपुर से "हरिश्चंद्र कला" प्रकाशित हुई, जिसमे पहले तो उनके प्राय. सब ग्रथ शृखला के साथ छपे, फिर उनके सग्रहीत तथा मनोनीति ग्रथ छपते रहे। हिदी समाचारपत्रों मे प्रकाशित शोकप्रकाश तथा और शोक कविताओं के सग्रह का "हरिश्चंद्र शोकावली" नामक एक अच्छा ग्रंथ छपा। लखनऊ से एक सौ वर्ष की जंत्री "भारतेंदु शताब्दी" नामक छपी और सन् १८८८ ई० मे कविवर श्रीधर पाठकजी ने "श्रीहरिश्चंद्राष्टक" प्रकाशित किया, जिसके अतिम छप्पय के साथ हम भी इस प्रबंध को समाप्त करते हैं।

"जब लौं भारतभूमि मध्य आरजकुल बासा।
जब लौं आरजधर्म माहि आरज विश्वासा॥
जब लौं गुन-आगरी नागरी आरजबानी।
जब लौं आरजबानी के आरज अभिमानी॥
तब लौं यह तुम्हरो नाम थिर, चिरजीवी रहिहै अटल।
नित चद सूर मम सुमिरिहैं हरिचदहु सज्जन सकल॥"

ग्रंथों की सूची

१ नाटक

१ प्रवास नाटक (अपूर्ण, अप्रकाशित)
२ सत्य हरिश्चंद्र
३ मुद्राराक्षस
४ विद्या सुदर
५ धनंजय विजय
६ चंद्रावली
७ कर्पूर मंजरी
८ नीलदेवी
९ भारत दुर्दशा
१० भारत जननी
११ पाषड विडंबन
१२ वैदिकी हिसा हिसा न भवति
१३ अंधेर नगरी
१४ विषस्य विषमौषधम्
१५ प्रेम योगिनी (अपूर्ण)
१६ दुर्लभ बंधु (अपूर्ण)
१७ सती प्रताप (अपूर्ण)
१८ नव मल्लिका (अपूर्ण, अप्रकाशित)
१९ रत्नावली (अपूर्ण)
२० मृच्छकटिक (अपूर्ण, अप्रकाशित, अप्राप्य)

२ आख्यायिका वा उपन्यास

१ रामलीला (गद्य-पद्य)
२ हमीरहठ (असंपूर्ण अप्रकाशित)
३ राजसिह (अपूर्ण)

---

१ (नंबर १९, २० बहुत कम लिखे गए)।

४ एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती (अपूर्ण)
५ सुलोचना
६ मदालसोपाख्यान
७ शीलवती
८ सावित्री चरित्र

३ काव्य

१ गीत गोविंदानंद (गाने के पद्य)
२ प्रेम माधुरी (शृंगार रस के कवित्त सवैया)
३ प्रेमफुलवारी (गाने के पद्य)
४ प्रेममालिका (तथैव)
५ प्रेमप्रलाप (तथैव)
६ प्रेमतरंग (तथैव)
७ मधुमुकुल (तथैव)
८ होली (तथैव)
९ मानलीला (तथैव)
१० दानलीला (तथैव)
११ देवी छद्म लीला (तथैव)
१२ कार्तिक स्नान (तथैव)
१३ विनय पचासा (तथैव)
१४ प्रेमाश्रुवर्षण (कवित्त सवैया)

२ (सुलोचना और सावित्री चरित्र में संदेह है ।)

१५ प्रेम सरोवर (दोहे-अपूर्ण)
१६ फूलों का गुच्छा (लावनी)
१७ जैन कुतूहल (गाने के पद्य)
१८ सतसई शृंगार (बिहारी के दोहों पर कुंडलिया—अपूर्ण)
१९ नए जमाने की मुकरी
२० विनोदनी (बँगला)
२१ वर्षाविनोद (गाने के पद्य)
२२ प्रातसमीरन (वंग छंद)
२३ कृष्णचरित्र
२४ उरहना (गाने के पद्य)
२५ तन्मय लीला (गाने के पद्य)
२६ रानी छदम लीला (तथैव)
२७ चित्र काव्य
२८ होली लीला

४ स्तोत्र

१ श्रीसीतावल्लभ स्तोत्र (संस्कृत पद्य)
२ भीष्मस्तवराज

३ (नबर १०,११,१२,२०,२३ २५,२६,२७,२८, २९, यह सब बहुत छोटे काव्य हैं, नबर १४, २२, २४ हरिश्चंद्र 'कला के सपादक ने संग्रह किया है ।)

३ सर्वोत्तम स्तोत्र
४ प्रातस्मरण मंगल-पाठ
५ स्वरूप चिंतन
६ प्रबोधिनी
७ श्रीनाथाष्टक

५ अनुवाद या टीका

१ नारदसूत्र
२ भक्तिसूत्र वैजयंती
३ तदीय सर्वस्व
४ अष्टपदी का भाषार्थ
५ श्रुति रहस्य
६ कुरान शरीफ का अनुवाद (गद्य अपूर्ण)
७ श्री वल्लभाचार्यकृत चतुश्श्लोकी
८ प्रेमसूत्र (अपूर्ण)

६ परिहास

१ पाँचवे पैगबर (गद्य)
२ स्वर्ग मे विचार सभा का अधिवेशन (गद्य)
३ सबै जाति गोपाल की (गद्य)
४ बसंत जा (गद्य)
५ वेश्या स्तोत्र (पद्य)
६ अँगरेज स्तोत्र (गद्य)
७ मदिरास्तवराज (गद्य पद्य)
८ कंकड़ स्तोत्र
९ बकरी विलाप (पद्य)
१० स्त्री दंड संग्रह (कानून ताजीरात शौहर उर्दू-गद्य)
११ परिहासिनी (गद्य)
१२ फूल बुझौवल (पद्य)
१३ मुशाइरा (गद्य पद्य)
१४ स्त्री-सेवा-पद्धति (गद्य)
१५ रुद्री का भावार्थ (गद्य)
१६ उर्दू का स्यापा (पद्य)
१७ मेला झमेला (गद्य)
१८ बंदर सभा (अपूर्ण)

७ धर्म संबंधीय इतिहास तथा चिह्नादि वर्णन

१ भक्त सर्वस्व
२ वैष्णव सर्वस्व
३ वल्लभीय सर्वस्व
४ युगल सर्वस्व
५ पुराणोपक्रमणिका

---

४ (यह सब छोटे छोटे काव्य है ।)
५ (नंबर ४ ,५, ७ बहुत ही छोटे है ।)
६ (प्राय यह सभी छोटे छोटे लेख वा काव्य है ।)

६ उत्तरार्ध भक्तमाल
७ भारतवर्ष और वैष्णवता

८ माहात्म्य

१ गो महिमा (सग्रह-गद्य)
२ कार्तिक कर्म विधि (गद्य)
३ कार्तिक नैमित्तिक कर्म विधि (गद्य)
४ वैशाख स्नान विधि (गद्य)
५ माघ स्नान विधि (गद्य)
६ पुरुषोत्तम मास विधि (गद्य)
७ मार्गशीर्ष महिमा। (पद्य)
८ उत्सवावली (गद्य)
९ श्रावण कृत्य (गद्य)

९ ऐतिहासिक

१ काश्मीर कुसुम
२ बादशाह दर्पण
३ महाराष्ट्र देश का इतिहास
४ उदयपुरोदय
५ बूँदी का राजवश
६ अग्रवालों की उत्पत्ति
७ खत्रियों की उत्पत्ति
८ पुरावृत्त संग्रह
९ पंच-पवित्रात्मा
१० रामायण का समय
११ श्रीरामानुज स्वामी का जीवनचरित्र
१२ जयदेवजी का ,,
१३ सूरदासजी का ,,
१४ कालिदास का ,,
१५ विक्रम और विल्हण का ,,
१६ काष्ठजिह्वास्वामी का ,, (अप्रकाशित)
१७ पंडित राजाराम शास्त्री का ,,
१८ श्री शंकराचार्य का ,,
१९ श्रीवल्लभाचार्यजी का ,,
२० नेपोलियन का ,,
२१ जज द्वारकानाथ मित्र का ,,
२२ लार्ड म्यो का ,,
२३ लार्ड लारेंस का ,,
२४ जार का (संक्षिप्त) ,,
२५ कालचक्र
२६ सीतावट-निर्णय
२७ दिल्ली दर्बार दर्पण

१० राजभक्ति-सूचक

१ भारत वीरत्व
२ भारत भिक्षा

---

१ (जीवनचरित्रों मे कई एक बहुत छोटे है ।)

३ मुँह दिखावनी

४ मानसोपायन (संग्रह)

५ मनो-मुकुल-माला

६ लुइसा विवाह वर्णन

७ राजकुमार-विवाह वर्णन

८ विजयिनी विजय-वैजयती

९ सुमनोंजलि (संग्रह)

१० रिपनाष्टक

११ विजय वल्लरी

१२ जातीय सगोत, National Anthem का अनुवाद

१३ राजकुमार सुस्वागतपत्र (गद्य)

११ स्फुट ग्रथ, लेख तथा व्याख्यान आदि

१ नाटक (नाटक के भेद इतिहास आदि का वर्णन)

२ हिंदी भाषा

३ संगीतसार

४ कृष्णपाक

५ हिंदी व्याकरण

६ शिक्षा कमीशन मे साक्षी (अँगरेजी)

७ तहकीकात पुरी की तहकीकात

८ प्रशस्ति सग्रह

९ प्रतिमा-पूजन-विचार

१० रस-रत्नाकर (असंपूर्ण)

११ व्याख्यान

१ खुशी, २ हिंदी (दोहो मे), ३ भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है ?

१२ यात्रा

१ मेवाड़-यात्रा, २ जनकपुर-यात्रा, ३ सरयूपार की यात्रा, ४ वैद्यनाथ-यात्रा।

१३ ज्योतिष

१ भूगोल संबधी बाते, २ भडरी, ३ वर्षमालिका, ४ मध्याह्नसारिणी, ५ मूक प्रश्न।

१४ ऐतिहासिक

१ वृत्त संग्रह, २ राजा जनमेजय का दानपत्र, ३ मंगलीश्वर का दानपत्र, ४ मणिकर्णिका, ५ काशी, ६ पंपासर का दानपत्र, ७ कन्नौज, ८ नागमगला का दानपत्र, ९ चित्रकूटस्थ रमाकुंड-प्रशस्ति, १० गोविंददेवजी के

---

१० (नबर ३, ६, ७, ८, १२, १३, बहुत छोटे है ।)

मंदिर की प्रशस्ति, ११ प्राचीन काल का सवत्-निर्णय, १२ शिवपुर का द्रौपदीकुंड।

१५ प्रबंध

१ भ्रूणहत्या, २ हाँ हम मूर्ति-पूजक हैं (असंपूर्ण, अप्रकाशित), ३ दुर्जनचपेटिका, ४ ईशूखृष्ट और ईशकृष्ण, ५ शब्द मे प्रेरक शक्ति, ६ भक्ति ज्ञानादिक से क्यों बडी है ? ७ पबलिक ओपीनियन, ८ बंगभाषा की कविता, ९ विनय पत्र, १० कुरान-दर्शन।

१६ कौतुक

१ इंद्रजाल, २ चतुरग।

१७ स्त्रीशिक्षा के लेख

१ लाजवती, २ पतिव्रत, ३ कुलवधू जनों को चितावनी, ४ स्त्री, ५ वर्षा, ६ सती-चरित्र (?), ७ राम सीता संवाद (?), ८ लवली और मालती संवाद (?), ९ वसंत और कोकिला (?), १० सरस्वती और सुमति का संवाद (?), ११ प्रेमपथिक (?)

१८ छोटे छोटे लेख आदि

१ मित्रता, २ अपव्यय, ३ किसका शत्रु कौन है ? ४ भूकप, ५ नौकरों को शिक्षा, ६ बुरी रीतें, ७ सूर्योदय, ८ आशा, ९ लाख लाख बात की एक एक बात, १० बुद्धिमानों के अनुभूत सिद्धांत, ११ भगवत् स्तुति, १२ अंकमय जगत्-वर्णन, १३ ईश्वर के वर्तमान होने के विषय में, १४ इँगलैंड और भारतवर्ष, १५ वज्राघात से मृत्यु, १६ त्यौहार, १७ होली, १८ वसंत, १९ लेवी प्राण लेवी, २० मर्सिया।

(कविवचनसुधा के लेख तथा स्फुट कविता का पूरा पता नही मिला। जिन लेखों पर(?) चिह्न है उनमे सदेह है कि इनके लिखे हैं वा दूसरों के।)

१२ सपादित, संगृहीत वा उत्साह देकर बनवाए

१ ऊर्ध्वपुंड्र मार्तंड (संस्कृत)

२ कजली मलार संग्रह (काष्ठ-जिह्वास्वामी कृत)
३ चैती घाटो सग्रह (तथैव)
४ श्री सीताराम विवाह मगल (तथैव)
५ मुकरी (काशिराज कृत)
६ सुंदरीतिलक (सवैयों का सग्रह)
७ श्री राधा-सुधा-शतक (हठी कृत कवित्त)
८ सुजान शतक (घनआनंदजी कृत सवैया कवित्त संग्रह)
९ कवि-हृदय-सुधाकर (चंद्रिका मे छपा)
१० गुलजारे पुरबहार (गजलों का संग्रह)
११ नई बहार (होली मे गाने के पद्य)
१२ चमनिस्ताने-हमेशः बहार (चार भाग, नाना काव्य संग्रह)
१३ रसबरसात (वर्षा मे गाने के पद्य)
१४ कौशलेश कवितावली (चद्रिका में प्रकाशित)
१५ बुढ़वा मंगल (संस्कृत हिंदी मे परिहास)
१६ रामार्या (संस्कृत पद्य)
१७ जरासध-वध महाकाव्य (पद्य)
१८ भागवत-शका-निरासवाद (संस्कृत पद्य)
१९ पंचक्रोशी के मार्ग का विचार (गद्य)
२० मलारावली (पद्य)
२१ भारतीभूषण (पद्य)
२२ रामायण-परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश (गद्य-पद्य)
२३ कविवचनसुधा (पावस की कविता संग्रह)
२४ कादबरी (गद्य उपन्यास)
२५ दुर्गेशनंदिनी (गद्य उपन्यास)
२६ सरोजिनी (गद्य नाटक)
२७ आनरेरी मैजिस्ट्रेटी के नियम (अँगरेजी)
२८ शृगारसप्तशती (बिहारी के दोहो का सस्कृत अनुवाद)
२९ भंग दर्भङ्ग (गद्य)

३० गदाधर भट्ट जी की वाणी (पद्य)
३१ रास-पचाध्यायी (पद्य)
३२ लालित्यलता (पद्य)
३३ श्री वल्लभ-दिग्विजय (गद्य)
३४ साहित्यलहरी (गद्य-पद्य)
३५ गजलियात (उर्दू पद्य)
३६ वसत होली (पद्य)
३७ भाषा व्याकरण (पद्य)
३८ पूर्ण प्रकाश चंद्रप्रभा (गद्य उपन्यास)
३९ राधारानी (गद्य उपन्यास)
४० राग संग्रह (पद्य)
४१ गुर सारणी (पद्य)
४२ होरी सग्रह (पद्य)
४३ प्रदोष मे त्रिदेव पूजन (गद्य)
४४ प्रांतर प्रदर्शन (गद्य)
४५ कलिराज की सभा (गद्य)
४६ कीर्तिकेत नाटक (गद्य)
४७ मार्टिन वाल्डेक के भाग्य (गद्य)
४८ तप्ता सवरण नाटक (गद्य)
४९ गुणसिधु (गद्य)
५० अदभत अपर्व स्वप्न (गद्य)
५१ एक शोकसंवाद (गद्य)
५२ बाल्यविवाह प्रहसन (गद्य)
५३ धैर्यसिधु (गद्य)
५४ प्रहूलाद नाटक (गद्य)
५५ रेल का विकट खेल (गद्य)
५६ प्रसन्नकरुणाकर (सस्कृत)
५७ सुलभ रसायन सचेप
५८ धूर्त समागम प्रहसन (सस्कृत)
५९ ध्यानमंजरी (पद्य)
६० विद्याचद्रोदय (गद्य)
६१ भाषा गीतगोविद (पद्य)
६२ विजय पारिजात महानाटक (सस्कृत)
६३ श्री वृंदावन सत (ध्रुवदास-कृत)
६४ गुरुकीर्तिकवितावली (पद्य)
६५ ग्राम पाठशाला नाटक(गद्य)
६६ मालती (गद्य)
६७ बिजुली (गद्य)
६८ शास्त्रपरिचायिका (गद्य)
६९ शिशुपालन (गद्य)
७० श्री बदरिकाश्रमयात्रा (सस्कृत)
७१ माधुरी (रूपक गद्य)
७२ ज्योतिर्विद्या (गद्य)

७३ शरद ऋतु की कहानी (गद्य)
७४ प्रेमपद्धति॰ (घनआनंद कृत, पद्य)
७५ प्रेम दर्शन (देव कृत, पद्य)

(जो जो ग्रंथ स्मरण आए या उत्तम लेख चद्रिका, बाला-बोधिनी मे मिले लिखे गए हैं। कविवचनसुधा मे प्रकाशित ग्रथ या लेखो का पता नही मिला।)

---

(७) सूरदास*

महामोह मद छाइ, अंधकार सब जग कियो ।
हरि जस सुभ फैलाइ, सूर सूर-सम तम हर्यो ।।

भाषा कविता रूपी आकाश मे सूर रूपी सूर्य ने प्रकाश कर, अविद्या और धर्म-बहिर्मुखता रूपी घोर अंधकार का नाश कर, उड-गन रूपी प्राचीन प्राकृत कवियों की जगमगाहट को तेजोहीन कर दिया। अतएव लोगो ने उस अद्भुत प्रकाश से मोहित हो—

"सूर सूर, तुलसी ससी उडगन केसोदास ।
अब के कबि खद्योतसम जहँ तहँ करत प्रकास" ।।

यों कहकर अपने पूर्व के मनोहारी गगन-बिहारी नक्षत्र रूपी प्राचीन कवियों को मानो भुला दिया। जैसे सूर्य के प्रकाशित होने पर कोई भी नक्षत्र-माला को स्मरण नही करता और सभी उस नैश-गगन की भयानकता को अपनी जगमगाहट से मिटाकर शोभायमान करनेवाली नक्षत्रावली को, जिसने थोड़े ही काल पहले घोर अंधकार को भेद कर कुछ सहारा दे रखा था, भुला देते हैं वैसे ही भारत-वासियो ने अपने हृदय-पटल से प्राचीन कवियों को ऐसा भुला दिया कि अब कबीर, मलिक मुहम्मद प्रभृति दो चार गिने हुए कवियों के अतिरिक्त पता ही नहीं लगता कि सूरदास के पहले भाषा के और भी कवि थे या नही।

हमारे देश के विद्या-रसिको का ध्यान समय वा इतिहास की ओर बहुत कम रहा। वे लोग केवल गुणों ही को ग्रहण करते,

---

* यह लेख नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ४ संवत् १९५७ में प्रकाशित हुआ था।

गुणों ही की खोज करते और गुणो ही पर मोहित हो गुणो के रूप तक को भुला देते थे। किंतु अब पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार होने पर पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि इतिहास की ओर पड़ी और तब उन्होने ऐतिहासिक घटनाओ की खोज करना आरभ किया और अनुमान तथा अनुसधान से बहुत कुछ पता लगाया। अब हम भारतवासियो को भी उन्ही के अनुमान पर निर्भर कर अपने पूर्वजों का इतिहास जानना और मानना पडता है। इन विद्वानो ने अनुसंधान से भाषा कविता और कवियो के विषय मे यह निश्चय किया है कि लगभग एक सहस्र वर्ष पहल पृथिवीराज के समय मे हिंदी भाषा का वही रूप था जो कवि चद ने अपने रायसा मे लिखा है और यही कवि चद ही भाषा का प्रथम कवि गिना गया। परंतु कुछ काल पीछे कविराजा श्यामलदानजी के अकाट्य प्रमाणों के दर्साने पर बहुतो का मत यह हुआ कि चदरायसा बहुत पीछे का बना है। अब भाषा के प्रथम कवि कबीर और मलिक मुहम्मद जायसी ही गिने जाने लगे और उस समय की वही भाषा मानी जाने लगी, परंतु मेरे अनुमान मे ऐसा नही है। मैं अनुमान करता हूँ कि भाषा यहाँ की सदा से भिन्न भिन्न रही है। जो कवि जिस प्रांत का रहनेवाला था उसने उसी प्रांत की भाषा मे कविता की थी। इन कवियों (कबीर, मलिक मुहम्मद जायसी) के अतिरिक्त भाषा मे बहुतेरे अच्छे कवि हो गए थे और बहुत से उत्तमोत्तम ग्रथ बने थे जो कि अब भी खोज करने पर मिल सकते हैं। परंतु सूर और तुलसी रूपी "सूर-शशि" ने उदय होकर अपने प्रकाश मे सबको विलीन कर लिया और लोग शुष्क वेदांत तथा प्राकृत कथाओ की व्यर्थ उलझन से श्रमित होकर भक्तिरस के अगाध समुद्र मे निमग्न हो गए और सांसारिक कविताओं को भूल गए।

हिंदू राजाओं के समय में अधिक ध्यान संस्कृत की ओर था। उस समय के संस्कृत ग्रंथ बहुतेरे प्रचलित हैं। परंतु भाषा कवियों की तादृश पूछ भी न थी यहाँ तक कि राजा भोज के समय में कुछ चर्चा भाषा कविता की चली परंतु विदेशीय आक्रमणों में विद्या-चर्चा उठ ही गई और प्राचीन ग्रंथों पर जो कुछ बीती वह इतिहास के अंक पर चिरकाल तक अंकित रहेगी। जब मुसलमानों का राज्य स्थिर हुआ और कुछ दिन वह लोग यहाँ रह गए तो उनका भी ध्यान इस ओर पडा परतु वह लोग हिंदू-द्वेषी थे अतएव धर्म-ग्रंथो का प्रचार उन्हे सह्य न था, अतएव प्राकृत चरित्रो ही के आधार पर कविता और काव्य होने लगे जिसके बहुतेरे प्रमाण विद्यमान हैं। परंतु भारतवासियो की रुचि चिरकाल से धर्म की ओर रही, उनका जीवन ही धर्ममय रहा, फिर वे प्राकृत चरित्रो की चाहना क्योंकर करते ? संस्कृत साहित्य इसके प्रमाणीभूत हैं। भाषा में गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

भनिति विचित्र सुकविकृत जोऊ। रामनाम बिनु सोह न सोऊ ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी ॥
सब गुन रहित कुकविकृत बानी। रामनाम जस अंकित जानी ॥
सादर कहहि सुनहि बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही ॥

(बालकांड दोहा १० वाँ)

विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पूर्व कवियो की कविताओं ही पर लक्ष्य है जो कि भगवच्चरित्र न होने के कारण लोक-सम्मानित न थीं। गोस्वामीजी फिर लिखते हैं—

मनिमानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥
तैसेहि सुकवि कवित बुध कहही। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं ॥

भगति हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत सारद आवति धाई ॥
रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ ॥
कवि कोविद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरिजस कलिमलहारी ॥
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिरधुनि गिरा लगत पछिताना ॥
(बालकांड ११वाँ दोहा)

फिर गोस्वामीजी लिखते हैं—

"कलि के कबिन्ह करौं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा ॥
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बषाने ॥
भए जे अहहि जे होइहहि आगे। प्रनवों सबहिं कपट सब त्यागे ॥"
(बालकांड १४वाँ दोहा)

इसका एक प्रमाण यह भी है कि कबीर ने यद्यपि अधिकतर वेदांत ही कथन किया परतु हरि-सबंध आ जाने से प्राचीन कवियों की कविता मे सबसे अधिक सम्मान तथा प्रचार इन्हीं की कविता का हुआ। मलिक मुहम्मद जायसी की कविता का कुछ आदर उसकी सुंदर कविता तथा प्रसिद्ध आर्य चरित्र होने के कारण हुआ परंतु दूसरी कविता, ग्रंथों, तथा कवियों के नाम तक को लोग नहीं जानते। एशियाटिक सोसाइटी के लिये भाषा ग्रंथों की खोज करने के समय मुझे "पद्मावत" से पहले के दो ग्रथ पूज्य भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र के सरस्वती-भवन मे मिले, जिनमे एक "हफ्त सहेली" कवि सादन लकडहारा कृत, दूसरा "मृगावती" कवि कुतबन कृत। आज दिन इन ग्रंथों का कोई नाम भी नहीं जानता। इन ग्रंथों मे इनके पूर्व के समन आदि कई कवियों के नाम मिलते हैं और खोज की जाय तो राजपुताना, व्रज तथा बैसवारा आदि प्राचीन कवि-निवास-स्थानों मे कितने ही ग्रंथ इनसे भी प्राचीन और उत्कृष्ट

निकलेंगे परंतु उनका नाम भी कोई नहीं जानता। मेरे अनुमान मे इसका कारण प्राकृत कविता का ही आधिक्य है।

भाषा के विषय मे विचार कीजिए तो भिन्न भिन्न प्रांतों की भिन्न भाषा होना ही प्रमाणित होता है। अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन खिलजी (सन् १३०० ई०) के समय मे उर्दू भाषा की सृष्टि की, उनकी भाषा का नमूना देखिए—

"सनम् जद् (जब) याद आता है। चश्म दर्या बहाता है ॥"
"जल का उपजा जल मे रहै। आँखो देखा खुसरो कहै ॥"
"आदि कटे तें सब को पारै। मध्य कटे ते सबको मारै।
अंत कटे ते सब को मीठा। कह खुसरो मैं आँखो दीठा ॥"
(काजल)

"खालिक, बारी—सिरजनहार। वाहिद, एक-बड़ा करतार।
रसूल पैगंबर, जान बसीठ। यार, दोस्त, बोले जा ईठ ॥"

संवत् १६०० के लगभग की पद्मावत की कविता—

"सुआ काल होइ लेगा पीऊ। पिउ नहिं जात जात बरु जीऊ ॥"

" हफ्त सहेली " और "मृगावती" की भाषा मे इससे कुछ ही अंतर है। अब इसी समय संवत् १५९८ के बने ग्रंथ "हित-तरंगिणी" की भाषा देखिए—

"चरन कमल की विमल छवि जौ झलकै उर माहिं।
तौ कविता सविता-सहस कवि-मुख तें सरसाहिं ॥"

यह कैसी विशुद्ध व्रजभाषा है, कैसी सुंदर भावमय कविता है। उक्त "हिततरंगिणी" मे कवि कृपाराम लिखते हैं—

बरनत कवि सिंगार रस, छंद बडे विस्तारि।
मैं बरन्यो दोहान बिच, यातें सुघर बिचारि ॥

ग्रथ अनेक पढे प्रथम, पुनि बिचारि के चित्त।
मैं बरन्यों सिगार रस, सजन तिहारे हित्त ॥

निदान सुंदर भाषा, सुंदर भावों और सुदर लक्षणों से पूरित अनेक ग्रथ श्रीसूरदासजी के प्रथम विद्यमान थे, परंतु इन सभो के रहते भी सूर ने कुछ ऐसा मोहिनी-जाल फैलाया, और लोगों के चित्त को ऐसा लुभाया कि लोगों के मुख से प्राचीनों को भुलाकर अपने को आदि कवि कहला ही लिया। सूर के पदों ने कुछ ऐसा लोगों के हृदय को बेधा कि व्याकुल हो लोग सभी भूल गए। किसी ने खूब कहा है—

'किधौ सूर को सर लग्यो, किधौ सूर की पोर।
किधौ सूर को पद सुन्यो, जो अस विकल सरीर ॥"

अस्तु—अब हम ऐसे महानुभाव, भाषा-कवि-कुल-चूड़ामणि, भाषा-कविकुल-गुरु श्रीसूरदासजी के चरित्र-वर्णन मे प्रवृत्त होते हैं।

जाति और पूर्व पुरुष

सूरदासजी का चरित्र ससार मे "भक्तमाल" * और "चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता"†. के आधार ही पर प्रसिद्ध था। "चौरासी वैष्णवो की वार्त्ता" मे इन्हे जाति के सारस्वत ब्राह्मण बाबा रामदास के बेटे लिखा है और इसी के अनुसार ये सारस्वत ब्राह्मण बाबा रामदास के बेटे प्रसिद्ध थे। इससे बढकर इनका

* भक्तमाल—नारायणदास उपनाम नाभाजी कृत जो सं० १७०० के लगभग बनी।

† चौरासी वैष्णवो की वार्त्ता—श्रीगोस्वामि गोकुलनाथजी कृत, जिनका जन्म स० १६०८ मे हुआ था और जिन्होंने इस ग्रथ में अपने पितामह श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य्य के ८४ शिष्यो का वर्णन किया है, जिनमें एक सूरदास जी भी है।

पूर्व वृत्तांत कुछ भी नहीं मिलता था, परंतु पूज्यपाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी का ध्यान इनके बनाए "साहित्यलहरी" नामक ग्रथ के निम्नलिखित पद पर पड़ा जिसमे सूरदासजी ने अपना वृत्तांत आप लिखा है। उस पर भारतेंदुजी ने एक लेख सन् १८७८ मे अपनी "हरिश्चद्रचंद्रिका" मे छपवाया और तभी से पुरातत्ववेत्ताओ का ध्यान इस ओर खिंचा और अब सूरदासजी जाति के भाट और प्रसिद्ध कवि चंद के वंशधर गिने जाने लगे।

"प्रथम ही पृथु यज्ञ* ते भे प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप॥
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥
पारि पायँन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु बंस प्रसंस मे भौ चंद चारु नवीन॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हे ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेस॥
दूसरे गुनचंद ता सुत सीलचंद सरूप।
बीरचंद प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप॥
रंथभौर हमीर भूपति संग खेलत जाय।
तासु वस अनूप भो हरिचंद अति विख्याय॥
आगरे रहि गोपचल मे रहौ तासुत बीर।
पुत्र जनमे सात ताके महाभट गभीर॥
कृष्णचद्र, उदारचंद, जु रूपचंद सुभाइ।
बुद्धिचंद प्रकाश चौथे चंद भे सुखदाइ॥

* प्रायः लोगों ने इसे 'प्रथ जगात' लिखा है।

देवचंद प्रबोध संसृतचद ताको नाम।
भया सप्तो नाम सूरजचद मद निकाम ॥
सो समर करि स्यहि सेवक गए विधि के लोक।
रहो सूरजचंद दृग ते हीन भर बर सोक ॥
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातएँ दिन आइ जदुपति कीन आपु उधार ॥
दियो चख दै कही सिसु सुनु माँगु बर जो चाइ।
हैां कही प्रभु भगति चाहत सत्रुनास सुभाइ ॥
दूसरो ना रूप देखैां देखि राधा-स्याम।
सुनत करुनासिधु भाषो 'एवमस्तु' सुधाम ॥
प्रबल दच्छिन विप्रकुल ते सत्रु ह्वैहैं नास।
अखिल बुद्धि विचारि विद्यामान मानै सास ॥
नाम राखे मोर सूरजदास सूर सु स्याम।
भए अंतर्धान बीते पाछली निसि जाम ॥
मोहि पन सो इहै ब्रज की बसे सुख चित थाप।
थापि गोसाईं करी मेरि आठ मद्धे छाप ॥
विप्र प्रथु जगात को है भाव भूरि निकाम।
सूर है नँदनंदजू को मोल लयो गुलाम ॥ १ ॥"

इस पद में सूरदासजी लिखते हैं कि पहले पृथुयज्ञ से इस वश के मूल पुरुष ब्रह्मराव हुए, जो बड़े सिद्ध और देवप्रसादलब्ध थे, और जिन्हे देवी ने स्वयं दूध पिलाया था। इनके वंश मे चंद हुआ, जिसे महाराज पृथ्वीराज ने ज्वालादेश दिया। इनके चार बेटे हुए जिनमे से सबसे बड़ा राजा हुआ। दूसरा गुणचंद्र उसका बेटा सीलचंद्र उसका बोरचद्र। यह बोरचंद्र रणथंभैार के प्रसिद्ध राजा हम्मीर के साथ खेलता था। इसके वंश मे हरिचंद हुआ।

उसका बेटा जो वीर था आगरे रहकर फिर गोपचल मे रहा। उसको सात बेटे बड़े शूरवीर हुए (१) कृष्णचंद्र (२) उदारचद (३) रूपचद (४) बुद्धिचद (५) देवचद (६) ससृतचंद (७) सूरजचद। ये (छओं भाई सूरदास के) शाह (बादशाह दिल्ली) की चाकरी मे युद्ध मे लडकर मारे गए। केवल मैं सूरजचद ऑखो का अंधा बच रहा। मैं कूएँ मे गिर पड़ा। सात दिन उसी मे पडा पुकारता रहा पर किसी ने पुकार न सुनी। सातएँ दिन स्वय श्रीयदुपति भगवान् ने आकर उद्धार किया* और मुझे ऑख देकर कहा पुत्र वर मॉग। मैंने कहा कि प्रभो! मैं आपकी भक्ति चाहता हूँ और शत्रु का नाश हो तथा राधाश्याम का रूप देखकर अब और किसी का रूप न देखूँ। करुणासिधु भगवान् ने कहा ऐसा ही होगा। दक्षिण के प्रबल ब्राह्मण † कुल से तेरे शत्रुओं का नाश होगा और तू सब विद्या मे निपुण होगा। मेरा

* भगवद्दर्शन के विषय मे लोकप्रसिद्ध बात यह है कि जब भगवान् ने हाथ पकड़कर सूरदास जी को कुएँ से निकाला तब इनके कोमल करस्पर्श से सूरदासजी को संदेह हुआ कि यह भगवान् का श्री हस्त-कमल है, उन्होंने हाथ पकड़ लिया। भगवान् हाथ छोड़ाकर चले तब सूरदासजी ने कहा—

"कर छुटकाए जात हौ दुर्बल जानि के मोहि।
हृदय सो जब जाहुगे मर्द बखानौ तोहि॥"

इस पर भगवान् ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया।

† भारतेंदुजी ने अनुमान किया है कि शत्रुओ के नाश से यदि लौकिक अर्थ लिया जाय तो मुगलों का नाश तो ब्राह्मण पेशवाओ के द्वारा हुआ और अलौकिक अर्थ लिया जाय तो काम क्रोधादि शत्रुओ का नाश ब्राह्मण श्री वल्लभाचार्य्य से हुआ। मै इसी दूसरे अनुमान को ठीक समझता हूँ, क्योकि भगवद्दर्शन पाकर फिर सूरदासजी को लौकिक कामना कोई रह न गई यहाँ तक कि ऑख तक न चाही। दूसरे आईन अकबरी से इनके पिता का अकबर के दर्बार मे रहना सिद्ध है फिर वह उनके शत्रु क्योंकर हो सकते है।

नाम सूरजदास सूर और सूरश्याम रखकर पिछली रात बीते भगवान् अंतर्धान हो गए। तब से मैं पण करके सुख से व्रज मे रहने लगा। गोस्वामीजी ने अष्टछाप मे मुझे थापा। प्रथुजगात (यज्ञ से उत्पन्न) का ब्राह्मण सब प्रकार से निकम्मा यह (मैं) सूर (सूरदास) नंदनंदनजी का मोल लिया गुलाम है।

इस लेख के अनुसार सूरदासजी की वंशावली इस प्रकार हुई—
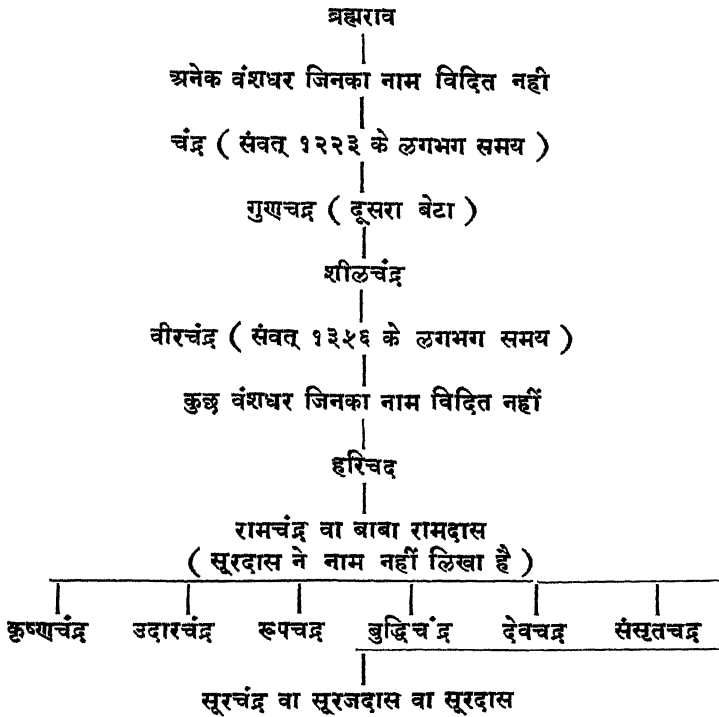
अब प्रथम विचार इनकी जाति का करना चाहिए। इस पद की आलोचना करने से यह स्पष्ट प्रगट है कि ये प्रसिद्ध कवि चंद के वंश मे (जो कि भाट थे) उत्पन्न हुए थे और मूलपुरुष इनके

ब्रह्मराव हुए। अब भाटो की वंशावली देखने से जान पडता है कि एक जाति भाटों की ब्रह्मभट्ट नाम से है, जिसकी उत्पत्ति "ब्रह्मभट्ट-प्रकाश" नामक ग्रंथ मे इस प्रकार से वर्णित है—"अग्नि मे ब्रह्माजी के वीर्य का हवन होने से भृगु, अंगिरा और कवि ये ३ ऋषि उत्पन्न हुए" (महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ८५ श्लोक १०६)। कवि के ८ बेटे—यथा कवि, काव्य, धृष्णु, बुद्धिमान्, उशना, भृगु, विरज, काशी, धर्मवित्त और उग्र—हुए (म० भा० अ० प० अ० ८५ श्लोक १३३)। कविवंशी ब्रह्मभट्ट से प्रगट हुए हैं और कुछ ब्रह्मभट्टो की उत्पत्ति ब्रह्मराव से भी, जो कि ज्वाला देश मे विशेष रहते हैं, हुई है। ब्रह्मराव भी ब्रह्माजी के यज्ञ से पैदा हुआ था और उसने ब्रह्माजी को स्तुति से राजी करके ब्रह्मराव नाम पाया। (स्कद पुराण)

"ब्रह्मभट्टो का आचार व्यवहार कान्यकुब्ज, गौड और सारस्वत ब्राह्मणों से मिलता हुआ है"। (रिपोर्ट मर्दुमशुमारी, बाबत सन् १८९१ ई० पृष्ठ ३५९ देखो)

इसके अतिरिक्त किसी कवि ने बंदीजनों की प्रशंसा मे यह कवित्त कहा है—

प्रथम विधाता तें प्रगट भए बदीजन
पुनि पृथुयज्ञ तें प्रकाश सरसात है।
माने सूत सौनकन सुनत पुरान रहे
यश को बखाने महा सुख बरसात है॥
चद चौहान के केदार गोरीसाहिजू के
गंग अकबर के बखाने गुनगात है।
काग कैसे मास अजनास धन भाटन को
लूटि धरै जाको खुरा खोज मिटि जातु है॥

(शिवसिंह-सरोज, गंग कवि का वर्णन देखो)

निदान इन लेखों से स्पष्ट विदित है कि ब्रह्मभट्ट जाति ब्रह्मराव से उत्पन्न हुई। ये लोग अपने को ब्राह्मण मानते हैं। ज्वाला देश इनका मुख्य स्थान है तथा इनके आचार व्यवहार सारस्वत आदि ब्राह्मणों के से होते हैं। स्वयं सूरदासजी ने ही अपने पद मे लिखा है कि 'विप्र प्रथु जगात को है'' ऐसी दशा मे इनका सारस्वत ब्राह्मण "चौरासी वार्ता" मे लिखा जाना वा लोकप्रसिद्ध होना कोई आश्चर्य की बात नही है, परंतु वास्तव मे सूरदासजी ब्रह्मभट्ट जाति के थे।

इनके पूर्व पुरुषो मे ब्रह्मराव के पीछे और प्रसिद्ध कवि चंद के पहले और किसी का पता इनकी कविता से नही लगता। चद के रायसे मे चद के पिता का नाम वेण मिलता है। चंद का पृथ्वीराज से ज्वालादेश पाना तथा उसके बड़े पुत्र को भी वह राज्य प्राप्त होना सूरदासजी की ऊर्ध्वोक्त कविता से पाया जाता है, परतु चंद-कृत पृथ्वीराज रायसे से केवल इतना ही पता लगता है कि इनके पुर्खा पंजाब देश के रहनेवाले थे। यह स्वयं पंजाब प्रायः जाया करते थे और एक बेर देवी जालधरी के मदिर मे बंद हो गए थे। सूरदासजी ने चंद के चार बेटे होना लिखा है जिनमे बडा राजा हुआ और छोटे गुणचद्र के वश मे सूरदास हुए। परतु रायसे से चद को दस बेटे होने का पता लगता है जिनके नाम ये हैं—(१) सूर (२) सुदर (३) सुजान (४) जल्ह (५) बल्ह (६) बलिभद्र (७) केहरि (८) बीरचंद (९) अवधूत अर्थात् योगिराज और (१०) गुणराज। (पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या प्रकाशित "पृथ्वीराज रासो" आदि पर्व के पृष्ठ ७ मे टिप्पणी देखो) संभव है कि यही अंतिम गुणराज ही सूरदासजी के पूर्व पुरुष गुणचद हों। राज, राय, चद आदि का कविता मे बदल जाना कोई आश्चर्य की बात

नहीं है। प्रसिद्ध कवि केशवदास ने ही अपने को कविता मे कही केशवदास और कहीं केशवराय लिखा है। कवि चद तथा इनके बनाए "पृथ्वीराज रायसा" के विषय मे इन दिनों पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों मे विवाद चल रहा है। कोई कहता है कि पृथ्वीराज के समय मे कोई चद नही हुआ और रायसा जाली है, यह ग्रथ विक्रमीय सोलहवी शताब्दी मे बना और कोई कहता है कि चद और रायसा दोनों सच्चे हैं और इसमे लिखी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। इस विषय में सन् १८८६ और १८८७ ई० मे महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदानजी तथा पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या से खूब ही झगडा हुआ था। कविराजाजी के मत मे रायसा जाली है और पड्याजी उसे सच्चा कहते हैं। दोनों महाशयों के लेख हिंदी और अँगरेजी में (जर्नल एशियाटिक सोसायटी के अतिरिक्त) पुस्तकाकार छपे थे। जो कुछ हो, रायसे के विरोधियों की सप्रमाण युक्तियों के देखने से भ्रम अवश्य हो जाता है। परतु इस विपय की बहुत कुछ आलोचना करने पर मेरा अनुमान कहता है कि पृथ्वीराज के समय मे चद का होना निश्चित है परंतु रायसे का वर्तमान रूप चंद-रचित नही है वरच बहुतेरे अश तो चद-रचित हैं और बहुतेरे पीछे से जोड़े हुए हैं। रायसे के विरोधी लोग सवत् १५०० के लगभग के बने "हम्मीर काव्य" मे रायसा का नाम न पाकर तथा रायसे मे वर्णित पृथ्वीराज-चरित्र-वर्णन मे पार्थक्य देखकर अनुमान करते हैं कि इस समय तक रायसा नही बना था, तथाच सवत् १७२२ की खुदी हुई राजसमुद्र की प्रशस्ति में रायसा का वर्णन आने से इसके पूर्व इसका बनना अनुमान करते हैं। बाबू रामनारायणजी ने निज रचित "पृथ्वीराजचरित्र" ग्रथ की भूमिका मे इस विषय में लिखा है कि "उदयपुर राज्य के विक्टोरिया हाल के पुस्तका-

लय मे रायसे की जिस पुस्तक से मैंने यह साराश लिया है उसके अंत मे यह लेख लिखा है कि चद के छद जगह जगह पर बिखरे हुए थे जिनको महाराणा अमरसिहजी ने एकत्र कराया। महाराणा कुंभकर्ण के पीछे, जिन्होंने स० १४९० से सं० १५२५ तक चित्तौड पर राज्य किया था, मेवाड़ की राजगद्दी पर अमरसिहजी नाम के दो महाराणा हुए हैं। प्रथम तो महाराणा प्रतापसिहजी के पुत्र, जिन्होंने संवत् १६५३ से स० १६७६ तक राज्य किया, और दूसरे महाराणा राजसिहजी के पौत्र व महाराणा जयसिहजी के पुत्र थे जिन्होने सवत् १७५६ से स० १७६८ तक राज्य किया। तो जिन अमरसिहजी ने रायसा के पृथक् पृथक् भागो को एकत्र कराया वे पहले ही अमर-सिहजी थे, दूसरे नही क्योंकि दूसरे अमरसिहजी के राज्यशासन के पूर्व की लगी हुई राजनगर की प्रशस्ति मे भाषा रायसा पुस्तक से उद्धृत किया हुआ वर्णन मिलता है।" इस लेख से स्पष्ट विदित होता है कि महाराणा अमरसिहजी के पहले से चद के बिखरे हुए छद मिलते थे और नि.सदेह वे प्रामाणिक समझे जाते थे तभी उनका सग्रह कराया गया और ग्रथ बनाया गया, तो क्या ऐसी दशा मे यह संभव नहीं है कि उनमे बहुत से कपोल कल्पित छद ऐसे मिल गए हों जो रायसे मे लिखित ऐतिहासिक घटनाओं को अप्रामा-णिक सिद्ध करते हैं? क्या यह असभव है कि जिन छंदों का सैकड़ो वर्ष से परम आदर था और जो उस समय पृथ्वीराज के समय के कहकर प्रसिद्ध थे उनमे से सभी कपोल-कल्पित थे, कोई प्रामाणिक और असली चद के बनाए नही थे? इसके अतिरिक्त रायसे की भाषा से यह सिद्ध होता है कि यह कई समय और कई कवियो की बनाई है, क्योंकि इसकी एकसी भाषा नही है। सूरदासजी ने चद से लेकर अपने तक पाँच पूर्व पुरुषो का नाम लिखा है और इनके

सिवाय बीरचद के पीछे कुछ लोगों का नाम नहीं लिखा है। क्या इससे यह अनुमान नहीं होता कि सूरदासजी से सैकड़ों ही वर्ष पहले चंद कवि हुए थे ? सूरदासजी का समय लगभग सवत् १५५० से सवत् १६५० तक निश्चय होता है अतएव संवत् १३२३ और सवत् १२४९ के बीच मे (जो समय पृथ्वीराज के जन्म और मरण का निश्चित हुआ है) चंद का होना कुछ असभव नहीं है। निदान मेरे अनुमान मे इन प्रमाणो से कविचद अवश्य पृथ्वीराज के समय मे हुए थे और सूरदासजी इनके वंशधर थे। मुझे पता लगा कि चद कवि के वंशवाले राज्य बूँदी के लाखैरी नामक गांव मे रहते हैं। इनका पता लगाने के लिये मैंने "सर्वहित" पत्र के पूर्व सपादक पंडित लज्जाराम शर्माजी को लिखा। उन्होंने उनका पता लगाकर लिखा कि "चंद बरदाई के वश के भाट लाखैरी मे इस समय हरसाई नाम के हैं, यह पुस्तक का पूजन नहीं करते, ...। चंद की वंशावली ठीक ठीक मालूम नहीं, और न कुछ साल सवन् विदित है।" चंद के बेटे गुणचंद्र, उनके शीलचंद्र और उनके वीरचंद्र। इन वीरचंद्र के विषय मे सूरदासजी लिखते हैं कि रणथभौर के प्रसिद्ध राजा हम्मीर के ये बाल्यसखा थे, परतु और किसी इतिहास से इनका पता नहीं लगता। इसी वश के एक सारंगधर का हम्मीर के दर्बार मे होना पाया जाता है। इन्हीं सारंगधर ने हम्मीर रायसा और हम्मीर काव्य बनाया था तथा अनेक लोग अनुमान करते हैं कि सस्कृत का प्रसिद्ध ग्रंथ "शार्ङ्गधरपद्धति" भी इन्हीं का बनाया है। (डाक्तर ग्रिअर्सन रचित The modern vernaculaı of Hındustan मे कवि सारगधर का वर्णन देखो।) संभव है कि सारगधर ही का दूसरा नाम वीरचंद रहा हो वा इस वंश के कई मनुष्य वीर हम्मीर के कृपापात्र रहे हों। निदान सूरदास-

जी के पूर्वजों का हम्मीर के दर्बार मे रहना सिद्ध है। हम्मीर का समय संवत् १३५७ तक मुशी देवीप्रसाद अनुमान करते हैं। वीर-च ंद के पीछे कुछ लोगों का नाम सूरदासजी ने छोड़ दिया है, क्योंकि लिखा है कि "तासु वंस अनूप भो हरिचद अति विख्यात।" सूरदासजी इन हरिचद को अत्यत विख्यात लिखते हैं परतु इतिहासो से कही इनका पता नहीं लगता। डाक्तर ग्रिअर्सन और 'शिवसिहसरोज''कार एक हरिचद बरसानेवाले और एक हरिचंद चर्खारीवाले लिखते हैं परंतु अनुमान से ये लोग सूरदास जी के पूर्वज नही जान पड़ते। इन हरिचद के बेटे अर्थात् अपने पिता का नाम नही लिखा है, केवल इनके विशेषण मे इन्हे वीर कहा है और इनका आगरे रहकर फिर गोपचल मे रहना वर्णन किया है, परतु 'वार्ता' आदि धर्मसंबधी ग्रथो मे तथा आईन अकबरी आदि ऐतिहासिक ग्रथों मे सूरदास के पिता का नाम बाबा रामदास लिखा है। अतएव सूरदासजी के पिता का नाम राम-चद वा रामदास अवश्य था। राजपुताने या पजाब से सबध छोडकर यह आगरे आ रहे थे। जान पड़ता है ये केवल कवि या गवैए ही नही थे वरच वीर सिपाही भी थे, और राज-दर्बार मे नियुक्त रहते थे। चंद इत्यादि इनके पूर्वजो की वीरता तो प्रसिद्ध ही है परतु ये स्वय भी वीर थे जैसा कि सूरदासजा लिखते हैं। इनके सात बेटों को भी सूरदासजी "महाभट गभीर" विशेषण देकर छः का बादशाह के लिये युद्ध करके मारा जाना लिखते हैं। इसकी पुष्टि "आईन अकबरी" से भी होती है। "आईन अकबरी" मे अकबर के दर्बार के गवैयों की सूची मे बाबा रामदास को ग्वालेरी लिखा है और सूरदास को बाबा रामदास का बेटा लिखा है। बाबा रामदास का नंबर २ है और सूरदास का १९—

मिस्टर ब्लाकमैन साहब अपने "आईने अकबरी" के अनुवाद में (See Blochman's Aini-Akbari, Vol. I, page 612, Calcutta Edition of 1873) बाबा रामदास पर नोट देकर लिखते हैं—"Note—Badoni (II 42) says Ram Das came from Lakhnau. He appears to have been with Bairam Khan during his rebellion and he received once from him one lakh of tankahas, empty as Bairam's treasure chest was He was first at the court of Islam Shah and is looked upon as second only to Tansen His son, Sur Das, is mentioned below" इस लेख से जान पडता है कि बाबा रामदास पहले दिल्ली के बादशाह इसलाम शाह के दर्बार मे थे जो कि सन् १५४५ ई० मे गद्दी पर बैठा और सन् १५५३ ई० मे मरा (संवत् १६०२—१६१०)। फिर बादशाह हुमायूँ के राज्य पाने पर यह उनके वजीर बैराम खाँ के पास रहने लगे और जब संवत् १६१६-१७ मे बैराम खाँ हुमायूँ के बेटे अकबर से बागी होकर लड़ा था उस समय भी ये उसके साथ थे।

सूरदासजी का समय

सूरदासजी का समय निर्णय करना कोई बहुत कठिन बात नहीं है, क्योंकि "आईन अकबरी" से यह सिद्ध है कि अकबर के समय मे सूरदासजी थे तथा वल्लभाचार्य महाप्रभु के सेवक * होना स्वयं सूरदासजी अपनी कविता मे लिखते हैं और श्री गोसाईंजी

---

* सूरसागर सारावली सूरदासजी रचित—११०२ संख्या का पद "श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।"

(गोस्वामि श्री विट्ठलनाथजी) के समय मे इनका* वर्त्तमान रहना भी उन्ही की कविता से सिद्ध है, अतएव श्री वल्लभाचार्यजी के जन्म से लेकर श्री गोसाई विट्ठलनाथजी के परमधाम पधारने के समय के मध्य का समय ही श्री सूरदासजी का समय है। श्री वल्लभाचार्यजी का जन्म मि० वैशाख कृष्ण ११ संवत् १५३५ और अंतर्धान मि० आषाढ शु० ३ संवत् १५८७ और गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी का जन्म मि० पौष कृष्ण ९ संवत् १५७२ और अतर्धान मि० माघ कृष्ण ७ संवत् १६४२ को हुआ। अतएव सवत् १५३५ से लेकर संवत् १६४२ तक १०७ वर्ष के भीतर ही सूरदासजी का जन्म और मरण-काल निश्चय है, क्योकि 'वार्ता' आदि के देखने से यह निश्चय है कि सूरदासजी की मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथजी के समय मे हुई अतएव सवत् १६४२ के पूर्व इनका अत समय निश्चय होने से लाख दीर्घायु होने पर भी संवत् १५३५ के पीछे ही सूरदासजी का जन्म होना ही सभव है।

सूरदासजी ने जो सूरसागर नामक ग्रथ श्री भागवत का आशय लेकर बनाया है वह एक ही समय एक शृखला से नही बनाया वरच बहुत दिनों तक बहुत से पद बन जाने पर उन सभों को क्रम से लगाकर और शृखलाबद्ध करने के लिये और भी

---

* पूर्व लिखित पद मे स्वय लिखा है "थापि गोसाई करी मेरी आठ मद्धे छाप।" गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने "अष्ट छाप" की थापना की, इनमें चार कवि श्री वल्लभाचार्य्य के सेवक अर्थात् सूरदास, परमानददास, कृष्णदास और कुभनदास और चार अपने सेवक अर्थात् छीत स्वामी, गोविंद स्वामी, नददास और चतुर्भुजदास थे। सूरदासजी का ऊपर लिखा पद साहित्यलहरी में मिलता है। इस ग्रथ को उन्होंने संवत् १६०७ मे बनाया था अतएव "अष्टछाप" का संस्थापन संवत् १६०७ के पूर्व हो गया था।

दोहा चौपाई आदि कविता रचकर ग्रंथाकार बना दिया है परंतु इसके बनाने के पीछे सूरसागर सारावली बनाया है। इस सूर-सागर सारावली को उन्होने एक लाख पद बनाने के पीछे अपनी सरसठ वर्ष की अवस्था मे बनाया था, जैसा कि उनके इन पदों से विदित होता है—

"गुरु प्रसाद होत यह दर्शन सरसठ बरस प्रवीन।
शिव बिधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहि लीन ॥१००२॥
दरसन दियो कृपा करि मोहन नेग दियो बरदान।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्री मुख कही बखान* ॥१००७॥

....

कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो।
श्री बल्लभगुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो ॥ ११०२ ॥
ता दिन ते हरिलीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताको सार सूरसारावलि गावत अति आनंद ॥ ११०३ ॥
तब बोले जगदीश जगत गुरु सुनो सूर मम गाथ।
तू कृत मम यश जो गावैगो सदा रहै मम साथ ॥ ११०४ ॥

अब यह निश्चय हुआ कि सूरदासजी ने श्री वल्लभाचार्यजी से दीक्षा लेने के पीछे उन्ही के उपदेशानुसार लीलाभेद से सूर-सागर एक लाख पदों में बनाया, तथा वल्लभाचार्यजो के सेवक होने के पूर्व कर्मकांड तथा वेदांतादि ज्ञान उपासना मे भी सूरदास-जी बहुत भटक चुके थे, इससे ये श्री वल्लभाचार्यजो से अवस्था मे भी कुछ कम ही जान पड़ते हैं। सूरदासजो ने दृष्टकूट अर्थात् चित्र काव्यो का संग्रह "साहित्य लहरी" नामक एक ग्रंथ संवत्

---

* भगवान् के दर्शन पाने का वर्णन सूरदास जी ने अपने "प्रथम ही पृथु जन्म" वाले पद में भी किया है।

१६०७ * मे बनाया है। इस ग्रंथ के पद जहाँ तक मैंने ढूँढे सूर-सागर मे नही मिले। इससे यह अनुमान होता है कि यह ग्रथ सूर-सागर के पीछे बना, नही तो इसके पद भी उसमे अवश्य आ जाते, अतएव यदि साहित्यलहरी और सूरसागर-सारावली का समय पास ही पास माना जाय तो सवत् १६०७ से ६७ वर्ष निकाल देने से संवत् १५४० के लगभग सूरदासजी के जन्म का समय निश्चय होता है, परंतु यह सभव है कि सूरसागर समाप्त करने के कुछ काल पीछे सारावली बनाई हो और साहित्यलहरी उसके पहिले ही बन चुकी हो। इसलिये इनका जन्मकाल संवत् १५४० से संवत् १५५० तक मे मानते हैं।

सूरदासजी के पदो की बड़ी सख्या ही उन्हे दीर्घायु बतलाती है। इसके अतिरिक्त ऊपर हम ६७ वर्ष की अवस्था मे सूरसागरसारावली का बनाना सिद्ध कर चुके हैं, इसके अतिरिक्त उनकी निज रचित निम्न लिखित कविता से भी सिद्ध होता है कि तीसरी अवस्था तक वे इधर उधर ही घूमते रहे—

"बिनती करत मरत हौं लाज।
नख सिख लौं मेरी यह देही है पाप की जहाज॥
और पतित आवत न आँखि तर देखत अपनो साज।
तीनो पन भरि ओर निबाह्यो तऊ न आयो बाज॥"

---

* मुनि पुनि रसन के रसलेष।
दशन गौरीनन्द (१६०७) को लिखि सुबल सबत पेष।
नदनदन मास छै तें हीन तृतिया बार।
नंदनदन जनम ते है बाण सुख आगार॥
त्रितय रिच्छ सुकरम योग विचारि सूर नवीन।
नदनदनदास हित साहित्यलहरी कीन॥ १०६॥
(साहित्यलहरी—पृष्ठ १०१ खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर से प्रकाशित)

"आछो गात अकारथ गारयो ।
करी न प्रीति कमललोचन सों जन्म जुवा ज्यों हारयो ॥
निसि दिन विषय विलासनि विलसत फूटि गईं तब चारयो ।
अब लाग्यो पछितान पाइ दुख दीन दई को मारयो ॥
कामी कुटिल कुचाल कुदर्शन कौन कृपा करि तारयो ।
तातें कहत दयालु देव मुनि काहे सूर विसारयो ॥"

"मेरो मन मतिहीन गुसाईं ।
सब सुखनिधि पदकमल छाँडि श्रम करत स्वान की नाईं ॥
फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूने सदन अज्ञान ।
तिहिं लालच कबहूँ कैसेहूँ तृप्ति न पावत प्रान ॥
जहँ जहँ जात तहीं भय त्रासत आस लकुटि पद त्रान ।
कौर कौर कारन कुबुद्धि जड किते सहत अपमान ॥
तुम सर्वज्ञ सकल विधि पूरन अखिल भुवन निजनाथ ।
तिन्हैं छाँड़ि यह सूर महा सठ भ्रमत भ्रमनि के साथ ॥"

"अपनी भक्ति देहु भगवान ।
कोटि लालच जो दिखावहु नाहिनै रुचि आन ॥
जरत ज्वाला गिरत गिर ते सुकर काटत सीस ।
देखि साहस सकुच मानत राखि सकत न ईस ॥
जा दिना ते जन्म पायों यहै मेरी रीति ।
विषय विष हठि खात नाहीं टरत करत अनीति ॥
थके किंकर यूथ यम के टारे टरत न नेक ।
नरक कूपनि* जाइ यमपुर परयो बार अनेक ॥
नहिनै काँचौ कृपानिधि करौ कहा रिसाइ ।
सूर तबहुँ न सरन छाँडै डारिहौ कढ़राइ ॥"

---

* इस पद में भी कूएँ में गिरने की सूचना दी है ।

"दीनानाथ अब बार तुम्हारी।
पतित उधारन बिरद जानि कै बिगरी लेहु सँवारी॥
बालापन खेलत ही खोयो युवा विषय रस माते।
वृद्ध भए सुधि प्रगटी मोको दुखित पुकारत ताते॥
सुतनि* तज्यो तिय तज्यो भ्रात तजि तन त्वच भई जु न्यारी।
श्रवन न सुनत चरन गति थाकी नैन भए जलधारी॥
पलित केस कफ कंठ विरोध्यो कल न परी दिन राती।
माया मोह न छाड़ै तृष्णा ए दोऊ दुख दाती॥
अब या व्यथा दूरि करिबे को और न समरथ कोई।
सूरदास प्रभु करुनासागर तुम ते होइ सु होई॥"

"हरि हौं महा पतित अभिमानी।
नर पापिन सों बैठि विषम रत भाव भगति नहि जानी॥

....

माया मोह लोभ नहि जामे ऐसो वृंदावन रजधानी।
नवल किशोर जलद तनु सुंदर विसरयो सूर सकल सुखदानी॥"

"अब के नाथ मोहि उबारि।
मग नहीं भव अंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारि॥
नीर अति गंभीर माया लोभ लहरति रंग।
लए जाति अगाध जल में गहे ग्राह अनंग॥
मीन इंद्रिय अतिहि काटति मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सिवार॥
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर॥

* जान पड़ता है इन्हें स्त्री, पुत्र भी थे पर सब मर गए थे।

थक्यो बीच बिहाल बिह्वल सुनो करुणामूल ।
श्याम भुज गहि काढि लीजै सूर ब्रज के कूल ॥"

"वादिहि जन्म गयो सिराइ ।
हरि सुमिरन नहिं गुरु की सेवा मधुवन बस्यो न जाइ ॥
अब की बेर मनुष्य देह धरि भजो न आन उपाइ ।
भटकत फिर्यो स्वान की नाईं नेक जूठ के चाइ ॥
कबहुँ न रिझए लाल गिरिधरन विमल विमल जस गाइ ।
प्रेम सहित पग बाँधि घुघरू सक्यो न अंग नचाइ ॥
श्री भागवत सुन्यो नहि श्रवननि नेकहुँ रुचि उपजाइ ।
अनन्य भक्ति न हरि भक्तनि के कबहूँ धोए पाइ ॥
कहा कहूँ जो अद्भुत है वह कैसे कहूँ बनाइ ।
भव अबोधि नाम निज नौका सूरहि लेउ चढ़ाइ ॥"

इन पदों तथा "प्रथम ही प्रथु जगात" वाले पद से स्पष्ट प्रगट होता है कि वृद्धावस्था तक शांति के साथ सूरदासजी जमकर ब्रज में नहीं रह सके थे, यद्यपि श्री वल्लभाचार्यजी के शिष्य हो चुके थे, लाखों पद भक्ति रस के बना चुके थे परतु नियमपूर्वक ब्रजवास नहीं करते थे। अंत मे बहुत ही वृद्धावस्था मे ब्रज मे विरक्त होकर आ बसे और शांत होकर रहे जैसा कि इन पदों से प्रगट होता है—

"मेरी जियै सु ऐसी बनी ।
छाँड़ि गुपाल और जो जाँचौं तौ लाजै जननी ॥
कहा काँच को सग्रह कीजै त्यागि अमोल मनी ।
विष को मेरु कहा लै कीजै अमृत एक कनी ॥
मन बच क्रम सत भाउ कहत हैं मेरे श्याम धनी ।
सूरदास प्रभु तुमरी भक्ति लगि तजी जाति अपनी ॥"*

* जान पड़ता है कि विरक्त हो गए थे ।

"जौ हम भले बुरे तौ तेरे।
तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई बिनती सुनु प्रभु मेरे ॥
सब तजि तुव सरनागत आयो निज कर चरन गहे रे।
तुम प्रताप बल बहुत न काहू निडर भए घर चेरे ॥
और देव सब रक भिखारी त्यागे बहुत अनेरे।
सूरदास प्रभु तुमरी कृपा तें पायों सुख-जु घनेरे ॥"

"हमे नंदनंदन मोल लिए।
यम के फद काटि मुकराए अभय अजात किए ॥
भाल तिलक श्रवननि तुलसी दल मेटे अक विए।
मूँड़े मूँड़ कंठ बनमाला मुद्रा चक्र दिए ॥
सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिए।
सूरदास को और बड़ो सुख जूठन खाइ जिए ॥"

निदान सूरदासजी का वृद्धावस्था मे व्रज मे आ रहना इन पदों से स्पष्ट है। अब यह देखना चाहिए कि इनके परमधाम जाने का समय कौन है ? ऊपर लिखे प्रमाणो से यह विदित होता है कि इनकी अवस्था ८० वर्ष से कम नहीं थी इसलिये संवत् १५४० से संवत् १५५० तक जन्म मानने से लगभग संवत् १६३०—१६४१ के बीच में इनका मृत्युसमय आता है। इस मत की पुष्टि कुछ कुछ प्रसिद्ध कवि व्यासजी के नीचे लिखे पद भी करते हैं। व्यासजी उरछे के रहनेवाले थे और सवत् १६१२ मे ४५ वर्ष की अवस्था मे श्री वृंदावन आकर श्री हरिवश गोशाईंजी के शिष्य होकर रहने लगे। (भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र रचित "वैष्णव-सर्वस्व", मिस्टर ग्राउस की "मथुरा" नामक पुस्तक तथा "राजा प्रतापसिंह" सिधुआ, अवध रचित "भक्तकल्पद्रुम" मे देखिए।) इनका पीछा जब घरवाले नहीं छोड़ते थे तब इन्होने भगी के हाथ का श्री राधा-

वल्लभजी का महाप्रसाद, जो वैष्णवों का जूठा बचा था, खा लिया था। व्यासजी लिखते हैं—

"इतनो है सब कुटुम हमारो।

सैन धना और नामा पीपा कबीर रैदास चमारो॥
रूप सनातन को सेवक मंगल भट्ट (गंगजल भट्ट—पाठांतर) सुखारो।
सूरदास परमानंद मेहा मीरा भक्ति बिचारी॥
ब्राह्मन राजपुत्र कुल उत्तम तेऊ करत जाति को गारो।
आदि अंत सतन को सर्वसु राधावल्लभ प्यारो॥
आसू को हरिदास रसिक हरिवंश न मोहि बिसारो।
यह पथ चलत श्याम श्यामा के व्यासहि बोरौ भावहि तारो॥"

"साँचे साधु जु रामानंद।

जिन हरि जू सों हित करि जान्यो और जानि दुख दंद॥
जाको सेवक कबीर धीर अति सुमति सुर सुरानंद।
तब रैदास उपासिक हरि कौ सूर सु परमानंद॥
उनते प्रथम तिलोचन, नामा, दुख मोचन सुखकंद।
खेम, सनातन भक्ति सिंधुरस, रूप, रघू, रघुनंद॥
अलि हरिवंशहि फब्यो राधिका पद पंकज मकरंद।
कृष्णदास हरिदास उपास्यो, वृदावन को चंद॥
जिन बिनु जीवत मृतक भए हम सह्यो विपति के फंद।
तिन बिनु उर को सूल मिटै क्यों जिए व्यास अति मंद॥"

"बिहारहिं स्वामी* बिनु को गावै।

बिनु हरिवंसहिं राधावल्लभ को रस रीति सुनावै॥

---

* स्वामी—'हरिदास स्वामी।

रूप सनातन बिनु को वृंदाविपिन माधुरी पावै ।
कृष्णदास बिनु गिरिधर जू को को अब लाड़ लडावै ॥
मीराबाई बिनु को भक्तन पिता जानि उर लावै ।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को सक बंधु कहावै ॥
परमानंद दास बिनु को अब लीला गाइ सुनावै ।
सूरदास बिनु पद रचना को कौन कबहि कहि आवै ॥
और सकल साधुन बिनु को अब यह कलिकाल कटावै ।
व्यास दास इन सब बिनु को अब तन की तपनि बुझावै ॥"

ऊपर के पद से स्पष्ट विदित है कि इसमे लिखे महात्माओं से व्यासजी से स्नेह था तथा च इस पद के बनने के समय ये सब लोग काल के गाल मे आ चुके थे। स्वामी हरिदासजी का मृत्यु-समय मिस्टर ग्राउस संवत् १८६५ अनुमान करते हैं, हरिवशजी का जन्म संवत् १५५९, सवत् १५८२ मे श्री राधावल्लभजी का स्थापन किया, (वैष्णवसर्वस्व) रूप सनातन गोशाईं ने संवत् १६४७ मे गोविद देवजी का मंदिर बनवाया (मि० ग्राउस की मथुरा)। कृष्णदास सूरदासजी के साथी थे श्री वल्लभाचार्य के शिष्य और श्री नाथजी (गोवर्धननाथ, गिरिधर, देवदमन इत्यादि नामातर) के मदिर के अधिकारी थे, मीराबाई का मृत्युसमय लगभग सवत् १६०४, (मुंशी देवीप्रसाद जोधपुर का पत्र) जयमलजी मेरते के राव थे, मीरा जी के भाई लगते थे और संवत् १६२४ मे चित्तौर की प्रसिद्ध लड़ाई मे मारे गए, परमानंददासजी और सूरदासजी समकालीन थे, निदान इससे यह स्पष्ट है कि सूरदासजो का मृत्युसमय संवत् १६१२ के पीछे और संवत् १६६५ के पहले था, ऐसी दशा मे ऊपर लिखे प्रमाणो से संवत् १६३०-४० मे सूरदासजी की मृत्यु का समय मानना मुझे असंगत नहीं जान पड़ता। सुप्रसिद्ध विद्वान् पुरातत्त्ववेत्ता डाक्तर ग्रियर्सन ने सूरदास

जी का जन्म संवत् १५४० और मृत्यु संवत् १६२० मे होना लोक-परंपरा से सुनकर लिखा है * परंतु वे इस मत का विरोध करते हैं क्योंकि सन् १५९६-९७ ई० (संवत् १६५३-५४) मे आईन अकबरी समाप्त हुई, और उससे उस समय सूरदासजी और उनके पिता बाबा रामदास का जीवित रहना संभवत. जाना जाता है परतु मेरे अनुमान मे ऊपर लिखे प्रमाणो को काटकर केवल आईन अकबरी के इस अनुमान पर इस मत को अयुक्त मानना उचित नही है क्योकि आईन अकबरी मे उसकी समाप्ति के समय इन लोगों का निश्चय रूप से जीवित रहना नहीं लिखा है, उस समय तक जो लोग अकबर के दर्बार मे रह चुके थे या उस समय तक की जो घटनाएँ थीं उन्ही को उसने लिखा है। यह क्या आवश्यकता है कि जितने गवैयों या गुणियों या राजाओं आदि के नाम उसमे लिखे हैं वे सब उस ग्रथ की समाप्ति के समय मे जीवित ही रहे हों।

इन प्रमाणों के अतिरिक्त हम और दृढ़तर प्रमाण संवत् १६४८ तक सूरदासजी के जीवित रहने का देते हैं। अबुल फजल ने एक ग्रंथ "मुशियात अबुल फजल†" नाम का बनाया था। इसमें बहुत से पत्रो का संग्रह है। उसके अंत मे एक पत्र सूरदास जी के नाम का है जो बादशाह की आज्ञा से सूरदासजी को काशी में अबुल फजल ने लिखा था। इस पत्र का अनुवाद तथा प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद (मुसिफ जोधपुर) ने इसके विषय मे जो कुछ लिखा है उसे हम अविकल उद्धृत करके तब आगे अपना मत लिखेगे।

---

* पहले मैने भी भ्रमवश इस मत की पुष्टि निज प्रकाशित "सूरसागर" की भूमिका में की थी।

† यह हस्तलिखित ग्रंथ मुंशी देवीप्रसाद के पास है, इसे मुंशी नवलकिशोर ने छापा भी है परतु छपे हुए ग्रंथ में यह पत्र नहीं है।

मुशी जी लिखते हैं—

" दफ्तर दोम मुशियात अबुल फजल के अखीर मे एक खत दर्ज है जिसकी सुर्खी यह है कि " दर बनारस बूद " अबुल फजल ने इस खत को बादशाहो की तारीफ से शुरू करके लिखा है कि "खुदाशिनास ब्राह्मण और सहरानशी जोगी व सन्यासी भी बादशाहों के दुआगो और मोतकिद होते है और बादशाह भी इखिलाफ दीन और मजहब का लिहाज न रखकर इन खुदादोस्तो का हुक्म उठाते हैं। उन बादशाहो का तो जिक्र ही क्या है जो बुजुर्ग मानवी भी हो और अब तो नौबत बादशाह की (अकबर की) पहुँची है जिनकी खुदापरस्ती और नेकजाती की कुछ हद नही है। खुदा ने इनको पेशवाय मानी बनाया है पस हम लोगो से इनकी बुजुर्गी की क्या तारीफ हो सकती है मगर बहुत मे से जो कुछ कि थोड़ा सा मैंने समझा है वह यह कि जैसे खुदा ने अगले जमाने मे रामचंद्र जी को अह्ले दुनिया मे से चुनकर हकशिनासी की अक्ल अता की थी वैसे ही आज खिलअत गिरॉमाय. इस बुजुर्ग को अता फर्माया है, लेकिन फर्क यह है कि रामचद्र एक ऐसे जमाने मे थे कि जब नेकी और मेहरबानी शाय: थी और सतजुग था और आज कलजुग है और यह ऐसा बुजुर्ग सूरत व मानी इसी जमाने मे है। किसी मे अक्ल और गोयाई कहाँ है कि जो इस पेशवाय आफाक के कमालात को समझे और कहे तमाम साकिनान रुब: मसकून व कोह व शहर व जंगल का यह है कि इस हजरत के फर्माने को खुदा का फर्माना समझकर जानोदिल से इसके बजा लाने की कोशिश करें।

मैं आपकी दानिश और फिरासत की शरह पहिले से नेक सीरत और बेगरज आदमियों की जुबानी सुना करता था और गायबान: आपको दोस्त रखता था और अब जो बाजे रास्त व दुरुस्त ब्राह्मणों

से सुना कि आप इस बादशाह वक्त की बुजुर्गी और हक्कानियत का पता लगाकर मोतकिद हकीकी हो गए हैं आपकी दानिश और रयाजत का बखूबी इम्तिहान हो गया। बुजुर्गोंने खुदा को फकीरी के लिबास मे पहिचान लेना मुश्किल नही है जितना कि लिबास तअल्लुक और बादशाही मे पहिचानना मुश्किल है और बहुत ऐसे भी दाना लोग होते हैं कि जो जाहिरी बातों पर नजर डालकर मानी से गाफिल हो जाते हैं।

हज्रत बादशाह अनकरीब इलाहाबाद मे तशरीफ लावैंगे। उम्मैद है कि आप भी शर्फ मुलाजिमत से मुशर्रफ होकर मुरीद हकीकी हों और खुदा का शुक्र है कि हज्रत भी आपको हक शिनास जानकर दोस्त रखते हैं और जब वह दोस्त रखते हैं तो इस दर्गाह के मुरीदों और मुखलिसों का बेहतर तरीक सिवाय दोस्ती के और क्या होगा। अल्लाह ताला जल्द आपकी दीदार नसीब करे ताकि आपके फैज सुहबत और सखुनान दिलकश से हम भी बहर:वर हों और यह बात कि वहाँ का करोडी आपके साथ अच्छा सुलूक नही करता है बंद.गान हज्रत को (अकबर को) भी बहुत बुरी लगी है और इस बाब मे उसके नाम भी फर्मान अताबआमेज सादिर हुआ है और इस कमतरीन मुरीदान अबुलफजल को भी हुक्म दिया गया है कि आप दो तीन कलमे लिखिए अगर करोरी यानी तहसीलदार मजकूर आपकी नसीहत से बाहर हो तो उसको माजूल कर दें और जिसको आप मुनासिब समझें और जो फकीर व गरीब और तमाम मखलूक का खूब गौर कर सके उसका नाम लिख भेजें ताकि अर्ज करके उसको मुकर्रर करा दूँ। गरज कि हज्ररत बादशाह आपको खुदा से जुदा नहीं जानते हैं इस वास्ते उस जगह के मामिले की तशखीस आपकी राय पर छोडी हुई है वहाँ ऐसा

हाकिम चाहिए जो आप का ताब: हो और जिस तौर से कि आप करार दे अमल मे लावै आपसे यह ही पूछना ही सच कहना और सच करना है। खत्रियों वगैरह मे से जिस किसी को आप मुनासिब समझें कि वह खुदाशिनासी करके गमख्वारी करेगा उसी का नाम लिख भेजे ताकि अर्ज करके रवाना करूँ खुदापरस्त बुजुर्गों को खुदाई कारोबार में नाहकशिनास जाहिरपरस्तो के ताना का अंदेशा नहीं होता है अलहम्दुलिल्लाह कि मसूदाक इसके आपकी जातशरीफ है अल्लाह तआला हमेश आपके एमाल शाइस्त को तौफीक दे और हक परस्ती की हालत पर कायम रक्खे। वस्सलाम फकत।"

इस पत्र मे तारीख या स्थान जहाँ से पत्र लिखा गया नहीं लिखा है। मुशी देवीप्रसादजी "अकबरनामा" के अनुसार बादशाह का पहले पहल प्रयाग मे आना और किला तथा बाँध बनवाना मिती अगहन सु० ९ सवत् १६४० (७ जीकाद सन् ९९१ हिज्री) को लिखते हैं। वह यह भी लिखते हैं कि उस समय प्रयाग एक कस्बा मात्र था इसके पीछे ही शहर बसा। (अबुलफजल के नौकर होने का समय संवत् १६३१ और राजा वीरसिहदेव बुँदेले के हाथ से मारे जाने का समय सवत् १६५९ लिखते हैं।) दूसरी बेर बादशाह, शाहजाद सलीम से मिलने के लिये इलाहाबाद को भादो सु० ९ संवत् १६६१ को चले परंतु माता की अस्वस्थता आदि के कारण जा न सके, लौट आए। मुंशीजी अनुमान करते हैं कि इसी दूसरी बेर बादशाह से प्रयाग में मिलने के लिय सूरदासजी को अबुलफजल ने लिखा होगा, क्योंकि इस समये बादशाह वहाँ जा न सका और सूरदासजी न मिले क्योंकि यदि वे मिलते तो अवश्य अबुलफजल इसे अकबरनामे मे लिखता। दूसरा अनुमान उनका यह है कि यह बनारस के सूरदास कोई दूसरे सूरदास थे क्योंकि पत्र की

लिखावट से ये ब्राह्मण जान पड़ते थे और वे ब्रह्मभट्ट थे और निवास-स्थान दोनों के अलग अलग थे परंतु गुण दोनो के एक ही प्रतीत होते हैं। मैं मुशीजी के दोनों मतों से विरोध करता हूँ।

मेरे अनुमान मे यह दोनों ही सूरदास एक और प्रयाग मे सूरदासजी अकबर से संवत् १६४० ही मे मिले थे तथा बादशाह के आग्रह पर कुछ गाकर सुनाया था कि जिसके आश्रय पर 'वार्ता' आदि मे सूरदासजी का अकबर के यहाँ जाना लिखा है और 'आईने अकबरी' मे इनका शाही गवैया होना लिखा गया है।

पत्र के देखने से यह स्पष्ट प्रगट है कि यह सूरदास उस समय अत्यंत ही प्रसिद्ध और सर्वमान्य थे तथा इनकी कविता आदरणीय थी। "सखुनानदिलकश" से इनका अत्यंत मनोरजक कवि होना स्पष्ट विदित होता है। यह संभव नहीं कि इतने बड़े महात्मा और कवि काशी मे कोई रहे हों और उनका नाम निशान तक मिट गया हो! न तो प्रसिद्ध सूरदास के अतिरिक्त काशी के दूसरे सूरदास का नाम कहीं किसी धर्मग्रंथ इतिहासग्रंथ मे आया है और न ढूँढ़ने पर भी काशी मे कहीं इनका पता लगता है। केवल मात्र बाबू अक्षयकुमार दत्त ने अपनी बँगला पुस्तक "भारतवर्षीय उपासकसंप्रदाय" के पहले भाग में (पृष्ठ ३२ द्वितीय संस्करण) लिखा है कि सूरदास रामानंद के शिष्य थे, इन्होंने सवा लाख पद बनाए थे, यह एक सम्प्रदाय प्रचारक भी कहे जा सकते हैं क्योंकि जो सब अंधे साधू एकतारा लेकर गाते हुए घूमते फिरते हैं वह सब सूरदासी कहलाते हैं। "प्रवाद है कि काशी से एक कोस उत्तर शिवपुर गाँव मे इनकी समाधि है" परतु बाबू साहब की सभी बातें सवालाख पद बनाने के अतिरिक्त निर्मूल हैं। न तो सूरदास रामानद के शिष्य थे, न उन्होंने कोई मत चलाया (इसमे संदेह नहीं कि अधे मात्र को लोग सूरदास कहते हैं

और प्राय: अंधे फकीर गाकर भीख माँगते हैं) और न शिवपुर मे कहीं इनकी समाधि ही है। मेरे अनुमान मे उन्हीं सूरदासजी का काशी मे आना संभव है, क्योंकि उनका प्राय· इधर उधर घूमते रहना हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त श्री वल्लभ सम्प्रदाय की वार्ताओ को देखने से यह स्पष्ट जाना जाता है कि श्री वल्लभाचार्य जी तथा गोस्वामी विट्ठलनाथजी प्राय: विदेश घूमते रहते थे और उस समय शिष्य-मडली उनके साथ रहती थी, जिनमे प्राय. गुणी लोग थे। कुंभनदासजी की वार्ता मे स्पष्ट लिखा है कि वे अत्यंत ही दरिद्रावस्था मे थे अतएव गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी ने आज्ञा दी कि इस बेर तुम हमारी विदेश-यात्रा मे साथ चलो तो तुम्हारी जीविका का कुछ प्रबंध करा दिया जाय। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य थी, चुप रहे, साथ में यात्रा की, परतु श्री गोवर्धननाथ का वियोग असह्य था, रात के समय "किते दिन ह्वै जु गए बिनु देखे" गाते हुए रोते थे। यह समाचार श्री गोशाईंजी को मिला। उन्होने यह कहकर उन्हे घर लौटाया कि जिसकी एक दिन मे यह दशा है वह अधिक दिन विदेश क्योंकर रह सकता है। वास्तव मे हरि-सेवा से विमुख रहना कुंभनदासजी को असह्य था। उन्होंने निर्भीक चित्त से अकबर को सुनाया था—

"भक्तन को कहा सीकरी * सो काम।
आवत जात पनहियाँ टूटी बिसरि गयो हरि नाम॥
जिनको मुख देखत दुख उपजत तिनको करनी पड़ी सलाम।
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम॥"

इसके अतिरिक्त काशी से श्री वल्लभाचार्यजी का विशेष सबंध था। विद्याध्ययनादि यहीं हुआ था। सेठ पुरुषोत्तमदास प्रभृति अनेक

* फतेहपुर सीकरी में प्रायः अकबर धर्मचर्चा किया करता था।

धनिक शिष्य यहीं थे। शास्त्रार्थ यहो किया था और अंत मे परम-धाम को भी यहाँ से सन्यासधर्म ग्रहण करके पधारे। यहाँ इनकी तीन बैठके हैं और इस सप्रदाय के लोग काशी आकर इन स्थानों का, विशेषकर हनुमानघाट पर महाप्रस्थान के स्थान का, दर्शन परम पुनीत समझते हैं। ऐसी अवस्था मे यह बहुत ही संभव है कि वे यहाँ आए हों और यहाँ के करोड़ी (तहसीलदार) के अन्याय पर चिढ़कर अकबर को कुछ लिखा हो। यहाँ पर यह भी लिखना असगत न होगा कि उस समय प्राय: बहुत से खत्री इस सप्रदाय के अनुयायी हो गए थे। क्या आश्चर्य है कि इसी लिये अबुलफजल ने खत्रियों की ओर इंगित किया हो।

'आईनेअकबरी' सवत् १६५३–५४ मे बनी। उसमे सूरदासजी का गवैयों मे नाम है, परंतु इस पत्र से सूरदासजी का पहले कभी अकबर के यहाँ जाने का पता नहीं लगता, सभवत: प्रयाग मे सूरदास जी का शाही दर्बार मे जाना और कुछ गाना ही इस लिखे जाने का मूल है। अबुलफजल का दुराग्रह और अकबर को बढ़ाने की चेष्टा अक्षर अक्षर से झलकती है। यहाँ तक कि उसे परमेश्वर के तुल्य बना दिया है। अकबर अपने को जिन हिंदुओं का बडा पक्षपाती प्रगट करता था उनके परमाराध्य भगवान् श्री रामचंद्र जी से भी बढ-कर अपने को लिखवाया है। परतु इन सभों पर भी सूरदासजी का उस समय कैसा मान था यह इस पत्र से स्पष्ट प्रगट है। यद्यपि वह सूरदासजी को बादशाह का मुरीद (चेला) होने का इशारा करता है तथापि पूरा साहस न करके मुरीद की टीका 'दोस्ती' करता है। ऐसे महानुभाव का एक बेर दर्बार मे आ जाना और कुछ गाना अपने ग्रथो में गवैया लिख लेने के लिये अबुलफजल को यथेष्ट था, तिस पर इनके पिता तो गवैए थे ही। अब यदि मुंशीजी

के मतानुसार सवत् १६६१ मे प्रयाग आने को सूरदासजी को लिखा जाना माना जाय तो ऊपर लिखे प्रमाणों से सिद्ध नहा होता। अकबर के दर्बार मे उसकी इस कृपा का धन्यवाद देने के लिये, जो उसने करोडी को बदलकर की थी, सूरदासजी का जाना कुछ असंगत नहीं था। इसके अतिरिक्त जो इस पत्र मे मुरीद होने या दोस्ती करने को लिखा गया था उसका भी कुछ उत्तर देना उचित था जो कि निम्न-लिखित पद से प्रगट होता है। यह एक प्रसिद्ध बात है तथा 'वार्ता' आदि ग्रथों मे लिखी भी है कि सूरदासजी ने अकबर के दर्बार मे जाकर निम्न लिखित पद गाया था—

"नाहिन रह्यो मन मे ठौर।
नंदनदन अछत हिय मे आनिए केहि और॥
कहत कथा अनेक ऊधो* लोक लोभ दिखाय।
कहा कहूँ हिय प्रेम पूरित घट न सिधु समाय॥
चलत बैठत उठत जागत सुपन सोवत रात।
हृदय तें वह मदन मूरति छिन न इत उत जात॥
श्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे दरस कारन मरत लोचन प्यास॥"

यह भी सभव है कि स्वयं न जाकर इस पत्र के उत्तर मे यही पद अबुल फजल के पास लिखकर भेज दिया हो, परंतु यह समय संवत् १६४० को छोड़कर सवत् १६६१ नही हो सकता।

सूरदासजी के काशी आने का कुछ कुछ आभास उनके इस पद से भी पाया जाता है—

* ऊधो से अबुलफजल को ले सकते है जिसने अकबर का सँदेसा सूर-दासजी को लिखा था।

"सुवा चलि ता बन को रस पीजै।
जा बन रामनाम अमृत रस श्रवन पात्र भरि लीजै ॥
को तेरो पुत्र पिता तू काको घरनी घर को तेरो।
काम कराल स्वान को भोजन तू कहै मेरो मेरो ॥
बड़ी बारानसि मुक्त क्षेत्र है चलि तोको दिखराऊँ।
सूरदास साधुन की संगति बड़ो भाग्य जो पाऊँ ॥"*

प्रयाग आने का आभास निम्नलिखित पद से पाया जाता है। यह गंगाजी के भगीरथ के द्वारा पृथ्वी पर आने के प्रसंग में मिलता है जहाँ प्रयाग या त्रिवेणी-संगम के वर्णन की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

"जय जय जय जय माधव बेनी।
जग हित प्रगट करी करुनामय अगतिन को गति दैनी ॥
जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप सग सजी अघसैनी।
जनु ता लगि तरवार त्रिविक्रम धरि करि कोप उपैनी ॥
मेरु मूठि वर वारि पाल छिति बहुत वित्त की लैनी।
सोभित अंग तरंग त्रिसगम धरी धार अति पैनी ॥"

प्रयाग मे (अरइल ग्राम मे) श्री वल्लभाचार्य के बडे पुत्र गोस्वामी श्री गोपीनाथजी का तथा गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी के कई बालकों का जन्मस्थान है।

जो कुछ हो, अबुलफजल का उक्त पत्र हमारे चरित्रनायक का महत्त्व-सूचक तथा उनके समय आदि के निर्णय मे बहुत कुछ सहायक है।

इन प्रमाणो पर विचार करने से सूरदासजी का मृत्युसमय संवत् १६४० के पीछे और सवत् १६४२ के पहले निश्चित होता है, क्योंकि

---

* बाबा बेनीमाधवदास लिखित तुलसी-चरित मे सूरदास के काशी आने और तुलसीदासजी से मिलने का उल्लेख है।—संपादक

'वार्ता' के अनुसार सूरदासजी की मृत्यु के समय गोस्वामी विट्ठलनाथजी विद्यमान थे जिनका अंतर्धान समय संवत् १६४२ है।

जन्मस्थान तथा वासस्थान

सूरदासजी के, ४३६ पृष्ठ मे लिखे, पद के अनुसार इनके पिता आगरा तथा गोपचल मे आ बसे थे, इसके अनुसार इनका जन्म गोपचल में होना संभव है। गोपचल* कहाँ है, इसका पता मुझे नही लगा। डाक्टर हंटर के गजटियर मे इस नाम का कोई स्थान नही है, न मिस्टर ग्राउस ने ही व्रज मे इस नाम का कोई स्थान लिखा है। संभव है कि कोई अप्रसिद्ध स्थान हो वा अब नाम बदल गया हो। 'वार्ता' मे इनका आगरा और मथुरा के बीचो बीच गऊघाट† पर रहना तथा वहाँ श्री वल्लभाचार्य का सेवक होना लिखा है। सभव है कि इस स्थान पर जो गाँव बसा रहा हो उसका नाम गोपचल हो। 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' की टीका मे इनका जन्म दिल्ली के पास सीही गाँव मे होना लिखा है (सूरदासजी पर भारतेंदु हरिश्चद्र का लेख) परतु गजटियर मे ढूँढ़ने पर दिल्ली के पास तो सीही का पता नही लगता, हाँ मथुरा नामक पुस्तक में इस सीही गाँव को एक प्रसिद्ध स्थान लिखा है। यह गौड़वा ठाकुरों का वासस्थान है और यहाँ अनेक बड़े मंदिर हैं तथा कार्तिक की पूर्णिमा को दो बड़े मेले लगते हैं। इस सीही गाँव मे सूरदासजी का जन्म होना कुछ असभव नही है, क्योकि गोपचल के नाम से इस स्थान का व्रज मे होना ही अनुमान होता है अतएव उसका नामांतर सीही होना या गोपचल और सीही का आस पास होना असंभव नही है।

---

* मुशी देवीप्रसादजी ने गोपचल को ग्वालियर लिखा है।

† गऊघाट आगरा से नौ कोस पर मथुरा की सड़क पर है।

तारीख बदाऊनी के अनुसार सवत् १६०२-१६१० के समय मे सूरदासजी के पिता बाबा रामदास का दिल्ली मे इसलामशाह के दर्बार मे और फिर बैरमखॉ के साथ रहना सिद्ध होता है। संभव है कि सूरदासजी भी इनके साथ रहे हों। इसके पीछे इनका अकबर के दर्बार में जाना आईन अकबरी से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त ऊपर प्रकाशित इनके पदो से सूरदास जी का अनेक स्थानों मे घूमना और अंत मे ब्रज मे आकर रहना निश्चत होता है। इनके पद तथा 'वार्ता' आदि से ब्रज मे वृंदावन, मथुरा, गोकुल और गोवर्धन मे रहना तथा श्री गोवर्द्धन की तलहटी मे परासोली गाँव मे मरना लिखा है। यह परासोली सीही के पास ही है और यह भी गोडवा ठाकुरो का वासस्थान है। 'वार्ता' के अनुसार मरने के समय श्री गोवर्धन पर, श्रीनाथजी के मदिर से उतरकर, सूरदासजी परासोली चले गए और उसी दिन वहीं मरे।

पहली अवस्था मे ब्रज से कहीं अन्यत्र रहने और फिर वृंदावन मे आ रहने की सूचना, आगे लिखा पद भी देता है—

"धनि यह वृंदाबन की रेनु।
नदकिसोर चराईं गैयॉ मुखहि बजाई बेनु॥
मदन मोहन को ध्यान धरै जो अति सुख पावत चैनु।
चलत कहा मन बसति पुरातन जहॉ लैन नहि दैनु॥
इहॉ रहौ जहँ जूठनि पावै ब्रजबासिन के ऐनु।
सूरदास ह्यॉकी सरवरि नहि कल्पवृच्छ सुरधेनु॥"

"आईन अकबरी"कार इनके पिता को ग्वालेरी लिखता है और बदाऊनी उनका लखनऊ से आना बतलाता है परतु इसका और कहीं प्रमाण ठीक नहीं मिलता। किंतु इसमे संदेह नहीं कि ये बहुत स्थानों मे घूमे थे।

———

प्रथमावस्था

सूरदासजी के किसी पद से या कही पर उनके चरित्र-वर्णन से यह पता नही लगता कि वे प्रथमावस्था मे क्या करते थे। केवल इतना ही जाना जाता है कि वे अपने पिता के साथ रहा करते थे और इनके पिता ने इन्हे गान-विद्या तथा फारसी और देशी भाषाओ को पढ़ाया था। ऊपर लिखा जा चुका है कि इनके छ भाई थे और वे सब बादशाह के लिये युद्ध करके मारे गए। इससे जान पड़ता है कि वे लोग सदा से दिल्ली के बादशाह के दर्बार मे रहा करते थे। इनके भाई लोग भी किसी बादशाह की सेवा मे थे, यह पता नही चल सकता कि किस बादशाह की सेवा मे थे और किस लडाई मे मारे गए, क्योकि सूरदासजी के जन्म से लेकर अकबर के समय तक कई बादशाह हुए और इसमे बहुत कुछ लडाई झगड़े और राज्य-परिवर्तन होते रहे। विचार करने से अनुमान होता है कि छः लड़को के मारे जाने से इनके पिता विरक्त हो गए थे और इसी लिये बाबा कहलाते थे। सूरदासजी अंधे थे तथा सदा से भगवद्भक्त थे इसी लिये उन्होने भगवद्गुणानुवाद करने मे समय बिताया। सूरदासजी की फारसी और संस्कृत की जानकारी उनके पदों से स्पष्ट विदित होती है। इसके अतिरिक्त उस समय के शाही दफ्तरो के नियमो तथा व्यापार आदि के नियमों से भी वे पूर्ण अभिज्ञ थे। यह बात उनके पदों से जानी जाती है। उदाहरण के लिये दो एक पद उद्धृत करते हैं—

"साँचो सो लिखधार कहावै।
काया ग्राम मसाहत करि कै जमा बाँधि ठहरावै॥
मन्मथ करै कैद अपनी मे जान जहतिया लावै।
माँडि माँड़ि खरिहानें क्रोध को फोता भजन भरावै॥

बट्टा काट कसूर भर्म को फरै तलै लै डारै ।
निश्चय एक असल पै राखै टरै न कबहूँ टारै ॥
करि अवारजा नेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै ।
दूजी करै दूरि करि दाई तनक न तामैं आवै ॥
मुजमिल जोरै ध्यान कूल का हखो तहं लै राखै ।
निर्भै रूपै लोभ छाँडि कै सोई वारिज राखै ॥
जमा खर्च एकै करि समझै लेखा समुझि बतावै ।
सूर आप गुजरान मुहासिब लै जवाब पहुँचावै ॥"

"हो मन राम नाम को गाहक ।
चौरासी लख जिया योनि मे भटकत फिरत अनाहक ॥
भक्ति हाट बैठि तू थिर ह्वै हरि नग निर्मल लेहि ।
काम क्रोध मद लोभ मोह तू सकल दलाली* देहि ॥
करि हियाव सों सौज लादि यह हरि के पुर लै जाहि ।
घाट बाट कहुँ अटक होइ नहिं सब कोउ देहिं निबाहि ॥
और बनज मे नाही लाहा होत मूल मे हानि ।
सूर स्वामि को सौदो साँचो कहो हमारो मानि ॥"

कृष्णगढ़ के महाराज नागरीदासजी ने अपने "पदप्रसंगमाला" ग्रंथ मे, अनेक महात्माओ के पदों के प्रसग मे सूरदासजी का भी कुछ वर्णन किया है। उसमे उनके विषय मे लिखा है कि "दोऊ नेत्र करि हीन एक ब्रजबासी को लरिका ब्रज मे सूरदास सो होरी के भड़ौआ बनावै ह्वै तुकिया ताके वास्ते श्री गुसाईं जू सों जाइ लोगनि ने कही तापर श्री गुसाईं जू वा लरिका कों बुलाय वाके भँड़उआ सुने हँसे श्री मुख ते कह्यो जु लरिका तू भगवत जस बखान श्री भागवत के अनुसार प्रथम जनम ही की लीला गाय" इत्यादि परंतु

* दलालों का अत्याचार उस समय भी था।

यह सर्वथा असंभव है क्योंकि श्री गोसाईं जी अर्थात् श्री गोस्वामि विट्ठलनाथजी का समय पीछे है और सूरदासजी श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य हुए थे इसे हम प्रमाणित कर चुके हैं, हाँ यह मान लें कि श्री गुसाईं जी भ्रम से लिख गया है वहाँ पर श्री महाप्रभुजी होना चाहिए तो किसी प्रकार से यह माना जा सकता है। होरी के दो तुकिया भड़ौए इस प्रकार के होते हैं—

"खिसली तोहि देखि अटा तें।
तू जु कहे हो तोहि अधवर लूँगो अब मेरी टूटी है बाँह बराते॥"
"कब निकसैगो सूक चले चालो।
गोरी ने डोला सजवायो रसिया ने सिकल करयो भालो॥"

परंतु सूरदासजी की कविता मे ऐसे भड़ौए मुझे अभी तक कहीं नहीं मिले। अस्तु, प्रथमावस्था तो इनकी इधरउ धर ही घूमते बीती। इसी अवस्था मे ये श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य हुए परंतु इसका ठीक पता नही लग सकता कि किस समय शिष्य हुए। श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु सबसे पहले सवत् १५४९ मे व्रज मे आए और श्री गोवर्धन की गुफा से श्री गोवर्धननाथजी (श्रीनाथजी) को निकालकर प्रगट किया और संवत् १५५६ में पूर्णमल्ल खत्री ने श्रीनाथजी का मदिर बनवाना आरंभ किया जो कि संवत् १५७६ मे बनकर तैयार हुआ। इसी समय श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु ने श्रीनाथजी की सेवा का मंडान बाँधा तथा कीर्तन की सेवा कुंभनदासजी को सौंपी। (पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या प्रकाशित "श्री गोवर्धननाथजी की प्रागट्यवार्ता" देखिए) 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' मे सूरदासजी के प्रसंग मे लिखा है कि गऊघाट पर सूरदासजी श्री महाप्रभुजी के सेवक हुए, वहाँ से वे श्री महाप्रभुजी के साथ गोकुल आए, वहाँ बाललीला के पद गाए, इस पर श्री महाप्रभुजी ने सोचा कि श्रीनाथजी

की सेवा का और मंडान तो सब हो गया है केवल कीर्तन का नहीं हुआ है सो सूरदासजी को श्रीजीद्वार लाए और कीर्तन की सेवा सौंपी। परंतु मुझे यह ठीक नहीं जान पडता क्योंकि आईन अकबरी से सूरदासजी का अकबर के समय मे होना सिद्ध है। अकबर संवत् १६१२ मे तख्त बैठा और श्रीनाथजी की सेवा का मंडान हुआ संवत् १५७५ मे। यह हो सकता है कि वृद्धावस्था मे जब सूरदासजी व्रज आकर रहे हों तब श्री महाप्रभुजी ने अथवा श्री गोसाईंजी ने इन्हे कीर्तन की सेवा सौंपी हो, परंतु इसमे संदेह नही कि ये श्री वल्लभाचार्यजी के शिष्य पहले से हो चुके थे। ऊपर प्रकाशित इनके पदों पर विचार करने से यह बात सिद्ध होती है। (देखो "हरि सुमिरन नहि गुरु की सेवा" आदि) यह तो नाना प्रमाणों से सिद्ध है कि श्री वल्लभाचार्यजी के सेवक होने के पूर्व से ये कविता करते थे परतु उन्हे शृंखला में लगाना तथा लीलानुसार शृखलाबद्ध कविता करना यह श्री वल्लभाचार्य के सेवक होने के पोछे किया है। (श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीला भेद बतायो) अतएव यह समय अनुमान से सूरदासजी के ४०-५० वर्ष की अवस्था का प्रतीत होता है। यह भी संभव है कि सूरदासजी अन्यत्र भी घूमते हों और बीच बीच मे व्रज मे भी आते रहे हों, जैसा पृष्ठ ४६६ मे "धनि यह वृदावन की रेनु" वाले पद मे वे लिखते हैं कि "चलत कहा मन बसति पुरातन जहाँ लेन नहिं दैनु।" अर्थात् व्रज में आकर यह पद बनाया था परतु अपनी पुरानी बस्ती मे फिर जाने की इच्छा होती थी।

'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' मे लिखा है कि सूरदासजी स्वामी थे, गऊघाट पर रहते थे और लोगों को सेवक किया करते थे, परतु श्री वल्लभाचार्य का दर्शन कर ऐसी भक्ति उमडी कि स्वय उनके शिष्य

हो गए। इससे अधिक इनकी प्रथमावस्था का कहीं कुछ पता नहीं मिलता।

रीवाँधीश महाराज रघुराजसिंह ने (रामरसिकावली में) लिखा है कि एक दिन सूरदासजी की स्त्री ने उनसे कहा कि मेरी परोसिन स्त्रियाँ यह कहकर परिहास करती हैं कि तू किसके लिये शृ गार करती है। सूरदासजी ने कहा, एक दिन तू सभो को बुला और सब शृंगार कर मेरे सामने आ। स्त्री ने ऐसा ही किया। सूरदासजी ने अपनी स्त्री को देखते ही कहा कि अरे! तैंने आज भाल पर बेंदी क्यो नहीं दी है? यह सुन सब स्त्रियाँ अचभे मे आ गईं।

अकबर के दर्बार मे सूरदासजी के जाने के विषय मे ऊपर बहुत कुछ लिखा जा चुका है अतएव हम उन सभो का पुनरुल्लेख न कर केवल इस विषय मे जो एक बात महाराज रघुराजसिंह नें लिखो है उसी का वर्णन करते हैं। महाराज लिखते हैं कि अकबर ने सूरदासजी से पूछा, तुम कौन हो। उन्होंने कहा, अपनी बेटी से पूछिए। बेटी को जो सूरदासजी का वृत्तात जान पडा तो उसने शरीर ही छोड़ दिया। बहुत पूछने पर प्रगट हुआ कि बादशाह की बेटी श्री राधिकाजी की सहचरी थी। किसी चूक पर म्लेच्छ के घर जन्मी थी और सूरदासजी उद्धव थे। श्रीमती के मान के समय भगवान् की ओर से कुछ कटूक्ति के कारण श्रीमती के शाप से पृथ्वी पर जन्मे।

कवि मियाँसिंह ने भी "भक्तविनोद" मे सूरदासजी के ऐसे ही चरित्र वर्णन किए हैं।

ग्रंथ और कविता

"साहित्यलहरी", "सूरसागर" और "सूरसागर-सारावली" के अतिरिक्त और कोई ग्रंथ सूरदासजी का बहुत खोज करने पर भी

नहीं मिलता। लोकपरंपरा से सुना जाता है कि उन्होंने "नल-दमयंती काव्य" भी बनाया था, परंतु उसका कहीं कुछ पता नहीं है। 'कविवचनसुधा" मे इस ग्रंथ के लिये १००) रु० पारितोषिक देने का एक विज्ञापन पूज्य भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने दिया था परंतु कुछ भी पता न लगा। आश्चर्य यह है कि इनके इतने पदो मे से एक भी मनुष्य-गुणानुवाद मे नहीं मिलता। यद्यपि इनका तथा इनके पूर्वजो का शाही दर्बार से सबंध पाया जाता है तथापि कही किसी की प्रशसा मे सिवाय भगवद्‌गुणानुवाद के इन्होंने अपनी कविता शक्ति को चरितार्थ न किया, यहाँ तक कि स्वयं अपने भगवत्तुल्य गुरु श्री वल्लभाचार्यजी के गुणानुवाद में भी "भरोसो दृढ़ इन चरणनि केरो" के अतिरिक्त और कोई पद नहीं बनाया है।

"साहित्यलहरी" के पद "सूरसागर" मे नहीं मिलते, यद्यपि इस प्रकार के बहुत से पद दृष्टकूट वा श्लेष के सूरसागर में हैं तथापि उसमें के पद इसमे नहीं आए हैं। इससे यह अनुमान होता है कि यह ग्रंथ कहीं से सग्रह नहीं किया वरंच स्वतत्र ग्रंथ बनाया था। इसका एक प्रमाण यह भी है कि इसके बनाने का समय अलग दिया हुआ है। इस पर जो टीका हुई है वह, ठीक पता नहीं लगता कि, किसकी है। पूज्य भारतेंदुजी ने अनुमान किया था कि यह टीका भी सूरदास ही की है परंतु ऐसा नहीं है क्योंकि इसमे जो दोहे प्रमाण में दिए गए हैं वे "भाषा भूषण" के हैं।

वर्तमान समय मे जो "सूरसागर" मिलता है उसमे लगभग ४१२५ पद हैं। बत्तीस अक्षर के अनुष्टुप् छंदों की श्लोकसंख्या लेने से लगभग २६५०० श्लोक होते हैं। लोकपरंपरा से यह प्रसिद्ध है कि "सूरसागर" सवा लाख पदों का संग्रह है। स्वय सूरदासजी ने भी "सूरसागर-सारावली" मे लिखा है "ता दिन तें हरि-

लीला गाई एक लच्च पद बंद" परंतु इसमे न तो एक लाख पद ही आते हैं और न एक लाख श्लोक ही। मैंने इस संदेह को मिटाने के लिये "सूरसागर" की तीन प्रति सग्रह की और तीनों का मिलान किया। एक पूज्य भारतेंदुजी के 'सरस्वती भडार" की, दूसरी श्रीमान् काशिराज के पुस्तकालय की और तीसरी जानी मलखानचद की कोठी की, परतु इन सभों मे कुछ पाठातर तथा पचीस पचास पदों की कमी बेशी के अतिरिक्त कुछ अंतर नही पाया। लखनऊ की छपी "सूरसागर" तथा "रागकल्पद्रुम" के "सूरसागर" मे भी प्राय: इन्ही सब पदों मे से लिए हुए पद हैं। इससे यह संदेह हो सकता कि सवा लाख पदों की गप ही गप है, वास्तव मे सूरसागर इतना ही है। परतु ऐसा नही है क्योकि एक तो स्वयं सूरदासजी ने एक लाख पद बनाना लिखा है, दूसरे सूरसागर के अतिरिक्त सूरदासजी की और भी बहुतेरी कविता मिलती है, जैसे "साहित्य लहरी" तथा वल्लभ-सप्रदाय के कीर्तन की पुस्तकों मे स्फुट पद आदि। इससे यही सिद्ध होता है कि या तो सूरदासजी ने सब मिलाकर सवा लाख यह बनाए जिनमे से सूरसागर इतने ही पदों का संग्रह है या यह कि बड़े सूरसागर से छाँटकर किसी ने सुगमता के लिये यह सूरसागर सग्रह कर लिया है जो संसार मे प्रसिद्ध हो गया। कांकरौली के टिकैत श्री गोस्वामी महाराज बालकृष्णलालजो ने मुझसे कहा है कि मेरे यहाँ "सूरसागर" सवा लाख पदो का पूरा ग्रथ है परतु मैं जब तक स्वयं उसे न देख लूँ उसके विषय मे कुछ नही कह सकता।

"सूरसागर" संग्रह के विषय मे तीन कहावते प्रसिद्ध हैं, जिनका उल्लेख "भक्तकल्पद्रुम" ने किया है। एक तो यह कि पछत्तर हजार पद बनाकर सूरदासजी की मृत्यु हो गई तब पचीस हजार भगवान् ने बनाकर और सूरश्याम नाम देकर एक लाख पूरे किये, (परंतु

यह असंगत है क्योंकि सूरश्याम नाम सूरदासजी स्वय लिखते थे, यह उन्ही के पद से प्रगट है "नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुश्याम")। दूसरी यह कि अकबर के वजीर भाषारसिक खानखाना ने सूरसागर सग्रह किया। वे प्रति पद के लिये एक एक अशर्फी देते थे परतु जब लोग लोभ से झूठे पद बना बनाकर लाने लगे तब उन्होने तौलना आरंभ किया। जो पद सूरदासजी के होते, वे चाहे बडे हो या छोटे, तौल मे बराबर उतरते और जो झूठे होते वे कितने ही बड क्यों न हों हलके हो जाते, तीसरी यह कि अकबर ने पदों का सग्रह किया परतु झूठे पदो की बहुतायत से संख्या बहुत बढ गई तब सब को आग मे डाल दिया। जो सूरदासजी के थे, न जले और जो झूठे थे वे जल गए। वास्तव मे सूरसागर की रचना से यह स्पष्ट विदित होता है कि यह एक समय मे नही बना वरंच पीछे से संग्रह करके शृखला मे लगा दिया गया है। मेरे अनुमान मे यह संग्रह सूरदासजी ही ने पीछे से कर दिया है, क्योंकि एक तो सारावली मे स्पष्ट उन्होने लिखा ही है, दूसरे एक प्रसग से दूसरे प्रसग को मिलाने के लिये उन्होने जो दोहे आदि बनाकर मिलाए हैं उनसे स्पष्ट जाना जाता है कि यह संग्रह उन्हीं का किया हुआ है—परतु पीछे से। प्राचीन शैली भी कुछ ऐसी ही जान पड़ती है कि पदों मे जो लीला वर्णन करते हैं उनमे पूरा पूरा पूर्वापर संबंध नही मिलाते। तुलसीदासजी ने भी प्राय. ऐसा ही किया है—जैसे रामगीतावली मे अयोध्याकांड का पहला पद है—"नृप कर जोरि कह्यो गुरु पाही। ... ..राम होहिं युवराज जियत मम यह लालच मन माही"। फिर बिना कैकेयी के वर माँगे, बिना राजा के वचन दिए और बिना रामचंद्रजी को वहाँ बुलाए दूसरे ही पद मे दशरथजी रामचद्रजी से कहते हैं कि हमारी बात को मत मानो "सुनहु राम मेरे प्राण पियारे। जारो सत्य बचन श्रुति समता जातें बिछुरत चरण तिहारे।"

नाम के लिये तो "सूरसागर" श्रीमद्भागवत का अनुवाद है परंतु वास्तव मे सूरदासजी ने इस ग्रंथ को अपने इच्छानुसार घटाया बढ़ाया है यहाँ तक कि जो लीलाएँ भागवत मे नही हैं उन्हे दूसरे पुराणों से भी लेकर लिख दिया है। स्वय भी एक स्थल पर 'बावन-पुराण" का नामोल्लेख किया है ("सूरसागर" बंबई पृष्ठ ३६४ पंक्ति २३ 'व्यास त्रिपद बावन पुराण कह्यो सूर सोइ गाइ") । एक एक लीला का, कई कई तरह पर, कई कई बेर वर्णन किया है और कही लीलाओं को उलट फेर भी कर दिया है, जैसे अहिल्योद्धार की कथा सूरदासजी ने श्रीरामचंद्रजी के वन-गमन पर केवट के प्रसग मे वर्णन की है। निदान सूरदासजी ने किसी के बंधन मे न बँधकर स्वेच्छानुसार इसकी रचना की है।

'सूरसागर-सारावली" को सूरदासजी ने एक होली लीला की रीति पर वर्णन किया है "खेलत एहि विधि हरि होरी हो होरी हो वेद विदित यह बात" इस पद से आरभ किया है और अत में होली की समाप्ति के साथ समाप्त किया है, बीच मे ११०७ छदो मे "सूरसागर" तथा सृष्टि की यावत् कल्पना संक्षेप से कही है, अर्थात् मानो संसार क्या है एक होली का खेल है। यह सारावली अवश्य ही सूरसागर बनने के पीछे बनी है और इसकी कविता से स्पष्ट है कि यह सूरदासजी ही की रचना है।

सूरदासजी आशुकवि थे। अंधे कवि प्राय. आशुकवि होते ही हैं। प्रमाण में हम लोग भारतमार्तंड श्रीगट्टूलालजी का दर्शन कर ही चुके हैं। सूरदासजी के आशुकवित्व का परिचय "वार्ता" से मिलता है, उनकी कविता धारावाही चलती थी। जब श्री वल्ल-भाचार्यजी ने इनको आज्ञा दी कि भगवल्लीला कहो तो इन्होने "ब्रज भयो है महरि के पूत जब यह बात सुनी" यह पद आरंभ किया,

कहते कहते ऐसे प्रेमोन्मत्त हो गए कि कविताधारा बंद ही न होती थी। अंत मे श्री महाप्रभुजी ने यह कहकर "सुनु सूर सबनि की यह गति जिन हरिचरण भजे" उन्हे रोका और पद की समाप्ति की। यह पद वल्लभ-संप्रदाय के मंदिरों मे भगवान् के जन्म समय, वेद की ऋचाओं की भाँति, अवश्य ही गाया जाता है। इस आशु-कविता के साथ ही विशेषता यह है कि इनकी सहज कविता भी मनो-मुग्धकारी कवित्व गुण से रहित नही होती थी। प्रसिद्ध है कि अकबर प्राय: इनके पद सुना करता था। एक दिन तानसेन ने इनका यह पद गाया—

"जसुदा बार बार यह भाखै।
है कोउ ब्रज मे हितू हमारो चलत गोपालहि राखै॥"

बादशाह ने अर्थ पूछा, तानसेन ने कहा कि "जसुदा बार बार (बेर बेर) कहती हैं कि ब्रज मे कोई हमारा ऐसा हितकारी है जो गोपाल को मथुरा जाने से रोक दे"। इतने मे शेख फैजी आ गए। उनसे पूछने पर उन्होने कहा "बार बार" अर्थात् रो रो कर कहती हैं। इतने मे बीरबल आ गए। उन्होंने कहा "बार बार अर्थात् द्वार द्वार पर जाकर कहती हैं।" इतने मे खानखाना आ गए। उन्होंने कहा "बार बार अर्थात् प्रत्येक बाल से (रोम रोम से) कहती हैं"। बादशाह ने कहा कि इसके अर्थ इन लोगों ने कई प्रकार से किए हैं और सब अर्थ कह सुनाया। खानखाना ने कहा "जहाँपनाह! अर्थ तो वही है जो मैंने किया। इन लोगो ने अपने अपने अवस्था-नुसार अर्थ किया था।" बादशाह ने पूछा "अपने अपने अवस्था-नुसार क्या?" खानखाना ने कहा "तानसेन गवैया हैं, इनका स्वभाव एक अंतरा को बार बार गाना है इसलिए इन्होंने यह अर्थ किया। शेख फैजी कवि हैं और कवियों का काम रोने धोने का है

इसलिए इन्होने यही अर्थ किया और बीरबल ब्राह्मण हैं। इनका काम द्वार द्वार पर जाकर भीख मॉगना है इससे इन्होंने ऐसा अर्थ किया।" बादशाह सुनकर हँस दिए और सूरदासजी की कविता को सराहने लगे।

देखिए इस कविता मे कैसी बारीकी है—

"पिया बिनु सॉपिन कारी रात।
जो कबहूँ कै उग्रत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात॥"

बरसात की शुक्लपक्ष की अँधेरी रात मे विरहिनी कहती है कि बिना प्यारे के यह काली रात सॉपिन सी है। जब बादल हट जाने से चॉदनी छिटकती है तो सॉपिन मानो काटकर उलट जाती है—सॉप के नीचे का भाग सफेद होता है और सॉप काटकर जब उलट जाता है तभी विष का असर होता है! कैसी स्वाभाविक परंतु हृदय-वेधिनी उक्ति है! धन्य सूरदास! यह तुम्हारे ही हिस्से है! किसी कवि ने ठीक कहा है—

किधौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर की पीर।
किधौ सूर को पद सुन्यो जो अस विकल सरीर॥"

परंतु कवि थोड़ा चूका है। सूर का शर या सूर की पीर केवल दुखदायी ही है परंतु सूर के पद की व्याकुलता के भीतर जो अनिर्वचनीय आनन्द निहित है वह अतुलनीय है—उसकी समता क्या संसार के कोई पदार्थ कर सकता हैं?

हॉ, जिस कवि ने सूरदासजी को सूर्य की उपमा दी है उसने बहुत ठीक किया है। वास्तव मे भाषा-साहित्य-संसार मे सूर सूर्य का यदि उदय न होता तो अंधकार ही रहता। सूरदासजी की कविता वास्तव मे, सूर्यनारायण की किरणों का सा ही प्रभाव रखती है। जैसी ही ग्रीष्म ऋतु मे नारायण की किरणें

प्रखरतर होती हैं वैसे ही इनके दृष्टकूट आदि पांडित्यपूर्ण पद अच्छे अच्छे कवि कोविद और पंडितो के मस्तिष्क को भी अपनी प्रखरता से उत्तप्त कर देते है और जैसे ही ग्रीष्म की किरणे जल आकर्षण कर वर्षाऋतु म उनसे संसार को सिंचत कर तृप्त करती हैं वैसे ही ये प्रखर किरणे भी काव्य जगत् के रसो को अपने अंतर मे धारण कर उन पर विचार करनेवालो के हृदय को काव्य-सुधा बरसाकर तृप्त करती हैं। जैसे वर्षाऋतु मे अपने आकर्षित जीवन से नारायण संसार को सिंचित करते हैं, वैसे ही इनकी सरस-भावमयी कविता अपनी सुधा-वृष्टि से रसिक-जन-मन-मयूर को आह्लादित करती है तथाच परम शुष्कहृदय ज्ञानियों या नास्तिकों के हृदय सरोवर को भी प्रेमजल से परिपूरित कर देती है। और जैसे ही शीत-ऋतु मे भगवान् दिवाकर की मधुर किरणें प्राणिमात्र को परम सुखद होती हैं वैसे ही इनकी परम मधुर अथच स्वाभाविक भगवान् की लीला-मयी कविता भक्त-हृदय को शांतिसुख से सुखी करती है। वैज्ञानिकों के मत से सूर्यनारायण की किरणें ही इस सौर जगत् मे प्रकाश-वितरण करती हैं, वास्तव मे यही प्रभाव भाषा-साहित्य-जगत् मे सूरकाव्य-किरणावली का भी है। यह बात आज मानी जाती है ऐसा नही है, यह सूरदासजी के समय मे भी मानी गई थी। "चौरासी वैष्णवों की वारता" मे कृष्णदासजी के प्रसग मे लिखा है कि सूरदासजी ने एक दिन कृष्णदासजी से कहा कि आपकी कविता मे मेरी छाया आ जाती है कुछ स्वतत्र कविता लिखिए। कृष्णदासजी ने दूसरे दिन लाने की प्रतिज्ञा की, रात्रि के समय उन्होने बड़े परिश्रम से नवीन भाव का एक पद बनाया परन्तु तीन ही तुके बनी चौथी रात भर परिश्रम करने पर भी न बनी, हारकर छोड़ दिया तब श्रीनाथजी ने चौथी तुक आप लिख दी। दूसरे दिन सूर-

दासजी को दिखाया। सूरदासजी देखते ही भगवद्वाक्य पहिचान गए और बोले मेरी आपकी होड़ थी, कुछ प्रभु से होड़ नहीं थी।

किसी ने ठीक कहा है कि—

"जो कुछ रही सो सूरज कह गए और रही सो तुलसी।
बाकी बची सो कबिरा कह गए अब जु कहै सो जूठो ॥"

वास्तव मे अब कुछ कविता करना मानों उन्ही सभो का पिष्ट-पेषण मात्र है। रीवाँ-नरेश महाराज रघुराजसिह ने स्पष्ट ही लिखा है—

"मतिराम, भूषण, बिहारी, नीलकंठ, गंग,
बेनी, शभु, तोष, चितामणि, कालिदास की।
ठाकुर, नेवाज, सेनापति, शुकदेव, देव,
पजन, घनआनँद, सुघनश्यामदास की ॥
सुदर, मुरारी, बोधा, श्रीपति हूँ, दयानिधि,
युगल, कविद, त्यो गोविद, केशवदास की।
भनै रघुराज और कबिन अनूठी उक्ति
मोहि लगी जूठी जानि जूठी सूरदास की ॥१॥"

किसी कवि ने कहा है—

"उत्तम पद कवि गंग के कविता को बलबीर।
केशव अर्थ गभीर को सूर तीन-गुन धीर ॥"

प्रबध अधिक बढ़ने के भय से हम यहाँ केवल उनके दो पदो को उद्धृत करते हैं। एक बाललीला का और दूसरा गोपी-प्रेम-दशा वर्णन का। पाठकगण देखेंगे कि कैसी स्वभावोक्ति है और कैसी प्रेम की पराकाष्ठा वर्णन की है।

"खेलत मे को काको गोसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस ही कत करत रिसैयाँ ॥

जाति पाँति हम तें कछु नाहिन बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत याते अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ॥
रुहठि करै तासों को खेलै रहे पौढ़ि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेलाइ चाहत दाँव दयो करि नंददोहैयाँ॥ १॥

"ग्वारिन प्रगट्यो पूरन नेहु।
दधि भाजन सिरपर धरे कहति गोपालहि लेहु॥
बन बीथिन ब्रज पुर गली जहीं तहीं हरि नाँउ।
समुझाई समुझति नहीं सिख दै बिथक्यो गाँउ॥
कौन सुनै काके श्रवन काकी सुरत सकोच।
कौन निडर डर आपको को उत्तम को पोच॥
प्रेम पिए वर वारुनी बलकत बल न सँभार।
पग डगमग जित तित धरति मुकुलित अलक लिलार॥
मंदिर मैं दीपक बरै हो बाहर लखै न कोय।
तिन्हैं प्रेम परगट भए हो गुप्त कौन पैं होय॥
लज्जा तरलतरंगिनी गुरुजन गहरी धार।
दुहुँ कुल कूल तरुनि मिली तिहि तरत न लागी बार॥
विधि भाजन ओछो रच्यो शोभा सिंधु अपार।
उलटि मगन तामैं भई तब कौन निकासनिहार॥
सरिता निकट तड़ाग के हो दोनों कूल उदार।
नाम मिट्यो सरिता भई तब कौन निवेरै वार॥
चित आकर्ष्यो नंदसुत मुरली मधुर बजाइ।
जिहि लज्जा जग लज्जियो सो लज्जा गई लजाइ॥
प्रेम मगन ग्वालिनि भई सूर सुप्रभु के संग।
नैन बैन मुख नासिका ज्यों केचुलि तजति भुजंग॥ १॥"

सहृदय पाठक ज्यों ज्यों इस प्रेमसिंधु मे डूबेगे त्यों त्यों ही आनंद-गिरि-शिखर का उच्चतर आसन अधिकार करते जायँगे।

मृत्यु

इनकी मृत्यु के विषय मे "चौरासी वैष्णवो की बारता" मे लिखा है कि जब सूरदासजी को जान पड़ा कि अब हमारा समय निकट है तब श्री नाथजी के मंदिर से निकलकर परासोली गॉव मे चले गए। वहॉ से श्रीनाथजी के मदिर की ध्वजा का दर्शन होता था। लोगों ने श्री गोशाईंजी से यह समाचार कहा। श्री गोशाईं जी ने वैष्णवमडली मे घोषणा करा दी कि "पुष्टिमार्ग (श्रीवल्लभीय-संप्रदाय) का जहाज डूबता है जिससे जो लेते बने सो ले" और कहा कि "राजभोग आरती करके मैं स्वय भी आता हूँ।" आरती करके आप भी पधारे। राज भोग आरती सबेरे प्राय' दस ग्यारह बजे तक हो जाती है अतएव यह समय दोपहर के पहले का था। श्री गोशाईं जी को देखकर सूरदासजी ने गद्गद कंठ से कहा—

'देखो देखो हरि जू को एक सुभाय।
अति गंभीर उदार उदधि प्रभु जान शिरोमणि राय॥
राई की सी सेवा को फल मानत मेरु समान।
समुझि दास अपराध सिंधु सम बुंद न एकौ जान॥
बदन प्रसन्न कमल पद संमुख दीखत ही हैं ऐसे।
ऐसे विमुखहु भए कृपा करि जब देखैा तब तैसे॥
भक्त विरह कातर करुणामय डोलत पाछे लागे।
सूरदास ऐसे प्रभु को कत दीजै पीठ अभागे॥ १।

समवेत वैष्णव-मंडली मे से चतुर्भुजदासजी ने सूरदासजी से पूछा "महाराज, आपने लाखों ही पद बनाए परंतु गुरु-चरण (श्री

वल्लभाचार्य) की वंदना मे कोई भी पद न कहा, इसका क्या कारण है ?" सूरदासजी ने निम्नलिखित पद कहकर इसका स्पष्ट उत्तर दे दिया कि मैं गुरु और गोविंद मे पार्थक्य नही देखता, इसलिये जो कविता मेरी हैं सभी गुरु और गोविद ही की वंदना मे हैं—

भरोसो दृढ इन चरणनि केरो।
श्री वल्लभ-नख-चद्रछटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो ॥
साधन और नाहि या कलि मैं जाते होय निवेरो।
सूर कहा कहै द्विविध* आँधरो बिना मोल को चेरो॥ १ ॥

भक्त-शिरोमणि सूरदासजी ध्यानमग्न थे। श्री गोशाईजी ने पूछा कि "सूरदास जी, इस समय चित्त-वृत्ति कहाँ है ?" सूरदासजी बोले—

"बलि बलि बलि हो कुँवरि राधिके नंदसुवन जासों रति मानी।
वे अति चतुर तुम चतुर-शिरोमनि प्रीति करी कैसे होत है छानी ॥
बे जु धरत तन कनक पीतपट सो तो सब तेरी गति ठानी।
ते पुनि श्याम सहज वे शोभा अंबर मिस अपने उर आनी ॥
पुलकित अग अबहि ह्वै आयो निरखि देखि निज देह सियानी।
सूर सुजान के बूझे प्रेम प्रकास भयो बिहसानी ॥ १ ॥"

इतने मे सूरदासजी के नेत्रो की सजल गति देखकर श्री गोशाईं जी ने पूछा "सूरदासजी, इस समय नयनो की वृत्ति कहाँ है ?" सूरदासजी बोले—

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ॥

---

* द्विविध अर्थात् एक पक्ष मे तो चतुर्भुजदास के प्रश्न का उत्तर दिया कि द्विविधा न जानने का अंधा हूँ। दूसरे पक्ष मे कहा कि मेरी प्रत्यक्ष और हृदय की दोनों ही आँखे फूटी है; दोनों तरह से अंधा हूँ।

चलि चलि जात निकट कानन लौं उलटि फिरत ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके न तरु कबै उडि जाते॥

देखते देखते ही सूरसागर मे पुष्टि-मार्ग का सूर जहाज मग्न हो गया। आपमे आप लय हो गए। लौकिक लीला का अनुभव करते करते अलौकिक लीला मे प्राप्त हो गए। इस संसार में "भ्रम-निशा" का मिटानेवाला यह अलौकिक सूर्य (सूर) अस्त हो गया, परंतु आश्चर्य यह है कि सूर्य तो अस्त हुआ परंतु अपना प्रकाश छोड़ गया।

स्फुट

यह हम ऊपर कह आए हैं कि लोग सूरदासजी को उद्धवजी का अवतार मानते है, कोई कोई इन्हे भगवान् के अष्ट-सखा मे से कृष्ण नाम सखा का अवतार मानते हैं। अष्टछाप के आठो महात्माओ को अष्ट-सखा का अवतार माना है। यथा श्री गोस्वामि द्वारिकेशजी महाराज लिखते है—

"सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानंद जानो।
कृष्णदास सो ऋषभ छितस्वामि सुबल बखानो॥
अर्जुन कुंभनदास चत्रभुजदास विशाला।
नंददास सो भोज स्वामि गोविंद श्री दामला॥
अष्टछाप आठो सखा श्री द्वारिकेस परमान।
जिनके कृत गुणगान करि निज जन होत सुथान॥ १॥"

(पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या प्रकाशित
श्री गोवर्धननाथजी की वार्ता पृष्ठ २४)

सूरदासजी के विषय मे नाभाजी ने भक्तमाल मे लिखा है—
" सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहि सिर चालन करै॥

भक्ति (उक्ति—पाठांतर) चोज अनुप्रास वरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुकधारी।
प्रतिबिंबित दिव्य दृष्टि हृदै हरिलीला भासी।
जनम करम सुभ रूप सबै रसना सुप्रकासी॥
विमल बुद्धि गुनि और की जो वह गुनि श्रवणनि धरै।"

श्री हरिवंश गोस्वामीजी के शिष्य ध्रुवदासजी ने "भक्तनामावली" ग्रंथ मे लिखा है—

"परमानँद अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज रीति।
भूलि जाति विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति॥"

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" में लिखा है—
"अघ निकर सूरकर सूर पथ सूर सूर जग मैं उयो॥
वल्लभ सागर, विट्ठल जाहि जहाज बखान्यो।
जग-कवि-कुल मद हरयो प्रेम नीके पहिचान्यो॥
एक वृत्ति नित सवा लाख हरि पद रचि गाए।
श्री वल्लभ वल्लभ अभेद करि प्रगट जनाए॥
जा पद बल अबलौं नर सकल गाइ गाइ हरि जस जियो।"

इन सूरदासजी के अतिरिक्त चार सूरदासो का और वर्णन ग्रंथों मे मिलता है।

(१) प्रसिद्ध सूरदास-मदनमोहन—ये सूरध्वजी ब्राह्मण अकबर के समय मे संडीले के चकलेदार थे। श्री वृंदावनवाले श्री मदनमोहनजी इनके इष्ट थे इसी लिये ये अपना नाम सूरदास-मदनमोहन लिखते थे। इनके काव्य भी बहुत अच्छे और प्रसिद्ध हैं।

(२) ध्रुवदासजी ने श्री वृंदावनस्थ सकेतवटनिवासी एक दूसरे सूरदास जी का नामोल्लेख किया है—

" सेयो नीकी भाँति सो श्री संकेत स्थान ।
रह्यो बड़ाई छाँड़ि कै सूरज द्विज कल्यान ॥"

(३) प्रसिद्ध महात्मा विल्वमगलजी को भी सूरदास कहते हैं।

(४) महाराज रघुराजसिंह ने "रामरसिकावली भक्तमाला" मे एक सूरदास सूर्य के उपासक का वर्णन किया है। इनको सूर्यनारायण ने दर्शन दिया था।

एक सूरज कवि का वर्णन और डाक्टर ग्रियर्सन ने, सूदन कवि के लिखने के अनुसार, किया है परंतु मेरे अनुमान मे ये वही प्रसिद्ध सूरदासजी हैं दूसरे कोई नहो। एक सूरदास (सूर साहब) राधास्वामी के नवीन प्रचलित मत मे माने जाते हैं। इनके बनाए कुछ पद इस सप्रदाय द्वारा प्रकाशित "सतसग्रह द्वितीय भाग" मे मिलते हैं। कविता के देखने से ये वह प्रसिद्ध सूरदास नही जान पडते, और कोई पता इनका नही मिलता।

'सूरसागर" का आश्रय लेकर संवत् १८०० मे व्रजवासीदास ने "व्रजविलास" नामक प्रसिद्ध ग्रथ श्री कृष्णचरित्र व्रजविहार बनाया। यह ग्रंथ गोस्वामी श्री तुलसीदासजी के रामायण के अनुकरण पर बना है और कुछ कुछ उसी की तरह इसका भी प्रचार है। प्रायः कृष्णलीला इसी के आधार पर होती है। व्रजवासीदासजी ने स्वयं लिखा है—

" मोतें यह अति होत ढिठाई। करत विष्णुपद की चैापाई॥

. ...

श्री शुकदेव कही हरिलीला। सुनी परीक्षित सब गुणशीला॥
सूरदास सोइ हरि रस सागर। गायो बहु विधि परम उजागर॥
फैलि रह्यो सो त्रिभुवन माहीं। गावत सुनत सुगम हरखाहीं॥
विविधि प्रकार चरित हरि केरे। नामहु बरने सूर घनेरे॥

सो वह प्रीति रीति सुखदाई। मेरे मन अतिसय करि भाई।
सो तो कथा अमित विस्तारा। मो पै पायो जात न पारा॥
तामैं ब्रजविलास सुखदाई। सो कछु कहिहौं करि चौपाई॥
भाषा की भाषा करौं छमियो कवि अपराध।
जिहि तिहिं बिधि हरि गाइए कहत सकल श्रुति साध॥"

डाक्तर ग्रियर्सन ने लिखा है कि एक कवि देवी बंदीजन ने भी (जो सन् १६९३ ई० मे वर्तमान था) सूरसागर नामक एक ग्रथ हास्यरस का बनाया था।

वर्तमान समय मे प्राय. लोग अपनी "डेढ़ चावल की खिचडी" पकाते हैं और अपनी नीरस कविता मे सूरदास जी या तुलसीदास-जी का नाम दे देते हैं। अनपढ़ लोग केवल नाम देखकर ही उनका आदर करने लगते हैं। ऐसी बहुतेरी कविता इनके नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कोई कोई तो बहुत ही प्रसिद्ध हो गई हैं। जैसे निम्नलिखित पद बहुत ही प्रचलित हो गया है, परतु इसकी भाषा और भाव स्पष्ट ही कहते हैं कि यह कविता कदापि सूरदासजी की नहीं है—

वैराग जोग कठिन ऊधो हम न करब हो।
कैसे तजब ऐसो देस जटा मुकुट धरब केस
अंग बिभूत लाय जहर खाय मरब हो॥
कैसे धरब अंग चीर मृगछाला धरि सरीर
सुखद सेज छाँडि भुइयाँ कैसे परब हो।
जमुना जल अति गंभीर तन मन नहि धरत धीर
कृष्ण विरह लागि बरुक डूब मरब हो।
एक तो हम दुबल गात दूजे लिखत बिरह बात
सूर श्याम दरस बिना प्रान तजब हो॥

मुझे स्मरण आता है कि मैंने भी बचपन मे ऐसी ही एक कविता करके "सूरश्याम" नामांकित कर अपने को कृतकृत्य समझा था।

अब मैं इस प्रबंध को पूज्य भारतेंदुजी के इस महावाक्य के साथ समाप्त करता हूँ—

"निज स्वारथ को धरम दूर या जग सों होई।
ईश्वर पद मैं भक्ति करैं छल बिनु सब कोई॥
खल के विष बैनन सो मत सज्जन दुख पावै।
छुटै राजकर मेघ समय पर जल बरसावै॥
कजरी ठुमरिन सो मोरि मुख सत-कविता सब कोइ कहै।
यह कविबानी बुध बदन मैं रवि ससि लौ प्रगटित रहै॥ ११॥"

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ४.

(८) हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास❀

दैनिक, साप्ताहिक इत्यादि

जगदीश्वर ने ससार मे सब से उत्तम और पुण्यभूमि भारत-भूमि को बनाकर मानो पृथ्वीतल को मुकुट पहिराया। इस मुकुट को अपने मस्तक पर धारण करने के लिये कौन ऐसा प्रतापवान् हुआ जो न ललचाया हो? देवादिकों ने जब इस भूमि मे जन्म लेना परम सौभाग्य माना तो मनुष्यों की क्या गिनती? संसार मे सबसे उत्तम वस्तु ज्ञान बनाया गया, उसको प्राप्त करने के लिये विद्यासोपान की रचना हुई, परंतु यह अमूल्य पदार्थ किस भाग्यशाली के भाग्य

❀ हिंदी भाषा भारतवर्ष की प्राचीन भाषा है परतु दुर्भाग्यवश इसका कोई इतिहास न मिलने से ठीक ठीक पता नही चलता कि आदि काल कौन है? इतिहास के अभाव ने हमारे देश को बहुत कुछ हानि पहुँचाई। पद्य-रचना का काल जहाँ तक पता लगता है हजार वर्ष से पूर्व ही है, परतु गद्य-रचना की प्रणाली यद्यपि सैकडो वर्ष से प्रचलित है और ज्योतिष, वैद्यक तथा धर्म संबंधी ग्रंथ बहुधा मिलते भी हैं तथापि इसका आदर अंगरेजी राज्य में जब से छापने की विद्या का प्रचार यहाँ हुआ तभी से प्रारंभ हुआ। जगदीश्वर की कृपा से उत्तरोत्तर उसकी उन्नति (यद्यपि बहुत धीरे धीरे) होती जाती है। समाचारपत्रों का प्रचार अभी केवल पचास ही वर्ष से हुआ है परंतु हर्ष का विषय है कि इतने थोडे काल में भी इसने आशातिरिक्त उन्नति प्राप्त की है। इस समय भाषा मे इसका प्रचार भली भाँति होता देख आवश्यक हुआ कि इसके नियम और इतिहास (जो कि अभी सहज में प्राप्त हो सकते हैं) प्रकाशित किए जायँ, अतएव सभा ने यथासाध्य उद्योग करके प्रस्तुत किया और आप लोगो की सेवा में उपस्थित करके आशा करती है कि आप लोग इसमें जो जो त्रुटियाँ रह गई हो उनसे सूचित करें कि दूसरे संस्करण में सुधार दी जायँ। जिन पत्रों का नाम आदि छूट गया हो कृपापूर्वक उससे भी सूचित करें।

मे था ? भारत के। इसी भारत के ज्ञानकणो को लेकर आज सारा ससार ज्ञानी बनकर घमड कर रहा है। यही की विद्याजननी सस्कृत के आश्रय पर आज दिन सारे संसार की भाषाओं का जन्म हुआ। इसको विदेशोय विद्वानों ने भी स्वीकार किया है परंतु हाय! आज भारत का वह दिन नही है। इसकी अपूर्व शोभा इसकी प्रधान शत्रु हुई। विदेशीय राज्यगण इसके लोभ को सवरण न कर सके, इसे अपने हस्तगत किया परंतु उनको वह बुद्धि कहाँ कि इसके गुणो को समझकर यथावत् आदर करते, इसकी शोभा को बढ़ाने की चेष्टा करते। सभो ने इसके गले पर छूरी ही फेरी। परतु यहाँ के ऋषितुल्य ब्राह्मणो की कृपा से आज तक भारत की अमूल्य पदार्थ-विद्या का नाश कोई न कर सका। इन महात्माओं ने अपने मुख-गह्वर मे छिपाकर इसको परंपरा तक ऐसा रखा कि किसी की दाल गलने न पाई। शूरवीरों का आदर, सती रमणियो का सम्मान तथा विद्वान् पंडितो की गुणग्राहकता की शिक्षा भारत ने भलो भाँति पाई थी। भारत के सौभाग्य से इसी गुण का आश्रय लेकर अब तक इस अमूल्य रत्न ने यहाँ रहने का ठिकाना पाया।

यद्यपि संस्कृत भाषा, जो कि सर्वमतसम्मत सब भाषाओ की जननी है, इस देश के गौरव को बढाती थी तथापि विचारकर देखने से प्रतीत होता है कि संस्कृत के सिवाय भी एक भाषा यहाँ सर्व-साधारण स्त्री पुरुष के बोलने की अत्यत प्रचीन काल से प्रचलित थी। महाराज भोज जो संस्कृत के बड़े अनुरागी थे अनुमान होता है कि उन्ही के समय मे किसी और ही भाषा की (जिसे हम हिंदी कह सकते हैं) प्रधानता हो गई थी क्योंकि उनकी यह आज्ञा थी कि जो संस्कृत न जानता हो, हमारे राज्य मे न रहे और थोडो थोड़ी बातों पर रीझकर लाखों दे देना इस बात की सूचना देता है कि

उस समय सस्कृत की कमी और हिंदी भाषा की प्रबलता थी परंतु दुर्भाग्यवश हमारे इतिहासों के अभाव ने हमे पूरा समाचार जानने से वञ्चित रखा है।

भाषा की शोभा साहित्य और साहित्य की शोभा काव्य—इसी मूल पर हमारे यहाँ के विद्वानों ने सब ग्रथ कविता मे रचे और गद्य लिखने को सहज समझकर उसकी ओर ध्यान ही न दिया। संस्कृत ही इसके लिये प्रमाण है। हिंदी भाषा मे भी जहाँ तक प्राचीन से प्राचीन और पचास वर्ष पूर्व तक के ग्रथ मिलते हैं सभी छदोबद्ध हैं, यदि कहीं कही कोई ग्रंथ वैद्यक वा ज्योतिप अथवा साम्प्रदायिक मिलते भी है तो सडी भद्दी हिंदी वा ब्रजभाषा मे। अँगरेजी शिक्षा के प्रचार के साथ साथ यह भाव लोगों के हृदय मे उदय हुआ कि बिना गद्यपद्यात्मक ग्रंथो के भाषा की शोभा नहीं और न वह सर्वसाधारण को बोधगम्य और उपकारी हो सकती है। प्रेम-सागर, रानी केतकी की कहानी, आदि ग्रंथों का दर्शन हुआ, राजा शिवप्रसाद ने भी समयानुसार खिचड़ी हिंदी के प्रचार मे कलम उठाया परतु संवत् १९२२ मे भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी श्री जगदीश-यात्रा को गए। वंगभाषा के सौदर्य्य और लालित्य को देख इनका चित्त मोहित हो गया और जो सुंदर भाव इनके हृदय में पैतृक संपत्ति-स्वरूप विद्यमान था वह उथल पडा और उन्होंने सुंदर ललित लेखों से हिंदी के मृतप्राय शरीर मे विलक्षण जीवनी शक्ति सचारित कर दी।

हमारा विषय "हिंदी भाषा के सामयिक पत्र" है परंतु संक्षेप मे हिदी गद्य के विषय मे बिना इतना कहे संतोप न हुआ अतएव हमारे पाठकगण क्षमा करेगे।

मिस्टर डिसराइली (I. D'Israeli), अपने ग्रंथ क्यूरीआ-सिटीज आफ लिटरेचर (Curiosities of Literature) में

लिखते हैं "सामयिक पत्रों के जन्मदाता पारलियामेंट पैरिस के कौन्सेलर 'डेनिस डी सैलो' (Denis de Sallo) हैं। इन्होंने सन् १६६५ ई० मे "जरनल डेस स्कवन्स" (Journal des scavans) प्रकाशित किया। दूसरा पत्र सन् १६८४ मे बेल साहेब (Bayle) ने 'नावेल्स डी ला रिपबलिक डेस लेट्रोस" (Nouvelles de la Republique des Lettres) निकाला।"

उक्त ग्रथकार छापने की विद्या के विषय मे लिखता है 'यह विद्या चीन से युरोप मे आई प्रतीत होती है। पहले वृक्षों के पत्तों पर छापते थे परतु ठीक क्रम से यह विद्या सन् १४४० से १५०० तक मे चली। कैक्सटन (Caxton) और व्यनकिन डी वरडो (Wynkyn de worde) इसके प्रथमाचार्य्य थे। कैक्सटन एक धनिक व्यापारी था, वह सन् १४६४ मे बादशाह एडवर्ड (Edward IV) की ओर से व्यापार संबंधी संधि करने ड्यूक आफ बरगंडी' (Duke of Burgundy) के यहाँ गया था और वहीं से यह विद्या लाया।" इसका विशेष वृत्तांत भारतेंदु बाबू हरिश्चद्रजी रचित 'नाटक' नामक ग्रथ मे देखिए।

उक्त ग्रंथकार समाचारपत्रों के विषय मे लिखता है कि यह विद्या पहले इटली से चली। पहला पत्र वहाँ की स्वतंत्र गवर्मेंट से 'वेनिशियन' (Venitian) मासिक निकला। परंतु ठीक समाचारपत्रों के रूप मे सब से पहला पत्र इँगलैंड से जगत् प्रसिद्ध महारानी एलिजबेथ के समय मे, उन्हीं के राजकीय यंत्रालय से, सन् १५८८ ई० मे "इंगलिश मरक्युरी" (English Mercurie) नाम का निकला।

इस समय विलायत मे समाचार पत्रों की ऐसी उन्नति है कि "हिदी बगवासी" के लेख से विदित हुआ कि वहाँ केवल दैनिक पत्र १५२ प्रकाशित होते हैं।

"विलियम डौसन एंड सस" (William Dowson and Sons) ने एक सूची प्रकाशित की है। वे विलायत के इतने समाचार पत्रो के एजेट हैं।

समाचारपत्र

इँगलैंड — ३४ दैनिक, ६ सप्ताह मे दो बेर, २ सप्ताह मे तीन बेर, ५७१ साप्ताहिक, २८ पाक्षिक, ११७ मासिक, ७४८ सब मिलकर।

अमेरिका—१२५ साप्ताहिक।

फ्रांस—२१ "

जर्मनी—३३ "

इटली—४ "

स्पेन -३ "

मैगजीन (साहित्य सबधी मासिक पत्र)

इँगलैंड—७६६ मासिक पत्र, ८ पाक्षिक पत्र, ७१ साप्ताहिक।

अमेरिका—११२ मासिक।

समालोचक आदि (Review, etc.) षट् मासिक इँगलैंड २२

वार्षिक (Directories, Reports, Calenders, Almanacs, etc) इँगलैंड—३४५

सब मिलाकर २२६८ सामयिक पत्रो के एजेंट केवल ' विलियम डौसन एड संस" हैं।

"नागरी नीरद" लिखता है "१७६ समाचारपत्र बंबई प्रात मे प्रकाशित होते हैं।" यह हमारा ही हतभाग्य पश्चिमोत्तर देश तथा हिंदी भाषा है जिसमे महादीन दशा मे इतने कम पत्र हैं जो उँगलियो पर गिने जायँ।

भारतवर्ष मे प्रथम प्रथम यह प्रथा अँगरेजी राज्य के साथ बँगला मे चली। इस विषय को उपयोगी समझकर हम संक्षिप्त इतिवृत्त लिखते हैं।

महाभारत के देखने से विदित होता है कि उस समय समाचारदाता लोग नियत रहते थे जो कि समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया करते थे। भाट और दूत लोग भी समाचारदाताओ का काम करते थे और उन्हे पूरी स्वतत्रता दी जाती थी। मुसल्मान बादशाहो के समय में भी अखबारनवीस रहा करते थे और बेधड़क सच्ची खबरे लिखा करते थे।

यद्यपि छापने की विद्या का ठीक सिलसिलेवार पता यूरोप ही से लगता है परंतु इसमे संदेह नही कि इसका बीज भारतवर्ष मे बहुत काल पूर्व से था। मुहर पर अक्षर खोदकर छापना (मुद्रा) यह तो प्राचीन प्रथा चली ही आती थी परतु अँगरेजों के प्रथम गवर्नर-जेनरल वारेन हेस्टिंग्ज के समय मे काशी मे एक मुद्रायत्र (Press) गड़ा हुआ मिला था जो कि अनुमान किया जाता है कि एक हजार वर्ष से कम का गड़ा नहीं था। इसका वृत्तात डाक्टर जोगेद्रनाथ घोष अपने लेख मे, जो सन् १८७० ई० मे "नैशनल सोसाइटी" मे पढ़ा गया था, यों लिखते हैं—

An extraordinary discovery was made of a press in India when Warren Hastings was Governor-General He observed that in the district of Benares a little below the surface of the earth was to be found a structure of a kind of fibrous woolly substance of various thicknesses in horizontal layers. Major Roebuck, informed of this, went out to the

spot where an excavation has been made, displaying the singular phenomenon In digging somewhat deeper for the purpose of further research, they laid open a vault which, on further examination, proved to be of some size; and to their astonishment they found a pair of printing presses set up in a vault and movable types placed as if ready for printing. Every enquiry was set on foot to ascertain the probable period at which such an instrument could have been placed there, for it was evidently not of modern origin, and from all the Major could collect it appears probable that the press had remained there in the state in which it was found for at least one thousand years

लार्ड हेस्टिग्ज के समय मे पहले पहल सर चार्ल्स विलकिनसन साहब ने बँगला का टाइप बनाया और पंचानन कर्मकार नामक व्यक्ति को टाइप बनाना सिखलाया। कालीकुमार राय नामक एक व्यक्ति बहुत ही सुंदर अक्षर लिखता था उसी को देखकर बँगला टाइप की सृष्टि हुई। पहले पहल सन् १७७८ मे मिस्टर ऐनड्रूज (Andrews) ने हुगली मे बँगला प्रेस खोला। बँगला की देखा देखी हिंदी टाइप बना और हिंदी के प्रेस खुले।

भारतवर्ष मे सबसे पहला पत्र सन् १७८० मे "हिकीज गजेट" (Hickey's Gazette) नामक और सन् १७६३ मे "इंडियन वर्ल्ड" (Indian World) अँगरेजी मे और सन् १८१६ मे "बंगला गजेट" नामक प्रकाशित हुआ। इस समय पाश्चात्य

सभ्यता के प्रभाव से भारतवर्ष के प्राय सब खंडो मे सब भाषा के उत्तमोत्तम पत्र प्रकाशित होते हैं।

हिंदी मे सबसे पहले सन् १८४५ ई० के जनवरी मे राजा शिवप्रसाद की सहायता से "बनारस अखबार" का जन्म हुआ। यह पत्र लिथो मे बहुत ही दरिद्र कागज पर छपता था और इसके संपादक गोविंद रघुनाथ थत्ते राजा साहेब के आदेशानुसार इसे लिखते थे। इसका मोटो यह था।

"सुबनारस अखबार यह शिवप्रसाद आधार।
बुधि विवेक जन निपुन को चित हित बारंबार॥
गिरिजापत नगरी जहाँ गंग अमल जलधार।
नेत शुभाशुभ मुकुर को लखो विचार विचार॥"

इसकी उर्दू मे कही कही हिंदी मिली भाषा और भाव झलकाने को हम इसकी सपादकीय सम्मति के एक अंश को उद्धृत करते हैं। इसी से इसका रूप विज्ञ पाठकगण परख ले—

"यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहेब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनता है उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है। अब वह मकान एक आलीशान बनने का निशान तय्यार हर चेहार तरफ से हो गया बल्कि इसके नकशे का बयान पहिले मुदर्ज है सो परमेश्वर के दया से साहब बहादुर ने बड़ी तदेही और मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है। देखकर लोग उस पाठशाले के किते के मकानो की खूबियाँ अक्सर बयान करते हैं और उनके बनने के खर्चे का तजवीज करते हैं कि जमा से जियादा लगा होगा और हर तरह से लायक तारीफ के है सो यह सब दानाई साहेब ममदूह की है खर्च से दूना लगावट मे मालूम होता है।"

इसके विषय मे काशी के अमूल्य रत्न, फ़ारसी भाषा के अद्वितीय पंडित श्रीकाशिराज महाराज के विद्या-गुरु मुंशी शीतलसिंह साहेब ने एक रुबाई बनाई थी।

"बनारस में इक जो बनारस गजट है।
इबारत सब उसकी अजब ऊट पट है॥
मुहर्रिर बिचारा तो है बासलीका।
वले क्या करै वह कि तहरीर भट है॥

इस समय "शिमला अखबार", "मालवा अखबार" आदि पत्र निकलते थे पर मुझे यह नहीं ज्ञात है कि देवनागरी अक्षरों मे वा उर्दू मे परन्तु भाषा उर्दू ही थी।

इस अभाव को दूर करने के अभिप्राय से सन् १८५० ई० मे कुछ सुधरे हुए ढग पर हिंदी भाषा मे काशी से बाबू तारामोहन मित्र आदि सज्जनों ने "सुधाकर" नामक हिंदी भाषा का पहला पत्र प्रकाशित किया।

इसी "सुधाकर" पत्र से काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय पं० सुधाकरजी का नाम सुधाकर हुआ है। पडितजी के पितृव्य को डाकिये ने ज्योंही सुधाकर पत्र दिया त्योंही घर से समाचार मिला कि आपको भतीजा हुआ। उन्होने कहा "पुत्र का नाम सुधाकर"।

जब पूज्यपाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र हिंदी भाषा को पुनर्जन्म देने में प्रवृत्त हुए और "विद्यासुंदर" आदि कई एक सुंदर सुंदर ग्रंथों की रचना की, "काव्यसमाज" "तदीय समाज" "सार्वजनिक सभा" आदि स्थापित की, उस समय उनके हृदय मे हिंदी मे समाचारपत्र का अभाव खटकने लगा और सन् १८६८ ई० मे "कविवचनसुधा" नामक पत्र प्रकाशित किया। सरकार ने भी इस पत्र

की सहायता की और इसकी १०० प्रतियाँ लेने लगी। पहले यह पत्र मासिक पुस्तकाकार प्रकाश हुआ और प्राचीन नवीन कविता के अनेक ग्रंथ छपते रहे, परंतु थोड़े ही दिन पीछे दीन प्रजा के दु:ख से इनका हृदय ऐसा दुखा कि इस प्रांत मे एक राजकीय पत्र का होना आवश्यक समझ "कविवचनसुधा" को पाक्षिक करके इन्होने राजा और प्रजा दोनों के उपकारी लेख पूर्ण स्वाधीन भाव से लिखने आरंभ किए। यद्यपि इस समय हाकिमो मे इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और ये आनरेरी मैजिस्ट्रेटी आदि पदों से सम्मानित थे परंतु इन सब बातों की कुछ भी चिंता न करके और उस समय इस प्रांत में स्वाधीन-हृदय सुशिक्षित व्यक्तियों की सहायता का अभाव होने पर भी इन्होंने पूर्ण स्वाधीन भाव से राजकीय विषयों पर कलम उठाया। 'कविवचनसुधा' के उद्देश्य कैसे महत् और उदार स्वाधीन भावपूर्ण थे यह आप लोग उसके इस सिद्धांत वाक्य (मोटो) से भली भाँति जान सकेंगे।

"खलगनन सों सज्जन दुखी मति होहिं हरि-पद मति रहै।
उपधर्म्म छूटैं सत्व निज भारत गहै कर दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होहिं जग आनँद लहै।
तजि ग्राम-कविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै"॥

ज्यों ज्यो सर्वसाधारण की सहानुभूति मिलती गई त्यों त्यों सुधा के उत्साह की उन्नति मे उत्साह बढ़ता गया और यह साप्ताहिक प्रकाशित होने लगा। थोड़े ही दिनों मे इसका गुण सारे संसार मे फैल गया और चारों ओर से आदर होने लगा। सन् १८७० ई० मे फ्रांस देश के जगत् विख्यात विद्वान् गार्सिन डी टासी (Garcin de Tassy) ने अपने प्रसिद्ध पत्र Le Langue में इसके विषय में लिखा है,—

"*Le Babu Harish Chandra, toujours zeli la litterature Hindic, continue a publier soit dans son avi Vachan Sudha* .. "

Babu Harish Chandra, always zealous for Hindi literature, continues to publish separately Hindi works in his Kavi Vachan Sudha . .

"कविवचनसुधा" का आदर सर्वसाधारण मे बढ़ता गया और इसके लेख ऐसे ललित होते थे कि यद्यपि हिंदी भाषा के प्रेमी उस समय गिने ही हुए थे तथापि लोग चातक की भाँति टकटकी लगाए रहते थे और हाथो हाथ सब बँट जाता था यहाँ तक कि अब एक फाइल भी कहीं नहीं मिलती है। इस पत्र की ऐसी उन्नति और एक युवा पुरुष का अभ्युदय कई एक क्षुद्र स्वार्थसाधक महापुरुषो को खटकने लगा। चुगली की बाजार गर्म्म हुई। इसमें जो निष्पक्षपात लेख गवर्नमेंट के हित के वास्ते लिखे जाते थे वे राजद्रोही ठहराए जाने लगे। जो कविता वा पद्य हास्य वा श्लेष के छपते थे वे अपमानसूचक ठहराए जाने लगे। इसका फल यह हुआ कि "मर्सिया" शीर्षक एक पद्य ज्योंही छपा, 'सर विलियम म्योर' लेफ्टिनेंट गवर्नर को समझाया गया कि यह लेख आपके अपमान और उपहास की नीयत से छपा है। बस झटपट सरकार की सहायता बंद की गई और केंपसन साहब डाइरेक्टर विद्याविभाग ने क्रोधप्रकाशक एक पत्र भेजा। यद्यपि उसके पीछे बहुत कुछ लिखा पढ़ी हुई परंतु वहाँ तो ऐसा रंग जमाया गया था कि वह काहे को उतरना था। उसी समय "हरिश्चद्रचंद्रिका" और "बालाबोधिनी" की जो सौ सौ कापियाँ गवर्नमेंट लेती थी बद की गई जिसका सविस्तर वृत्तांत आगे चलकर मासिक पत्रों के साथ लिखा जायगा।

हम इस विषय मे अपनी सम्मति न लिखकर उस सम्मति को प्रकाशित कर देते हैं जो काशी के माननीय आनरेरी मजिस्ट्रेट और श्री महाराज विजयानगरम् की रियासत के सुपरिंटेडेंट डाक्टर लाजरस साहब ने लिखी है—

At the request of Babu Harish Chandra, I have much pleasure in stating what I know of him. Since I made his acquaintance some years ago, I have always held him in high esteem and regard on account of his many social and public virtues . for about 4 years he was associated with me as an Honorary Magistrate of this city

As a leading citizen he has ever taken a prominent part in public affairs for which by education, etc, he is well fitted A boys' school founded by him long ago still exerts an influence for good. As a public writer as well as in social and public life I have always believed him to be thoroughly loyal to the Government. Having an extensive command of the vernacular languages and being no mean poet with a view of humour in his composition he occasionally indulged in a little quiet satire which unfortunately for him gave offence to the then authorities and he has been under ban ever since. The citizens of Benares who one and all have a sincere respect for Babu Harish Chand will

be glad to see the ban removed and the Government once more reposing trust and confidence in him.

(Sd) E. J. LAZARUS, M D

Benares July 15th, 1880.

गवर्नमेंट का ऐसा अनुचित व्यवहार और हाकिमों का ऐसा पतला कान समझकर बाबू हरिश्चद्रजी ने आनरेरी मजिस्ट्रेटी और म्युनिसिपल कमिश्नरी आदि से इस्तीफा दे दिया और हाकिमों से मिलना और उनकी हाजिरबाशी बिल्कुल छोड़ दी।

यद्यपि सरकार से "सुधा" का तिरस्कार हुआ परतु देशवासियों मे इसका गौरव बढ़ता ही गया। उस समय हिंदी के कई एक सुलेखकों ने इसमे लिखना आरभ किया और इसके द्वारा ही उनकी लेखनी ने इस देश मे गौरव और सम्मान पाया। श्री गोस्वामी राधाचरणजी, बाबू गदाधरसिंह, बाबू काशीनाथ, लाला श्रीनिवास-दास, पंडित सरयूप्रसाद, पडित बिहारीलाल चौबे, बाबू तोताराम, मुंशी कमलाप्रसाद, पंडित दामोदर शास्त्री, बाबू ऐश्वर्यनारायणसिंह, बाबा सुमेरसिंहजी, बाबा संतोषसिंहजी, बाबू गोकुलचद्र, बाबू नवीन-चंद्र राय प्रभृति विद्वान् ही मुख्य हैं।

"कविवचनसुधा" मे एक बड़ा दोष यह था कि वह नियत समय पर नहीं निकलता था, इस दोष को दूर करने के अभिप्राय से तथा पंडित चितामणि के आग्रह से यह पत्र बाबू साहब ने उक्त पडितजी को दे दिया। यद्यपि यह गुण तो आ गया कि नियत समय पर निकलने लगा परंतु और गुण लुप्त हो गए। पंडित चितामणि के हाथ मे जाने के कई वर्ष पीछे तक भारतेंदुजी ही मुख्यतः लिखा करते थे, फिर इसके अवैतनिक संपादक व्यास रामशकर शर्म्माजी रहे परंतु सन् १८८३ ई० में इल्वर्ट बिल के आंदोलन के समय माननीय राजा शिव-

प्रसाद का पक्ष लेने के कारण और इन लोगों के हाथ खींचने पर इस पत्र से साधारण सहानुभूति जाती रही और सन् १८८५ ई० तक तो इसने ऐसा रंग बदला कि अपने जन्मदाता तथा स्वामी भारतेंदुजी के अकालकालग्रसित होने पर, जब कि प्राय: संपूर्ण हिंदी पत्रों ने महीनों तक काला किनारा देकर शोक प्रकाश किया, इसने एक कालम भी काला न किया! किसी प्रकार से लुड़कता पुड़कता थोड़े दिन और भी यह पत्र चला। अब सन् १८८५ से बंद है।

"कविवचनसुधा" को देखकर हमारे देशवासियों ने कुछ कुछ जाना कि समाचार पत्र क्या है और उससे क्या लाभ है। सन् १८७१ ई० मे अल्मोड़ा से "अल्मोड़ा अखबार" निकला जो अब तक वर्तमान है। यह पत्र फुलिसकेप आकार मे कभी एक और कभी १॥ ताव मे टाइप के अक्षरों मे छपता है परंतु बड़े ही आश्चर्य की बात है कि इतने छोटे पत्र का मूल्य इसके स्वामी ने न जाने किस कारण से ६॥।) रु० रखा है। इस समय मे इतना अधिक मूल्य अवश्य इसकी उन्नति का प्रधान अवरोधक है। अधिक मूल्य लेकर पत्र के निर्वाह की अपेक्षा थोड़े मूल्य से अधिक ग्राहक बनाने का प्रयत्न करना श्रेय है।

इसके पीछे सन् १८७२ मे कलकत्ते से पहले पहल "हिंदीदीप्ति-प्रकाश" नामक पत्र बाबू कार्तिकप्रसाद ने निकाला। उस समय वहाँ के हिंदुस्तानी, समाज मे अखबार किस चिड़िया का नाम है, यह नहीं जानते थे। थोड़े से ऐसे सज्जन थे कि जिन्हे उसकी चाह और कदरदानी थी। घर घर और कोठो कोठी घूम घूम के बाबू साहब ने बड़े परिश्रम से लोगों को ग्राहक बनाया था जिनमे कितने ऐसे थे कि जिन्हे समाचारपत्र पर कुछ भी विश्वास न था, कितने इसे सरकारी पत्र समझते। कोई कहता आनके आठवे दिन सुना

जाया करो तो ग्राहक हो। जिसने जिस तरह ग्राहक होना स्वीकार किया उसी तरह उन्होंने भी स्वीकार किया। धन्य हम लोगो के भाग्य कि कलकत्ते मे हिंदी के उत्तम से उत्तम कई पत्र निकले और अभी हैं और अब लोग कदर करने लगे। उस समय को स्मरण कर और आज का दिन देख जो आनंद होता है वह अकथनीय है। इस पत्र की सहायता करने और उत्साह देने मे भारतेंदुजी तथा महाराणी स्वर्णमयी प्रधान थे।

सन् १८७२ मे बिहार प्रांत से पंडित केशवराम भट्ट तथा पंडित साधोराम भट्ट के उद्योग से उस प्रांत मे पहला साप्ताहिक पत्र "बिहार-बंधु" निकला। इस पत्र की लेखप्रणाली बहुत सुंदर और प्रौढ़ थी परंतु भाषा खिचड़ी उर्दू विशेष अधिकार किए थी। अब यह पत्र अत्यंत हीनावस्था मे मासिक होकर नाम निबाहे जाता है।

सन् १८७४ मे हिंदी भाषा के सच्चे प्रेमी स्वर्गवासी लाला श्रीनिवासदास ने दिल्ली से "सदादर्श" नामक पत्र निकाला परंतु सन् १८७६ में यह पत्र "कविवचनसुधा" मे मिला दिया गया।

सन् १८७६ ई० मे भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की सहायता से बाबू बालेश्वरप्रसाद बी० ए० हेड मास्टर नार्मल स्कूल (अब सेक्रेटरी गवर्नमेंट बोर्ड आफ रेवेन्यू) ने "काशी पत्रिका" साप्ताहिक निकाली। पहले तो इसका ढग "कविवचनसुधा" ही सा था और "सत्यहरिश्चद्र", "कर्पूरमजरी" आदि कई एक नाटक इसमे छपे परतु फिर तो उसने अपना ढंग ही बदल दिया और उसमे स्कूल के छात्रों ही के उपयोगी विषय छपने लगे। फिर भाषा उसकी उर्दू और अक्षर हिंदी और अंत में अक्षर भी एक पृष्ठ हिंदी और एक पृष्ठ उर्दू हो गए। बाबू बालेश्वरप्रसाद ने डिपुटी कलेक्टर होने पर यह पत्र राय बहादुर पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र एम० ए० को दिया जिनके प्रबंध

मे यह अब तक छपता है। इस पत्र के ग्राहक अधिकांश स्कूलीय छात्र या शिक्षकगण ही हैं और इसकी लेखप्रणाली भी यथासंभव तदुपयुक्त है, परंतु आक्षेप का विषय है कि इसकी भाषा को हिंदी न कह उर्दू ही कहना उचित है। इस पत्र से चाहे और जो कुछ लाभ हो परतु बडी भारी हानि यह है कि जब यह पत्र केवल विद्यार्थियों के निमित्त प्रकाशित हो रहा है तब इसकी भाषा क्यो न विशुद्ध हिंदी लिखी जाय? क्या हिंदी भाषा का सिखाना कोई अन्याय है?

सन् १८७६ मे अलीगढ से हिंदी भाषा के परम सहायक बाबू तोतारामजी ने "भारतबंधु" निकाला। उक्त बाबू साहब ने हिंदी की उन्नति के अभिप्राय से "भाषा-संवर्धिनी सभा" की सृष्टि की परंतु हिंदी के दुर्भाग्य और हिंदी-रसिकों की अरसिकता के कारण अब इसका नाम मात्र लेने को बाकी है।

सन् १८७७ हिंदी समाचार पत्रो के इतिहास मे स्मरणीय है। इस सन् मे कई एक अच्छे अच्छे साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होने लगे जो आज तक सब के सब हिंदी भाषा के गौरव को बढ़ाते हैं।

हिंदी मे यथार्थ रूप से कोई पत्र निकलता न देखकर सन् १८७७ में भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ता नगर से पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पडित छोटूलाल मिश्र, पंडित सदानंद मिश्र तथा बाबू जगन्नाथ खन्ना के उद्योग से "भारतमित्र" कमिटी बनी और उसके द्वारा "भारतमित्र" पत्र निकला। उसने अपना कर्तव्य पूरा पूरा संपादित किया। जब तक यह पत्र पंडित छोटूलाल मिश्र के हाथ मे था तब तक बहुत ही उत्तमता से चला, कभी कभी भारतेदु बाबू हरिश्चद्रजी भी लिखा करते थे। जब से उक्त पंडितजी ने हाथ खींचा, कई संपादक आए और उसके कई रंग बदले। इसके

संपादकों मे पंडित हरमुकुंद शास्त्रीजी* ने भी इसे बहुत योग्यता से चलाया। अब इसी वर्ष (१८९३-९४) से यह पत्र बाबू जगन्नाथ-दास अग्रवाल के प्रबंध मे आया है और बहुत बड़े डील डौल के स्पष्ट सुंदर कागज पर छपता है। लेख भी सुंदर होते हैं। पंडित रुद्रदत्त (जो पहले "आर्यावर्त" और फिर "हिंदी बंगवासी" के सपादक थे) सपादक हैं। विषय राजनीति प्रधान है।

उसी सन् १८७७ मे पंजाब प्रांत मे ' मित्रविलास" सब से पहला वरच हिंदी का एक मात्र साप्ताहिक पत्र पंडित गोपीनाथजी की तेज-पूर्ण लेखनी से निकला। यह आज तक निकलता है और सनातन हिंदू धर्म का पक्ष समर्थन पूरी दृढ़ता के साथ करता है। उक्त पंडितजी ने जो इसका इतिहास लिखा है वह नीचे प्रकाशित किया जाता है।

"मित्रविलास सन् १८७७ ई० से निकला। उस समय पजाब मे हिंदी भाषा का कोई पत्र वर्तमान न था। यह पहला हिंदी साप्ताहिक पत्र है जो निकला। इससे पहले एक उर्दू-हिंदी मासिक पत्रिका 'ज्ञानप्रदायिनी" नाम से हमारे मित्रविलास यंत्रालय मे छपती थी। उसमे समाचार तथा ब्राह्म धर्म संबंधी लेख होते थे। पर वह बंद हो गई। इसके बाद एक हिंदू-बांधव मासिक पत्र हिंदी-उर्दू का निकला। वह प्रायः ब्राह्म समाज के लेख लिखता था। वह भी बंद हो गया। "मित्रविलास" जब निकला हिंदी का प्रचार पजाब मे बहुत ही कम था, लाभ के लिये नहीं किंतु (हिंदी) भाषा की उन्नति के लिये यह पत्र प्रकाशित किया गया। उस १४ वर्ष के बीच जब से यह पत्र जारी है, सहस्रो रुपए की हानि हो चुकी है परंतु श्री पिताजी को हिंदी की रक्षा अति प्रिय थी, प्रेस

---

* उक्त पंडितजी हिंदी के बडे ही अनुरागी और उत्तम लेखक होने पर भी न जाने चिरकाल से कहाँ अंतर्धान से हो रहे है।

अपना था इसलिये नुकसान की परवाह न करके हमको उत्तेजना देते रहे कि इसको चलाते जाओ। "मित्रविलास" को जारी करने का मूल कारण श्री भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी की कविवचनसुधा थी। वही एक पहला पत्र था जो कि पिताजी के पास आता था। वे उसे प्रेमपूर्वक पढ़ते थे और श्री भारतेंदुजी के लेखों पर मोहित हो जाते थे। हम दोनों भाई भी वही पत्र पढ़ते थे और हिंदी भाषा का अनूठा ढंग उसी से प्राप्त हुआ। उसी को देखकर उत्साह हुआ कि पंजाब में भी हिंदी भाषा का साप्ताहिक पत्र निकाला जाय। श्री पिताजी ने आज्ञा दी और मैंने तथा ज्येष्ठ भ्राता श्री पं० गोविंद-सहायजी ने इसके संवाददाता का भार ग्रहण किया। कई वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हुए परंतु अब ६ वर्ष से मेरे कनिष्ठ भ्राता पं० कन्हैयालाल इसका संपादन करते हैं।

"पहले पहल मित्रविलास लीथो में ही छपना आरंभ हुआ और कई वर्षों तक वैसा ही रहा। उन दिनों सारे भारतवर्ष में केवल दो तीन ही हिंदी के पत्र थे अर्थात् 'कविवचनसुधा', 'विहारबंधु', 'हिंदीप्रदीप' और 'मित्रविलास'। मित्रविलास से पीछे फिर 'भारतमित्र', 'सारसुधानिधि', 'उचित वक्ता', 'भारतजीवन', 'क्षत्रिय पत्रिका' आदि आदि निकले।

"पंजाब में मित्रविलास एक ही साप्ताहिक पत्र है और कोई नहीं। एक और साप्ताहिक पत्र पं० ज्वालादत्तप्रसाद गोस्वामी के अधिकार से छपना आरंभ हुआ था जिसका नाम "भारतहितैषी" था पर वह २, ३ मास निकल बंद हो गया क्योंकि इधर अभी ऐसा जमाना नहीं आया कि हिंदी पत्र निकलने में बिना क्षति के कुछ लाभ हो। इसी से कई पत्र निकले और बंद हो हो गए। एक 'भारतदीपिका" नामी साप्ताहिक पत्रिका भी छपनी आरंभ हुई थी पर बंद हो गई।

"मित्रविलास की भाषा को आरंभ ही से बहुत से विख्यात हिंदी लेखको ने पसंद किया। श्री भारतेंदु हरिश्चंद्रजी इस पर विशेष प्रसन्न थे और सच पूछिए तो यह उसी के सुधा-बीज का अंकुर था। स्वर्गवासी श्रीमान् आर्यकुलकमलदिवाकर श्रीमच्छ्री १०८ महाराजा सज्जनसिहजी ने मित्रविलास की भाषा की उत्तमता से प्रसन्न होकर २००) इसकी सहायता के लिये भेजा था कि यह टाइप मे हो जावे। इनकी इस सहायता से तथा मियाँ मीर के रायं बहादुर सेठ रामरत्नजी की सहायता से इस पत्र का सन् १८८७ ई० से टाइप मे छपना आरंभ हुआ।

"श्री भारतेदु हरिश्चंद्रजी के स्वर्गवासी होने पर मित्रविलास ने पूरा पूरा आंदोलन करके उनके नाम का संवत् चलाने का हिंदी पत्रों मे अनुरोध किया और इस समय तक मित्रविलास तथा अन्य पत्रों में यह संवत् लिखा जाता है"।

इसी सन् १८७७ ई० मे "हिंदी प्रदीप" और "आर्यदर्पण" निकले जिनका वृत्तांत मासिक पत्रों मे है।

सन् १८७८ ई० मे कलकत्ता से "उचित वक्ता" और "सार-सुधानिधि" का प्रकाश हुआ।

"उचित वक्ता"-संपादक पं० दुर्गाप्रसाद ने इस पत्र की उन्नति पूरी पूरी की। इसमे अच्छे अच्छे विद्वान् लेख लिखा करते थे। स्वय भारतेंदुजी भी कभी कभी लिखते थे। जब तक यह पत्र रहा, उसने अपने देश और मातृभाषा की सेवा मे त्रुटि नहीं की। परतु कई कारणों से ऐसा सुंदर पत्र बरसों बंद रहा। धन्य है उस परमात्मा को कि जिसकी दया से यह पत्र पुनः सन् १८९४ ई० से अपने पूर्व रूप मे प्रकाशित होने लगा है। आशा है कि सुयोग्य सपादक इस पुराने पत्र के प्रौढ़त्व पर सदैव ध्यान रखेंगे और इसके प्रेमी जन

इसकी सहायता से मुँह न मोडेगे। पं० दुर्गाप्रसाद का हिंदी साहित्य पर बडा उपकार है।

"सारसुधानिधि" जैसे गौरव और गंभीरता से निकलता था आज तक दूसरा पत्र देखने मे न आया। पंडित सदानंद मिश्र सपादक की प्रौढ़ लेखनी का जिन्हे आनंद मिला है वे सदा उसके लिये तरसा करते हैं। जैसा ही तो कागज और छपाई उत्तम वैसी ही भाषा तथा लेखप्रणाली उज्ज्वल और वैसे ही राजनैतिक सामाजिक आदि उद्देश्य महन्। इस पत्र के गुणों पर रीझकर श्रीमदार्यकुलकमलदिवाकर श्री महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुराधीश ने पारितोषिक देकर इस पत्र का सम्मान बढ़ाया था परंतु सारसुधानिधि ऐसे परमोत्तम पत्र के बंद हो जाने से हिंदी समाज में अवश्य एक कलक का धब्बा लगा। यह पत्र कभी भी बद न होता यदि इसके ग्राहक लोग नियत मूल्य दिए जाते परतु हिंदी के दुर्भाग्यवश अब हम लोगों को उसका दर्शन दुर्लभ हो गया। आशा है कि पंडितजी इस परमोत्तम पत्र के पुन: प्रकाश करने का उद्योग अवश्य करेगे।

देशी रजवाडो मे सबसे पहले इधर हिंदी भाषा के पूर्ण प्रेमी महाराणा श्रीसज्जनसिह बहादुर ने ध्यान दिया। सन् १८७९ ई० में उदयपुर से बृहदाकार "सज्जनकीर्तिसुधाकर" नामक साप्ताहिक पत्र राज्य के प्रबध से निकला जो कि आज तक वर्तमान है। हाय! सन् १८८४ ई० मे उक्त श्री महाराणा साहब के अकाल काल-ग्रास ने हिंदी भाषा को वह धक्का लगाया जो कभी भूलने का नहीं।

'हिंदोस्थान" पत्र हिदी साहित्य के इतिहास मे सर्वोच्च स्थान पाने की योग्यता रखता है। इसमे राजनैतिक विषय बहुत सुदरता से लिखे जाते हैं। यद्यपि भाषा मे बहुत से संपादकों के उलट फेर से गड़बड रहता है तथापि उद्देश्य और उद्योग सराहनीय है। इसके

स्वामी सच्चे देशहितैषी आनरेबुल राजा रामपालसिंह को जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। सहस्रों रुपए की प्रतिवर्ष हानि सहकर भी आप इस पत्र के द्वारा इस देश तथा हिंदी भाषा का उपकार साधन करते हैं।

यह पत्र सन् १८८३ के अगस्त मास से सन् १८८५ के जुलाई मास तक इँगलैंड मे प्रकाशित हुआ क्योंकि इसके माननीय संपादक की उस काल मे वहाँ ही अवस्थिति थी। सन् १८८३ के अगस्त मास से उसी वर्ष के नवंबर मास तक अँगरेजी और हिंदी दो भाषाओ मे यह प्रकाशित होता था और नवंबर के पश्चात् सन् १८८४ के अकटूबर मास तक अँगरेजी, हिंदी और उर्दू मे प्रकाशित हुआ। उस समय यह मासिक पत्र था। इसके हिंदी और उर्दू स्तंभो को राजा साहब स्वयं लिखा करते थे और अँगरेजी के स्तंभों को मिस्टर जार्ज टयंपल लिखा करते थे जो इस समय भी अँगरेजी हिंदोस्थान के संपादक हैं। सन् १८८४ के नवंबर मास से यह पत्र साप्ताहिक की आकृति मे केवल अँगरेजी भाषा मे निकलना आरंभ हुआ था, और सन् १८८५ के जुलाई मास तक इँगलैंड ही में प्रकाशित होता रहा।

इसके पश्चात् जब उक्त राजा साहब इँगलैंड से भारतवर्ष को लौट आए तब उन्होने इस पत्र को हिंदी भाषा मे दैनिक की आकृति मे कालाकाँकर से निकालना प्रारंभ किया अर्थात् यह पत्र सन् १८८५ के १ नवबर से आज तक इस देश मे हिंदी भाषा में प्रति दिन प्रकाशित होता चला आता है। परंतु सन् १८६१ के जनवरी मास से इस पत्र की एक प्रति अँगरेजी भाषा मे प्रति रविवार को प्रकाशित होती है। हिंदी के दैनिक हिंदोस्थान का उक्त राजा साहब स्वयं संपादन करते हैं और अँगरेजी हिंदोस्थान को मिस्टर जार्ज टयंपल लिखते हैं। हिंदी हिंदोस्थान के संपादन करने मे भिन्न भिन्न समयों

पर निम्नलिखित महाशय सहकारी संपादक होते चले आए हैं (१) बाबू अमृतलाल (२) पंडित मदनमोहन मालवीय बी० ए० (३) बाबू लालबहादुर बी० ए० (४) बाबू शशिभूषण बी० ए० (५) लाला बालमुकुद और (६) पं० शीतलप्रसाद उपाध्याय।

प्रयाग से "प्रयाग समाचार" सन् १८८३ मे और मिर्जापुर से "खिचड़ी समाचार" सन् १८८६ मे निकला। दोनों पत्रो की लेखप्रणाली सामयिक पत्रो मे जैसी होनी चाहिए प्राय नहीं होती। इसका कारण शायद संपादकों की असावधानी हो।

सन् १८८५ ई० मे कानपुर से पहले पहल दैनिक समाचार पत्र निकला। इसके सपादक परमोत्साही बाबू सीतारामजी थे और नाम "भारतोदय" था। परतु दुर्भाग्यवश यह पत्र एक वर्ष भी न चलने पाया और अपना नाम इतिहास मे छोड़कर चल दिया।

काशी से यद्यपि "आर्यमित्र", "मित्र", "सरस्वती विलास", "गोसेवक" तथा "तिमिरनाशक" आदि कई एक साप्ताहिक पत्र निकले परंतु वे इतने थोड़े दिन रहे और उन्होने हिंदी की इतनी थोडी सेवा की कि उनके वर्णन की कोई आवश्यकता नही है। "कवि-वचनसुधा" के पीछे काशी से "भारतजीवन" निकला जो अब तक प्रकाशित होता है और हिदी भाषा की कुछ न कुछ सेवा किए ही जाता है। यह पत्र ३ मार्च सन् १८८४ ई० को निकला। इसके संपादक बाबू रामकृष्ण वर्मा द्वारा हिंदी की बहुत सी उत्तमोत्तम पुस्तकें छपी और छपती हैं। इन्होंने हिंदी साहित्य का बहुत उपकार किया और कर रहे हैं।

संवत् १९३२ से "आर्य समाज" की सृष्टि स्वामी दयानंद सरस्वती ने भारतवर्ष मे की। इस समाज से यद्यपि धर्म्म से विशेष संबंध रहा और उसके द्वारा सारे देश मे धर्म्मविषयक आंदोलन

मच गया तथापि हिंदी भाषा का उपकार इस समाज से भी अवश्य हुआ है। इसकी ओर से दो साप्ताहिक पत्र निकलते हैं। एक अजमेर से "राजस्थान" सन् १८८६ ई० मे निकला, दूसरा कलकत्ता से "आर्य्यावर्त" सन् १८८७ मे निकला।

रीवाँ राज्य से श्री महाराजकुमार श्रीलाल बलदेवसिंह जी कमैंडर-इन-चीफ रीवाँ राज्य ने सन् १८८७ मे "भारत भ्राता" निकाला जो कि अब तक वर्तमान है और अपनी योग्यता से हिंदी के रसिको का आनंद बढ़ाता है। इस समय देशी रजवाडों से जितने पत्र निकलते हैं उनमे यह प्रशसनीय है।

देशी रजवाड़ों मे "सर्वहित" नामक दूसरा पत्र बूँदी से पं० कन्हैयालाल और पंडित मन्नालाल के उद्योग से सन् १८८६ मे निकला जो अब तक वर्तमान है। जिस समय यह पत्र प्रकाशित हुआ था उसकी योग्यता को देख बहुत कुछ आशा हुई थी परतु न जाने क्यो अब दिनों दिन उसकी लेखप्रणाली से उसके संपादक हतोत्साह से मालूम पड़ते हैं। "मारवाड़ गजेट" आदि एकाध पत्र और भी राजपुताना से निकले परंतु उनकी भाषा ऐसी विलक्षण है कि हम उन्हें हिंदी के पत्रो मे नही गिन सकते।

सन् १८६० मे 'बँगला बंगवासी" के स्वामी बाबू श्री योगेशचंद्र बसु ने बड़े धूम धाम से "हिंदी बंगवासी" निकाला। उसका बृहदाकार सुंदर कागज, प्रति संख्या में एक एक चित्र और मनोहर कहानी, उपहार मे पुस्तकवितरण आदि गुण हिंदी भाषा के लिये नई बात थी। यह सनातन धर्म्म का पक्ष बडी ही सुंदरता और दृढता से करता है। यद्यपि इसमे बँगलापन का दोष तो किंचित् मात्र है तथापि इसके गुण सब दोषों को ढँक देते हैं। यह पत्र अपने ढंग का एक ही है। सच तो यह है कि इस हिंदी बग-

वासी को निकालने के लिये हम लोग उक्त बाबू साहब के चिरकृतज्ञ हैं। यह उन्हीं का काम है कि उन्होने हमारे समाज से इस कलंक को मिटाके प्रमाणित कर दिया कि हिंदी समाचार पत्रो के ग्राहक ही नही होते। इस समय हिंदी बगवासी के कई सहस्र ग्राहक हैं। जिन लोगो को यह भ्रम है कि हिंदी समाचार पत्र के ग्राहक नही होते वे इनका उदाहरण ग्रहण करे और अपने संदेह को छोड़े।

बबई प्रांत ने अब तक हिंदी भाषा की ओर ध्यान नही दिया था। परतु हर्ष का विषय है कि उस प्रात के उत्साही सज्जनों की दृष्टि इस ओर पडो है। एक पत्र सन् १८९३ ई० मे "भाषा भूषण" बंबई से निकला था परतु वह अपनी झलक दिखला अतर्धान हो गया। दूसरा पत्र "बंबई बेपार सिधु", जो सन् १८९३ मे निकला कुछ दिन तक वर्तमान रहा, न जाने क्यो यह अकालकालग्रसित हुआ।

हिंदी भाषा की दुर्दशा देखकर हिंदी भाषा के प्रसिद्ध कवि चौधरी बदरीनारायणजी ने मिर्जापुर से "नागरी नीरद" नामक साप्ताहिक पत्र सन् १८९३ ई० से निकाला है। यद्यपि इसका आकार छोटा है परंतु इसकी अमृत-वर्षा रसिको को तृप्त करती है। यदि ग्राहकों की कृपा-दृष्टि रही तो आशा है कि यह पत्र भाषा के गौरव का कारण होगा।

यद्यपि मिर्जापुर से "आर्य पत्रिका" आदि कई एक हिंदी के पत्र निकले और बंद हुए परतु उनका पूरा इतिहास न मिलने से लिखा न जा सका।

मासिक पत्र

पहले पहल हिंदी मे मासिक पत्र स्वरूप से "कविवचनसुधा" सन् १८६८ मे निकला जिसका इतिहास ऊपर लिख चुके हैं। जब

"कविवचनसुधा" साप्ताहिक हुआ तो "हरिश्चंद्र मैगजीन" का जन्म भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी के द्वारा सन् १८७३ ई० मे डाक्तर लाजरस के मेडिकल हाल प्रेस से हुआ। जैसे सुंदर लेख और जैसा सुंदर कागज और छपाई इस मासिक पत्र की पहला पत्र होने पर भी थी वह अब तक किसी पत्र मे नही पाई जाती। लोग मैगजीन के देखने को तरसते हैं। स्वय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी कहते थे कि जैसे उमंग के जोरदार लेख मेरे और मेरे मित्रों के मैगजीन मे लिखे गए और छपे वैसे फिर न लिख सके। उसी मैगजीन ने सन् १८७४ मे "हरिश्चद्रचंद्रिका" नाम धारण किया। इसके गुणों से मोहित होकर गवर्नमेंट ने भी १०० प्रतियाँ मोल लेनी स्वीकार कीं परंतु थोड़े ही दिन पीछे कैंपसन साहब डाइरेक्टर ने लिखा कि इस पत्र मे "कविहृदयसुधाकर" नामक जो ग्रंथ छपता है वह अश्लील है अतएव आगे से गवर्नमेंट उसकी सौ कापियाँ न खरीदेगी।

"कविहृदयसुधाकर" मे एक यति और वेश्या का संवाद है जिसका मूल उपदेशमय और लाभकारी है। परंतु साहब डाइरेक्टर के रँगे हरे चश्मे से उसका रूप मलिन दिखाई दिया पर सर्वसाधारण ने उसका सम्मान किया और दिन दिन इसका आदर और गौरव तथा उत्साह बढता चला गया। यद्यपि असमय प्रकाशित होने का दोष तो इसमे था परंतु इसके गुणों ने इस दोष को भी गुण बना दिया था। ज्यों ज्यों प्रकाश होने मे देर होती त्यों त्यों पाठकों की उत्कंठा बढ़ती जाती थी।

उदयपुर राज्य कौंसिल के सेक्रेटरी, भारतेंदुजी के पुराने मित्र, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पड्या ने "मोहनचद्रिका" नामक मासिक पत्र निकालना चाहा। भारतेंदुजी से उन्होने कहा कि "हरिश्चंद्रचंद्रिका" को यदि आप कृपा करके दे तो "मोहनचंद्रिका"

उसी मे निकले। भारतेंदुजी ने हर्षपूर्वक इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और सन् १८८० ई० (संवत् १९३७ मिती चैत्र शुक्ल १) को "मोहनचद्रिका" सम्मिलित "हरिश्चद्रचंद्रिका" का पुनः उदय काशी से हुआ। पं० नंदलाल विष्णुलाल पंड्या उसके संपादक थे और वे भारतेदुजी को घेरकर प्राय लेख और कविता लिया करते थे परंतु एक ही वर्ष पीछे उसके उदयपुर अतर्गत नाथद्वारा (संवत् १९३८ मे) जाने से इसका रूप ही बदल गया। इसमे संस्कृत का मासिक पत्र "विद्यार्थी" भी मिल गया और इसका संपादन-भार पडितवर दामोदर शास्त्रीजी पर आया जब कि पडितजी का उत्साह ढीला पड़ा और चंद्रिका अस्त हुई। उस पर भारतेदुजी का विशेष स्नेह था इसलिये सन् १८८४ ई० मे उन्होंने फिर से काशी से "नवोदिता हरिश्चद्रचद्रिका" नाम से उसे निकाला परतु हम लोगों के दुर्भाग्यवश दो ही महीने पीछे ५ जनवरी सन् १८८५ को भारतेंदु भारत-आकाश से अस्त हो गए और उनके कनिष्ठ भाई बाबू गोकुलचद्रजी ने पीछे सन् १८८५ मे तीसरा नंबर प्रकाशित किया। पडित मोहनलालजी पंड्या ने न जाने क्या सोचकर एक नोटिस दी कि "बाबू हरिश्चद्रजी ने हरिश्चद्रचंद्रिका हमे दी थी अतएव उस पर कानून से हमारा अधिकार है आप लोग उसके छापने का उद्योग न करें"। बस यह चंद्रिका भी अपने चंद्रमा के साथ ही विलीन हो गई।

बाला पाठशालाओं मे प्रचार की इच्छा से गवर्नमेंट के आज्ञानुसार सन् १८७४ ई० मे भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी ने "बाला-बोधिनी" पत्रिका प्रकाशित की। गवर्नमेंट भी इसकी १०० प्रतियाँ उक्त पाठशालाओ के लिये लेती रही। इसमे बहुत से उपयोगी और सुंदर लेख छपे, स्वर्गवासी बाबू ऐश्वर्यनारायणसिंह, पंडित शीतलप्रसाद त्रिपाठी सरीखे काशी के भूषण उसमे लेख देते थे

परंतु चार वर्ष चलने के पीछे जब गवर्नमेंट की कोपदृष्टि "कविवचन-सुधा" और "हरिश्चंद्रचद्रिका" पर पड़ी तब "बालाबोधिनी" का लेना भी बंद किया गया। यह पत्रिका केवल गवर्नमेंट के सहारे से चलती थी, बाहरी ग्राहक बहुत ही कम थे इससे उसी समय से बंद हो गई।

"चंद्रिका" और "बालाबोधिनी" का साथ देने और हिंदी भाषा की पुष्टता साधन के अभिप्राय से सन् १८७७ ई० की १ सितंबर को प्रयाग से पंडित बालकृष्ण भट्टजी ने हिंदी भाषा का अद्वितीय पत्र "हिंदी प्रदीप" निकाला। यह पत्र जिस स्वाधीन भाव और गौरव के साथ निकला आज तक वैसे ही अचल स्थिर है। यद्यपि ग्राहकों की कमी तथा नादिहंदी और किसी किसी की कठोर दृष्टि से इस पर कई हवा आई परंतु यह पंडित बालकृष्ण सरीखे दृढ पुरुष के हाथ मे रहकर कब हिल सकता था? महाराणा सज्जनसिंहजी ने इस पत्र के गुणो पर रीझकर इसकी अर्थ से सहायता की थी। भारतेंदुजी का प्रेम इस पत्र पर बहुत विशेष था।

इसी सन् १८७७ ई० मे शाहजहाँपुर आर्यसमाज से मुंशी बख-तावरसिंहजी ने "आर्यदर्पण" निकाला। यह पत्र आर्यसमाज के पक्ष को दृढ़ करता रहा। यह पत्र अब तक प्रकाशित होता है।

सन् १८७८ ई० मे फर्रुखाबाद आर्यसमाज की ओर से बाबू कालीचरण ने "भारत-सुदशा-प्रवर्तक" निकाला।

हिंदी भाषा मे उत्तम मासिक पत्रो की कमी देखकर और "हरि-श्चंद्रचंद्रिका" पर मोहन चंद्रिका की मोहनी छा जाने से दुःखी होकर सन् १८८१ श्रावण संवत् १९३८ से मिर्जापुर के सुप्रसिद्ध पंडित बदरीनारायण चौधरीजी ने "आनंदकादंबिनी" प्रकाशित की। खेद

का विषय है कि यह पत्र थोड़े ही दिनो के पीछे बंद हो गया परंतु उसका स्मरण और आदर आज तक रसिक समाज मे होता है।

इसी सन् १८८१ ई० मे बॉकीपुर से "खड्गविलास" प्रेस के स्वामी परमोत्साही हिंदी के सच्चे प्रेमी बाबू रामदीन सिंह ने "क्षत्रिय पत्रिका" निकाली। इसमे अच्छे अच्छे लेख छपते थे और भारतेंदुजी प्रायः लेख दिया करते थे।

संवत् १९३९ सन् १८८२ ई० मे काशी से साहित्याचार्य पंडितवर अंबिकादत्त व्यास जी ने "वैष्णव पत्रिका" का प्रचार किया यही पत्र कुछ दिनों पीछे २५ फरवरी सन् १८८४ ई० से "पीयूष-प्रवाह" नाम धारण कर प्रकाशित होने लगा जो, हर्ष का विषय है कि, अब तक वर्तमान है।

लाहोर से सन् १८८२ ई० मे पंजाब युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार बाबू नवीनचंद्र राय ने "ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका" निकाली थी। यह ब्राह्म समाज की पुष्टि करती थी परतु थोड़े ही दिन पीछे बंद हो गई।

संवत् १९४० (सन् १८८३ ई०) मे कलकत्ते की धर्मसभा की ओर से पंडित देवीसहायजो ने "धर्मदिवाकर" पत्र निकाला। यह सनातन हिंदू धर्म का मडन और आर्य्य समाज का खंडन करता रहा। धर्म संबंधी लेख इस पत्र मे जैसी गंभीरता और उत्तमता से लिखे जाते थे देखने मे कम आए। ऐसे एक पत्र की बडी ही आवश्यकता है।

सन् १८८३ ई० १ मार्च को कानपुर से हिंदी के प्रसिद्ध लेखक पंडित प्रतापनारायण मिश्रजी ने "ब्राह्मण" पत्र को जन्म दिया। उस पत्र का आदर हिंदी रसिक-मडली मे बहुत ही हुआ और उसके लेखो की मनोहरता ने सबको मोहित कर लिया यहाँ तक कि स्वयं भारतेंदुजी उसके लेखों से मोहित हो जाते थे, ग्राहकों की अनुदा-

रता से यह पत्र बंद होने ही को था कि इसके गुणो से मोहित होकर बॉकीपुर-निवासी बाबू रामदीन सिह ने इसे अपने खड्ग-विलास यत्रालय मे उठा लिया जहाँ से वह अब तक प्रकाशित होता है। खेद की बात है कि इस ग्रंथ के यंत्रालय मे रहते ही हिंदी के अमूल्य रत्न पंडित प्रतापनारायणजी अकालकालग्रसित हुए परतु बाबू रामदीन सिहजी ने इस पत्र के चलाने की प्रतिज्ञा की है। इसके लिये उन्हे अनेक धन्यवाद हैं।

इसी सन् १८८३ ई० मे "भारतेंदु" नामक पत्र को लाहोर के परम उत्साही पंडित ज्वालादत्तप्रसाद जी ने प्रकाशित किया था, केवल दो अंक मात्र छपे थे कि पत्र बद हो गया। मित्रविलास के एडिटर पंडित गोपीनाथजी उस समय वृंदावन गए थे। श्री राधा-चरण गोस्वामीजी ने उनसे एक हिंदी मासिक पत्र निकालने का परामर्श किया तो उन्होंने नवीन पत्र प्रकाश करने के बदले उसी पत्र के चलाने का भार उक्त गोस्वामीजी को दिया। यह पत्र लाहोर से वृंदावन को स्थानांतरित हुआ और नवीन क्रम, नवीन आकार से मि० चैत्र शु० १५ संवत् १९४० को इसका प्रथम अंक निकला। २५० कापियाँ नियमित छपती थीं और २०० बटती थी। ग्राहक १०० थे मूल्य १।) डाक व्यय सहित सब से प्रथम ही लिया जाता था। यही कारण था कि इसके ग्राहक कम हुए क्योंकि हिंदी समाज मे पैसा देकर पत्र लेनेवाले बहुत कम होते हैं। अंक ४ खंड १ में एक ब्रह्मचारीजी (वृंदावन के एक ऐश्वर्यशाली) को शिक्षा लिखी थी, सो बहुत खफा हुए। परतु सपादक ने धैर्य्य नहीं छोड़ा। इस पत्र में एक लेख बाबू हरिश्चंद्रजी ने दिया था और बाबू काशीनाथ, लाला श्रीनिवासदासजी, नारायण हेमचंद्र, श्रीमती हरि देवी आदि प्रसिद्ध लेखकों के कई लेख छपे और पंडित

श्रीधर पाठकजी मुख्य लेखक थे। शेष अधिकाश संपादक ने लिखा। यह पत्र मि० श्रावण शु० १५ सवत् १९४३ तक नियमित छपता रहा और इसके अधिकांश लेख हिंदी पत्रों मे उद्धृत तथा कई अँगरेजी पत्रो मे अनुवादित भी होते रहे। सबसे बड़ा कार्य्य इस पत्र ने यह किया कि वृंदावन रेलवे के लिये गवर्नमेट को उत्तेजित किया और वृंदावन को मथुरा से रेल बन गई। ४ खंड ५ अंक छपकर यह पत्र बंद हो गया और ग्राहकों का मूल्य जो बाकी था उसके बदले "नवभक्तमाल" और "विदेश-यात्रा-विचार" दो ग्रथ दिए गए। सं० १९४७ मे यह पत्र फिर भी निकला और अब १ जनवरी सन् १८९० से ५ अक छपकर बंद है। आशा है कि हिदी के रसिक जन उक्त पत्र के पुन प्रकाशित करने के लिये गोस्वामी जी को उत्साहित करेगे।

१५ नवंबर सन् १८८३ को जबलपुर से शुभचितक निकला पर वह भी शीघ्र ही बंद हो गया।

लखनऊ से जो हिदी के मासिक पत्र प्रकाशित हुए थे उनका संक्षिप्त इतिहास नीचे प्रकाशित किया जाता है।

"दिनकरप्रकाश" यह पत्र मासिक १६ पृष्ठ का टाइप में छपकर प्रति मास स्थान हाटीराम की चढ़ाई लखनऊ से बाबू रामदास वर्म्मा द्वारा संपादित होकर प्रकाशित होता था—अनेक विषय थे। मूल्य १॥=) वार्षिक सन् १८८३ से आरंभ और सन् १८८८ मे समाप्त। कारण वही बेपरवाही।

"कान्यकुब्ज प्रकाश" मासिक—१६ पृष्ठ लिथो छापा गणेशगंज लखनऊ से पं० बलभद्र मिश्र द्वारा प्रकाशित होता था। विषय सामाजिक, सन् १८८४ से १८८६ तक चला, मूल्य ॥।)।

"रसिक पंच" मासिक १६ पृष्ठ का टाइप छापा स्थान बड़ी

कालका स्ट्रीट से पंडित शिवनाथ मिश्र द्वारा सपादित, विषय हास्य, मूल्य ।=) सन् १८८७ से १८८६ तक चला।

"काव्यामृतवर्षिणी" मासिक पत्र लिथो १८ पृष्ठ पडित शिवदत्त द्वारा संपादित, स्थान गणेशगज सन् १८८५ से १८८८ तक चला। मूल्य १।)।

"भारतभानु" मासिक टाइप छापा १६ पृष्ठ—बाबू कन्हैयालाल जैन और बाबू भगवानदास जैन द्वारा संपादित, स्थान हजरतगंज, मूल्य १।) विषय विशेषत· काव्य। ग्राहकों की गड़बड से अस्त। १८६१ से १८६३ तक निकला।

"बुद्धिप्रकाश" मासिक लिथो छापा १२ पृष्ठ स्थान अहमदगंज से पडित चंद्रशेखरजी गोड़े द्वारा संपादित होता था—मूल्य १।।) सन् १८८८ से १।। वर्ष तक चला।

स्त्रीशिक्षा विषयक दूसरी पत्रिका "सुगृहिणी" थी। इसे लाहौर के बाबू नवीनचंद्र राय की पुत्री श्री हेमंतकुमारी देवी सपादित करती थीं। इसका जन्म सन् १८८८ ई० मे हुआ। यह बात हिंदी के लिये नई थी कि एक स्त्री और वह भी बंगालिन एक हिंदी पत्रिका की संपादिका हो। लेख उसके ब्रह्म समाज के ढंग पर विशेष होते थे।

तीसरी स्त्रीशिक्षा विषयक पत्रिका प्रयाग से मुंशी रौशनलाल बैरिस्टर की स्त्री श्रीमती हरिदेवी ने सन् १८८६ से "भारतभगिनी" नाम की निकाली है जो इस समय तक वर्तमान है।

सन् १८६० ई० से "कृषीकारक" पत्र अमरावती से खेती-सुधारन मंडली के सेक्रेटरी गणेश नारायण घोटबडेकर और सखाराम चिमणाजी गोले द्वारा महाराष्ट्री भाषा मे संपादित होकर काशी भारतजीवन संपादक बाबू रामकृष्ण वर्म्मा द्वारा हिंदी मे अनुवादित

होकर प्रकाशित होता था। पहले इसका अनुवाद शुद्ध हिंदी भाषा में किया जाता था परतु वाह रे हिंदी के दुर्दिन कि अफसरों की कृपा से इसकी भाषा उर्दू मिली खिचड़ी हो गई और अंत मे उसका छपना भी बंद हो गया। अवश्य इस पत्र से किसानी विद्या जाननेवालों को बहुत उपकार पहुँचता था।

सन् १८६३ ई० मे हिंदी भाषा के उत्तमोत्तम ग्रथों को प्रकाशित करने की इच्छा से बाबू देवकीनंदन खत्री और बाबू जगन्नाथदास बी० ए० (रत्नाकर) ने "साहित्यसुधानिधि" प्रकाशित किया। इसमे प्रति मास ५ फार्म ५ ग्रथो के छपते हैं जो कि ग्रंथ पूरा होने पर अलग निकाल लेने से स्वतत्र ग्रथ हो जाते हैं। इस पत्र से हिंदी भाषा की सहायता की बहुत कुछ आशा है, यदि ईश्वर की कृपा से हिंदी के दुर्भाग्य की छाया न पडने पावे।

स्फुट

भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र के अकालकाल ग्रसित होने पर माघ संवत् १९४१ (जनवरी सन् १८८५ ई०) से "मित्रविलास" के प्रस्तावानुसार हिंदी पत्रो ने "हरिश्चंद्र संवत्" चलाया, बहुतेरे पत्र इस संवत् को अब तक अपने पत्र पर लिखते हैं।

सन् १८८४ ई० में "प्रयाग हिंदू समाज" के उद्योग से "हिंदी-उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा" स्थापित हुई थी और दो वर्ष तक इसका अधिवेशन सफलता के साथ हुआ। इसी के अंतर्गत एक "संपादक समाज" भी बना। दो वर्ष तक इसका भी अधिवेशन हुआ परंतु हिंदी के दुर्भाग्यवश ये समाज ऐसे लुप्त हुए कि फिर कभी इनका स्वप्न भी न आया। "संपादक समाज" का स्थापित होना अत्या-

वश्यक है। आशा करते हैं सुयोग्य हिंदी पत्र-संपादकगण इस ओर अवश्य ध्यान देंगे।

हिंदी के सामयिक पत्रों का पता जहाँ तक लगा है उनकी सूची स्थानांतर मे प्रकाशित की गई है। यदि और भी महाशय लोग कृपा-पूर्वक जिन पत्रो का समाचार उन्हे ज्ञात हो लिख भेजेगे तो वह दूसरे संस्करण मे धन्यवाद के साथ प्रकाशित किया जायगा।

सामयिक पत्रों के मुख्य मुख्य नियम

१—सामयिक पत्र वे हैं जो किसी नियत समय पर प्रकाशित हों।

२—सामयिक पत्रों के प्रकाशित होने के ये समय हैं—

(१) दैनिक—जो नित्य प्रकाशित होता हो।

(२) सप्ताह में दो बार—जो सप्ताह के किसी नियमित दो वारो को प्रकाशित होता हो।

(३) साप्ताहिक—जो आठवे दिन प्रकाशित होता हो।

(४) पाक्षिक—जो पंद्रहे दिन प्रकाशित होता हो।

(५) मासिक—जो महीने की किसी तिथि को प्रकाशित होता हो।

(६) त्रैमासिक, षट् मासिक वा वार्षिक—जो उक्त समय पर प्रकाशित होता हो—जैसे किसी सभा आदि का विवरण—अथवा किसी दैनिक, साप्ताहिक के उपयोगी मनोहर लेखों का सग्रह (अँगरेजी मे ' इंग्लिशमैन'' आदि का निकलता है)।

३—सामयिक पत्रों के इतने भेद हैं—

(१) राजनैतिक (Political)—जिसमे राजकीय विषयो ही पर विचार किया जाता हो जैसे—हिंदोस्थान।

(२) धर्म सबंधी (Religious)—जिसमे धर्म सबधी विषयों पर विचार हो—जैसे मित्रविलास, आर्यावर्त, धर्मदिवाकर।

(३) सामाजिक (Social)—जिसमे समाज-संशोधन पर विशेष ध्यान रहे—जैसे अग्रवालोपकारक आदि ।

(४) साहित्य संबंधी (Literary)—जिसमे गद्य-पद्य-मय लेख तथा ग्रथ छपें—जैसे साहित्यसुधानिधि, ब्राह्मण आदि ।

(५) पच—जिसमे हास्यमय लेख छपें—जैसे रसिक पंच ।

(६) वैज्ञानिक (Scientific)—जिसमे किसी विज्ञान शास्त्र अर्थात् कृषि, रसायन आदि पर विचार हो—उदाहरण भाषा मे नही है ।

(७) समाचार पत्र—जिसमे समाचारों की ओर विशेष लक्ष्य रहे—जैसे हिंदी बगवासी ।

४—इनमे से राजनैतिक और समाचार पत्र प्राय: दैनिक, साप्ताहिक वा पाक्षिक होते हैं, साहित्य संबधी, वैज्ञानिक और सामाजिक प्राय मासिक होते हैं; धर्म संबधी और पच सभी प्रकार के होते हैं ।

५—राजनैतिक, पत्रो को निम्नलिखित विषयों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए ।

(१) विषय सर्वोपकारी और उदार भाव के हों ।

(२) भाषा नम्र विनीत और गंभीर हो ।

(३) राजा और प्रजा देनो के लाभ हानि पर समान भाव से विचार किया गया हो—पक्षपातशून्य हो ।

(४) जो बात लिखी जाय उसका पूरा प्रमाण रखता हो ।

(५) व्यर्थ का उत्तेजक न हो—राजभक्ति-पूर्ण हो, सामयिक हो ।

(६) यदि देखता हो कि राजा चूकता है और किसी हाकिम को इस पर आग्रह है उसके विषय मे व्यर्थ का भय न करके अत्यंत नम्रता के साथ दृढ़तर प्रमाणो से सिद्ध करके राजा की सेवा मे निवेदन करे, परतु औद्धत्य न आने पावे ।

(७) राजा के मत तथा नियमों को ठीक ठीक प्रजा मे प्रचार करना और प्रजा चूकती हो तो उसे सावधान करना।

६—धर्म विषयक और सामाजिक पत्रों का निम्नलिखित विषयों पर ध्यान रहना चाहिए।

(१) अपने अपने पक्ष को दृढतर प्रमाणो के साथ पुष्ट करे।

(२) भाषा प्राय. सर्व साधारण के समझने योग्य और बड़ी गभीरता पूर्ण हो।

(३) अपने अपने मत के ग्रथों तथा सिद्धांतो को सर्व साधारण में फैलाना तथा अपने सप्रदाय की महत्ता सिद्ध करना।

(४) अपने मत का पक्ष लेकर दूसरे मतवालों पर ऐसा कटाक्ष न करना जिसमे उनके हृदय पर चोट पहुँचे, अथवा झूठे अपवाद किसी मत पर न लगावे।

(५) दूसरे मतवालों के खंडन के समय सभ्यता से बाहर न जाना चाहिए और भटियारों सी लड़ाई न लडनी चाहिएँ।

(६) किसी व्यक्ति विशेष पर ऐसे कटाक्ष न करने चाहिएँ जिसमे लाइबेल केस हो सके।

७—साहित्य विषयक पत्रों मे निम्नलिखित विषय रहने चाहिये।

(१) गद्य, पद्य, लेख, नाटक, उपन्यास, इतिहास, जीवन-चरित्र, प्रहसन, पंच, आदि सब प्रकार के साहित्य संबंधी लेख तथा ग्रथ।

(२) भाषा जहाँ तक उत्तमोत्तम हो सके।

(३) विषय देशोपकारक हों।

(४) अश्लील काव्य न छपें।

८—वैज्ञानिक पत्रो मे विज्ञान संबंधी ग्रंथ तथा लेख ऐसी रीति से लिखे जाने चाहिएँ जिसमे सब लोग लाभ उठा सकें।

६—समाचार पत्रों मे ये बातें होनी चाहिएँ—

(१) भाषा सरल हो।

(२) इतने स्तंभ होने चाहिएँ,—

(क) संपादकीय सम्मति।

(ख) संपादकीय लेख (Leader)।

(ग) प्राप्त अर्थात् दूसरे विद्वानों के प्रेरित सर्वोपकारक लेख।

(घ) स्थानिक समाचार।

(च) समाचारावली (१) देशीय (२) विदेशीय।

(छ) तड़ित् समाचार।

(ज) प्रेरित पत्र।

(झ) विज्ञापन।

(३) समाचार पत्रों मे प्राय कविता आदि नहीं छपती।

(४) यद्यपि प्रेरित पत्र के उत्तरदाता संपादक नहीं होते तथापि प्रेरित पत्रों पर बिना विचार किए छपने न देना चाहिए। एक तो संपादक की योग्यता उससे झलकती है, दूसरे उसमे यदि कोई विषय कानून के विरुद्ध होगा तो अवश्य संपादक, प्रकाशक और यंत्राध्यक्ष पहले पूछे जायँगे।

(५) विज्ञापन पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि अश्लील विज्ञापन छापने के कारण कई संपादक दंडित हो चुके हैं।

(६) किसी सज्जन पर झूठा कोई दोषारोप न लगावे नहीं तो राजदंड का भय है।

(७) संपादकीय लेख मे वर्तमान समय के उपयोगी किसी राजनैतिक आदि विषय पर संपादक को अपना तथा अपनी बुद्धि के अनुसार अपने देश का मत प्रगट करना चाहिए।

यह लेख न इतना बड़ा हो कि पढ़ने से जी ऊब जाय, न इतना छोटा कि पूरा पूरा अभिप्राय भी व्यक्त न हो सके।

(८) मूल्य इतना रहना चाहिए कि सर्वसाधारण उसे मोल ले सके। समाचार पत्र जहाँ तक अधिक बिके उतना ही उनका उद्देश्य सिद्ध होगा।

१०—पंच के साधारण नियम ये होने चाहिएँ—

(१) लेख हास्यमय, भाषा आवश्यकतानुसार पचमेल।

(२) किसी देशोपकारक विषय, अथवा किसी व्यक्ति विशेष पर लक्ष्य करके हास्यमय ढंग से उसके दोषो को दिखलाना।

(३) पच की धृष्टता क्षमा है परंतु ऐसे शब्द न हों जो अदालत तक जा सकें।

(४) सभ्यता से बाहर न जाने पावे, अश्लील और घृणास्पद न हो जाय।

(५) कही पंच को मूर्तिमान् मानकर दूसरे किसी से बातचीत अथवा दो मनुष्यो का वार्तालाप और कही यों ही अनर्गल लिखते चले जाते हैं। विचित्राकार चित्र बनाकर भी हास्यमय वाक्य लिखकर अभिप्राय प्रकाश करते हैं।

समाचारपत्रों के वास्ते सर्कारी नियम

("हिंदुस्तान का दंड-संग्रह" से उद्धृत)

दफा २९२—जो कोई मनुष्य निर्लज्जता की पोथी अथवा पुस्तक अथवा कागज अथवा चित्र अथवा विचित्र अथवा मूर्ति अथवा प्रतिमा बेचेगा अथवा बाँटेगा अथवा बेचने को या किराए पर बाहर ले जावेगा या छापेगा अथवा इन कामों का उद्योग करेगा उसको दंड

दोनों मे से किसी प्रकार की कैद का जिसकी म्याद तीन महीने तक को हो सकेगी अथवा जरीमाने अथवा दोनों का किया जायगा।

दफा ४०९—जो कोई मनुष्य किसी बात को जो शब्दों से उच्चारण की जाय अथवा जो पढे जाने के प्रयोजन से हो अथवा चिह्नो से अथवा प्रत्यक्ष चित्र इत्यादि से किसी मनुष्य के बारे में कोई बात लगावेगा अथवा छापकर प्रगट करेगा इस प्रयोजन से अथवा यह जान मानकर अथवा निश्चय मानने का हेतु पाकर कि इस बात के लगाने से उस मनुष्य के यश को हानि पहुँचेगी तो सिवाय नीचे लिखी हुई छूटों के कहा जायगा कि उसने उस मनुष्य को अपयश लगाया।

विवेचना १—किसी मरे हुए मनुष्य को कोई बात लगाने से भी अपयश लगाना हो सकेगा कदाचित् उस अपयश लगाने से उस मनुष्य के यश को जब कि वह जीता होता हानि पहुँचती और प्रयोजन उसके लगाने से यह हो कि उसके वंशवालों अथवा नगीच के नातेदारो को बुरा लगे।

विवेचना २—किसी कंपनी अथवा समाज को अथवा मनुष्यों के समुदाय को जो कंपनी या समाज की भाँति इकट्ठे हों कोई बात लगानी यह भी अपयश लगाना हो सकेगा।

विवेचना ३—दुअर्थे शब्द कहकर अथवा व्याज-स्तुति करके कुछ बात लगानी यह भी अपयश लगाना हो सकेगा।

विवेचना ४—किसी बात के लगाने से किसी मनुष्य के जिस को हानि पहुँचनी न कहलावेगी जब तक कि उस बात को लगाने से स्पष्ट अथवा लौट फेरकर औरों के नगीच उस मनुष्य की सुचाल अथवा बुद्धिमानी नीचो हो जाय अथवा उसकी जाति या ब्यौहार मे बट्टा न लगे अथवा उसकी साखि न बिगड़े अथवा यह बात न समझी

जाय कि उस मनुष्य का शरीर बिगड गया है अथवा ऐसी अवस्था मे हो गया है जो बहुधा कलंकित गिनी जाती है।

छूट १—किसी मनुष्य के बारे मे कोई सच्ची बात लगानी अपयश लगाना न होगा कदाचित् उसका लगाया जाना अथवा प्रगट करना पुरुष के भले के लिये उचित हो और यह देखना कि यह बात सबके भले के लिये थी या न थी उस समय के वर्तमान के अधीन होगी।

छूट २—शुद्ध भाव से विचाराश किसी सर्वसंबधी नौकर की कारवाई के बारे मे अथवा उसके चलन के बारे मे वहाँ तक जहाँ तक कि वह चलन उस कारवाई से सबंध रखती हो प्रगट कर देना अपयश लगाना न होगा।

छूट ३—शुद्ध भाव से कुछ विचारांश किसी मनुष्य के चलन के बारे मे जो किसी सर्व संबंधी मामले से संबंध रखती हो और उस मनुष्य के चलन व स्वभाव के मध्ये वहाँ तक जहाँ तक कि वह चलन व स्वभाव उस चलन से प्रगट होते हों और उससे अधिक प्रगट न कर देना अपयश लगाना न होगा।

छूट ४—किसी अदालत के हाकिम की कारवाई कोई सच्ची और पक्की खबर अथवा उस कारवाई का परिणाम छापकर प्रगट करना अपयश लगाना न होगा।

विवेचना—जब कोई जस्टिस आफ् दी पीस (Justice of the peace) अथवा और कोई अहलकार खुली कचहरी मे तहकीकात करता हो जो अदालत मे किसी मुकदमे का न्याय होने से पहले होनी चाहिए तो वह पिछली छूट के अर्थ में अदालत का हाकिम कहला सकेगा।

छूट ५—शुद्ध भाव से कुछ विचारांश दीवानी अथवा फौजदारी के किसी मुकदमे की व्यवस्था के मध्ये जिसको किसी अदालत के

हाकिम ने निबेडा हो अथवा किसी मनुष्य की काररवाई के मध्ये जो उस मुकदमे मे पक्षपाती अथवा गवाह अथवा मुख्तार हो अथवा उस मनुष्य के चलने के मध्ये वहाँ तक जहाँ तक कि वह चलन उसी कार-रवाई से संबंध रखती हो प्रगट कर देना अपयश लगाना न होगा।

छूट ६—शुद्ध भाव से कुछ विचाराश किसी सर्व संबंधी काम के मध्ये जिसको उसक करनेवाले ने सबके विचार के लिये किया हो अथवा कुछ विचाराश उस करनेवाले के चलन के मध्ये वहाँ तक जहाँ तक कि वह चलन उस काम से संबंध रखती हो प्रगट कर देना अपयश लगाना न होगा।

विवेचना—किसी काम का सबके विचार के लिये प्रगट किया जाना कहलावेगा जब कि वह काम स्पष्ट सबके विचारने निमित्त किया जाय अथवा उस काम के करनेवाले की ओर से कोई ऐसा काम हो जिससे उसका सबको विचार के लिये किया जाना समझा जाय।

छूट ७—जिस मनुष्य को दूसरे पर कानून की रीति से अथवा किसी कौल करार के द्वारा जो उस दूसरे के साथ कानूना-नुसार हुआ हो कुछ अधिकार प्राप्त हो उसकी ओर से उस दूसरे मनुष्य की काररवाई के मध्ये किसी बात मे जिससे उसका नीतिपूर्वक अधिकार सबंध रखता हो शुद्ध भाव से कुदोष लगाया जाना अप-यश लगाना न होगा।

छूट ८—शुद्ध भाव से नालिश करना किसी मनुष्य के ऊपर उन मनुष्यों मे से किसी के सामने जिनको उस नालिश के विषय मे उस मनुष्य पर कानूनानुसार अधिकार हो अपयश लगाना न होगा।

छूट ९—दूसरे के चलन को कुछ बात लगानी अपयश लगाना न होगा कदाचित् लगानेवाले ने यह बात शुद्ध भाव से अपने

अथवा और किसी के स्वार्थ की रक्षा के लिये अथवा सबके भले के लिये लगाई हो।

दफा ५००—जो कोई मनुष्य किसी मनुष्य को अपयश लगावेगा उसको दंड साधारण कैद का जिसकी म्याद दो बरस तक हो सकेगी अथवा जरीमाने का अथवा दोनों का किया जायगा।

दफा ५०१—जो कोई मनुष्य कुछ बात यह जानकर अथवा जानने का अच्छा हेतु पाकर कि यह किसी मनुष्य को अपयश लगानेवाली है छापेगा अथवा खोदकर लिखेगा उसको दड साधारण कैद का जिसकी म्याद दो बरस तक हो सकेगी अथवा जरीमाने का अथवा दोनो का किया जायगा।

दफा ५०२—जो कोई मनुष्य किसी छपी हुई अथवा खुदी हुई वस्तु को जिसमे कोई अपयश लगानेवाली बात हो यह जान बूझकर कि इसमे ऐसी बात है बेचेगा अथवा बेचने के लिये सामने रखेगा उसको दड साधारण कैद का जिसकी म्याद दो बरस तक हो सकेगी अथवा जरीमाने का अथवा दोनों का किया जायगा।

दफा ५०५—जो कोई मनुष्य कुछ वृत्तांत अथवा अफवाह अथवा खबर जिसको वह जानता हो कि झूठ है इस प्रयोजन से उड़ावेगा अथवा प्रगट करेगा कि श्रीमती महाराणी की अथवा जहाजी फौज के किसी अफसर अथवा सिपाही अथवा माझी से बगावत करावेगा अथवा इस प्रयोजन से कि सबको डर मे अथवा घबराहट मे डालेगा और उस उपाय से किसी मनुष्य से कुछ अपराध राज के विरुद्ध अथवा सर्व संबंधी कुशलता के विरुद्ध करावेगा उसको दंड दोनों मे से किसी प्रकार की कैद का जिसकी म्याद दो बरस तक हो सकेगी अथवा जरीमाने का अथवा दोनों का किया जायगा।

प्रयोजनीय बातें

जब कोई पुरुष नया पत्र निकालना चाहे तो उसे पत्र प्रकाशित करने की तिथि के कम से कम दस दिन पहले निम्नलिखित निवेदनपत्र उस नगर के मजिस्ट्रेट के पास, आठ आने के दरखास्ती टिकट के साथ, देना होगा।

IN THE COURT OF MAGISTRATE,

BENARES

The humble petition of A, resident of Muhulla B, Benares City, begs to state that as he intends starting a weekly paper named C from August 16th, 1894, he begs the favour of your kindly taking a declaration from him as an Editor of the paper

Dated 5th August, 1894 } A

इस पर से मजिस्ट्रेट साहब की आज्ञा नियमित डिकलेरेशन देने की होगी। संपादकों तथा पत्रप्रकाशकों को उचित है कि निम्नलिखित डिकलेरेशन को लिखकर अपने पास रखें जिससे मजिस्ट्रेट साहब की आज्ञा होते ही उसे उपस्थित कर दे अन्यथा विलंब हो जाने की बहुत संभावना है। इस डिकलेरेशन की दो प्रतियाँ संपादक को और दो प्रतियाँ छापनेवाले को देनी होंगी और इन प्रत्येक पत्रो पर तीन दूसरे पुरुषो के हस्ताक्षर होने चाहिए।

I, a resident of Muhulla B, Benares City, do hereby declare that I am the Editor or Printer of the weekly paper named C printed from D Press,

Benares, (or which will be printed from D Press, Benares)

Declared *this day before me,*

5th August, 1894. *Magistrate*

इस प्रबंध के ठीक कर लेने पर पत्रप्रकाशक को उचित है कि पत्र भेजने का प्रबंध डाकखाने से कर ले। इसके वास्ते जिन नियमो की आवश्यकता है वे नीचे प्रकाशित किए जाते हैं।

समाचार पत्रों के वास्ते डाक संबंधी नियम

भारत गवर्न्मेंट के राजस्व विभाग से जो ६ अक्तूबर सन् १८८१ ई० को नंबर ३४६३ का नियम प्रकाशित हुआ था उसके अनुसार भारतीय डाक विभाग के डाईरेक्टर जेनरल साहब ने निम्नलिखित नियम उन समाचार पत्रो के अग्रिम महसूल जमा करने के बारे मे बनाए हैं जिनकी इन नियमो के अनुसार वर्तन करने की इच्छा हो—

आरंभिक नियम

नियम पहला—इस नियमावली मे "समाचार पत्र" शब्द से उन सामयिक पत्रो का अभिप्राय है जो किसी ठीक नियमित समय पर निकलते हों और जिनके प्रकाशित होने का समय ३१ दिन से अधिक न हो।

कोई अधिक पत्र वा क्रोड़पत्र, जिस पर उसी समाचार पत्र के छपने की तिथि छपी होगी और जो उसी पत्र के साथ बटेगा, उस समाचार पत्र का भाग समझा जायगा।

समाचार पत्रों का अग्रिम महसूल जमा करने का खुलासा वृत्तांत

नियम दूसरा—किसी समाचार पत्र का स्वामी, प्रबंधकर्ता वा प्रकाशक डाकखाने के साथ किसी नियमित समय के लिये अग्रिम महसूल देने का प्रबंध कर सकता है। यह महसूल समाचार पत्रों की उतनी कापियों पर लिया जायगा जितनी कापियाँ कि वह व्यक्ति उतने समय मे भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रांतों मे भेजना चाहेगा। तब ये कापियाँ बिना किसी प्रकार का डाक का टिकट लगाये भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों मे भेजी जायँगी।

नियम तीसरा—तीन महीने के लिये अग्रिम महसूल लिया जायगा किंतु पहली बेर के लिये समय कमती भी हो सकता है पर एक महीने से कम नहीं।

नियम चौथा—महसूल के हिसाब की दर नीचे लिखी जाती है। हिसाब करने के समय पाँचवे और छठें नियमो का भी ध्यान रखा जायगा।

समाचार पत्र की प्रत्येक कापी के लिये जो तौल मे तीन तोले से अधिक न हो . .१ पैसा।

समाचार पत्र की प्रत्येक कापी के लिये जो तौल मे तीन तोले के पार और दस तोले तक हो .. ..२ पैसा।

इससे अधिक प्रत्येक दस तोले वा दस तोले के भाग के लिये . ...२ पैसा।

नियम पाँचवाँ—अग्रिम महसूल जमा करने के समय उन समाचार पत्रों का हिसाब, जो बंडलों मे बाँधकर डाक द्वारा एजेंटों के पास बिक्री के वास्ते भेजे जाते हैं, ऊपर लिखे हिसाब के आधे दर से किया जायगा।

नियम छठा—उन समाचार पत्रो का महसूल, जो बदले मे दूसरे समाचार पत्रों के संपादकों वा प्रबंधकर्त्ताओं के पास बेदाम भेजे जाते हैं, कुछ भी नहीं लिया जायगा।

जिन समाचार पत्रों के स्वामी इन नियमों के अनुसार बर्ताव किया चाहते हैं उन्हें जो जो करना चाहिए उसका वर्णन

नियम सातवाँ—किसी समाचार पत्र के स्वामी, प्रबंधकर्ता अथवा प्रकाशक इस नियम के अनुसार बर्ताव करना चाहें तो उन्हें पहले अपने प्रांत के अर्थात् जहाँ वह पत्र छपता हो वहाँ के मुख्य डाक विभाग के अफसर को पत्र लिखना चाहिए। तब उसे एक छपा हुआ पत्र* दिया जायगा जिससे उसको विदित होगा कि डाकखाना उस बारे मे क्या क्या पूछा चाहता है। इस फार्म को सावधानी से भर के उसी अफसर के पास लौटा देना चाहिए। विज्ञप्ति के वास्ते डाक विभाग के मुख्य मुख्य अफसरों के नाम नीचे लिख दिए जाते हैं—

पोस्ट मास्टर जेनरल, बंगाल, कलकत्ता
,, ,, मद्रास, मद्रास
,, ,, बंबई, बंबई
,, ,, उत्तर पश्चिमोत्तर प्रदेश, प्रयाग
,, ,, पंजाब, लाहौर
डिपुटी पोस्ट मास्टर जेनरल बिहार, दानापुर
,, ,, ,, पूर्वीय बंगाल, ढाका

* यह पत्र स्थानीय डाकखाने से मिल सकता है और एकरारनामे को प्रथम निवेदनपत्र के साथ भेजना चाहिए।

डिपुटी पोस्ट मास्टर जेनरल अवध, लखनऊ

,,	,,	,	मध्य प्रदेश, नागपुर
,,	,,	,,	ब्रिटिश बर्मा, रगून
,,	,,	,,	राजपूताना, आबू
,	,,	,	आसाम, शिलांग
,,	,,	,,	मध्य भारत, इंदौर
,,	,,	,,	सिंध, करांँची

नियम आठवाॅ—इस इकरारनामे के साथ उस समाचार पत्र की एक प्रति भेजनी चाहिए और एक विवरण पत्र, जिसमे उन स्थानों का नाम भी लिखा हो जहाॅ कापियाॅ बिक्री के वास्ते एजेंटो के पास जायँगी और जिन समाचार पत्रो के सपादको अथवा प्रबंध-कर्त्ताओं को बदले की कापियाॅ भेजी जायँगी उनका नाम भी लिखा जाना चाहिए ।

नियम नवाॅ—जब डाक विभाग के मुख्य अफसर के यहाॅ से विज्ञप्ति दी जायगी कि इकरारनामे मे जितना महसूल लिखा है सही है तो वह महसूल उस डाकखाने मे जमा कर देना होगा जहाॅ वह पत्र छपता है ।

इसके बाद के महसूल जमा करने के नियम

नियम दसवाॅ—यदि तिमाही बीतने पर दूसरी तिमाही के लिये महसूल पुन. जमा करने की इच्छा हो तो जिस स्थान पर वह समाचार पत्र छपता हो वहाॅ के डाकखाने मे उस तिमाही के प्रारंभ होने के सात दिन पहले लिख के इत्तला देनी चाहिए अर्थात् २४ मार्च, २३ जून, २३ सितंबर और २४ दिसबर को। पर यदि यह

दिन रविवार को या डाकखाने की किसी छुट्टीवाले दिन पड़ जाय तो इनके एक दिन पहले वैसा करना होगा।

नियम ग्यारहवाँ—इस इतलाही के साथ उसी तारीख को (अर्थात् जिसको इतलाही भेजी जाय) एक नया इकरारनामा भेजना चाहिए जिसमे नियमित कालमो मे उतने अखबारों की गिनती लिखी हो जो इस इकरारनामे के पूर्व अंतिम समाचार पत्र के भेजने की गिनती हो। उसी के साथ एक नई फिहरिस्त एजेंटों के स्थान और बदले के अखबारों की भी भेजनी चाहिए। किंतु समाचार पत्र की नई प्रति तभी भेजनी चाहिए जब कि आगामी तिमाही के लिये उसके तौल मे कोई अदल बदल हुआ हो वा करने का विचार हो।

नियम बारहवाँ—जब इस बात की इत्तला दी जावे कि इस नए इकरारनामे में जो कुछ महसूल लिखा है सही और स्वीकार है तो उतना महसूल उस डाकखाने मे जमा कर देना चाहिए जहाँ कि वह पत्र छपता हो।

इन नियमों के अनुसार समाचार पत्र के भेजने की विधि

नियम तेरहवाँ—जो समाचार पत्र इन नियमों के अनुसार भेजे जायँगे उन्हें केवल उसी डाकखाने वा डाकखानों मे भेजना चाहिए जिनके नाम इकरारनामे मे लिखे हों (इकरारनामा कालम ११ वाँ देखो)। इन समाचार पत्रों को भिन्न थैलों में बंद करना चाहिए और प्रत्येक थैले मे जितनी जितनी कापियाँ हों उनकी गिनती एक भिन्न कागज पर लिखकर उन उन डाकखाने के अफसरों के पास, जो वहाँ काम करते हों, दे देना चाहिए। यदि रेलवे

मेल सर्विस के द्वारा रेल स्टेशनो पर समाचार पत्र के भेजने का प्रबंध कर लिया गया हो अथवा किया जावे तो इन नियमों का बर्ताव उस अवस्था मे भी करना होगा। यदि बिना डाक का टिकट लगाए कोई समाचार पत्र लेटर बाक्स मे छोडा जायगा तो वह बैरिंग समझा जायगा।

शिमला
ता० ७ अक्टूबर सन् १८८१ ई०

हिंदी भाषा के समाचार पत्रों का सूची-पत्र

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
१	अग्रवाल उपकारक	लाला किशोरीलाल	आगरा	मा	१॥)	१८८९	
२	अलमोड़ा अखबार	पं० सदानद सलवाल	अलमोड़ा	सा	६॥)	१८७१	
३	आनंद कादंबिनी	पं० बदरीनारायण चौधरी	मिर्जापुर	मा	२)	१८८२	बंद
४	आर्य सिद्धांत	पं० भीमसेन	प्रयाग	मा	१)	१८८७	
५	आर्य दर्पण	मु० बख्तावरसिंह	शाहजहाँपुर	मा	२॥)	१८७७	
६	आर्य विनय		मुरादाबाद	मा	१)		
७	आर्य्यावर्त		कलकत्ता	सा	३॥)	१८८७	
८	आर्य मित्र	बा० भूतनाथ मुकर्जी	काशी	मा	॥≈)	१८९०	बंद
९	आरोग्य दर्पण	पं० जगन्नाथ वैद्य	प्रयाग	मा	२॥)	१८८१	
१०	आरोग्य जीवन	प० गजानन हर्सें	लखनऊ	मा	२)	१८८६	
११	आरोग्य सुधाकर	पं० मुरलीधर	मुजफ्फरनगर	मा	१)	१८८६	

१२	इंदु	पं० ज्वालाप्रसाद	लाहोर	मा	१।)	१८९४	
१३	उचित वक्ता	पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र	कलकत्ता	सा	३)	१८७८	
१४	कलकत्ता समाचार	पं० कन्हैयालाल	कलकत्ता	सा	१॥)	१८९४	बंद
१५	कविवचनसुधा	बा० हरिश्चंद्र	काशी	मा-पी सा	६॥)	१८६८	बंद
१६	कवि व चित्रकार	पं० कुंदनलाल	फतेगढ़	त्रिमा	१)	१८९१	बंद
१७	कवि-कुल-कंज-दिवाकर	पं० रामनाथ शुक्क	बस्ती	मा	१।)	१८८४	बंद
१८	कृषी कारक	बा० सखाराम व बा० गणेशनारायण	अमरावती	मा	३)	१८९०	बंद
१९	कान्यकुब्ज प्रकाश	प० बलभद्र मिश्र	लखनऊ	मा	१॥)	१८८४	बंद
२०	काव्यामृतवर्षिणी	पं० शिवदत्त मिश्र	लखनऊ	मा	१॥)	१८८५	बंद
२१	कायस्थ कौमुदी	पं० गोकुलानंद	मुजफ्फरपुर	मा	१॥)		
२२	कायस्थ कान्फरेंस प्रकाश	बा० देवीप्रसाद	कानपुर	पा	१॥)	१८९४	
२३	कायस्थ हितैषी		दरभंगा				
२४	काशीपत्रिका	राय बहादुर पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम० ए०	काशी	सा	७॥=)	१८७६	
२५	काशी समाचार	बा० बिहारीसिंह	काशी	सा	१॥)	१८८४	बंद

नंबर	नाम पत्र	नाम सपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
२६	खिचड़ी समाचार	बा० माधोप्रसाद	मिर्जापुर	मा	१॥—)	१८८६	
२७	गोधर्म्म प्रकाश	पं० हरदयाल शर्म्मा	फर्रुखाबाद	मा	१।)	१८८५	
२८	गोरत्ता		नागपुर	मा	१≡)	१८९०	
२९	गोसेवक	पं० जगत् नारायण	काशी	सा		१८९२	बंद
३०	चपारन चंद्रिका	बा० भुवनेश्वर	चपारन	सा	२॥)	१८९०	बद
३१	चंपारन हितकारी		बेतिया	सा	३)	१८८४	बंद
३२	जगत् मित्र	पं० क्षेत्रपाल शर्म्मा	मथुरा	मा	१।)	१८९१	बंद
३३	जयपुर समाचार		जयपुर				
३४	जाट समाचार	बा० कन्हैयालाल सिह	गुड़गाँव	मा	१)	१८८६	
३५	जीयालाल प्रकाश	बा० जीयालाल	फर्रुखनगर	सा	२॥)	१८८४	बद
३६	जैन धर्म्म प्रकाश	रा० रा० बकरामजी रोडे	बर्धा	मा	१)		
३७	जैन	बा० जीयालाल	फर्रुखनगर	सा	२।)	१८८४	बद
३८	जैन प्रभाकर	पं० गोपीनाथ	लाहोर	मा	२)	१८९१	

३९	जैन हितैषी	बा० पन्नालाल	मुरादाबाद	मा	१)	१८९२	
४०	तिमिरनाशक	पं० कृपाराम	काशी	सा	२॥)	१८९०	बंद
४१	द्विज पत्रिका	बा० साहबप्रसाद सिंह	बाँकीपुर	मा	॥)	१८९०	
४२	दिनकर-प्रकाश	बा० रामदास वर्म्मा	लखनऊ	मा	१॥=)	१८८३	बंद
४३	दीपिका	प० चंद्रशेखर धर मिश्र	रत्नमाला (चंपारन)	मा	बेमूल्य	१८८८	बंद
४४	देवनागरी गजेट	पं० गौरीदत्त	मेरठ	मा	१)	१८८८	
४५	देशहितैषी		अजमेर	मा	२)	१८८२	बंद
४६	देशी व्यापारी	बा० राधाकृष्ण गुप्त	कलकत्ता	मा	५) ३)	१८८४	बंद
४७	धर्म्मदिवाकर	प० देवीसहाय	कलकत्ता	मा	१)	१८८३	बंद
४८	धर्म्मप्रचारक	श्री राधाकृष्णदास	काशी	मा	१॥)	१८८५	बंद
४९	धर्म्मसभा पत्र	पं० गौरीशंकर वैद्य	फर्रुखाबाद	मा	यथा-शक्ति	१८८८	बंद
५०	धर्म्मसुधावर्षण	पं० कुलयशस्वी शास्त्री	काशी	मा	१)	१८८८	बंद
५१	धूर्त पंच	प० दामोदरप्रसाद शर्मा	कलकत्ता	मा	१)	१८९१	बंद
५२	नागरी नीरद	पं० बदरीनारायण चौधरी	मिर्जापुर	सा	२)	१८९३	

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
५३	पंडित	पं० गोविंदराव बरवे	गिरगाँव	सा व मा	२) ४)	१८६१	
५४	पंडितराज		लाहोर				बंद
५५	प्रजाहितैषी		राजनांदगाँव				बंद
५६	प्रयाग मित्र	पं० जगन्नाथ वैद्य	प्रयाग				बंद
५७	प्रयाग समाचार	प० देवकीनदन त्रिपाठी	प्रयाग	सा	१॥-)	१८८३	
५८	प्रेम पत्र	रायबहादुर सालिगराम	आगरा	पा	६)	१८७२	बंद
५९	पीयूषप्रवाह*	पं० अंबिकादत्त व्यास	भागलपुर	मा	॥)	१८८४	
६०	पुष्कर प्रदीप		पुष्कर				बंद
६१	बनारस अखबार	पं० गोविंद रघुनाथ थत्ते	काशी	सा	१२)	१८४५	बंद
६२	ब्रजबासी	आर० एल० बर्म्मन	मथुरा	मा	१॥)	१८९२	बंद
६३	वनिता हितैषी	श्रीमती भाग्यवती	सचेंड़ी	मा	॥।)	१८९३	

* पहले सन् १८८३ में "वैष्णव पत्रिका" के नाम से निकलता था।

६४	बाला बोधिनी	बा० हरिश्चंद्र	काशी	मा	२)	१८७४	बंद
६५	ब्राह्मण	पं० प्रतापनारायण मिश्र	(अब) बाँकीपुर	मा	१)	१८८३	
६६	व्यापार सिंधु	पं० काशीप्रसाद अवस्थी	बंबई	सा	२॥)	१८९३	बंद
६७	व्यापार हितैषी	बा० हनुमानप्रसाद	काशी	सा	१॥)	१८९२	बंद
६८	ब्राह्मण हितकारी	पं० कृपाराम	काशी	मा	१॥)	१८९२	बंद
६९	बिहारबंधु	पं० केशोराम भट्ट	बाँकीपुर	मा	२)	१८७२	
७०	बुद्धि प्रकाश	पं० चंद्रशेखर गौड़	लखनऊ	मा	१॥)	१८८८	बंद
७१	विक्टोरिया सेवक		जब्बलपुर				बंद
७२	विद्या-धर्म्म-दीपिका	पं० चंद्रशेखर	रत्नमाला	मा	≡)	१८८६	बंद
७३	विद्याविलास	पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र	कलकत्ता	मा	५)१)	१८८५	बद
७४	विद्याविनोद		बाँकीपुर	मा			बंद
७५	विज्ञवृंदावन	श्री नन्हेलाल गोस्वामी	वृंदावन	पा	१)	१८९२	
७६	वेदप्रचारक	पं० कृपाराम	काशी	मा			बंद
७७	भगवद्भक्तितोषिणी	बाबू हरिश्चंद्र	काशी	मा			बंद
७८	भट्टभास्कर	पं० गौरीशंकर भट्ट	कानपुर	मा	१)	१८९३	
७९	भारतचंद्रोदय	बा० गुरुबक्स सिंह	बिठूर	मा	१)	१८८५	बंद

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
८०	भारत-जीवन	बा० रामकृष्ण वर्म्मा	काशी	सा	१॥)	१८८४	
८१	भारतोदय	बा० सीताराम	कानपुर	दै	१०)	१८८५	बंद
८२	भारतदर्पण	प० विश्वनाथ ब्रह्मचारी	कलकत्ता	सा	३)	१८८८	बंद
८३	भारतोद्धारक	पं० मुन्नालाल शर्म्मा	अजमेर	मा	१)	१८८५	बंद
८४	भारतधर्म्मामृत		पुरनिया				बंद
८५	भारतेंदु *	श्रीराधाचरण गोस्वामी	वृंदावन	मा	१)	१८८४	बद
८६	भारत-पंचामृत		भागलपुर	मा	१)	१८८४	बंद
८७	भारत प्रकाश	पं० बनवारीलाल मिश्र	मुरादाबाद	मा	१)	१८९०	
८८	भारतबंधु	बा० तोताराम	अलीगढ़	सा	७॥)	१८७६	बद
८९	भारतवर्ष	पं० रामनारायण वाजपेयी	बिठूर	मा	॥)	१८८८	बंद
९०	भारत भ्राता	म०कु०श्री लाल बलदेवसिंह	रीवाँ	सा	२)	१८८७	

* यह पहले लाहोर से प्रकाशित होता था।

९१	भारतभगिनी	श्रीमती हरदेवी	प्रयाग	मा	१)	१८८९	
९२	भारत भानु	प० कन्हैयालाल व बा० भगवानदास	लखनऊ	मा	१।।)	१८९१	बंद
९३	भारतमित्र	पं० रुद्रदत्त	कलकत्ता	सा	२।।)	१८७७	
९४	भारत-सुदशा-प्रवर्तक	बा० गणेशप्रसाद	फर्रुखाबाद	मा		१८७९	
९५	भारत हितैषी		नवगॉव	मा	२।।)	१८८४	
९६	भाषाभूषण	बा० गोपालराम	बबंई	सा	२)	१८९३	बंद
९७	मारवाड़ गजेट		जोधपुर				
९८	मित्र	पं० दामोदर विष्णु सप्रे	काशी	सा	१।।)	१८८८	बंद
९९	मित्रविलास	पं० कन्हैयालाल	लाहोर	सा	३।।)	१८७७	
१००	मोतीचूर	मुं० अमीर हसन	बॉकीपुर	मा			बंद
१०१	रत्न प्रकाश	पं० किशोरलाल नागर	रतलाम	सा	३)	१८९७	
१०२	रसिक पंच	पं० शिवनाथ मिश्र	लखनऊ	मा	।=)	१८८५	बंद
१०३	राजपुताना गजेट		अजमेर	सा	७)		•
१०४	राजस्थान समाचार	मु० समर्थदान जी	अजमेर	सा	३।।)	१८८९	
१०५	रामपताका	पं० राधामोहन शुक्ल	प्रयाग	मा	।।।)	१८८९	बंद

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
१०६	शिक्षक	एम० एल० शुक्ल	मथुरा	मा	१)	१८६१	बंद
१०७	शुभचिंतक	पं० रामगुलाम अवस्थी	जब्बलपुर	सा	२।)	१८८८	
१०८	शुभचिंतक	बा० सीताराम	शाहजहाँपुर	मा	।।।)	१८८३	बंद
१०६	सज्जनकीर्त्ति-सुधाकर	पं० वंशीधर	उदयपुर	सा	६।।)	१८७६	
११०	सज्जनविनोद	पं० श्रीकृष्णलाल शर्म्मा	आगरा	पा	१।।)	१८६४	
१११	सज्जन-सुधापान	प० बैजनाथ व्यास	तिलहारा	सा			बंद
११२	सदादर्श	श्रीनिवासदास	दिल्ली	सा	२।।)	१८७४	बंद
११३	सदाचार-मार्तंड	शास्त्री लाल चंद्र	जयपुर	मा	१)	१८८३	बंद
११४	सत्य-प्रकाश		फतेगढ़	मा	१)	१८८५	
११५	सत्यवक्ता	पं० गोपालप्रसाद	हुशंगाबाद	मा	१)	१८६३	
११६	सर्वहित	श्रीयुत हरिवल्लभ	बूँदी	पा	१)	१८८६	
११७	सर्वहितैषी	पं० रामसरूप	मुरादाबाद	मा	।–)	१८६४	
११८	सरस्वती-विलास	प० नन्हेलाल	नरसिहपुर	मा	१।।)		बंद

११९	सरस्वती प्रकाश	बा० बनवारीलाल	काशी	मा	।≈)	१८९२	बंद
१२०	साकेत जीवन	बा० रामनारायणसिंह	अयोध्या	मा	१)	१८९२	बंद
१२१	सारन सरोज	पं० अवधबिहारीशरण मिश्र	सारन	मा	११)		बंद
१२२	सारसुधानिधि	पं० सदानंद जी	कलकत्ता	सा	५।।।)	१८७८	बंद
१२३	सारस्वत-प्रकाश		कलकत्ता	पा	२)	१८८९	बंद
१२४	साहित्य सुधानिधि	बा० देवकीनंदन बा० जगन्नाथदास	काशी	मा	२)	१८९३	
१२५	सुखसंवाद	पं० लक्ष्मणप्रसाद ब्रह्मचारी	लखनऊ	मा	१)	१८८६	बंद
१२६	सुगृहिणी	श्रीमती हेमंतकुमारी	शिलॉंग	मा	१)	१८८८	बंद
१२७	सुदरसन चक्र	प० ठाकुरप्रसाद शर्म्मा	वृंदावन	मा	३)	१८९०	बंद
१२८	सुधाकर	बा० तारामोहन मैत्र	काशी	सा		१८५०	बंद
१२९	सुधासागर	पं० छदुमीलाल दूबे	कानपुर	मा	।।।)	१८९३	
१३०	हिंदी दीप्ति प्रकाश	बा० कार्तिकप्रसाद	कलकत्ता	सा	१।।)	१८७२	बंद
१३१	हिंदी प्रदीप	प० बालकृष्ण भट्ट	प्रयाग	मा	३।≈)	१८७७	
१३२	हिंदी बंगवासी	बा० योगेशचंद्र वसु	कलकत्ता	सा	२)	१८९०	
१३३	हिंदोस्थान	राजा रामपालसिंह	कालाकॉंकर	दै	१०)	१८८५	

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
१३४	(श्री) हरिश्चंद्रचंद्रिका	बा० हरिश्चंद्र	काशी	मा	६)	१८७४	बंद
१३५	(श्री) हरिश्चंद्रकौमुदी	बा० पंचम सिंह	जमोर (गया)	मा	१।)	१८८४	
१३६	हरिश्चंद्रकला	बा० रामदीन सिंह	बाँकीपुर	मा	६।।।)	१८८५	
१३७	क्षत्रिय पत्रिका	बा० रामदीन सिंह	बाँकीपुर	मा	६)	१८८१	
१३८	क्षत्री हितोपदेशक	ठाकुर हरनाथ सिंह	आगरा	मा	१।।)	१८९२	बंद
१३९	ज्ञानप्रदायिनी	बा० नवीनचंद्र राय	लाहोर	मा	।)	१८९२	बंद

नाटक

(१) दुःखिनी बाला

निवेदन

यह सामाजिक रूपक बाल-विवाह, जन्मपत्र-विवाह के होने तथा विधवा विवाह के अशुभ परिणाम को दिखाने के लिये संवत् १९३७ मे लिखा गया था। पहले पहल यह संवत् १९३७ मे छपा। पहले ग्रथरचयिता ने इसका नाम विधवा विवाह नाटक रखा था और नायिका का नाम श्यामा था। इस पूर्वरूप के अंतिम दृश्य मे श्यामा अपनी सहेली के पर-पुरुष-संबंधी प्रस्ताव को स्वीकार करती है और अत मे गर्भपात करना दिखाया गया है, परंतु जिस रूप में यह प्रकाशित हुआ था उसमे ये बाते' बदल दी गई हैं।

संपादक

उपक्रम

यह रूपक मेरा पहला लेख है। इसमे कोई भी गुण नहीं है यह मुझे निश्चय है। तौ भी मैं बालक हूँ मेरी तोतली बोली यद्यपि शुद्ध उच्चारण नहीं होती तथापि वृद्ध लोग इसे प्रसन्न होकर सुनैंगे। और यह भी मेरा साहस केवल श्रीयुक्त पूज्यवर बड़े भैया बाबू हरिश्चद्रजी के अनुग्रह के प्रभाव से है क्योंकि शंकर-दिग्विजय में लिखा है कि मंडन मिश्र के घर तोता-मैना भी न्याय वेदांत का शास्त्रार्थ करते थे तो हम उनके वात्सल्यभाजन होकर कुछ लिख पढ़ लें इसमे क्या आश्चर्य है? यद्यपि इस क्षुद्र ग्रंथ के विषय में तो उनका नाम लेना भी परिहास करना है तथापि मैं अपने उत्साह को रोक न सका। आशा है कि आप लोग मेरा साहस क्षमा करैंगे।

आप लोगों का कृपाकांक्षी

चौखंभा, बनारस। राधाकृष्णदास,

सानंद निवेदन

मुझको इस बात के प्रकाशित करने मे बडा ही आनंद होता है कि सर्व सज्जन महाशयों ने इस क्षुद्र लेख को सानंद ग्रहण किया और मेरे उत्साह को बढाया, जिससे कि यह समय आया कि यह रूपक फिर से शोधकर छापा गया। अब मैं इसको आप सर्व सज्जनों के चरणों मे अर्पित करके सानंद निवेदन करता हूँ कि आप सर्व सभ्य महोदयगण इसको स्वीकृत करके मेरा उत्साह द्विगुणित कीजिए।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी १९३९ } आप लोगों का सेवक
श्रीराधाकृष्णदास।

दूसरे संस्करण का उपक्रम

सभ्य महोदयगण !

आप लोगों के कृपा-कटाक्ष से ईश्वर ने आज फिर यह दिन दिखलाया है कि यह दीन दास इस क्षुद्र ग्रंथ को लेकर आप लोगो की सेवा मे उपस्थित हुआ। मैं जहाँ तक सोचता था यही बुद्धि मे आता था कि यह ग्रथ कदापि इस योग्य न होगा कि आप सब सभ्य जनों के समाज मे सादर गृहीत हो, क्योंकि मैं सत्य कहता हूँ कि यह मेरा प्रथम (श्रीगणेशाय नम) लेख है। पहले जो काम मनुष्य करता है निःसंदेह कदापि उत्तम रीति से नही होता परंतु आप लोगो ने मेरे इस पहले ही काम की प्रशसा की और इसको सादर ग्रहण किया, इसका क्या कारण है ? मैं जहाँ तक समझता हूँ ये कारण हैं—एक तो इसकी मधुर तोतली बोली ने आप लोगों के चित्त को प्रसन्न किया, दूसरे इसे अपना ही समझकर इस पर आप लोगों की स्वाभाविक प्रीति हुई, तीसरे अपने दास के उत्साह-वर्द्धनार्थ इसको सादर ग्रहण किया। जो हो, इस व्यर्थ के पचड़े से क्या ? अब काम की बात को देखना चाहिए—इन बातों को जितना आप लोग समझते होगे वह मैं कभी नहीं समझ सकता।

इसकी समालोचना सब पत्रों ने कृपा करके उत्तम की, इसलिए मैं उन लोगो को धन्यवाद देता हूँ। मुझको यह देखकर बड़ा ही आनंद होता है कि इसकी देखा देखी हिंदी मे कई एक दृश्य काव्य इस विषय के बन गए। ईश्वर हम लोगों के परिश्रम को सफल करे और यह कुरीति दूर हो।

आप लोगों का आज्ञाकारी सेवक

चौखंभा—बनारस। राधाकृष्णदास,

दुःखिनी बाला

रूपक

प्रथम दृश्य

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार—आज यह सभ्य जनों का समाज यहाँ एकत्र हुआ है। हमको इसमें अपने देश की बुराइयों को दिखलाना अवश्य है। आशा है कि हमारे दर्शक जन इसे देखकर इन बुराइयों को सुधारने में तत्पर होंगे जिससे मेरा उत्साह भंग न हो।

(नेपथ्य की ओर देखकर)

प्यारी! यहाँ आओ।

(नटी आती है)

नटी—प्राणनाथ! क्या आज्ञा होती है?

सूत्रधार—प्यारी! देखो आज इन महाशयों ने हमारे ऊपर अनुग्रह किया है इसमें हम लोगों को अपने चित्त का आशय प्रगट करना चाहिए क्योंकि ऐसा समय फिर न मिलेगा इससे हमारी इच्छा है कि इस समाज मे 'दुःखिनी बाला रूपक' खेला जाय। इससे मेरा यही तात्पर्य है कि लोग इसको देखकर देश की कुरीति को सुधारें। इसमे तुम्हारी क्या सम्मति है?

नटी—प्राणनाथ! जो आपने विचारा उसमे मेरी भी सम्मति है। हाँ! इस भारतवर्ष मे बहुविवाह बाल्यविवाह के होने और विधवा विवाह के न होने से कैसी हानि है। देखिए उस बिचारी श्यामा ही का कैसा बुरा हाल है। अच्छा तो चलिए अब देरी

करना उचित नहीं। हम लोगों के द्वारा यह कुरीति जितनी उठे उतना ही हम अपने को धन्य समझें।

सूत्रधार—चलो। (दोनों जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान—बाबू गोवर्धनदास की कोठी

(गोवर्धनदास और मुनीबजी बैठे हैं)

गोवर्धनदास—मुनीबजी, घर मे लड़का होनेवाला है सो हमारी इच्छा है कि हम खूब धूमधाम करे।

मुनीब—हाँ साहब रुपैया का सुख यही सब है। आज भगवान् ई दिन देखाइस है तो आपके जरूर धूम करै के चहिए।

गो०—अच्छा तो सब तयारी कर रखो। २१ भाँत की मिठाई होय और नौबतखाना जरूर बजे और ७ तायफा रंडी, दो गोल भाँड़ की और भी सब बात ऐसी होय कि आज तक किसी ने न किया हाय।

मु०—हाँ साहब आपकी बराबरी के कर सकथै।

गो०—कोई है—रज्जब मियाँ आतिशबाज, जियन मियाँ बाजेवाले, पुत्तन कसेरा, मन्नू बजाज, अनंतू दर्जी और बिहारी सुनार को बुला लाओ।

नौकर—जो हुकुम। (जाता है)

गो०—मुनीबजी हम हवेली मे जाते हैं तुम यहीं रहो, वे लोग आवे तो बैठाना।

मु०—जो हुकुम। (गोवर्धनदास जाते हैं)

मु०—चलो अपने राम भी खाय आई। (जाता है)

तीसरा दृश्य
स्थान—गोवर्धनदास की बैठक

(गोबर्धनदास बलदेवदास मुनीबजी मुहम्मदअली बैठे हैं)

गो०—बलदेवदासजी ! हमारी लडकी ७ वर्ष की हो चुकी। शास्त्र मे ७ वर्ष की लडकी का कन्यादान देना बडा पुन्य है सो दो लड़के ठहर हैं–१ चौदह वर्ष का बडा सुंदर सुशील अँगरेजी पढ़ता है बडा बुद्धिमान् है लड़की योग्य परंतु जन्मपत्री बिलकुल नहीं बनती। २ छः वर्ष का रंग काला एक आँख से काना बडा कुरूप हठो मूर्ख पढ़ता लिखता कुछ नही, परतु जन्मपत्री बहुत अच्छी बनती है आपकी क्या राय है ?

बल०—मेरी आप क्या राय पूछते हैं। मैं तो उसी १४ वर्षवाले की तरफ हूँ और जो कहिए जन्मपत्री नही बनती तो यह तो केवल मूर्खता है। ब्राह्मणों ने खाने का यह भी एक ढग निकाला है क्योंकि वेद पु राण शास्त्र किसी में जन्मपत्री देखके विवाह करना नहीं लिखा है। देखिए श्रीरामचन्द्रजी ने जन्मपत्री नहीं देखी थी और न कृष्ण-चंद्रजी ने, तो फिर हम लोगो को भी वैसा ही करना चाहिए और फिर देखिए क्या अँगरेज और मुसलमान लोग जन्मपत्री दिखाकर विवाह करते हैं ? फिर क्यों नहीं उनके यहाँ ये सब आपत्तियाँ होती ? क्यों उनको उसमे विशेष सुख होता है ? भला उनको जाने दीजिए आप अपने यहाँ ही देखिए, जिनका विवाह जन्मपत्री दिखाकर होता है वे क्यों विधवा होती हैं ? क्यों उनको संतान नहीं होती ? क्यों उनको शारीरिक और मानसिक सुख नही मिलता ? क्यों उनमें आपस में लड़ाई होती रहती है ? निदान यह कि जन्मपत्रो दिखाने से कुछ लाभ नही होता। एक नहीं इसके पचासों प्रमाण हैं, दूर न जाइए, पास ही देखिए, आपके मुनीबजी ने जन्मपत्रो दिखाकर

न लड़की का विवाह किया था और कहते थे कि ३६ गुण बनता है फिर इनकी लड़की क्यों विधवा हो गई ? क्यों विवाह के महीने भर पीछे ही उसका पति मर गया ? यह सब कहने सुनने की बात है इससे कुछ नहीं होता।

जो कहिए कि लग्न का शुद्ध करना कठिन है तो फिर लग्न का दोष है हम लोग क्या करे ? इसका तो यह स्पष्ट उत्तर है कि फिर कैसे समझ सकते है कि लग्न शुद्ध है वा अशुद्ध ? जब हम यही नही समझ सकते तो जन्मपत्र दिखाना ही हमारी भूल है क्योंकि लग्न अशुद्ध हो तो हम क्यों ऐसा काम करे जिससे हमारा अभीष्ट भी न सिद्ध हो अर्थात् जिस लड़के से विवाह करने की हमारी इच्छा हो उससे भी विवाह न कर सकें और वह लडका भी जो अयोग्य हो मर जाय तो फिर हम अच्छे मूर्ख बने, न इधर के रहे न उधर के।

जो कहिए कि कर्म मे जो लिखा है वही होगा तो फिर जन्म-पत्र दिखाना ही व्यर्थ है; जो कर्म में लिखा है वही होगा। जन्म-पत्री दिखाकर लड़के लड़की दोनों को दुःख देने से क्या लाभ ?

जो कहिए कि जो बाप दादे करते आए हैं वही करना चाहिए सो यह करना मूर्खता है। जो गुण हो वही ग्रहण करना चाहिए, अव-गुण को न लेना चाहिए। फिर यह बतलाइए कि आप लोग कौन-कौन सी बातें बाप-दादा की करते हैं ? उन लोगों के समय में तो हिंदू राजा थे अब कहाँ हैं ? वे लोग झूठ नही बोलते थे अब कौन सच बोलता है ? तब लोगों की अवस्था बहुत होती थी अब कौन दीर्घजीवी होता है ? तब स्त्रियाँ सती होती थीं अब कौन होती हैं ? तब सब लोग सभी हिंदुस्तानी वस्तुएँ काम मे लाते थे अब कौन अँगरेजी के आगे हिंदुस्तानी को छूता है ? तब लोग बलवान् व्यवसायी अपने धर्म मे दृढ़ रहते थे अब कितने ऐसे मनुष्य हैं ?

निदान आगे की कोई बात भी नही होती केवल एक पीटना ले बैठना है। यह नियम है कि जैसा काल होता है वैसा किया जाता है "जैसी बहै बयार पीठ तैसी ही कीजै"। बुद्धिमानों का यही मत है और ऐसा ही करते है और करना भी ऐसा ही चाहिए। अब आप देखिए कि पुराने शास्त्रों से यह जाना जाता है कि आगे स्वयंवर इत्यादि करके विवाह होता था, कही भी जन्मपत्री नही दिखाई जाती थी, फिर जो उनके पश्चात् लोगो ने यह चाल चलाई यह क्यों ? या तो उनको मूर्ख कहिए या काल का प्रभाव। यदि वे मूर्ख थे तो उनका अनुकरण करना भी मूर्खता है, और यदि वे कालानुसार करते थे तो अब वह काल नहीं है।

एक ही लग्न एक ही मुहूर्त मे सैकड़ों लडके होते हैं। उनमे से कोई राजाधिराज हो जाता है, कोई भीख ही मांगता रहता है। तो फिर जन्मपत्री का क्या फल हुआ "सब धान बाइस पसेरी"।

जब कोई नई बात हो जाती है तो सभी ज्योतिषी लोग कहते हैं कि यह अमुक ग्रह का फल हुआ पर पहले से कोई ठीक ठीक नहीं कह सकता कि यह होगा, इसका क्या कारण ?

निदान यह कि जन्मपत्री के ऊपर निर्भर होकर आजन्म अपनी संतानों को अंधकूप मे डालना कैसी बडी मूर्खता है ? मेरी बुद्धि मे जो कुछ आया मैंने निवेदन किया। करना न करना आपके हाथ।

मु०—ई तो अँगरेजी पढ़के नास्तिक हो गए हैं जो बाप दादा करत रहें सो करना चाहिए, चाहे लडका अच्छा होय चाहे बुरा। का अच्छे लड़का के वास्ते गुरु ब्राह्मण की बात न मानै ? इनके कहे से का होत है। आप वही छोटके से बिआह करो, जो भाग में लिखा होइहै सो होइहै।

बल०—क्या अँगरेजी पढ़ने से सब कोई नास्तिक हो जाता है? कभी नहीं। यह भी एक विद्या है, उसके पढ़ने से कोई नास्तिक नहीं हो सकता और जो आपने कहा कि "जो बाप दादा करते थे वह करना चाहिए" यह भी ठीक नहीं, जो वेद मे लिखा है वह करना चाहिए क्योंकि हम वैदिक हिंदू हैं और ब्राह्मण कुछ परमेश्वर नहा हैं। जहाँ ब्राह्मणो का महात्म है वहाँ यह नही लिखा है कि जो ब्राह्मण कहे, अच्छा हो या बुरा, वही किया जाय। ब्राह्मणों को केवल जप-तप पठन-पाठन वैदिक कर्म कराने का अधिकार है। यह अधिकार नहीं है कि वे नित्यमेव नई नई बात कहे और लोग उसको जबरदस्ती मानें। भला यह तो कहिए कि नास्तिक शब्द का अर्थ क्या है? यह आप ही लोगों के मुख से अच्छा लगता है कि जो कुछ बात समझ मे न आवे उसे नास्तिकत्व कहना। आप अपना प्रमाण तो दीजिए कि क्यों उस छोटे से होना चाहिए और उस बड़े से नहीं? पहले शास्त्र को देखिए तब पीछे यों बात करिए, पर यह कहाँ से हो, आपके पुरोहित जी क्या करे गे? जब आपही पढ़ लेगे तो वह किसको खायँगे। इसके सिवा बाप दादों की बात हम ऊपर सिद्ध कर ही आए हैं।

मु०—महाराज हम तो पहले कह दिया कि ई नास्तिक हो गए। आप इनकी बात मत सुनो, ओही से करो।

बल०—हा! इन्हीं मूर्खों ने देश को चौपट कर रखा है। निस्संदेह ईश्वर का पूर्ण कोप इसी देश पर है जिससे यहाँ के लोगों की ऐसी बुद्धि हो रही है। यहाँ कुछ कहना ही व्यर्थ है।

गो०—बाबू साहब आपने ठीक कहा पर हम तो ऐसा करके नक्कू नहीं बन सकते। और फिर मुनीवजी भी ठीक कहते हैं जो बाप दादा करते आए हैं वही करना चाहिए, इससे हम उसी लड़के से विवाह करेंगे।

मु० अ०—जी हाँ हजूर बजा फरमाते हैं। जो लोग अँगरेजी पढ़ते हैं उनकी अकिल नजिस हो जाती है इससे मैंने अपने लड़के को अँगरेजी की तालीम नहीं दी। वह शबोरोज खोदा की इबादत मे मशगूल रहता है और मिर्जा साहब ने अपने लड़के को अँगरेजी पढ़ाया है वह कभी खोदा का नाम भी नही लेता सेवाय वाहियात खुराफात पढ़ने लिखने के और कुछ नही करता। ऐसे लोगो पर खोदा की मार। अल्लाह ऐसे लोगो से पनाह दे।

गो०—मुनीबजी ब्याह की तयारी करो और लड़के के बाप से भी कह दो कि पक्की करने की साइत देखावे, चलिए सैर कर आवें। बैठे बैठे जी उकता गया। (सब गए)

चौथा दृश्य

स्थान—सरला का शयनागार

(सरला और उसका पति लल्लू बैठे हैं)

लल्लू—करे ? तो से कहा कि तूँ पढ़ना लिखना छोड़ दे पर तैं नहीं मनती—लाख बेर समझावा कि हमरे इहाँ पढ़ना नाहीं सहता पर कुछ सुन्तियै नाहीं—कोई की जान लेबे का ? बोल छोड़िबे कि नाहीं ?

सरला—(हाथ जोड़कर) प्यारे ! हमारा कुछ दोष—

ल०—फिर ओही बात। हम दोष ओस कुछ नाहीं जनते, जैसे सब कोई रहतै तैसे रहै के होई है, बोल तोरे मन मे का है ?

सरला—मैं क्या कहूँ मेरी तो बुद्धि—

ल०—फिर बके जाथी हम करी सो का करी ? अरे कहे जाइथै कि पढे लिखे का कुछ नाही है अपने लोग जैसे बोलित चालित है

वैसे बोला कर। ससकीरित छाँटथो घर बहैये अपने यार के चिट्ठी लिखिहे।

सरला—बस चुप, फिर ऐसी बात न कहिएगा नहीं तो मैं प्राण दूँगी। मेरा सिवा आपके और कौन यार बैठा है ? मैं,तो आपकी, मेरे जो कुछ हैं आप हैं आपकी आज्ञा मेरे शिरोधार्य।

ल०—(उसके स्वाभाविक तेज से भीत होकर) नाही, हम अउर कुछ नाहीं कहते ऐही कि तूँ अपनिए बोली बोला करो।

सरला—मैं पढ़ना लिखना छोड़ सकती हूँ पर बोली नहीं बदल सकती, जो चाहे सो हो। मेरा अभ्यास ऐसा ही पड़ गया है इससे लाचार हूँ।

ल०—तैं ऐसे न मनबे। जो अब न मनबे तो हम तोरी खूब पूजा करबे। अच्छा ए बखत तो जाइथे हमें काम है फिर समझा जैहै।

(जाता है)

सरला—(रोदन करती हुई) हाय ! ईश्वर ने मेरा जन्म व्यर्थ दिया। मेरा रहना न रहना दोनो बराबर है। हाय ! मेरे माता पिता ने मुझे अच्छी फाँसी दी। मुझ पर क्या घर घर यही दशा देखती हूँ। भारत के भाग्य का यह फल है। हा ! हतभाग्य भारत ! क्या तू इसी दशा मे रहेगा ? क्या फिर से तेरे संतानगण अपनी दशा न सोचेंगे ? हाय ! हमारे देश की ऐसी दुरवस्था इस मूर्खता ही ने की ! हा ! हमारे पूरे भाग फूटे जो ऐसे पति मिले ! इस जीने से तो मरना ही भला है। हम अबलाओं पर सभी सहाय होते हैं। भला और तो सब जो करते हैं सो करते ही हैं ईश्वर जो कि न्यायपरायण और दयालु कहाता है वह भी हम लोगो के लिये निर्दयी और अन्यायी हो गया है !! सभी कोई बली की सहायता करते हैं अबला को कौन पूछेगा !!! हाय ! हमारी यह दशा क्यों

हुई ? जन्मपत्र और बाल्यविवाह से ! यदि जन्मपत्र न होता तो क्यों ऐसे मूर्ख से मेरा विवाह होता ? यदि बाल्यविवाह न होता तो क्यों न मैं स्वयं अपनी भलाई बुराई को समझकर अपने इच्छानुसार पति करती ? मुझको उस समय कौन रोक सकता था ? अब मैं क्या कर सकती हूँ ? हमारा जीवन अब व्यर्थ रोने ही के लिये बन गया ! हाय ! अब मुझे कोई सुख कभी न मिलेगा ! अब मैं क्या हूँ ? केवल एक "दुःखिनी बाला"। (रोती है)

पटाक्षेप

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सरला के पिता का घर

(सरला बैठी है, मोहिनी का प्रवेश)

मोहिनी—प्यारी क्या सोच रही हैं ?

सरला—हिंदुस्तानियों की मूर्खता।

मो०—हिंदुस्तानियों ने क्या मूर्खता की ?

सरला—विधवाविवाह को बुरा कहते हैं और जन्मपत्री देख के ब्याह करते हैं।

मो०—इसमे क्या मूर्खता है ?

सरला—आप पूछती हैं इसमे क्या मूर्खता है ? अभी तक आपको नहीं सूझी हमको इसी के पीछे आप लोगों ने फाँसी दी फिर भी पूछती हैं कि क्या मूर्खता की ? हा ! हमारा रोम रोम ब्राह्मणो को श्राप देता है। हा ! जो विपत्ति हमारे ऊपर पड़ी, किसी पर न पड़ी होगी। इसी जन्मपत्री ने हमारा विवाह

उस कुरूप मूर्ख लड़के से कराया अंत में अब जन्मपत्री क्या हुई मैं क्यों विधवा हुई ? वे पंडित लोग कहाँ गए जिन्होंने जन्मपत्री देखी थी, भगवान् उन लोगों का सर्वनाश करे अगर उस सुंदर बुद्धिमान् लड़के से विवाह होता तो यह दुःख क्यों होता, यदि वह मर भी जाता तो जब तक जीता रहता तब तक तो सुख होता, पर हा ! यह काहे को होनेवाला था, ब्राह्मणों का कहाँ से तार लगता। अब बतलाइए ब्राह्मण लोग क्या कहते हैं उससे तो बहुत अच्छी बनती थी वह क्यों मर गया ?

मो०—प्यारी, कर्म की गति कुछ जानी नहीं जाती। इसमें ब्राह्मणों का क्या दोष है ? तुम उनको मत श्राप दो।

सरला—तो किसको कोसें, वेद पुरान शास्त्र को या ब्राह्मणों को और उनके पाखंड शास्त्र को। जो कर्म में लिखा था वही होने को था तो वह लड़का क्या बुरा था ? जन्मपत्री की क्या आवश्यकता थी ?

मो०—अच्छा अब तो जो होना था सो हो चुका। अब वृथा शोच से क्या ?

सरला—क्यों नहीं अब आगे से यह कुरीति उठा दी जाय तो फिर ऐसा दुःख काहे को हो। हम पर तो जो बीतना था सो बीत ही चुका दूसरी बिचारी तो यह दुःख न सहें, पर यह काहे को होना है। ब्राह्मणो को फिर कौन पूछेगा, चाहे अपनी कैसी ही हानि क्यों न हो परंतु ब्राह्मणों की बात न टले। हा ! ईश्वर तू कहाँ है, क्यों नही सुध लेता, प्रलय क्यों नहीं हो जाता, अब घोर कलियुग आ गया, इन ब्राह्मणों का अत्याचार देखके फिर भी तू क्यों चुपचाप है ?

मो०—मेरी प्यारी, ऐसा नहीं कहना, दोष होता है, ईश्वर का ध्यान करो।

सरला—दोष तो आपको होता है कि इतने होने पर भी आप इन मूर्ख ब्राह्मणों का पक्षपात करती हैं, अच्छा जो हुआ सो हुआ अब आप हमारा फिर से विवाह करवा दीजिए।

मो०—राम राम यह कभी नहीं हो सकता, विधवा विवाह हाय! हाय! तेरी तो इस समय बुद्धि ठिकाने नहीं है, तेरे कहने से हम ऐसा करके दोष भागी हों, तेरे ऊपर तो ईश्वर का कोप है, देख पंडित काशीनाथजी ने जो कलियुग के सबसे बड़े पंडित हैं शास्त्र और पुराण से क्या सिद्ध किया है, चाहे जो हो लाखों विधवा कुकर्म करती और घोर दुःख उठाती क्यों न मर जायँ, पर पंडितजी वही बात रखेंगे, क्यों न हो कलियुग-भूषण यही हैं।

सरला—हा! विधवा विवाह में इन लोगों ने न मालूम क्या दोष निकाला है। यह तो वेद पुराण सब में लिखा है कि विधवा विवाह करना चाहिए। देखिए पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने क्या निर्णय किया पर आप काहे को समझ सकेंगी क्योंकि आप पर तो यह विपत्ति नहीं पड़ी है "जाके पैर न फटे बिवाई, सो का जाने पीर पराई"। भगवान् न करे कि यह विपत्ति पड़े, नहीं तो मालूम होगा। हा! ईश्वर तू कब इस भारतभूमि की सुध लेगा? हा! अब इन ब्राह्मणों की बदौलत मैं कैसे जीने पाऊँगी। भगवान् इनका बुरा करे। यदि किसी पंडित को इस विषय में कुछ कहना हो तो मेरे पास आवे मैं समझा दूँ, युक्ति से, शास्त्र से सभी तरह से विधवा विवाह सिद्ध कर सकती हूँ आपसे क्या कहूँ।

मो०—प्यारी, अब वृथा रोओ मत, चलो दिल बहलावें। तुम ठीक कहती हो परंतु मैं क्या करूँ, मैं भी तो पराधीन हूँ, चलो।

(दोनों जाती हैं)

छठा दृश्य

स्थान—सरला का मकान

(सरला और एक सहेली का प्रवेश)

सरला—हा ! अब तो दूसरा विवाह होना संभव ही नहीं है और कामदेव ने जोर किया अब पतिव्रता धर्म कैसे निबहेगा ? इस शरीर के स्वभावसिद्ध वेग को कौन रोक सकेगा ?

सहेली—आप क्यों सोच करती हैं और क्यों विवाह को हठ करती हैं। क्या संसार में दूसरा और कोई मनुष्य नहीं है क्या पृथ्वी पुरुषों से निर्बीज हो गई ? आप अब आनंद कीजिए न अब आप का पति ही फिर आवेगा न दूसरा विवाह ही होगा और बिचारी हम अबला लोग काम के बान की चोट जिसको विश्वामित्रजी ऐसे महात्मा लोग सह ही न सके और सर्व शक्तिमान शिवजी का जी तो चलायमान हो ही गया कैसे सह सकती हैं ?

सरला—छी ! छी ! अरे दुष्टा ! ऐसी बात कहती है, तेरी जीभ नहीं कट जाती। हाय ! ऐसा दुष्कर्म मैं कभी न करूँगी। क्या सदा जीना है अंत मे तो मरना ही है, आज ही सही क्या तूने मुझे निरी मूर्ख ही समझ लिया है, चल दूर हो, मुझे मुँह न देखा, मैं निस्संदेह आज बिख खाऊँगी।

सहेली—रुष्ट न होइए वृथा प्रान देने से क्या लाभ ? जो काम सहज में हो सके उसको बढ़ाने से क्या काम ?

सरला—रे दुष्टा ! अब न बोल बस चुप रह रे पापिन ! तैं मुझको यह उपदेश करती है। देख ईश्वर तुझको कैसा दंड देता है। मरना तो हई है—एक वह कि धर्म और मान खोकर मरना दूसरा धर्म और मान के साथ, तो फिर थोड़े से आनंद के लिये इतना बड़ा

कुकर्म करके आप तो गए ही सारे कुल को बोरना यह मेरा कर्म नहीं है। तेरे मुख देखने का प्रायश्चित्त है।

हे ईश्वर तू इस अभागिनी को फिर भी जीता रखता है। हा पृथ्वी! तू क्यों नहीं फट जाती कि मैं तुझमें समा जाऊँ। धिक्कार है कि मैं ऐसी बातें सुनकर भी जीती हूँ। (मन मे) इसको बिगाड़ना न चाहिए अभी इसे विष मँगवाना है (प्रकाश) मेरी प्यारी सखी! तुझको आज क्या हुआ है, तेरी बुद्धि कहाँ गई है, तू मेरे साथ लडकई से है, मैंने तुझे अपनी समझा था, तू तो ऐसी न्यायविरुद्ध बात कभी नहीं कहती थी, आज तुझे क्या हुआ है, तू अपने होश की दवा कर, मैं तो मरूँहीगी, यदि तू मेरा सुख चाहे तो मुझे कहीं से बिष ला दे कि जिससे मैं सुख से मर जाऊँ, नही तो मैं गंगा मे डूब मरूँगीअथवा ऊपर से कूद पड़ूँगी या फाँसी लगाऊँगी, बोल जो करना हो सो कर, मुझको पल पल बरस समान बीतता है, जल्दी बोल।

सहेली—प्यारी, तुम्हारा बिछुरना मुझसे न सहा जायगा। चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी प्रानप्रिये! तू मुझसे रुष्ट हो गई, मैं तो केवल परीक्षा के लिए ऐसा कहती थी, क्षमा कर अब मैं जाती हूँ किसी ढब से विष लाती हूँ परतु सखी मुझे बडा क्लेश होता है मैं कैसे अपने हाथ से तुझको विष दूँगी हा! रे विधाता! जो न करे सो थोड़ा है। क्या तूने हम लोगों को इसी क्लेश के लिये संसार मे भेजा था? जिसके साथ मैं सदा खेली आनंद किया उसे अब मैं विष दूँ—हा! ईश्वर तू बड़ा निर्दयी है। क्या करूँ कैसे अपनी प्यारी सखी को विष दूँ परंतु क्या करना होगा, दिए बिना काम नहीं चलता। खैर अब जी कड़ा करके लाती हूँ, उसकी ईश्वरता में किसी का कुछ वश नहीं है जो उसने किया उसे भी करना पड़ा और जो करेगा वह भी करना ही पडेगा।

सरला—प्यारी विलंब मत करो अब विलंब करने का समय नही है अब जल्दी जा, मुझसे अब नहीं सहा जाता, अपने कलेजे को पत्थर सा करके अब तू मुझे विष दे।

सहेली—हा! प्यारी, तू न मानेगी, जान ही देगी, तो अब शोच करने और विलब करने से क्या लाभ? जाती हूँ कहीं से ले आती हूँ। (जाती है और विष लेकर आती है) प्यारी ले तो आई परंतु देते हुए तो छाती फटती है।

सरला—सखी, अब छाती फटने दे देर मत कर, जल्दी दे।

सहेली—नहीं प्यारी, मुझसे नहीं दिया जाता।

सरला—तो फिर मैं छीन लूँगी (छीन लेती है) प्यारी अब मिल ले यही अंतिम भेंट है (गले से मिलकर) कहा सुना क्षमा करना, अब मैं बिदा होती हूँ (घुटने के बल बैठकर दोनों हाथ ऊपर उठा के) हे ईश्वर मैं तो अब चली परंतु मेरी प्रार्थना है कि तू अब अपनी संतानों पर कृपा कर और इस भारतभूमि का अंधकार दूर कर। जगदीश्वर! अब मैं विशेष नहीं कह सकती, यही कहती हूँ अब अपनी भारत की दीन प्रजा पर कृपा कर।

तजि मूर्खता उन्नति करहि निज देश मे शुभ मति रहै।
समुचित विवाह प्रचारहीं कुलनारिगण आनँद लहै॥
फैले सुविद्या देश में गृह कलह मिथ्यालस बहै।
यह दासपन आधीनता तुव कृपा ते छिन मैं दहै॥१॥

[पटाक्षेप

इति

(२) महारानी पद्मावती

यह ऐतिहासिक रूपक संवत् १९३९ मे बना था। पहले पहल यह साहित्यसुधानिधि पत्र मे छपा था, पीछे यह पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ और तब से इसके कई संस्करण हो चुके हैं। इसमे चित्तौर की महारानी पद्मावती का वृत्तांत है।

संपादक

भूमिका

एक दिन मैं "इतिहास तिमिरनाशक" नाम की पुस्तक पढ़ रहा था। उसमे श्रीमती महाराणी पद्मावती का वृत्तांत पढ़कर मेरे चित्त मे सहसा यह बात उत्पन्न हुई कि यदि इस विषय पर हिंदी मे नाटक लिखा जाय तो अत्यत उत्तम हो। यद्यपि उसी समय चित्त मे यह आया कि मैं इस योग्य नही हूँ कि यह गुरुतर कार्य्य कर सकूँ, और कोई विद्वान इस विषय पर कोई ग्रंथ बनाता तो बहुत उत्तम होता, तथापि चित्त के वेग को न रोक सका और फिर चित्त मे विचारा कि क्या हुआ अच्छा न बनेगा तो कुछ चिता नही कोई न कोई विद्वान तो इसको शोधकर मेरे साहस को सफल करेगा। मैंने परम पूज्यवर श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्रजी से आज्ञा लेकर इस नाटक को बनाना आरंभ किया।

यह नाटक "टाड राजस्थान", "इतिहास तिमिरनाशक" और "पद्मावत" (काव्य) की सहायता से लिखा गया है अतएव मैं उक्त ग्रंथ-प्रणेताओं को कोटिश. धन्यवाद देता हूँ।

महाराजा रतनसेन का नाम टाड साहब ने महाराणा भीमसिंह लिखा है परंतु 'इतिहास तिमिरनाशक' और 'पद्मावत' में महाराणा रतनसेन लिखा है इससे यही नाम प्रामाणिक जान पडता है। टाड साहब लिखते हैं कि लक्ष्मणसिंह बहुत अल्प-वयस्क थे, इसलिये महाराणा रतनसेन ही राज्य कार्य्य करते थे। सन् १३०३ ई० मे यह घटना हुई थी पर भट्ट लोगो के मत से १२९० ईस्वी मे। महाराणी पद्मावती का नाम पद्मिनी भी था, वह चौहान जातीय हमीर-

वंश की बेटी थी और महाराणा रतनसेन सिंहलद्वीप (लंका) से विवाह करके इन्हे लाये थे। ये परम सुंदरी थी।

इनको बारह पुत्र थे परंतु देवी के आज्ञानुसार सब मारे गए। 'खुमान रायसा' मे लिखा है कि देवी ने आदेश दिया कि जब तक बारह राजा की बलि मैं न लूँगी न सतुष्ट होऊँगी, तीन तीन दिन पर एक एक राजा गद्दी पर बैठे और लडकर मारा जाय। यदि बारह राजा न मारे जायँगे तो मैं दूसरे दल मे चली जाऊँगी। इसी आज्ञा के अनुसार अरिसिंह जो सबसे बड थे अपने पिता से आज्ञा लेकर सिंहासन पर बैठे और तीसरे दिन मारे गए। फिर अजयसिंह की पारी आई परंतु वे अपने पिता के परमप्रिय पुत्र थे इससे पिता ने न बैठने दिया और उनको केलवारा देश में भेज दिया जहाँ वे सामान्य मनुष्य की नाईं रहने लगे। यहाँ ग्यारह पुत्र और बारहवें स्वयं महाराणा मारे गए और इस प्रकार देवी की आज्ञा पूरी हुई।

अलाउद्दीन ने महाराणा को छल से बंदी कर लिया और कहा कि जब तक पद्मावती को न लाओगे तुम्हें न छोड़ूँगा। पद्मावती ने इस बात को स्वीकार किया और कहा कि मेरे साथ मुझसे अंतिम भेंट करने को बहुत सी स्त्रियाँ दिल्ली तक आवेगी। ७०० डोलियों मे छिपाकर १४०० अस्त्रधारी राजपूतगण और आठ कहारों के स्थान पर आठ सैनिक लेकर दिल्ली आई। वहाँ पर केवल आध घंटे के लिये अपने पति से मिलने गई और उन्हें एक घोड़े पर भगा दिया। जब देर होने पर अलाउद्दीन देखने को आया कि क्यों विलंब हुआ तब पद्मावती को वीर वेश में राजपूतों से घिरी हुई देखा। उस समय कुछ न कर सका और भीतर ही भीतर जलता रहा। पद्मावती चित्तौर आ गई, अलाउद्दीन ने सेना भेजी

जिससे कि चित्तौर के फाटक पर क्षत्रियों से लड़ाई हुई और अंत मे यवन लोग हार गये।

जो लड़ाई चित्तौर के फाटक पर हुई उसमे प्राय: चित्तौर के आधे मनुष्य मारे गए। सिंहलद्वीप के बादल ने जो कि महाराणी पद्मावती के साथ आया था और जिसकी अवस्था उस समय केवल बारह बरस की थी लड़ाई में असीम साहस प्रदर्शित किया था। घर लौट आने पर उसके पितृव्य गोरा की स्त्री ने पूछा कि "वत्स! हमारे प्राणपति ने समर-क्षेत्र मे कैसा व्यवहार किया?" बादल ने कहा—"माता! हमारे पितृव्य ने लड़ाई मे यथेष्ट शत्रु-छेदन किया, मैं केवल उनका अनुगामी मात्र था। उनके हाथ से जो अधमुए छूट गए थे मैंने केवल उन्हीं को मारा।"

गोरा की स्त्री ने फिर फिर यही पूछा और बादल ने यही उत्तर दिया, यह सुन सानंद बादल से बिदा हुई और यह कहकर कि "हमारे प्रभु देर होने से क्रुद्ध होते होगे" जलती चिता मे कूद कर भस्म हो गई।

महाराणा के रण मे जाने के पहले जौहर व्रत का अनुष्ठान किया गया। जब चित्तौर के बचने की कोई आशा नही रहती तब राजपूत वनिताओं के शत्रुओं के हाथ से मानसंभ्रम-रक्षार्थ यह व्रत किया जाता है। राणा के आदेशानुसार उस गह्वर में जहाँ पर कि यह व्रत होता है अग्नि प्रज्वलित की गई और सब राजपूत स्त्रियों ने उसमे प्रवेश किया। इसमे रमणीराजिरूप मणिमाला की शिरोमणिस्वरूप राजमहिषी पद्मावती ने प्रातिवर्तिनी होकर प्रयान किया। चित्तौर के वीर लोग नीरव खड़े होकर देखने लगे कि उनकी ममतामयी, जननी, रमणी, भगिनी और नंदिनी प्रभृति सहस्र सहस्र अंगनागन श्रेणीबद्ध होकर काल के कवल स्वरूप इस गह्वराभिमुख जाती

हैं ! पाठकगण ! तनिक उस समय की अवस्था को विचारिए ! अहा ! राजपूतों का धैर्य, धर्म सभी कैसा विचित्र है। उस समय का चित्र जब चित्त में आता है तो आँखों से पानी टपकने लगता है, वह चितानल चित्त मे आग लगा देती है और एक विचित्र दशा हो जाती है। प्रस्ताव बढ़ने और पाठको का समय नष्ट होने के भय से विशेष नहीं लिख सकता पाठकगण स्वयं विचार लेगे।

अंत मे अलाउद्दीन विजयी हुआ और चित्तौर भर मे कोई भी जीवित न था। उस चितानल का धूँआँ देखकर जिसमे कि पद्मावती भस्म हुई थी—जिसके लिये उसने इतनी क्षति स्वीकार की थी और जिसके मिलने की आशा मे उसने बड़े ही उत्साह से नगर में प्रवेश किया था—वह भीतर भीतर दग्ध हो गया और सारे नगर को ध्वंस करने की आज्ञा दी। पल भर में वह चित्तौर जिसमें कि बड़े बड़े प्रतापी महाराणा राज्य कर गये थे और जो कि त्रैलोक्य मे प्रसिद्ध था खंडहर हो गया, केवल एक प्रासाद नहीं छूआ जिसमे पद्मावती रहती थी।

जिस शिशोदिया वंश ने बारह सौ वर्ष तक चित्तौर का निष्कंटक राज्य किया था उसी के एकमात्र पुत्र धुरंधर राणा अजयसिंह फिर से चित्तौर जय करने की आशा से थोड़े से विश्वासी अनुचर लेकर समय की प्रतीक्षा करते हुए साधारण मनुष्य की नाईं केलवारा देश मे रहने लगे, उन्होंने अपने पिता के आज्ञानुसार अपने मरने के समय अपने ज्येष्ठ भ्रातुष्पुत्र हमीर को अपना स्थानापन्न किया जिन्होने चित्तौर को पुनः स्वाधीन किया और बसाया।

इस राजवंश का विवरण समस्त पढ़ने योग्य है। आर्य मात्र को चाहिए कि एक बेर मेवार का इतिहास अवश्य पढ़ें।

इस वंश मे अब वर्तमान महाराणा का नाम श्री महाराणा सज्जनसिंह है। ये एक सुंदर, वीर, युवा पुरुष हैं। सर्कार अँगरेज

बहादुर ने अपनी मित्रता दृढ़ करने के लिये इन्हे जी० सी० एस० आई० की पदवी दी और इक्कीस तोपों की सलामी की। ये जब बारह बरस के थे तब हिंदुस्तान मे प्रिंस आफ वेल्स आए थे और बबई मे दर्बार हुआ था, उस समय इनकी कुर्सी बडोदा के नीचे रखी गई, इसमे इन्होने अपने वश का अपमान समझकर अपने वंश की वीरता दिखलाई। इनकी उस समय की वीरता से सब लोग कॉप उठे और दर्बार खड़े खड़े ही हो गया। इसके सिवाय भी बहुत सी बातें इन्होने विलक्षण की। इनकी सहायता से "सारसुधानिधि" और "मित्रविलास" इत्यादि कई पत्र बंद होते होते बच गए और कई एक पुस्तकें बनी। इन्होने अपनी राजधानी मे "सज्जन कीर्ति सुधाकर" पत्र प्रकाशित कराया है, प्रजा इनसे बहुत ही प्रसन्न है और बहुत चाहती है। इनके गुणो की सारे संसार मे प्रसिद्धि है, इनके मंत्रियों मे राय पन्नालाल बहादुर, कविराजा श्रीश्यामलदासजी, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पड्या प्रभृति कई एक कृतविद्य महाशय हैं।

इस घटना के पहले और पीछे बाप्पा रावल, राणा राजसिह, प्रतापसिह प्रभृति वीर पुरुष प्रायः हुए हैं। अकबर बादशाह ने हिदुओं से बेटी लेने देने का व्यवहार करके सारे भारतवर्ष को मुसल्मान बनाना चाहा था और जयपुर जोधपुर प्रभृति सब राजाओं ने उसे बेटी दी किंतु इस वंश ने आज तक कभी बेटी न दी और अपने परम पवित्र कुल मे कोई दाग ही न लगने दिया, इसके लिये अकबर से और महाराणा प्रतापसिह से घोर युद्ध हुआ था। इसका वृत्तांत देखने योग्य है, यदि पाठकों की रुचि होगी तो इस विषय पर भी कुछ लिखा जायगा।

श्री राधाकृष्णदास

उपक्रम

पूज्यपाद भाई साहब बाबू हरिश्चंद्रजी भारतेंदु ने जब "नील-देवी" लिखा, मुझसे आज्ञा की कि भारतवर्ष में अब ऐसे ही नाटकों की आवश्यकता है जो आर्य्य संतानों को अपने पूर्व पुरुषों का गौरव स्मरण करावे अतएव तुम कोई नाटक इस चाल का लिखो। उनकी आज्ञा पाते ही मैंने "महारानी पद्मावती" रूपक मे हाथ लगाया और इसे पूर्ण करके पूज्य भाई साहब को दिखलाया। उन्होने इसे बहुत पसंद किया और नाना स्थानों पर शुद्ध करके अपनी सम्मति के साथ स्वर्गवासी श्री महाराणा सज्जनसिंह बहादुर की सेवा में इसे उनके नाम समर्पण करने की आज्ञा प्राप्त करने के लिये भेज दिया परंतु दुर्भाग्यवश महाराणा साहब के असमय संसार-त्यागी होने से रह गया।

कुछ काल हुआ मित्रवर कुँवर फतहलाल साहब ने इसे मँगवाया और देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और श्री महाराणा फतहसिंह बहादुर की सेवा में इसे पेश करके उनके चरणों में समर्पण करने की आज्ञा दिलाई।

मेरी इच्छा थी कि इसे पृथक् उत्तमतापूर्वक छपवा कर प्रकाश करूँ परंतु इसी अवसर मे श्री बाबू देवकीनंदनजी ने "साहित्य-सुधानिधि" मासिक पत्र प्रकाश किया और इस ग्रंथ को आग्रहपूर्वक उसमें प्रकाशित किया, इसलिये आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ। यद्यपि इस नाटक की रचना-प्रणाली सुंदर नहीं है परतु अपने पूर्व-पुरुषों की गौरवयुक्त कथा तथा अपने सेवक का परिश्रम समझकर कदाचित् सज्जन जन इसे सादर ग्रहण करें इस आशा से प्रकाशित

करने का साहस किया। यदि इसकी प्रणाली आप लोगों को रुचेगी और कृपापूर्वक मुझे उत्साह देंगे तो शीघ्र ही कोई दूसरा नाटक वा उपन्यास ऐतिहासिक लिखने का साहस करूँगा।

मैं अपने माननीय मित्र कुँअर फतहलाल साहब को कोटिश: धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपा से इस गुणहीन ग्रंथ ने श्रीमदार्यकुल-कमल-दिवाकर के चरणों मे समर्पित होने का गौरव पाया।

—श्रीराधाकृष्ण दास।

दूसरे संस्करण की उपक्रमणिका

इस नाटक को मैंने सत्रह अठारह वर्ष की अवस्था मे बनाया था इसलिये इसके पाठ में कुछ परिवर्तन करना उचित न समझकर ज्यों का त्यों रहने दिया है, केवल भूमिका (उसी समय की लिखी) छूट गई थी उसको लगा दिया है।

मुझे अत्यंत आनंद है कि मेरी तुच्छ लेखनी का सज्जन जन ने आदर किया और इसके द्वितीय संस्करण का अवसर आया। आशा है कि भाषा-रसिक सज्जनों की ऐसी ही कृपादृष्टि सदा बनी रहेगी।

—श्रीराधाकृष्ण दास।

उदयपुर के महाराणाओं की वंशावली

यह वंशावली मुझे उदयपुर के दीवान श्रीयुत राय पन्नालाल बहादुर के सुयोग्य पुत्र मित्रवर कुँअर फतेहलाल जी मेहता द्वारा प्राप्त हुई है, इसका प्रकाश करना आवश्यक जानकर धन्यवादपूर्वक प्रकाशित की जाती है।

दोहा

बापा १ गुहिल रु २ भोजनृप ३ रावल शील ४ चितौर ।
कालभोज ५ ताको तनय भर्तरि भट ६ नृप और ॥ १ ॥
श्री अघसिंह महीपति ७ समहायक ८ सुत तास ।
श्री खुमान ९ अल्लट १० सुखद नरवाहन ११ नृप खास ॥२॥
शक्तिकुमार रु १२ शुचिवरम १३ प्रभु नरवर्म १४ कृपाल ।
कीर्त्तिवर्म १५ वैरड कहे १६ बैरीसिंह १७ नृपाल ॥ ३ ॥
विजयसिंह १८ अरिसिंह लौं १९ चौड़सिंह २० धर छत्र ।
विक्रम सिंह २१ अमंद कुल चेत्रसिंह २२ सुत तत्र ॥४॥
सुत ताके सामतसी २३ जाके सिंह कुमार २४ ।
मथनसिंह २५ अरु पद्मसी २६ जैत्रसिंह २७ जुधकार ॥५॥
तेजसिंह २८ ताके तनय समरसिंह २९ महिपाल ।
रत्नसिंह ३० अरु कर्णसी ३१ राहप ३२ रान भुआल ॥६॥
नरपति ३३ दिनकर ३४ जसकरण ३५ नागपाल ३६ महिनाथ ।
पूर्णपाल ३७ पृथिपाल ३८ भे माणसिंह ३९ समराथ ॥७॥
भीमसिंह ४० जयसिंह ४१ गढलच्मणसिंह ४२ अधीस ।
अरसी ४३ अजय ४४ हमीर ज्यों ४५ खेत्र ४६ लच्छ ४७ धर ईस॥८॥
मोकल ४८ कुंभ रु ४९ रायमल ५० सांगा ५१ रत्न सधीर ॥ ५२ ॥
विक्रम ५३ उदय ५४ प्रताप बलि ५५ अमर ५६ कर्ण ५७ रणधीर ॥९॥
जगतसिंह ५८ अरु राजसी ५९ जयसी ६० अमर ६१ अमंद ।
संग्र ६२ जगत ६३ पातल ६४ भए राजसिंह ६५ जिहि नंद ॥ १० ॥
अरसी ६६ और हमीर ६७ नृप भीमसिंह ६८ कुलभान ।
लिए दान अगनित कविन जाके तनय जवान ६९ ॥११॥
सरदार ७० और सरूपसी ७१ शंभु रान ७२ कुलजोत ।
तिनके सज्जन कुल तिलक अब फतमाल ७४ उदोत ॥१२॥

१ महारावल बाप्पा—इन्होंने सन् ७०० ईस्वी मे मोरियों से चित्तौर लिया।
२ रावल गुहिल।
३ रावल भोज।
४ रावल शील।
५ रावल कालभोज।
६ रावल भर्तरिभट।
७ रावल अघसिंह।
८ रावल समहायक।
९ रावल खुमान।
१० रावल अल्लट।
११ रावल नरबाहन।
१२ रावल शक्तिकुमार।
१३ रावल शुचिवर्म।
१४ रावल नरवर्म।
१५ रावल कीर्तिवर्म।
१६ रावल वैरड़।
१७ रावल बैरीसिंह।
१८ रावल विजयसिंह।
१९ रावल अरिसिंह।
२० रावल चौंड़सिंह।
२१ रावल विक्रमसिंह।
२२ रावल चेत्रसिंह।
२३ रावल सामंतसिंह।
२४ रावल कुमारसिंह।
२५ रावल मथनसिंह।
२६ रावल पद्मसिंह।
२७ रावल जैत्रसिंह।
२८ रावल तेजसिंह।
२९ रावल समरसिंह—कहते हैं कि दिहली मे शहाबुद्दीन की लड़ाई मे पृथ्वीराज के साथ थे, बड़े वीर थे।
३० रावल रत्नसिंह।
३१ रावल कर्णसिंह।
३२ महाराणा राहप।
३३ महाराणा नरपति।
३४ महाराणा दिनकरण।
३५ महाराणा जसकरण।
३६ महाराणा नागपाल।
३७ महाराणा पूर्णपाल।
३८ महाराणा पृथ्वीपाल।
३९ महाराणा मागसिंह।
४० महाराणा भीमसिंह।
४१ महाराणा जयसिंह।
४२ महाराणा गढ़लक्ष्मणसिंह।
४३ महाराणा अरसी।
४४ महाराणा अजयसिंह।
४५ महाराणा हमीरसिंह।

४६ महाराणा चैत्रसिंह।
४७ महाराणा लक्षसिंह।
४८ महाराणा मोकल।
४९ महाराणा कुंभा—गुजरात फतह किया, कुमलगढ़ का किला बनाया, चित्तौर में कीर्ति-स्तंभ बनवाया।
५० महाराणा रायमल्ल।
५१ महाराणा सांगा—बड़े बहादुर थे, एक लड़ाई में ८४ घाव लगे थे।
५२ महाराणा रत्नसिंह।
५३ महाराणा विक्रमसिंह।
५४ महाराणा उदयसिंह—उदयपुर बसाया।
५५ महाराणा प्रतापसिंह—बड़े वीर थे, अकबर के साथ हलदी घाटी पर लड़ाई हुई थी।
५६ महाराणा अमरसिंह।
५७ महाराणा कर्णसिंह।
५८ महाराणा जगतसिंह—शाहजहाँ जब शाहजादा था, रण के समय में इनके यहां शरण रहा।
५९ महाराणा राजसिंह—राजसमुद्र तालाब बनाया, १ करोड़ व्यय हुआ।
६० महाराणा जयसिंह—जय समुद्र बनाया—९ मील लंबा ५ मील चौड़ा।
६१ महाराणा अमरसिंह।
६२ महाराणा संग्रामसिंह।
६३ महाराणा जगतसिंह।
६४ महाराणा प्रतापसिंह।
६५ महाराणा राजसिंह।
६६ महाराणा अमरसिंह।
६७ महाराणा हम्मीरसिंह।
६८ महाराणा भीमसिंह।
६९ महाराणा जवानसिंह।
७० महाराणा सरदारसिंह।
७१ महाराणा स्वरूपसिंह।
७२ महाराणा शंभूसिंह।
७३ महाराणा सज्जनसिंह।
७४ महाराणा फतहसिंह।

महारानी पद्मावती

(ऐतिहासिक दृश्य—रूपक)

अथ प्रस्तावना

अद्‌भुत नाटक रूप सबै संसार बनायो।
अति विचित्र परलोक यवनिका तहँ सरकायो॥
पात्र जीव सब बने नचावत अनुपम भायो।
राखि सबै स्वाधीन खेल अद्‌भुत दिखरायो॥
माया रूपी नटिन बस जग भूल्यो सब मोहमय।
मोहत अपुने खेल जन नट-नागर जय जयति जय॥

इति नांदी

[सूत्रधार का प्रवेश]

सूत्र०—(घूमकर और चारों ओर देखकर) आज इन महाशयों ने नाटक देखने के लिये कृपा की है, पर मुझे तो इस समय कोई ऐसा नाटक ध्यान मे नहीं आता जिसे दिखाकर मैं इन लोगों को प्रसन्न करूँ। (सोचता है)

[नेपथ्य में]

(झिंझौटी—जलद—तिताला)

धन धन भारत की छत्रानी।
बीरकन्यका बीरप्रसवनी बीरबधू जग जानी॥
सतीशिरोमणि धर्मधुरंधर बुधि-बल-धीरज-खानी।
इनके यश की तिहूँ लोकन मे अमल ध्वजा फहरानी॥ १॥

सूत्र०—अहाहा ! भली याद दिलाई, आज किसी वीर स्त्री का पवित्र चरित्र इन लोगों को दिखलाना चाहिए, यह स्त्री भी किसी ऐसे वीर वंश की होनी चाहिए जिसके वंश मे सदा से वीर ही होते हों। (कुछ सोचकर) इसमें बहुत सोच विचार क्या ? मेवार राजवंश से पवित्र और वीर वंश इस पृथ्वी के तल पर कौन दूसरा वंश है ? जिस वंश के शिरोमणि साक्षात् भगवान् रामचद्रजी हुए हैं उसकी समता कौन कर सकता है। इस पवित्र वंश की मर्य्यादा महाराज हरिश्चद्र, महाराणा प्रतापसिंह, महाराणा राजसिंह प्रभृति महापुरुषों ने बढ़ाई है और इसी वंश मे हम लोगो के परम श्रद्धापात्र महामान्यवर, सकलगुणनिधान, परम विद्वान्, हिंदी भाषा के एकमात्र सहायक, परम उदार वीरशिरोमणि श्री १०८ महाराणा सज्जनसिंह बहादुर जी० सी० एम० आई० हुए हैं, जिनकी प्रशंसा करना सहज नही है। इन्हीं ने अपनी बाल्यावस्था मे श्रीमान् प्रिंस आफ वेल्स को बंबई के दर्बार मे अपने चमत्कार गुणों से मोहित किया था और इन्ही की सहायता से "सारसुधानिधि", "मित्रविलास", "हिंदीप्रदीप" प्रभृति हिंदी के पत्र जो कि इस समय प्रथम श्रेणी मे गिने जाते हैं जी रहे हैं। इस समय भी इस वंश मे वर्तमान महाराणा राजकुलतिलक श्री १०८ महाराणा फतहसिंहजी बहादुर इस पुण्यभूमि भारत की शोभा को बढ़ाते हैं। इनकी सच्चरित्रता और लोगों के लिये एक उत्तम उदाहरण है। इनके ऐसा धार्मिक, सच्चरित्र, जातिहितैषी और सर्वगुणसंपन्न महान् पुरुष राजकुल में होना अत्यंत ही कठिन है। इनके सद्गुणों का वर्णन करना अत्यंत ही कठिन काम है। जगदीश्वर इन्हे चिरायु करके भारत का गौरव बढ़ावै। इसी वंश में कृष्णाकुमारी, सरोजिनी, पद्मावती प्रभृति कई एक स्त्रियाँ भी अति प्रसिद्ध हुई हैं। अहा ! अच्छा स्मरण हुआ,

आज हम महारानी पद्मावती के पवित्र चरित्रों को दिखाकर अपनी दर्शक-मंडली को प्रसन्न करेगे। (जाता है)

इति प्रस्तावना

[नेपथ्य मे]

जयति पति-प्रेम-रस-मगन नित प्रेमनिधि
सती-कुल-तिलक रानी जु पद्मावती।
बीर-रस-पूरि गंभीरता-आगरी
देश-पावन-करन सबै गुण भावती॥
आर्य-पथ-गामिनी परम अभिरामिनी
कामिनी-कुल-कमल-सुजस नव छावती।
जयति आनंदकरन जगत-पावनकरन
नित बिमल सुजस सब सुरबधू गावती॥ १॥

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

चित्तौर का राजदर्बार

(बहुत से राजपूत सर्दार, प्रधान मंत्री और महाराणा रत्नसेन बैठे हैं)

[नेपथ्य में गान]

सबै मिलि भारत की जय गाओ ।
मारि मारि इन दुष्ट यवनगण तुरतहि दूर भगाओ ॥
करि निष्कंटक या भारत को प्रेमसुधा बरसाओ ।
जय जय धर्म जयति जय भारत यहै प्रवाह बहाओ ॥ १ ॥

रत्नसेन—अहा ! आज बड़े ही आनंद का दिन है, भगवान् एकलिंगजी* ने अपने कुल का गौरव रख लिया, उन दुष्टों को यह विदित करा दिया कि राजपूतों की ओर टेढी दृष्टि से देखना कैसा होता है । जो उसमे मनुष्यत्व का कुछ भी अंश होगा तो फिर कभी क्षत्रियों का सामना करने का साहस न करेगा ।

मंत्री—महाराज ! शिक्षा तो ऐसी ही दी गई है कि आजन्म न भूले, यदि उनके अभाग्य हों तो कदाचित् भूल जायँ ।

रत्न०—इसमें तो संदेह नहीं ।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—महाराज की जय ! आज के युद्ध में अपनी ही जय रही, शत्रुओं के कई हजार मनुष्य खेत रहे और चार पाँच सौ के अनुमान बंदी भी हो गए हैं, अपने चार सौ वीर काम आए जिनमे वीरसिंह, धर्मसिंह, रामसिंह प्रभृति कई एक प्रधान वीरगण भी थे ।

---

* उदयपुर में प्रधान देवता एकलिंगजी ही है।

रत्न०—और तो सब अच्छा ही हुआ पर खेद इतना ही है कि हमारे हाथ के कई रत्न निकल गए।

एक सर्दार—महाराज! कुछ चिंता नहीं, उनके धन्य भाग्य कि उनका शरीर अपनी जन्मभूमि के काम आया। अहा! उन्हें साक्षात् स्वर्गलोक प्राप्त हुआ। क्या हम लोगों के भाग्य मे भी यह सुख लिखा है?

रत्न०—इसमे क्या संदेह है? यदि यह पामर शरीर अपनी मातृभूमि के कुछ भी काम आवे तो इससे बढकर और पुण्य का क्या फल है? अच्छा जो होना था सो हुआ, अब आगे को खूब सावधान रहना चाहिए, क्योंकि ये दुष्ट यवन यों सहज मे नहीं माननेवाले हैं, अवश्य फिर उपद्रव मचावेगे।

मंत्री०—कुछ चिंता नहीं महाराज! आने दीजिए। इस बेर भी यदि भगवान् एकलिंग की कृपा होगी तो वह हाथ बैठेगा कि फिर कभी इधर मुँह न करेगा।

रत्न०—ईश्वरेच्छा सब पर प्रबल है, जो होगा वह देखा जायगा, आज की विजय के आनंद मे उत्सव होना बहुत ही आवश्यक है। मंत्री! तुम इसकी घोषणा कर दो और मैं भी थोडी देर मे अभी आता हूँ।

मन्त्री—जो आज्ञा महाराज की। (सभों का प्रस्थान)

[नेपथ्य मे]

हाय अब भारत दुरदिन आए।
चारहुँ दिशा दीखियत नीचहि यवन म्लेच्छगण छाए॥
ग्रसन चहत सब राहु दुष्टमति आर्य सूर कुँभिलाए।
हे भारत हित आरत क्यों अब वाहि गहत नहि धाए॥१॥

द्वितीय दृश्य

अलाउद्दीन का शयनागार

[अलाउद्दीन बैठा है]

अलाउ०—आह! उस रानी की तारीफ सुनते सुनते तो नाकों में दम आ गया, मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? किस तरह उसे देखूँ और पाऊँ? (कुछ ठहरकर) जो हो, मैं इस बात के लिये कसम खाता हूँ, कि उस रानी को जरूर जरूर अपनी बेगम बनाऊँगा। मुझको उम्मीद होती है कि बहुत जल्द इस काम में कामयाब हूँगा। क्यों नहीं, दुनिया मे ऐसा कौन सा काम है जो मैं न कर सकूँ। दरहकीकत मैं दूसरा सिकंदर हूँ और क्या मजाल है जो मेरे सामने कोई चूँ भी कर सके। तमाम दुनिया के बादशाह मेरे गुलाम हैं, मैं जो चाहूँ करूँ, तब मुझको इतनी फिक्र से क्या काम है? क्या मकदूर है राणा का जो मेरा हुक्म न माने! मैं अभी उसको खत लिखता हूँ कि अगर वह अपनी भलाई चाहे तो पद्मावती मुझे दे दे, नहीं तो उसको खाक मे मिला दूँगा। साथ ही इसके एक खत रानी को भी लिखना चाहिए कि तुम हमारे पास चली आओ, हम तुम्हें अपनी बेगम बनावेगे। आखिर तो औरत ही है, जरा सी लालच से खुश हो जायगी, उसके लिये इतनी तरद्दुद की कोई जरूरत नहीं है उसे तो बात की बात मे ले लूँगा मगर इस बारे में अपने दोस्तो से भी सलाह ले लेनी चाहिए। हश! वे लोग क्या जानें जो सलाह देंगे? खुदाताला ने हमारे मुकाबले मे सभी को अक्ल, दानाई, इल्म, मुल्क, जर, हशमत, खूबसूरती और कूवत वगैरह मे कम बनाया है, वे बेचारे क्या हैं जो मुझको राय देंगे? यह बात कभी मुमकिन नहीं है कि पद्मावती मुझे देखे और मुझ पर आशिक न हो जाय। खैर, इन बातों की इस वक्त कोई जरूरत

नहीं है, दोस्तो से राय पूछ लेनी चाहिए, क्योकि करना न करना तो अपने हाथ है। मुझे दम भर भी चैन हासिल न होगी जब तक कि मैं उस माह से चेहरे को न देखूँगा और उस पाक खानदान को नापाक न करूँगा।

[दो मुसाहिबो का प्रवेश]

अला०—क्यों जी, तुम लोगों की उस बारे मे क्या राय है? हम, तुम दोनों को अपना निहायत दोस्त समझकर यह बात कहते हैं, देखो जिसमे यह भेद हरगिज जाहिर न हो।

दो०—हुजूर यह मुमकिन नहीं कि हम लोगों के जरिये से कोई बात जाहिर हो सके।

अला०—बेशक इसमे कोई शक नहीं मगर यहतयातन् कह दिया। तुम लोगो के भरोसे हम बड़े बड़े कामो मे हाथ डाल देते हैं और बराबर कामयाब होते हैं। तुम लोगो की बदौलत हम इतनी बड़ी बादशाहत करते हैं। यह कभी मुमकिन नहीं कि तुम लोगों से कोई बात जाहिर हो सके। मैंने यहतयातन् कह दिया उसका कुछ ख्याल न करना।

दोनों—हुजूर की इनायत हम गुलामों पर हद से ज्यादे है गो कि फिदवियान इस लायक नहीं हैं, अगर हुजूर ही इनायत न फर्मा-येंगे तो और कौन इनायत फर्मा सकता है।

अला०—खैर ये सब बाते रहने दो, मतलब की बाते इस वक्त सोचनी चाहिएँ। तुम लोगों की राय क्या है?

१ मु०—हुजूर की राय मुकद्दम है, इस बारे मे हुजूर ने जो राय सोची है वह बहुत ठीक है।

२ मु०—हुजूर की राय बेशक दुरुस्त है।

अला०—इसमे कोई शक नहीं कि मेरी राय बहुत ही उम्द: है। इस राय के सिवाय भी मेरी राय हमेशा ही दुरुस्त होती आई है। पर ताहम तुम लोगों को भी अपनी अपनी मुनासिब राय देनी चाहिए।

२ मु०—हुजूर ने जो राय सोची है वह उम्द. है और हुजूर ने उसका अंजाम भी सोच ही लिया होगा क्योंकि कोई काम बिला अंजाम सोचे न करना चाहिए।

अला०—अजी इस छोटी सी बात मे अंजाम सोचने की क्या जरूरत है? ऐसी बातें तो रोज ही हुआ करती हैं।

२ मु०—खुदावंद-निआमत आप बजा फरमाते है मगर इस गुलाम की अक्लनाकिस मे तो यह आता है कि अंजाम सोचना जरूर है, आइंद: हुजूर मालिक हैं।

अला०—(कुछ क्रोध से) फिर वही फजूल बातें करते हो, इसमे कौन सी बडो भारी बात अंजाम सोचने की है, तुम्हीं बतलाओ।

२ मु०—(हाथ जोड़कर) गरीबपरवर जरा मेरी बात पर गौर कीजिए, अगर राणा और रानी ने आपकी दरखास्त न कबूल की तो क्या कीजिएगा?

अला०—(क्रोध से कुछ मुस्कुराकर) तुम निरे बेवकूफ हो। भला कभी यह मुमकिन है कि वह हमारा हुक्म न माने।

२ मु०—हुजूर फर्ज किया जाय कि अगर न माने तब क्या किया जायगा?

अला०—(क्रोध से) जो हाल तुम्हारा किया जाता है वही। (नेपथ्य की ओर देखकर) कोई है—इधर आओ (नेपथ्य से) जो हुक्म हुजूर।

[दो सैनिकों का प्रवेश]

दोनों सै०—क्या हुक्म होता है?

अला०—(दूसरे मुसाहिब की ओर देखकर) इस कंबख्त को पकड़कर ले जाओ, इस वक्त कैदखाने मे रखो, कल सुबह तजबीज की जायगी। इस वक्त यह मुनादी करा दो कि बेअदबी के कुसूर मे इस कबख्त का कल सुबह इंसाफ किया जायगा। (मुसाहिब से) जनाबेमन् यही हालत उसकी भी की जायगी।

२ मु०—(हाथ जोडकर) हुजूर मेरा कुछ भी कुसूर नही है, जरा मेरी बात सुन ले।

अला०—चुप रहो, चले जाओ, खबरदार चूँ न करना।

२ मु०—(स्वगत) खुदाया! इस जुल्म पर ख्याल कर और खल्क को इस जालिम के जुल्म से बचा। उफ यह जुल्म! गजब खुदा का, कबख्त बेफाएद मेरी जान ....

अला०—अब क्यों इसको खडा रखा है? फौरन ले जाओ, हम बदमाश का चेहरा नहीं देखना चाहते! (दोनो सैनिक उसे पकडकर खीचते हुए ले जाते है) उफ! इस कंबख्त ने दिमाग खाली कर दिया। नालायक नमकहराम इस कंबख्त को मुझसे भी ज्याद अक्ल हो गई!!

१ मु०—हुजूर इस कबख्त की बातों को सोच सोचकर क्यों रंज उठाते हैं? उस नामाकूल की बहुत ही मुनासिब सजा हुई। दरहकीकत उसने निहायत बेजा काम किया।

अला०—खैर, मैं आज ही राणा को खत लिखूँगा, देखा चाहिए क्या जवाब आता है।

१ मु०—हुजूर इस नेक काम मे देर करने की कोई जरूरत नही है, आज ही खत जाना चाहिए, इस वक्त हुजूर को बडी तकलीफ हुई है जरा आराम फरमाइए।

अला०—तुम ठीक कहते हो, खत आज ही जाना चाहिए।

[पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

राजपथ

[दो मनुष्यों का प्रवेश]

१ला—कहो भाई आजकल क्या करते हो। क्या दशा है ?

२रा—क्या बतावें, फाकों से जान जाती है, कहने से जान का डर, हाय ईश्वर, कब इस अन्यायी बदमाश से हम लोगों की जान छुड़ावेगा ? उह ! अति हो गई ! अब तो नहीं सही जाती। हाय इस समय कोई ऐसा नहीं है जो हम लोगों की रक्षा करे! हे भारत-भूमि, क्या तू अब ऐसी निस्तेज हो गई कि इतने अत्याचार होने पर भी इन पापी यवनों को नहीं भस्म कर डालती !!

१ला—भाई अब तो हम लोग नहीं बच सकते, हम सभी की जान गई, हाय ऐसा अत्याचार तो कभी कान से भी नहीं सुना। हमको तो घर जाते लाज लगती है। जाते ही लड़के "बाबा बाबा" कहके दौड़ते हैं और कहते हैं, बड़ी भूख लगी है कुछ खाने को दो। हाय ! उस समय मारे दुःख के प्राणांत कष्ट होता है ! हाय ! जिन बालकों के बोलने से सारे संसार को सुख होता है उन्हीं बालकों के दीन शब्दों से कलेजा फटा जाता है !!

२रा—भाई कुछ न पूछो, ऐसा नाकों मे दम आ गया है कि कौन दिन ऐसा हो कि हमे मौत आवे (ऊर्द्ध्वश्वास) हा ! एक दिन था कि हम लोग चैन से अपना समय व्यतीत करते थे, एक दिन यह है कि—(रोता है)

१ला—उह ! अब तो भारतवर्ष की यह दशा नहीं देखी जाती।

दोनों—रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥

सबके पहले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥
सबके पहले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहले विद्याफल जिन गहि लीनो॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥
जहँ भए शाक्य हरिश्चद्र नहुष जयाती।
जहँ राम युधिष्ठिर व्यासदेव सर्य्याती॥
जहँ भीम करण अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥
अब जहँ देखहु तहँ दुख ही दुःख दिखाई।
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
लरि वैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई यवन सैन पुनि भारी॥
तिन नास्यो बुधिबल विद्याधन बहु बारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी॥
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥

हे ईश्वर, अब बहुत हुआ अब तो सुध लो। हे भारतमाता! अब क्यों नहीं निर्लज्जता छोड़ती? हे भारतवासी महाराज लोग! क्यों नहीं अपने पूर्वजो का स्मरण करते? हे भारतवासी आर्य्य-भ्रातृगण! अब क्यों नहीं अंतिम साहस करते? अब क्या बाकी है? अब और कौन आफत झेलनी है? इस जीने से क्या मरना अच्छा नहीं है? हा दुष्ट अलाउद्दीन तुझ पर क्यों नही पत्थर पड़ते? तू क्यों नही मरता? तुझसे संसार मे क्या लाभ है?

हे ईश्वर ! अब शीघ्र ही सुध ले। इंद्रदेव ! तुम क्यों नहीं अपने मेघों से ससार को डुबा देते ? क्या तुम्हारा बल उसी समय था कि जब श्रीकृष्णचद्र भगवान् ने तुम्हारा गर्व प्रहार किया था ? आओ इस समय आओ, इस समय कोई तुम्हारा सामना नही कर सकता, शीघ्र ही आओ—हाय! हम लोगों की बात कोई भी नहीं सुनता।

२रा—भाई अब क्या करें ? कोई सुनता ही नहीं, चुप रहो, कहीं कोई आ न जाय, नही तो आज ही फाँसी पर चढाए जायँगे।

१ला—हाँ ठीक कहते हो, अब चुप रहना चाहिए। एँ ! वह देखो एक मुसलमान आता है। हाय ! सर्वनाश हुआ।

[एक मुसलमान कर्मचारी का प्रवेश]

मुस०—क्यों नालायको ! क्या शोर मचा रहे थे ? कंबख्तो! क्या तुम लोगों को बादशाह का डर नहीं है ? बोलो क्या शोर कर रहे थे ? बोलता क्यों नहीं है गदहा-नालायक !!

१ला—सावधान रहो गाली मत दो, हम लोग जो चाहते थे बातें करते थे, तुम्हारा क्या ? चुप रहो विशेष न बोलो।

मुस०—पाजी सुअर कहता है चुप रहो ! कंबख्त जानता नहीं कि हुजूर बादशाह सलामत का हुक्म है कि जो हमारे या हमारे दीन के बरखिलाफ बोले उसको मय उसके खांदान के नेस्तनाबूद कर डालो। हम लोग उसी हुक्म की रू से तुम दोनों को मय घर बार के नेस्तोनाबूद कर देंगे। अब भी अच्छा है अगर तुम लोग सौ रुपए मुझे दो और सच्चा दीन इसलाम कुबूल करो तो जान बच जाय।

१ला—चुप रह दुष्ट ! हम कभी अपना धर्म न छोड़ेंगे, जान रहे या जाय !!

२रा—मरना स्वीकार है पर धर्म छोड़ना स्वीकार नहीं !!

मुस०—भाई हिदू भी बड़े ही बेवकूफ होते हैं! अपनी जान को तो कुछ समझते ही नही। अपनी जान के आगे मजहब कंबख्त क्या चीज है? मुझे तो कोई सौ रुपए दे मैं अभी मजहब छोडता हूँ। हहह हिदू लोगो को कुछ भी अक्ल नही होती! अच्छा रुपया भी होगा या नही?

दोनों—रुपया हम लोगो के पास कहाँ?

मु०—तब फिर तुम लोगो को हम न छोड़ेगे। जरूर बजरूर आज फाँसी पड़ोगे।

दोनों—आहा! आज बड़े ही आनन्द का दिन है। ईश्वर ने हम लोगों की प्रार्थना सुनी। "मूँदहु आँख कतहुँ कोउ नाहो" जब हम लोग इस संसार मे न रहैंगे तो हम लोगो के लिये प्रलय ही हो गई। धन्य है ईश्वर! हम लोग बडे आनन्द से फाँसी चढ़ेगे।

मु०—(नेपथ्य की ओर) अजी बरकतुल्लाह, अजी शम्सउद्दीन, जल्द आओ, इन काफिरों को पकडो, जल्द पकडो भागने न पावैं।

दोनों—छिः मूर्ख! हम लोगो का यह धर्म नहीं है कि धोखा देकर भागे, चलो हम लोग तुम्हारे साथ चलते हैं। जो चाहो करो। पर खेद इतना ही है कि इस समय तलवार नहीं है! नहीं तो पृथ्वी को दस बीस दुष्टो से हलकी करते चलते। अच्छा नही सही! चलो तुम हम लोगों को ले चलो।

मु०—(स्वगत) ये लोग बड़े भारी बेवकूफ हैं। (प्रगट) अच्छा चलते जाओ, देखना भागना मत, होशियार।

दोनों—चलो। (सब जाते हैं)

(इति प्रथमांक)

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—महाराणा रतनसेन का राजभवन

[महाराणा रतनसेन, महारानी पद्मावती, मन्त्री और कुमार अजयसिंह बैठे हैं]

रतन०—दुष्ट अलाउद्दीन की दुष्टता तो तुम लोगो ने देखी ही, पहले तो लडा, फिर हारने पर प्यारी पद्मावती को धमकी देकर माँगा और अब, जब कोई बात न चल सकी तो यह पत्र लिखा है। अब तुम लोगो की क्या सम्मति है, इनकी प्रार्थना को स्वीकार करना या नहीं ?

पद्मा०—हाय ! इस अभागिनी के लिये आपको बड़े दुःख सहने पड़े ! प्राणनाथ ! मेरे अपराधो को क्षमा कीजिए। मैंने आपको बडा ही दुःख दिया और अभी न मालूम कितने दुःख दूँगी। हाय रे भाग्य ! तू जो चाहे सो करा ! (रोदन)

रतन०—प्यारी रोओ मत। तुमने क्या किया ? यह सब हमारे कर्मों का फल है। (आसू पोंछकर) रोओ मत। अब रोने का समय नहीं है। उस दुष्ट ने लिखा है कि हम कुछ नहीं चाहते केवल एक बार चित्तौरगढ के भीतर हम आकर आपसे मिलना चाहते हैं, सो अब हम लोगों को यह विचार करना चाहिए कि उसकी इस विनती को स्वीकार करे वा नहीं, क्योंकि अब तक किसी दुष्ट यवन का पाँव इस महापवित्र भूमि के ऊपर नहीं आया।

पद्मा०—महाराज ! मेरी बुद्धि में तो यही आता है कि उसकी इस विनती को मान करके इस झगड़े को मिटाइए।

रतन०—हमारी भी यही सम्मति है।

अजय०—और मैं भी इसी को अच्छा समझता हूँ।

मंत्री—मेरी समझ मे भी यही अत्युत्तम सम्मति है।

पद्मा०—पर इसका ध्यान रहे कि वह कुछ छल न करे।

रतन०—नहीं यह संभव नहीं, भला ऐसा कभी हो सकता है।

अजय०—महाराज! वह कुछ भी न कर सकेगा। आप निश्चित रहिए।

मंत्री—कुमार! आपका कहना बहुत ठीक है तथापि सावधान रहना चाहिए।

पद्मा०—महाराज! ठीक कहते हैं।

रतन०—अच्छा मत्री! तुम शीघ्र एक पत्र लिख भेजो कि हमको आपकी प्रार्थना स्वीकार है, आप जब चाहे आइए।

मंत्री—जो आज्ञा।

रतन०—परंतु सैन्य सज्जित रहनी चाहिए। इन पामरों का स्वप्न मे भी विश्वास न करना चाहिए। अच्छा मंत्री! सेनापति से कह दो कि सावधान रहैं।

मंत्री—जो आज्ञा।

रतन०—अब नहाने का समय निकट है। मंत्री देखो! जो कुछ कहा गया है उसका ध्यान रखना, भूलना मत।

मंत्री—जो आज्ञा। (सब जाते हैं)

द्वितीय दृश्य

स्थान—पद्मावती का उपवेशनागार

[विषण्णवदना पद्मावती बैठी है]

पद्मा०—हाय! मेरे भाग्य मे क्या लिखा है? क्या मेरी अब यह दशा हो गई कि मेरे पीछे महाराज को दुःख हो? कोई समय वह था कि मुझे देखकर महाराज का मन प्रफुल्लित हो जाता था, अब मुझे देखकर महाराज के कलेजे मे आग भड़क उठती है। हाय विधना! क्या तूने मुझे इसी लिये सुदर बनाया था कि मेरे पीछे सारे चित्तौरवालों को दु.ख हो। हाय चित्तौर! तेरी यह गति मेरे ही कारण हुई, न सुदरी होती न पाजी अलाउद्दीन इस पवित्र भूमि चित्तौर के लेने का विचार करता। हाय प्राणनाथ! तुमको हमने बड़ा दुःख दिया। जो तुम यह जानते कि मेरे पीछे तुम्हारी यह दशा होगी तो तुम क्यों मुझे ब्याहते? अब मेरा ही दोष है, मेरे भाग का दोष है। अभागिनी पद्मावती ही इस उपद्रव की जड़ है। हाय! इतना होने पर भी महाराज का प्रेम इस अभागिनी पर बना है! हाय! प्राणनाथ! तुम मेरे ऊपर बड़ी ही कृपा रखते हो पर मैं इस लायक नही हूँ। प्राणनाथ! तुम्हारे सुख में मैं काँटा हुई! हाय यह बात झूठी ही मालूम होती है कि, "भलाई का बदला भलाई है।" तुमने मेरे साथ जो भलाई की है यह उसी का बदला है! हे प्राण तू अब भी क्यों नहीं निकलता? क्या तेरे जी मे यह है कि जब सारा चित्तौर छार हो जाय तब अपमान के साथ निकले। हाय! ये प्राण बड़े ही निर्लज्ज हैं! ओह! अब यह नही सहा जाता! अब यह जीवन वृथा है! मैं आत्मघातिनी होऊँगी, निश्चय आत्मघातिनी होकर चित्तौर के इस कंटक को दूर करूँगी। ऐं! यह क्या! क्या मैं आत्मघातिनी होऊँगी? चित्तौर को इस दशा मे

फेंककर आत्मघातिनी ! महाराज को इस विपत्ति में डालकर आत्म-घातिनी ! कभी नही, कभी नहीं, कभी नही, क्या राजपूतिनी होकर मेरा यही काम है ? मैं अपने देश को साक्षात् अग्नि मे डालकर आत्मघातिनी होऊँ ! चौहानवशीय कन्या और सूर्यवशीय पतोहू होकर यह मेरा विचार कि मैं इस कायरता के साथ प्राण देकर आत्मघातिनी होऊँ ? छि ! यह मेरा भ्रम है, मैं कभी अपने कुल में कलक न लगाऊँगी। देखे यह पाजी तुर्क कैसे बहादुर हैं ? दुष्ट ! दूसरे की स्त्री का सतीत्व बिगाड़ने की इच्छा ! पापिष्ठ देखना राजपूतनी कैसी धर्मपरायण, वीर और प्रतिज्ञा की पूरी होती हैं। ऐसा स्वप्न मे भी न सोचना कि राजपूतनी धन वा प्राण के डर से अपना सतीत्व नष्ट कर देगी। ससार में कौन ऐसी जाति है जो राजपूतों की बराबरी कर सकती है ? (क्रोध से खड़ी हो जाती है और इधर उधर घूमती है) वह यही चित्तौर है जिसके लिये हजारों राजपूत कट गए परतु स्वाधीनता कभी न छोड़ी। दुष्टो ! यह अच्छी तरह सोच रखो कि राजपूत लोगों की यह चिर-स्वाधीन वीरभूमि चित्तौर कभी पराधीन न होगी।

नेपथ्य में—धन्य देवी धन्य !!

पद्मा०—किसने धन्य धन्य कहा है ?

[रतनसेन का प्रवेश]

रतन०—धन्य देवी ! धन्य ! तुम्हारा साहस परम प्रशंसनीय है। प्यारी ! तुम्हारी सब बातें मैं सुन चुका हूँ। तुम वृथा इतना सोच करती हो। देखो यह कैसे आनंद का दिन है, शत्रु ने तुम्हारे ही से संधि करना स्वीकार कर लिया है ! अब किसी बात की चिंता नहीं।

पद्मा०—इसमे संदेह नहीं कि उस पाजी ने मेल की प्रार्थना की है, पर मुझे इन दुष्ट म्लेच्छों का विश्वास नहीं है। अकस्मात् मेरे

चित्त मे यह बात आती है कि ये लोग अवश्य ही धोखा देंगे। आप निश्चय जानिए कि इस संधि मे अवश्य ही कुछ न कुछ भीतरी बात और है।

रतन०—तुम्हारा यह सोचना वृथा है, तुम इसके लिये कुछ भी चिंता न करो। मैं जहा तक समझता हूँ, वह इतना बडा बादशाह होकर कभी विश्वासघात न करेगा।

पद्मा०—जो चाहे हो, पर मुझे तो विश्वास नही होता। मैं बहुत चाहती हूँ कि इसमे शंका न करूँ पर मेरी यह शंका मिटती ही नही।

रतन०—तुम स्त्री हो, इससे तुम्हे वृथा भय लगता है। चलो रात्रि बहुत बीती, अब सोने चलो, व्यर्थ चिंता को छोड़ो।

पद्मा०—जो कहिए, पर महाराज! न मालूम क्यों चित्त नहीं मानता। (दोनों जाते हैं)

तृतीय दृश्य

स्थान—चित्तौर का राजपथ

[चार सैनिकों का प्रवेश]

१ सै०—कहो भाई, कोई नया समाचार भी पाया है ?

२ सै०—हाँ, यह सुना है कि महाराणा से दुष्ट अलाउद्दीन ने संधि की प्रार्थना की है और उसकी इतनी ही इच्छा है कि एक बेर महारानी का दर्शन कर ले।

३ सै०—भाई बात तो अच्छी हुई, सब झगड़ा थोड़े ही मे निपट गया।

४ सै०—अजी निपटा तो अच्छा हुआ, नहीं तो डर किसको था, राजपूत लोग प्राण रहने तक किसी से नहीं डरते। पामर अला-

उद्दीन क्या करता ? जब तक एक राजपूत भी जीवित रहेगा तब तक किसी की सामर्थ्य है कि चित्तौर मे पाँव धरे। इन दुष्टों ने जो संधि कर ली वह केवल अपनी प्राण-रक्षा के लिये, हम लोगों को इसमे कुछ आनद नहीं है, राजपूत काल से स्वप्न मे भी नहीं डरते। हम लोगों के आनंद का वही दिन होगा कि जिस दिन हम लोग स्वदेश के लिये और महाराणा के लिये प्राण देंगे। हम लोग इसको कभी भी आनंद नही समझते कि अपनी प्राणरक्षा के लिये संधि को अच्छा समझें। हम शपथ खाकर कहते हैं कि हमको उसी दिन आनंद होगा जिस दिन हम अपने देश, अपने प्रभु और अपनी महाराणी के लिये प्राण देंगे।

१ सै०—भाई वीरसिंह ! तुमने बहुत ठीक कहा। हम लोगों के जीते किसका साध्य है जो इस पुण्यभूमि मे हाथ लगा सके।

२ सै०—भ्रातृगण ! तुम लोगो का कहना बहुत ठीक है। हम लोगों के तो दोनों हाथ लड्डू हैं अर्थात् लड़ाई मे लडकर मरे तो स्वर्ग और यदि जीतकर जीते फिरे तो यश, स्वदेश का हित और महाराज का कार्य्य साधन।

३ सै०—यह सब तो ठीक ही है, पर संधि होने से हम लोगो की क्या हानि है ? सहज ही मे स्वदेशरक्षा भी हुई और अपनी मान-मर्यादा भी बनी रही।

४ सै०—परंतु मुझे इन पामर यवनों पर तनिक भी विश्वास नहीं है। ये दुष्ट बड़े ही विश्वासघाती, झूठे, नीच, दुष्ट और क्रूर होते हैं। मुझे ऐसा संदेह होता है कि ये दुष्ट अवश्य कुछ न कुछ उपद्रव करेंगे, अतएव हम लोगो को प्रत्येक समय सावधान रहना चाहिए।

१ सै०—अजी इसमे कौन सी बात है, जिस दिन से यह लडाई प्रारंभ हुई तभी से हम लोग तो सावधान हैं।

३ सै०—राम राम, ऐसा कभी भी सभव नहीं है। ईश्वर ने मनुष्यों मे क्या ऐसे गुण भी दिए हैं? कभी भी यह सभव नहीं।

२ सै०—भाई! संसार के मनुष्य मात्र राजपूतों के ऐसे नहीं हैं। ईश्वर ने संसार मे क्षत्रियों के बराबर सच्चा, दृढप्रतिज्ञ और धार्म्मिक किसी को नहीं बनाया है, और यवनों के ऐसा नीच और विश्वासघाती। अतएव यह आवश्यक है कि हम लोग भली भाँति सावधान रहैं।

३ सै०—महाराज ने तो इस विषय मे कोई आज्ञा नही दी है। यह निश्चय है कि महाराज ने इसको भली भाँति सोच लिया है इससे कोई आज्ञा नहीं दी।

४ सै०—महाराज चाहे आज्ञा दे या न दें पर हम लोगों को सावधान रहना चाहिए।

१ और २ सै०—अवश्य, अवश्य।

३ सै०—देखो नेपथ्य मे यह क्या कोलाहल है। (सब उसी ओर देखते हैं)

[नेपथ्य मे]

हे सैनिकगण! महाराज की यह आज्ञा सावधान होकर सुनो—

"सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदाहीं।
जागत ही सब रहै रैनहूँ सोअहि नाहीं॥
कसे रहै कटि रात दिवस सब वीर हमारे।
अश्व पीठ से होहि चारजामे जिन न्यारे॥
तोड़े सुलगत चढे रहैं घोड़ा बंदूकन।
रहै खुली ही म्यान प्रतचे नहि उतरैं छन॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर यवन बहादुर।
आवहिं तो चढ़ि संमुख कायर क्रूर सबै गुर॥

देहैं उनको स्वाद तुरतहिं तिनहि चखाई।
जो पै इक छनहूँ सनमुख है करहि लड़ाई॥"

हे वीरगण! सावधान रहो, कल अलाउद्दीन संधि के लिये चित्तौर मे आवेगा, यद्यपि संधि की संपूर्णता आवश्यक है तथापि सावधान रहना भी आवश्यक है।

४ सै०—लो अब तो महाराज की आज्ञा भी हो गई। चलो हम लोग सावधान हो रहैं।

सब सै०—चलो। (सभों का प्रस्थान)

[पटाक्षेप

(इति द्वितीयांक)

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—अलाउद्दीन का उपवेशनागार

[अलाउद्दीन, वजीर और एक मुसाहिब बैठे है]

अला०—(मुसकुराकर) आज बड़ी ही खुशी का दिन है, उस कबख्त बेवकूफ ने हमारी बात को मान लिया। अब क्या बाकी है? चित्तौर और पद्मावती तो हमारे हाथ मे है।

मुसा०—हुजूर बजा फरमाते हैं, इसमे कोई शक नहीं। अब चित्तौर बंदगाने हुजूर का है लेकिन इन काफिरों से होशियार रहना जरूर अमर है, शायद कुछ दगाबाजी न करे।

अला०—अल्लाह अल्लाह! ऐसा ख्वाब मे भी न ख्याल करना। मैं राजपूतों को अच्छी तरह जानता हूँ। ये कभी भी दगाबाज

नही होते। इसी से तो मुझे कामिल यकीन है कि मैंने चित्तौर को दखल ही कर लिया। इन कंबख्तों से मुकाबले मे लड़कर कोई भी नही जीत सकता, इनसे दगाबाजी करने ही मे फतह है। वल्लाह ये बड़े बेवकूफ होते हैं। भाई! इन काफिरों पर खुदा की मार है। लानत है इनके मजहब और इनके कंबख्त धर्म्म को जो घर मे आए हुए दुश्मन को छोड देते हैं।

वजीर०—खुदावंद निश्रामत! बंदगाने आली के मुकाबले में किसकी ताब है कि ठहर सके। हुजूर! इन कंबख्तों के जवाल के अय्याम अनकरीब आ गए हैं, इसी से उनकी अक्ल ऐसी हो गई। जहाँपनाह! क्या मजाल है सिकंदर की जो हुजूर की बराबरी कर सके। हुजूर ने सिक्के पर सिकंदरेसानी खुदवाया, मगर हुजूर का दबदबा सिकंदर से भी बढ़ा हुआ है। खुदातआला ऐसे बादशाह को ताअबद कायम रक्खे।

मुसा०—आमीं आमीं।

अला०—वजीर ने जो कुछ तारीफ मेरी की, वह मेरी सिफतों से कहीं घटकर है, किसकी मजाल है कि मेरी पूरी पूरी तारीफ कर सके। अच्छा वजीर! तुम फौजों से कह दो कि आज शाम को चित्तौर के बाहर छिपी रहें। जिस वक्त मैं इशारा करूँ, फौरन् निकलकर रतनसेन को कैद कर लेवें।

वजीर०—जो हुक्म, हुजूर।

अला०—रतनसेन मुझे पहुँचाने को खामखाह शहर के फाटक तक आवेगा और उसके साथ फौज वगैरह भी न रहेगी उस वक्त बहुत अच्छा मौका होगा, फौरन् उसको गिरफ्तार कर लेंगे। बाद-अजाँ रानी को हम पैगाम भेजेंगे कि अगर तुम हमारे यहाँ चली

आओ तो हम तुम्हारे पुराने शौहर को और चित्तौर को छोड दे, अगर न आओगी तो तुम्हे, मय तुम्हारे शौहर के, कैद करूँगा और चित्तौर को बिलकुल नेस्तोनाबूद कर डालूँगा। आखिर तो वह औरत ही है, फौरन् राजी हो जायगी। उस वक्त उसको अपनी बेगम बना लूँगा और रतनसेन को कतल करवा दूँगा। बस चित्तौर खामखाह मेरे हाथ मे आ जायगा।

मु० और वजीर—वाह वाह! हुजूर के ऐसी अकल खुदा ने दुनिया मे किसी को नही बख्शी है। हुजूर अब हम लोग जाकर फौजों को तैयार करें।

अला०—हाँ जाओ। (दोनों जाते हैं)

अला०—अहा हा! मैं भी अजीब शख्स हूँ। दुनिया मे ऐसा कौन है, जो मेरी बराबरी कर सके? अगरचे पढ़ना लिखना तो मैं मुतलक नही जानता, मगर मेरी अक्ल ऐसी तेज है कि माशा अल्लाह, चश्म बददूर, जो चाहूँ कर डालूँ। किसकी ताब है जो मेरी बातों का जवाब दे? खुदा ने दुनिया भर की अक्ल मुझको ही दी है। मजा यह कि मेरे ऐसा खूबसूरत भी दुनिया मे कोई नहीं है और उस पर तुर्रा यह कि मैं बहादुरी मे भी लासानी हूँ। भाई खुदा को भी तो अक्ल है, उसने ये सब चीजें जो मुझे दी हैं और किसी को दे भी तो नहीं सकता था सिवा मेरे इसके लायक और है कौन? वल्लाह मैंने भी कैसी चालाकी की, कैसा बेवकूफ बनाया। चले जरा आराम करें, शाम को चलना ही है। (जाता है)

द्वितीय दृश्य

अलाउद्दीन का राजकारागार

[अलाउद्दीन और एक मुसाहिब बैठे हैं, महाराणा रतनसेन पिँजड़े में बंदी है]

अला०—(रतनसेन से हँसकर) महाराणा जी साहब ! कहिए पद्मावती की याद है ? अब वह मेरी होगी। हहह ! आपने क्षत्रिय धर्म्म तो खूब निबाहा। हमने सुना था कि क्षत्रिय लोग स्त्री के लिये प्राण देते हैं सो आपने तो खूब प्राण दिया। हाँ, चूँकि आप रघुवंशी हैं इसलिये शायद आपकी यह चाल नहीं है, हहह !!! वाह रे बहादुरी ! क्यों हुजूर ? हुजूर तो बड़े बहादुर थे यह क्या ? हुजूर ऐसे क्यों हो रहे हैं ?

रतन०—(क्रोध से) दुष्ट पामर अधम नराधम विश्वासघातक यही मुसल्मानों का धर्म है ? देख क्षत्री कैसे होते हैं ! दुष्ट नराधम ऐसी विश्वासघातकता ? पापिष्ठ ! तेरे मुख देखने का भी प्रायश्चित्त नहीं है। उह ! पद्मावती ! प्यारी पद्मावती ! प्राण की पद्मावती ! हा ! प्राणेश्वरी ! अब मुझे बिदा करो, अब तुम्हारा वह स्नेहमय मुख फिर कब देखने में आवेगा ? प्यारी ! हमको भी कभी कभी याद करना। पुत्र अजयसिंह ! तुम्हारा यह अभागा पिता अब चला, देखो यह स्मरण रखना कि अपने पिता का बदला इन दुष्ट यवनों से अवश्य ही लेना, अवश्य लेना, अवश्य लेना। हा! चित्तौरवासी प्रजागण ! हमने तुम लोगों को बड़ा कष्ट दिया, क्षमा करना। हे सूर्य्यदेव ! अपनी संतान की यह दशा देखो !!

अला०—हह ! कैसा भारी बेवकूफ है ! अजी इतना रोते क्यों हो ? सीधी सीधी तो बात है, तुम पद्मावती को मुझे दे दो और मुसल्मान हो जाओ, मैं तुम्हीं को चित्तौर का नाजिम बना दूँगा।

रतन०—(अत्यंत क्रोध से) चुप रह नराधम ! चुप रह पाजी सूअर (दाँत पीसकर) दुष्ट नरपिशाच शस्त्र दे, देख किसको सामर्थ्य है जो मुझसे लड़ सके। दुष्ट ! ठहर देख ईश्वर तुझको शीघ्र ही प्रतिफल देता है। क्या तू मुझको पिंजरे मे बंद करके जानता है कि तू जो चाहेगा करावेगा। ऐसा कदापि न समझना, क्षत्री लोग प्राण रहने तक नीच पामर म्लेच्छों की अधीनता न स्वीकार करेंगे। क्षत्री धर्म्म सा संसार मे कोई धर्म्म नहीं है। प्रेत ! सामने से हट जा। तेरा मुख देखने से शरीर क्रोधाग्नि के द्वारा भस्म होने लगता है। विश्वासघातक देख क्षत्रियों की वीरता देख क्षत्रियो का धर्म्म, देख देख हम क्षत्रियों का यह धर्म है कि तुझको शस्त्रहीन, निर्बल निर्जन पाकर भी सैन्यों ने तुझे न पकडा, न मारा, न कोई दुख दिया, परंतु कालसर्प ! तूने अपनी कुटिलता दिखलाई। दुष्ट ! तू मेरे सामने से हट जा, तू मुख दिखाने योग्य नहीं है। निर्लज्ज तुझे लज्जा नही आती। छि: ! मुझे निस्सहाय पाकर तूने यह दुष्ट कर्म किया कि मुझको बंदी बनाया। धन्य राजपूत वीरगण ! धन्य तुम्हारी वीरता ! धन्य तुम्हारी राज-भक्ति ! मेरी आज्ञा के बिना भी तुम लोग थोड़े से सैनिक मेरे साथ थे। दुष्ट ! तूने राजपूत वीरों की वीरता देखी ? (चारो ओर घूमता है)

अला०—बेशक राजपूत लोग बड़े बहादुर होते है, मगर मेरी फौज के मुकाबले मे कुछ भी नहीं हैं। खैर इससे क्या मतलब, अब तो राजपूतों की बहादुरी देखी गई। इस वक्त इसकी अक्ल दुरुस्त नही है। दूसरे वक्त देखा जायगा। मैं जाता हूँ। (अलाउद्दीन जाता है)

रतन०—जा, नराधम जा। हा ! किस आपत्ति मे पडे, इस नारकी पिशाच की दुष्टता से कलेजा दग्ध होता है। उह !

अब नहीं सहा जाता! हा दैव! मैंने कौन अपराध किया था जो तुमने इस भीषण अत्याचारी के हाथ मे डाला। कुलदेव सूर्य्यनारायण! क्या आपको अपने कुल की यह दारुण दुर्दशा देखकर लज्जा नहीं आती? नहीं नहीं, सूर्य्यदेव अब अपने कुल की रक्षा करेगे। हाँ हाँ, वह तो देखो वह सूर्य्यनारायण क्रोध से जलते हुए इधर आते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि कदाचित् सारे संसार को भस्म कर देंगे, प्रति क्षण तेज बढ़ता ही जाता है। देखो अभी तो सवेरा हुआ है, अभी कैसे सूर्य्यदेव में इतना तेज हो जायगा? निःसंदेह पृथ्वी को जलाने ही के लिये सूर्य्यदेव चले आते हैं। आह! कैसी सुंदर शोभा है, मार्त्तंड के प्रचंड अग्निरूपी तेज से सब जंतु व्याकुल होकर कैसे भागे जाते हैं और घोर चिक्कार कर रहे हैं, मानो यह सूचित कराते हैं कि भागो भागो अरे अपनी रक्षा करनी हो तो भागो। देखो सूर्य्यनारायण ससैन्य संसार को भस्म करने के लिये चले आते हैं। धन्य देव धन्य! इस समय आपने हम लोगों पर बड़ी ही कृपा की। यह देखो यमुना नदी पर सूर्य्य की किरणें ऐसी चमकती हैं कि मानो सबके पहले नदी ही जलकर भस्म होगी। (थोड़ी देर आनंद से उन्मत्त की नाईं इधर उधर घूमता है, नेपथ्य में दोपहर की नौबत बजती है) चौंककर, हैं! यह क्या? यह नौबत कैसी बजती है? क्या अब ससार छोड़कर जाने का समय निकट देखकर यवनों ने कूच का डंका बजाया! अथवा ये मूर्ख अभी तक नहीं समझे कि काल अब समीप है? जो हो, मुझे इससे क्या काम? मेरे लिये तो यह आनंद का दिन है, (कुछ ठहरकर) नहीं नहीं, यह डंका दोपहर का बजा है। ऐं क्या दोपहर हो गया? वास्तव मे क्या यह सूर्य्यनारायण का स्वाभाविक तेज है? क्या यह कालाग्नि का स्वाभाविक तेज है? नहीं है, हाय! तब

तो बड़ा अनर्थ हुआ, उह सूर्य्यदेव, यह क्या ! क्या बहुत काल बीतने पर आप अपने कुल को भूल गए ? हाय ! संसार मे अब चत्री लोगो के कुल का सहायक कोई भी नही रहा ! हा दैव ! पद्मावती ! अपने प्राणप्यारे पति की यह दुर्दशा देखो, हाय ! हमने तुम्हारा वाक्य न माना उसी का यह फल है। प्यारी चमा ! उह ! अब नही सहा जाता। प्राण प्राण प्राण, उह बिदा बिदा बिदा। (मूच्छित हो जाता है)

तृतीय दृश्य

स्थान—कारागार

[महाराणा रतनसेन शोकमग्न पडे है]

रतन०—हा अब भी न मरा ! जन्मभूमि मैंने तुम्हारी बड़ी ही अप्रतिष्ठा की ! चमा करना, तुम्हारे पुत्रो मे कोई भी ऐसा हतभाग्य न हुआ जैसा कि मैंने अपने कुलमात्र को कलकित कर दिया ! भगवान् श्री रामचंद्रजी के वंश की यह दुर्दशा इसी दुष्ट कुलांगार ने की। हा मैं स्वय अपने कलकित मुख को नही देख सकता तो और कौन देख सकेगा ? मेरे लिये इस लोक और परलोक मे कहीं स्थान नहीं है ! हा ! कुलदेव ! क्यों नही तुम अपने पुत्रों की यह दशा देखकर प्रगट होते और यवनों को विध्वंस करते ? अथवा इस कुलांगार ही को क्यों नहीं समुचित दड देते ? हे पिता सूर्यनारायण ! अपने कुल की यह दशा देखकर भी आप अपने क्रोधानल से क्यों नहीं इस संसार को दग्ध कर देते ? हे कल्कि भगवान् ! क्या अब भी आपके प्रगट होने मे कुछ विलंब है ? क्या

यह घोर कलिकाल और अत्याचार देखकर भी चुप बैठे रहोगे? हा! कोई मेरी बात नहीं सुनता! हा दैव! हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुम हमको इतना सता रहे हो? जगदीश्वर! कृपासिंधु भगवान्! क्या आप अपने एक दीन भक्त की यह दशा नहीं देखते? हा! मेरे ऐसे खोटे भाग्य हैं कि कोई भी मुझे उत्तर नहीं देता। हा क्षत्रियगण! जिसके लिये तुम लोग प्राण देने को प्रस्तुत थे वही आज, तुम लोगों के जीते जी, निराश्रयों और अनाथों की 'नाईं' इस भयानक कारागार मे अकेला मारा जाता है! हे धर्म्म! मैंने आज तक जहाँ तक बना आपकी सेवा की, यदि कोई दोष हो गया हो तो उसे क्षमा कीजिएगा। हा! अब मैं जीकर क्या करूँगा? दुष्ट यवनों के हाथ से मरने से तो आत्महत्या ही अच्छी, निश्चय आत्महत्या ही करूँगा।

[नेपथ्य में]

वृथा प्राण जिन देहु तुम या दुख सों अकुलाय।
बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछिताय॥
दया धरम को मूल है ताहि न तजहु सुजान।
निश्चय छूटहु कैद सों कहनो मेरो मान॥
सोचहु निज कुल धर्म्म अरु धीरज बुद्धि विवेक।
दृढ़ता हठ अरु बारता सोच करहु जिन नेक॥
तुम्हरे कुल को वाक्य यह देखहु चित्त विचार।
"जो हठ राखे धर्म को तेहि राखै करतार॥"
कोउ वंश संसार में नहीं जो बोले बैन।
या पवित्र कुल सामने सबको नीचो नैन॥
काको है यह सामरथ जो कर गहि किरपान।
लरै तुम्हारे सग में बचै दुष्ट का प्राण॥

तनिकहु जिन घबराहु तुम ईश्वर को करि ध्यान।
निहचै रक्षा करहिगो अरु राखैगो मान॥
आत्महतन की बात नहि है तुम्हरे उपयुक्त।
वीर कबहुँ नहि होत हैं या विचार सों मुक्त॥
कर मैं ले किरपान तुम यवनन को करि नास।
यह स्वदेश रक्षा करहु नासहु सबकी त्रास॥
देत अहैं आसीस हम यहै पुकारि पुकारि।
नासन मे इन यवन के रक्षहि तुम्हे मुरारि॥

रतन०—(चौंककर) हैं यह क्या ! ऐसे कुसमय मे यह सदुपदेश किसने किया ? हा ! मुझे क्या हो गया था ? मैं क्षत्रिय होकर और इन दुष्ट पामर यवनों के डर से डरूँ ! छि: ! यह कोई बात नहीं है, क्षत्रियों को किसका डर है ? साक्षात् यमराज से क्षत्रिय लोग लड सकते हैं, भला यह तो कुछ हुई नही। निश्चय मुझे मारे शोक के बुद्धिभ्रम हो गया था। मुझे शस्त्र की क्या आवश्यकता है ? हाथ ही मेरा शस्त्र है, और वज्र सी हथेलियाँ ढाल। किसकी सामर्थ्य है जो मेरी ओर आँख उठाकर देख सके ? कुछ डर नहीं, दुष्ट आवे तो सही मैं उसे इसका फल चखा दूँगा।

(वीर वेष से इधर उधर घूमता है)

[नेपथ्य मे]

धन्य ! क्षत्रियकुल धन्य ! धन्य महाराणा रतनसेन धन्य ! धन्य क्षत्रियकुलभूषण धन्य ! कोई चिंता नही। अब अवश्य क्षत्रिय कुल की जय होगी। किसी की सामर्थ्य नही है कि तुम्हारे ऐसे वीर पुरुष के रहते चित्तौर को जय कर सकै।

[पटाक्षेप

(इति तृतीयांक)

चतुर्थ अंक

प्रथम दृश्य

अरण्य

[एक गूँगे भिखारी का प्रवेश]

(भिखारी हाथ से इशारा करता है कि कोई मुझे एक पैसा दे मैं भूखा हूँ और अपने शक्य भर चिल्लाता है। एक मुसलमान खवास का प्रवेश और गूँगे का उससे पैसा माँगना।)

खवा०—अबे हट कमबख्त ! मेरे पास पैसा कहाँ धरा है जो मैं तुझे दूँ ? चल भाग जा, नहीं तो अल्लाह की कसम तुझे मारते मारते बेदम कर दूँगा।

(भिखारी फिर उसी तरह पर इंगित करता है और पैर पकड़ता है।)

खवा०—छोड छोड पैर छोड, अल्लाह इस फकीर कमबख्त ने तो मेरा नाक मे दम कर दिया। अबे छोड़। (छुड़ाने का यत्न करता है और आपस मे दोनों लड़ते हैं।)

खवा०—(मन में) यह कहाँ की हत्या लगी, मुझे चटपट महारानी से सब वृत्तांत निवेदन करना है और यह दुष्ट मुझे छोड़ता ही नहीं। (प्रगट) देख नहीं छोड़ता तो कैसी सजा देता हूँ। (बल से उसे उठा लेता है और पहिचानकर अलग हो जाता है) अच्छा चला आ, अब मैं पैसा देता हूँ। (दोनों कुछ दूर जाते हैं और खवास एक जगह खडा होकर चारो ओर देखता है) क्यों जी प्रभुदयालसिंह ! क्या दशा देख आए ? महाराज का शरीर कैसा है ? महाराज क्या करते हैं ?

भिखा०—भाई महाराज की तो बहुत ही बुरी दशा है, कभी मूर्छा खाते हैं, कभी आत्मघात का विचार करते हैं, कभी वीरता प्रकाशित करते हैं इत्यादि। परतु मैं जिस काम के लिये गया था वह ईश्वर के अनुग्रह से और महाराणी के प्रबल प्रताप से सिद्ध हो गया। मैंने छिपकर बहुत कुछ कहकर उनके चित्त को ढाढ़स बँधाया। अब वे कभी न घबरायँगे परंतु शीघ्रता करनी चाहिए, क्योंकि जहाँ कोई मुसलमान आया और उपद्रव हुआ।

खवा०—क्योंजी! प्रगट होकर क्यो नही कहा?

भिखा०—उसमे दो बातें थीं, एक तो मुझे देखकर उनका शोकानल और भी भड़कता और दूसरे मेरे वाक्यों पर उनको इतना विश्वास न होता जितना कि अब हुआ क्योंकि उनको सर्वथैव वाणी का संदेह है।

खवा०—क्यों न हो! भाई तुमने बडी ही चतुराई का काम किया।

भिखा०—छि. यह क्या हुआ? यदि महाराणा, महाराणी और जन्मभूमि चित्तौर के लिये धन, जन, प्राण भी जाय तो कुछ चिंता नहीं और भी आनंद हो। भला बताओ तो तुमने क्या क्या किया?

खवा०—मैंने गुप्त रूप से उनका सब अभिप्राय जान लिया। उनका यह अभिप्राय है कि छल से महाराणी को ले लें और तब तक महाराणा को न मारें। महाराणी को लेकर महाराणा को मार चित्तौर को विध्वंस करें। हा! ये दुष्ट बड़े ही अधम होते हैं। नराधम चित्तौर को विध्वंस करेंगे। दुष्टो! इस भरोसे मत रहना। जब तक कोई भी चित्तौर का क्षत्री जीता रहेगा, चित्तौर को ध्वंस न होने देगा। हा! महाराज की यह दशा देखकर हम लोगों की

छाती फटी जाती है। क्या कहे महाराणी की आज्ञा शिरोधार्य्य है नहीं तो हम लोग इन दुष्टों को चिता देते कि चित्तौर का ध्वंस करना कैसा होता है।

भिखा०—इसमे क्या संदेह है? दुष्ट पामर यवन। भाई महाराज की वह दीन दशा देखकर मेरा कलेजा फटा जाता था पर क्या करूँ सभी देखना पडा।

खवा०—भाई! ईश्वर जो कुछ दिखावेगा सब देखना पड़ेगा। चलो शीघ्रता करे क्योंकि उधर महाराणी घबराती होंगी इधर महाराज।

भिखा०—हाँ चलो। (दोनों जाते हैं)

द्वितीय दृश्य

स्थान-चित्तौर-राजपथ

[अपनी माँ के साथ दो बालकों का प्रवेश]

१ बा०—माँ आज क्यों इतनी धूमधाम मच रही है? क्यों लोग अपने ढाल तरवार आदि शस्त्रों को सँभाल रहे हैं? क्यों लोग एक साथ हर्षित और दुखित होते हैं?

स्त्री०—बेटा! पाजी मुसलमानों ने महाराणा को छल से पकड लिया है, इसी से लोग दुखित होते हैं और तुरत ही अपने देश के लिये लड़ाई करनी होगी और उसमे प्राण देने होंगे, इससे लोग प्रसन्न हैं और सज्जित हो रहे हैं।

२ बा०—क्यों माँ! छल किसे कहते हैं? क्या छल कोई बड़ा भारी शस्त्र है? अथवा कोई बडा पहलवान है? हम लोगो ने तो आज तक इसका नाम भी नहीं सुना है।

स्त्री०—बेटा ! तुम लोगो ने इसका नाम कभी न सुना होगा। राजपूत बालको ने क्यों कभी छल का नाम सुना होगा ? इसकी शिक्षा तो मुसलमानों ही मे होती है, धोखा देने को छल कहते हैं।

१ बा०—क्यों माँ ! ये लोग सब दुष्ट चोर चॉइएँ हैं जिन्होंने महाराज को मिठाई या किसी और वस्तु के देने का लालच देकर बंदी कर लिया ? पर माँ ! महाराज क्यों उनके धोखे मे आ गए ?

स्त्री०—बेटा ! ये दुष्ट चोर चॉइएँ तो हुई हैं, पर महाराज को मिठाई के लालच से नही धोखा दिया। महाराज का बड़ा मित्र बनकर मिलने को अकेला आया और जब वे उसको पहुँचाने के लिये बाहर तक गए तब धोखे से उन्हे कैद कर लिया।

दोनों बा०—क्यो माँ ! ऐसा भी हो सकता है ? क्या मनुष्य ऐसा कर सकता है ?

स्त्री०—बेटा ! तुम लोग क्या जानो ? भोले भाले राजपूत बालक, बेटा ! राजपूल ऐसी सब जाति नही होतीं। ये मुसलमान तो और भी दुष्ट होते हैं। तुम लोग इन बातों को पूछकर क्या करोगे ? जाओ खेलो कूदो चैन करो।

दोनों बा०—नही माँ ! हम लोग भी इन दुष्टो से लड़ेंगे।

स्त्री०—नहीं बेटा ! तुम लोग अभी लड़ने लायक नहीं हो, तुम लोग इन बातों पर ध्यान मत दो, जाओ अपना खेल कूद देखो।

दोनों बा०—नहीं नहीं, हम लोग तो अवश्य पिता के साथ संग्राम-क्षेत्र मे जायँगे। क्या हम लोग क्षत्री नहीं हैं ? क्या हम लोगों की यह जन्मभूमि नही है ? क्या हम लोगो को लड़ने की शक्ति नही है ? माँ ! हम दोनों भाई अकेले दस-पाँच चोरों को मार लेंगे। माँ ! हम लोग बाबा के साथ अवश्य जायँगे। देखना माँ ! हम लोग कैसी वीरता से लड़ते हैं। माँ ! हम लोगों ने आपके गर्भ से व्यर्थ ही नहीं

जन्म लिया। हम लोग आपकी कोख को कलंकित कदापि न करेगे! तुम क्यों डरती हो? हम लोग रण मे जाकर आपका नाम न हँसावेंगे।

स्त्री०—शाबाश बेटा! क्यों नहीं बेटा! तुम कभी नाम न धराओग! तुम लोग आनंद से जाओ और अपना बदला लो। मैं असीस देती हूँ कि तुम लोग वीरता के साथ अपनी जननी जन्मभूमि के लिये अपना सिर कटाओ और हमको आनंदित करो। देखो बेटा! ऐसा न हो कि लोग हँसे और कहे कि यह कुल ऐसा कायर है कि उसके लड़के आकर लड़ाई मे से भाग गए।

दोनो बा०—नहीं माँ! ऐसा कदापि न होगा। (दोनों आनंद से गाते और नाचते हैं)

आनँद को दिन या सम नाही।
काटहि माथ यवन को निज कर रक्त बहै रण माही॥
देखहिग को अहै जगत मे जो लरि छत्रिन जीते।
कौन बहादुर जग मे इन सम को जानै रणरीते॥
कहा नाम याही को भुजबल अलाउद्दीन जो कीनो।
करी मित्रता देई धोखा पुनि महाराजहि गहि लीनो॥
कहा जानै रण कहा होत है कपट भली बिधि जानै।
जब इनको सिखवहिगे छत्रा तब रण को पहिचानै॥
बाबा के सँग जाइ दोऊ जन लरिके शत्रुन मारैं।
रहैं स्वतंत्र प्राण तजिबे तक जो प्रण नाहिन हारैं॥
चलिकै लरिहैं यवन गणन सो कायर हो नहि भागैं।
या तो जन्मभूमि की रक्षा या निज प्राणहि त्यागैं॥
त्यागि प्राण बरु देहि सबै मिलि नदी रक्त की बहिहैं।
पै छत्री कुल कबहूँ जीवत दासपनो ना करिहैं॥

[पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

महाराणी का उपवेशनालय

[महाराणी पद्मावती बैठी है और मन्त्री हाथ जोडे बैठा है, सामने हाथ जोडे हुए दो भृत्य खडे है]

मन्त्री—महाराणी ने तो सब वृत्तांत सुना ही है, अब कर्तव्य क्या है ?

पद्मा०—तुमने क्या सोचा है ?

मन्त्री—रण ।

पद्मा०—नही नही, यह समय लडने का नही है । इस समय दूसरी ही चाल चलनी चाहिए ।

मन्त्री—महाराणी ने कौन सी चाल सोची ?

पद्मा०—सुनो । (कान मे कुछ समझाती है)

मन्त्री—हाँ ठीक है, नहीं तो यदि दुष्ट और कुछ कर बैठें तो फिर महाराज का दर्शन भी होना कठिन होगा ।

पद्मा०—अच्छा तो फिर देर मत करो ।

मंत्री—जो आज्ञा । (पत्र लिखता है)

पद्मा०—(आप ही आप) हाय प्राणनाथ ! अब तो बड़ा दुःख दिया, प्यारे शीघ्र मिलो, देखो तुम्हारे लिये आज इस क्षत्रिय बाला की क्या दशा हो रही है ? तुम्हारे लिये आज कैसा कलंकित कार्य्य कर रही हूँ ? हा ! क्या हम लोगों का यही अंतिम परिणाम हुआ ! उह ! धर्म्म का यह फल है ! क्या धर्म्म का लोप हो गया ? क्या पाषंड पाप की जीत हो गई ? कभी नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, प्यारे ! शीघ्र ही वह दिन आवेगा, जब हम लोग फिर एकत्र होंगे; परंतु प्यारे ! यह दुःख कभी न भूलेंगे । ईश्वर महाराज की जय करै ।

मंत्री—महाराणी ! सब प्रस्तुत है।

पद्मा०—अच्छा सुनाओ। (व्यग्रता और औदास्य नाट्य करती है)

मंत्री—जो आज्ञा।

"माननीय महाराजाधिराज ! आप ऐसे सम्राट् को यह पत्र लिखते हुए बड़ा ही डर लगता है, परंतु साहस करके क्षमा की प्रार्थना करती हूँ ! जिस दिन से वह कोमल सुदर मूर्ति देखी है, उस दिन से प्रेमाग्नि कलेजे मे दहक रही है। जी चाहता है कि प्यारे कहकर पुकारूँ परंतु—"

पद्मा०—(अत्यंत व्यग्रता से) ऐं ! संसार मे सिवाय प्राणनाथ के कौन है कि जिसको मैं प्यारा कहूँ ? हाय काल ! तू जो चाहे कर, हाय ! मेरा तो कलेजा फटा जाता है।

मंत्री—सावधान महाराणी सावधान !. आप वीर स्त्री होकर ऐसी व्यग्र होती हैं ! जो सिर पर पड़ता है वह सहना ही होता है। संभव है कि एक दिन उस नरपिशाच का मुंड आपकी भेट करूँ। व्यग्र न होइए सुनिए।

"मारे भय के नही कह सकती। ईश्वर वह दिन भी शीघ्र लावेगा कि जब मैं इस अमूल्य रत्न को अपने गले का हार बनाऊँगी। मुझको यह सुनकर कि श्रीमान् भी इस दासी को दासी बनाया चाहते हैं, अत्यंत आनंद हुआ, और मुझे साहस हुआ कि मैं अपना दुःख निवेदन करूँ। मैं केवल मात्र यही चाहती हूँ कि एकचित्त होकर श्रीचरण-सेवा करूँ।

पद्मा०—कभी नहीं, कभी नहीं।

मंत्री—आप न घबराएँ।

"यह मगल कार्य मंगलाचार के दिन होगा, आप उस दिन सब ठीक रखें। मैं भी एक राजकुल की कामिनी हूँ और आप भी महाराजाकुलचूड़ामणि हैं इससे हम लोगों के सम्मानार्थ ७०० कुल-कामिनियाँ मेरी अंतिम बिदाई के लिये वहाँ तक आवेंगी, उनको कोई न रोके। विशेष प्रेम।"

"प्रेम-भिखारिनी"

मंत्री—महाराणी इस पर हस्ताक्षर कीजिए।

पद्मा०—नहीं, मैं कभी नही लिखूँगी। तुम्ही लिख दो।

मंत्री—जो आज्ञा। (लिखता है)

[पटाक्षेप

(इति चतुर्थांक)

पंचम अंक

प्रथम दृश्य

अलाउद्दीन का उपवेशनालय

[अलाउद्दीन बैठा है]

अला०—(आनंद से) आहा! आज बड़ी खुशी का दिन है। आज वह परी पैकर तशरीफ लावेगी। मुझको जो अपनी खूबसूरती का घमंड था वह झूठा न था, क्योंकि पद्मावती ऐसी खूबसूरत औरत मुझ पर फिदा हुई है तो जरूर मैं बड़ा ही खूबसूरत हूँ। वाह! मैंने भी क्या ही उस्तादी का काम किया है कि चित्तौर भी लिया, उस कंबख्त काफिर को भी मारूँगा और एक परीपैकर बेगम भी मिली। (व्यग्रभाव से) मगर इतनी देर क्यों हुई? वक्त तो

हो गया, मेरा जी घबराता है। (कुछ सोचकर) वाकई मैं बड़ा अक्लमंद हूँ, मगर हाय! मेरे दिल को एक दम की भी तसकीन नहीं! जब मैं गरीबों को निहायत खुश देखता हूँ तो बड़ा ही दुःख होता है। कैसे गजब की बात है कि मैं इतना बड़ा बादशाह होकर गमगीन रहूँ और ये कंबख्त खुश। खैर, उस नाजनी की शक्ल जब आँखों मे घूम जाती है, तो मुझको होश नहीं रहता! उह! बड़ी देर लगाई।

[पद्मावती का प्रवेश]

अहा! जिसके लिये मैं घबरा रहा था वह आ गई! जैसे आस्मान से चाँद उतरा चला आता हो, वाह! कैसी खूबसूरत है। आओ प्यारी मेरे नजदीक आओ, बहुत दिनों पर ज्यारत नसीब हुई। जरा बगलगीर हो लें। (बढ़ता है)

पद्मा०—(पीछे हटकर) जरा आप ठहरें, इतनी जल्दी न करें, अब तो मैं आपकी हो ही चुकी। (स्वगत) हाय! (प्रगट) एक बेर मैं अपने पुराने पति से जन्म भर के लिये बिदा हो लूँ फिर तो जो आप कहेंगे करूँगी।

अला०—खैर क्या मुजायका, जाओ। (प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

अलाउद्दीन के राजकारागार का बाहरी प्रांत

[महाराणा रतनसेन और महाराणी पद्मावती खड़े हैं]

रतन०—प्यारी! मैं सोता हूँ या जागता? क्या फिर तुम्हारे दर्शन हुए? नहीं, मुझे भ्रम हुआ है। मेरे भाग्य मे उस पूर्णिमा के चंद्रमा की अमल अपूर्व सुधा-ज्योति कहाँ? निश्चय भ्रम ही है।

उह ! सिर घूमता है । (मूर्छित हो गिरा चाहता है और महा-राणी पकडती हैं)

पद्मा०—प्राणेश ! यह क्या ? ऐसे क्यों हुए ? यह देखो तुम्हारी प्यारी पद्मावती तुम्हारे मधुर वाक्य सुनने की आशा मे व्याकुल हो रही है ! ऐसी विपत्ति मे बिना धैर्य्य के कैसे काम चलेगा ? प्राणप्यारे ! आँखे खोलो, एक बेर कृपा-कटाक्ष से इस दासी को आनंदित करो । (अत्यत प्यार से मुँह चूमती है)

रतन०—(चैतन्य होकर) ऐ ! सुधा किसने बरसाई ! किसने नींद से जगाया ! क्या मेरी दशा देखकर सुर-बालाओं को दया आई है और वे मुझे कृतार्थ करने के लिये यहाँ पधारी है ? (एका-एकी महाराणी को देखकर) ऐं ! क्या मैं सचमुच प्राणेश्वरी की गोद मे हूँ ? प्यारी प्यारी ! (अत्यंत प्रेम से दोनों मिलते और प्रेमाश्रु बहाते हैं)

रतन०— प्यारी ! मैंने सुना था कि तुम म्लेच्छाधम के साथ विवाह करने पर उद्यत हुई हो, क्या यह बात सच है ?

पद्मा०—इसकी बड़ी कहानी है, घर चलकर कहेगे । आप अभी भागने के लिये प्रस्तुत रहे ।

[अलाउद्दीन का अत्यंत क्रुद्ध भाव से प्रवेश]

अला०—(गर्जनपूर्वक) यह क्या ? इसके क्या मानी ? क्यों रे ?

रतन०—चुप रह, सूअर !

[पद्मावती ताली बजाती है । नेपथ्य मे "धर्म्म की जय, महाराज रतनसेन की जय, चित्तौर की जय" कहते हुए कुछ सैनिको का प्रवेश]

अला०—(दाँतों के नीचे उँगली दबाकर) यह दगाबाजी !!

पद्मा०—पाजी पिशाच ! यह दगाबाजी है पापी ? मित्र बन-कर महाराज को बंदी कर लिया वह दगाबाजी न थी ? स्त्री पर

कुदृष्टि से देखना दगाबाजी न थी? बिना दोष हिंदुओं को दंड देना दगाबाजी न थी? अपने प्राणपति को बचाना दगाबाजी है? दुष्ट यह दगाबाजी! अपने शत्रु से बदला लेना दगाबाजी है? देख हम हिंदुओं की वीरता, धर्म्मभीरुता। अब इस समय अपने सहायक को बुला, अपनी रक्षा कर, हमको दंड दे, देखें तेरी बहादुरी! दुःख यही है कि तेरे हाथ मे शस्त्र नहीं है, नहीं तो तुझसे इस पृथ्वी की रक्षा करती, तेरे पापों का फल तुझको देती। यदि तुझमे कुछ भी सामर्थ्य हो तो आ शस्त्र ले और मुझसे लड़। देख क्षत्राणियों का सतीत्व भंग करना कैसा होता है? प्यारी किस मुँह से कहना होता है? दुष्ट! मैंने इसमें कुछ भी अधर्म्म नहीं किया है; अपने प्राण-पति को बचाने के लिये, स्वदेश-रक्षा के लिये और अपने सतीत्व की सहायता के निमित्त कुछ झूठ बोली हूँ, तिस पर भी उस पत्र पर मेरे हस्ताक्षर नहीं हैं। यदि मैं आज क्षत्राणी न होती, यदि मेरा यह धर्म्म न होता तो आज ही स्वदेश-रक्षा करती, तेरी दुष्टता का प्रति-फल देती, यदि तेरे हाथ मे शस्त्र होता, अथवा मुझसे ही शस्त्र लेकर लड़ता तो मैं तेरा सिर काटकर अभी इसी दम सब बदला चुका लेती। (रतनसेन से) प्राणनाथ! चलिए, अब विलंब न कीजिए। (सैनिकों से) तुम लोग यहीं रहो, इसको कहीं मत जाने देना, यहीं पकड़ रखना, जब तक इसकी सेना न आ जाय और लड़ाई आरंभ न हो ले।

सैनिक—जो आज्ञा।

[महाराणा और महाराणी का विद्युत् की तरह चला जाना और अलाउद्दीन का एकटक उसी ओर देखते रहना]

अला०—ऐं! क्या यह मैंने ख्वाब देखा या सहाबा? मेरी यह बेइज्जती? आह! जिंदगी भर में यह पहला मौका है। अफ-

सोस ! कुछ भी न कर सका। जिस वक्त उसका वह तेजी के साथ निकल जाना खयाल करता हूँ, छाती पर साँप लोट जाता है, आग बल उठती है, कलेजा टुकड़े टुकड़े हो जाता है, आँखो के सामने अँधेरा छा जाता है और अपने तईं सम्हाल नही सकता। क्या हुआ कुछ परवाह नहीं। मैं इसका बदला लूँगा। तब मेरा नाम अलाउद्दीन जो मैंने उस कंबख्त का झोटा पकडकर न घसीटा।

सैनिक—दुष्ट चुप रह, जीभ पकड़कर खैंच लेगे।

[सभी का महा कोलाहल करना और पटाक्षेप

[नेपथ्य में]

धर्म की जय, महाराज रतनसेन की जय।

(अल्लाहो अकबर इत्यादि का शब्द होना)

तृतीय दृश्य

अलाउद्दीन का उपवेशनालय

[अलाउद्दीन बैठा है]

अला०—खैर जो हुआ सो हुआ, अब इसका मैं ऐसा बदला लूँगा कि वे सब भी याद करेंगे। उस कंबख्त को एक अदने सिपाही से न खराब कराया तो मेरा नाम नही। कोई है सिपहसालार को बुलाओ।

ने०—जो हुक्म, बदगानआली।

[सिपहसालार का प्रवेश]

अला०—उन कंबख्त काफिरों को गिरफ़ार करने के लिये फौज गई ?

सिप०—हुजूर ! उसी वक्त।

अला०—कुछ खबर आई ?

सिप०—हुजूर! अभी तक तो कोई खबर नहीं मिली।

अला०—आह! उसने बड़ी भारी जक दी।

सिप०—हुजूर! कुछ परवाह नहीं, एक एक से बदला लूँगा। हुजूर का इकबाल ऐसा नही है कि कोई बचने पावे।

अला०—खैर तुम तैयार हो, हम खुद जंग मे लड़ने को चलेंगे।

सिप०—हुजूर के तकलीफ फरमाने की कोई जरूरत नहीं है, गुलाम जाता है इनशाअल्लाहतआला सुर्खरूई हासिल करके लौटूँगा।

अला०—नहीं, हम खुद चलेगे। तुमको ज्याद: बोलने की कोई जरूरत नहीं है।

सिप०—जो हुक्म।

अला०—हाय! मुझे धोखा दे गई! मेरी इतनी होशियारी पर पानी फेर गई! मेरा सिर आज तक किसी ने नीचा नहीं किया था सो इसने मेरी इतनी बेइज्जती की! हाय अफसोस! सद-अफसोस!

(क्रोध और दुःख नाट्य करता है)

[पटाक्षेप

(इति पंचमांक)

षष्ठांक

प्रथम दृश्य

महारानी पद्मावती का उपवेशनालय

[महारानी और महाराणा बैठे हैं]

रतन०—प्यारी! तुमने बड़ी चतुराई की। यदि तुम न बचाती तो हमारा प्राण जा चुका था।

पद्मा०—प्राणनाथ ! हमने कुछ भी नहीं किया, केवल ईश्वर ने किया। परतु प्यारे ! हमे उस दुष्ट को प्यारे लिखने मे बड़ा दु.ख हुआ, और वह दु ख जन्म भर न भूलूँगी ।

रतन० —खैर जो हुआ सो हुआ, अब आगे की बात करनी चाहिए । जो बीती, सो बीती, देखो चित्तौर के बाहर लड़ाई हो रही है, हमारे मुख्य वीरगण उसी मे लड़ रहे हैं, देखा चाहिए क्या होता है ?

पद्मा०—होना क्या है ? जय, परतु अब चित्तौर बचता नहीं दीखता, क्योंकि वह दुष्ट बेतरह पीछे पड़ा है ।

रतन०—इसका कुछ डर नही। हमारा धर्म रहेगा और वंश भी बना रहेगा तो फिर चित्तौर स्वतत्र होगा, फिर धर्म की पताका फहरायगी, लड़कर मरने से हमे स्वर्ग होगा, ससार मे कोई यह तो नहीं कहैगा कि रतनसेन कायर था, न लड़ सका। सब उसी नराधम को धिक्कारेंगे जो दो दो बार हारकर भी फिर निर्लज्ज होकर लड़ता है। देवी का जो आदेश हुआ है वह तो तुमने सुना ही। अब क्या कर्त्तव्य है ?

पद्मा०—करना यही है कि ग्यारह पुत्र और बारहवे आपकी बलि हो, एक पुत्र वश के लिये बचाया जाय, और मैं बैठकर तमाशा देखूँ। (आँखों मे आँसू भर आते हैं)

रतन०—प्यारी ! यह क्या, तुम राजपूत बाला होकर ऐसी घबराती हो ! ईश्वर ने हम लोगों का पाषाण हृदय बनाया है सभी कुछ सहेंगे। तुम लोगों के लिये पहले जहरव्रत* अवलबन किया

---

* जब जय की कोई आशा नहीं रहती तब स्त्रियाँ संभ्रम-रक्षार्थ इस व्रत का अनुष्ठान किया करती है। नगर की सब स्त्रियाँ नहा धो पवित्र होकर इकट्ठी होती है। एक गुहा में आग लगाई जाती है और बाहर से लोहे का फाटक बंद कर दिया जाता है। एक क्षण मे देखते देखते आँखों के

जायगा फिर हम लोग लड़ेंगे। यह कभी सभव नहीं है कि दुष्ट अपवित्र यवन लोग पवित्र राजपूत कुल-बालाओं की छाया भी स्पर्श कर सकें।

पद्मा०—(आनंद से) प्राणनाथ ! यही तो हमारी भी इच्छा थी परतु आपकी आज्ञा बिना नहीं कह सकती थी, तो मैं इसकी आयोजना करूँ।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनि०—(हाथ जोड़कर) महाराज की जय ! महाराणी की जय ! लड़ाई मे हम लोगों की जीत हुई और मुसलमान लोग बड़ी भारी क्षति उठाकर भाग गए ! परंतु महाराज वीरसिंह प्रभृति सब बड़े बड़े योधा इस लड़ाई मे मारे गए। आधे के लगभग चित्तौर के वीर इस लड़ाई मे काम आए। अब सुना है कि शीघ्र ही अलाउद्दीन फिर चित्तौर पर चढ़ाई करेगा।

रतन०—अच्छा कुछ हर्ज नहीं। प्यारी ! मैं सैन्य प्रस्तुत करने के लिये जाता हूँ, तुम जहरव्रत की तैयारी कर रखना।

पद्मा०—जो आज्ञा। (महाराणा और सैनिक का प्रस्थान)

[पटाक्षेप

सामने हजारो सु दर तथा कोमल कुल-कामिनिया सतीत्व की रक्षा के निमित्त जल भुनकर राख हो जाती है ! धन्य राजपूत वीर धर्म्म धन्य ! उदयपुर राज्य-वंश में कई बार ऐसा हो चुका है।

द्वितीय दृश्य

गोरा का स्थान

[बादल और गोरा की स्त्री का प्रवेश]

स्त्री०—वत्स, लड़ाई मे तुम्हारे पितृव्य ने कैसा काम किया ? हमने सुना है कि तुमने बड़ा ही पराक्रम किया।

बादल—माता ! हमारे पितृव्य ने यथेष्ट शत्रुओं से बदला लिया, हम केवल उनके अनुगामी थे, उनके हाथ से जो अधमरे छूट गए थे मैंने केवल उन्हीं को मारा, पराक्रम कुछ भी न था।

स्त्री०—बेटा ! तुम धन्य हो, इस समय सारा चित्तौर एक मुँह होकर तुम्हारी प्रशंसा कर रहा है। बारह बरस की अवस्था मे तुमने आश्चर्य पराक्रम किया। परतु हमे सच सच बतलाओ कि प्राणपति ने क्या किया ?

बादल—माता ! हमने कुछ नहीं किया, जो कुछ किया हमारे पितृव्य ने किया।

स्त्री०—अच्छा तो बेटा ! हमे आनंदपूर्वक बिदा करो, हमारे प्रभु देर होने से क्रुद्ध होते होगे।

बादल—हमे छोड़कर कहाँ जाती हो, माँ ?

स्त्री०—बेटा ! राजपूत होकर ऐसे अधीर होते हो ? छि: अब हमे बिदा करो। (बादल चुपचाप खडा रहता है, गोरा की स्त्री चिता पर बैठती है। नेपथ्य में महाप्रकाश होता है।)

[पटाक्षेप

———

तृतीय दृश्य

महाराणा रतनसेन की राजसभा

[राजपूत लोग बैठे हैं और महाराणा सिंहासन पर विराजमान हैं]

रतन०—वीरगण! चित्तौर की जो दशा है वह आप लोगों के सामने है, अब क्या कर्तव्य है ?

१ राजपूत—लड़ाई। हम लोगों के जीते किसकी सामर्थ्य है जो चित्तौर को छू सके ?

२ राज०—हमारी तलवार की चोट को कौन सहन कर सकता है ?

३ राज०—महाराज! किस नराधम की सामर्थ्य है जो हमारे पैर को भी हिला सके ?

रतन०—भ्रातृगण, इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि हमारे वीर राजपूतों के जीवन समय तक कोई इस पवित्र भूमि की ओर देखने का साहस नहीं कर सकता, परंतु आप लोग जानते हैं कि उन लोगों की सैन्य-संख्या बहुत है और हम लोग अब थोड़े रह गए हैं। इसका हमको कुछ भी डर नहीं है, पर स्त्रियों की मानरक्षा के लिये "जहरव्रत" करना चाहिए।

सब राज०—अवश्य, अवश्य, अवश्य।

रतन०—वीरगण! हम लोगों के लिये आज बड़े ही आनंद का दिन है! अपने देश की रक्षा के निमित्त आज हम लोग अपना प्राण देंगे, आज हम लोग अपने धर्म्म के लिये शत्रु से लड़ेंगे, आज हम लोग धर्म्म, देश, धन, नारी और मान का शत्रुओं से बदला चुकावेंगे। मुसलमान, दुष्ट मुसलमान, जिन्होंने हमारे धर्म्म का नाश किया, जिन्होंने हमारे मान का नाश किया, जो हमारी जन्मभूमि के विरोधी हैं, जो कुलस्त्रियों का सतीत्व भंग करते हैं, जो नारियों पर अत्याचार करते हैं, जो हम लोगों की पूज्यपादा जननी गौ की हिंसा

करते हैं जिनका मुँह देखने से पाप लगता है, उन्हीं मुसलमानों के संहार का आज दिन है, उन्हीं से बदला चुकाने का शुभ मुहूर्त्त है, भ्रातृगण! उठो देखें किस शस्त्र से वे राजपूतों को हराते हैं? देखें किस मुँह से राजपूतो के साथ बोलते हैं? हम लोगों के इन्हीं पैरों के—इन्हीं पवित्र पैरों के नीचे महाअपवित्र सहस्रो यवनों के सिर लुड़केंगे! वीरगण! आज तुम लोगो को बदला चुकाने का बहुत अच्छा अवसर मिला है, ये वे ही दुष्ट हैं जिन्होने हमे धोखा देकर बंदी किया था, ये वेही दुष्ट हैं जो तुम लोगों की ममतामयी महा-राणी का सतीत्व भग किया चाहते थे, ये वेही नराधम हैं जो तुम लोगो को दो बेर पीठ दिखा चुके हैं, देखो यह हाथ खाली न जाय, आज इस सूर्य्यवश की नामधराई न हो, देखो सावधान! सूर्य्यवंश, राजपूत कुल और मेवार की प्रतिष्ठा तुम लोगों के हाथ है, सिर नीचे न कराना पड़े। वीरगण! तुम्हे सब दशा मे स्वर्ग है, परंतु स्वदेश-रक्षा के लिये हम स्वर्ग को भी तुच्छ समझते हैं, हम नरक का रहना अच्छा समझते हैं, जो स्वदेशहित साधन कर सकें।

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रणरंग जमाओ॥
परिकरि कसि करि उठो धनुष पै धरि शर साधौ।
केसरिया बानो सजि सजि रणकंकन बाँधौ॥
जौ आरजगण एक होइ निज रूप सँभारे।
तजि गृह-कलहि आपनी कुल मर्य्याद बिचारे॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिह जगे कह स्वान ठैरिहै समर मझारी॥
पदतल इन कहँ दलहु कीट तृण सरिस यवन चय।
तनिकहुँ संक न करहु धर्म जित जय तित निश्चय॥

आर्य्य बंस का बधन पुण्य जो अधम धर्म मैं।
गोभच्छण द्विज श्रुति हिंसन नित जासु कर्म मैं॥
तिनकौं तुरतहिं हतौ मिले रण कै घर माँहीं।
इन दुष्टन सों पाप किए हूँ पुण्य सदाही॥
चिउटिहुँ पदतल दबे डसत है तुच्छ जंतु इक।
ये प्रतच्छ अरि इनहि उपैछै जौन ताहि धिक॥
धिक तिन कहँ जे आर्य्य होइ यवनन कहँ चाहैं।
धिक तिन कहँ जो इनसौं कछु संबंध निबाहैं॥
उठहु बीर तलवार खैंचि मारहु घन सगर।
लोह लेखनी लिखहु आर्यबल यवन हृदय पर॥
मारू बाजे बजैं कही धौंसा घहराहीं।
उड़हिं पताका शत्रुहृदय लखि लखि थहराहीं॥
चारण बोलैं आर्य्य सुयश बंदी गुण गावैं।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं॥
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बकतर।
हिंहसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर॥
छिन मँह नासैं आर्य नीच यवनन कहँ करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

दोहा

उठहु उठहु सब बीरगण साजहु सब रण साज।
लोहै कौ अभरण सजहु रण मे करहु समाज॥
यवन गणन के रक्त की प्यासी है तलवार।
आज बुझावहु प्यास वह करि मलेच्छ कुल छार॥
जिन तोरी मूरति बहुत हिंदुन करत अधर्म।
नासत हैं गङ्यान कौं करत सदैव कुकर्म॥

कुल नारिन को करत जो महा पतिव्रत भंग।
बल प्रकाश करि दुष्टगण करत कुमारी संग॥
तिनही के विध्वंस को मंगल दिन है आज।
जासों प्रमुदित देखियत सबही आर्य समाज॥
तनिक विलंबहु होइ नहि चलहु सबै सानंद।
जीति लराई फिरहिंगे जीय बढ़ाइ अनंद॥
केसरिया बानौ सजहु वेगि होहु तैयार।
चलहु लरहु अरु जय करहु सब मिलि समर मझार॥
सूर्यवंश को मान अब तुम्हरे ही है हाथ।
ऐसो करहु उपाय अब नीचौ होइ न माथ॥
खोलि शस्त्र धारो सबै जिय बढ़ाइ अति चाह।
लरहु मलेच्छन सों सबै छोडि फूट अरु डाह॥
बजहि धर्म डंका गहकि फहरहि धर्म्म निसान।
बोलहि सब मिलि धर्म जय बढ़ै धर्म को मान॥

(महाराणा और सब वीरगण शस्त्र खीचकर और उत्तेजित होकर)

धर्म की जय! भारत की जय। चित्तौर की जय। महाराणा रत्नसेन की जय। महारानी पद्मावती की जय। सूर्य्यवंश की जय। क्षत्रियवंश की जय। महाराज! जब तक चित्तौर मे एक मनुष्य भी जीवित रहेगा तब तक किसी की सामर्थ्य नहीं है जो यहाँ प्रवेश कर सके।

(सभो का वीर वेश में धर्म की जय इत्यादि कहते हुए घूमना)

[पटाक्षेप

चतुर्थ दृश्य

स्थान—पहाड़ की गुहा का बाहरी प्रांत

[गुहा में अग्नि जलती है, वीर वेष में महाराणा रतनसेन और राजपूत लोग केसरिया बाना पहिरे निस्तब्ध खड़े हुए गुहा की ओर एक-टक देखते हैं। सबके आगे महारानी पद्मावती और पीछे पीछे राजपूत बालागण का प्रेमभरी चितवन से राजपूतों को देखते हुए प्रवेश]

पद्मा०—भगिनीगन ! सानंद आज उत्साह मनाओ।
आर्य्यधर्म की ध्वजा भेदि नभ मैं फहराओ ॥
कहो कहाँ यह समय कहाँ यह अवसर शुभतम।
परम धन्य सब भईं आजु लहि समयो यह हम।
नासमान यह देह न जाने कितीक जनमीं।
खाइ पीई अरु बिहरि जगत मैं कितीक भरमीं ॥
पै ऐसो शुभ समय कहो कब किन जो पायो।
जनमभूमि अरु सतीधर्म हित प्रान गँवायो ॥
जदपि बहुत जग धर्म निगम आगम ने गायो।
पै नारिहि पतिधर्म कोउ समता नहीं पायो ॥
यद्यपि जग मे बहुत भांति संपत्ति बड़ाई।
पै सतीत्व धन सरिस बड़ाई कोउ न पाई ॥
सो धन सोई धर्म प्राण हूँ सो प्रिय जो है।
चढ़ी म्लेच्छ की सैन आज सोइ नासन को है ॥
ताहि बचावन हेतु आज यह शुभ व्रत मान्यौ।
मिल्यो सुअवसर आज भाग्य धन अपनो मान्यौ।
आवहि सुख सो दुष्ट करैं जोई मन भावै।
आर्य्य रमणि गण के छाया हूँ को नहि पावै ॥
सोइ नारी कुलवंति सोइ धार्मिक धन सोई।

सोइ जगत मैं सुखी नारिकुलतिलक जो होई ॥
जाके तन मन प्रान देश के कामहि आवै ।
जो पतिव्रत रच्छन के हित नित देह गवाँवै ॥
अहो भगिनि तुम धन्य लह्यो अनयास जु यह सुख।
भारत-रमनि-समाज ! आज उज्ज्वल कीनों मुख ॥
धिक तिनको जे प्रान मोह सो मुख को मोरैं ।
धिक धिक तिनके प्रान जौन यह शुभ व्रत तोरैं॥
परम भाग्य निज मानि परम आनंद मनाओ ।
सती धर्म्म की मेड़ थापि जग मे जस पाओ ॥
आओ आओ बढ़ौ अग्निमडल मे जावैं ।
यह पवित्र तन धूम्र चहूँ दिसि नभ मे छावैं ॥
चलौ चलौ सब बेगि पहुँच सुरपुर मैं जावैं ।
प्राणनाथ हित तहाँ बेगि सब साज बनावैं ॥
आवैंगे पिय आज तहाँ हम आगे सों बढ़ि ।
भेटि अंक भरि लेहि कसक सब जाइ हिए कढ़ि॥
बड़ भागिन पिय संग बिहरिहैं जग दुख खोई ।
परम कांत एकांत रहस सुख अंत न होई ॥
चलो चलो अब तुरत बिलम को काम नेकु नहिं ।
सतीधर्म जय आर्य धर्म जय भारत जय कहि ॥

[आगे आगे महारानी पद्मावती और पीछे पीछे सब स्त्रियो का अग्निमय गुफा मे प्रवेश]

(नेपथ्य मे परम प्रकाश । आकाश मे तीन अप्सराएँ एक हाथ मे फूलो की डाली और दूसरे मे फूलों की माला लिए दिखलाई पडती हैं)

अप्सरागण—आओ आओ पद्मावति महरानी !
यह जयमाल कंठ पहिरावें धन्य भाग्य निज मानी ॥

(३) धर्मालाप

यह वार्त्तालाप संवत् १९४२ मे लिखा गया था और पहले पहल धर्मामृत पत्र मे छपा था। पीछे से यह पुस्तकाकार छपा। इसमे ग्रंथकार ने भिन्न भिन्न मतों के अनुयायियो का परस्पर वार्तालाप कराया है।

संपादक

समर्पण

जो सब मतों का जीवन, प्रेमियों का प्राण,
भक्तों का प्रभु, ग्रंथकर्त्ता का सर्वस्व है
उसी के चरणकमलों में भक्ति-
प्रेम-श्रद्धा-पूर्वक सानंद
समर्पित।

श्रीबसंतपंचमी
१९४२

श्रीराधाकृष्णदास

धर्मालाप

(वृद्ध सनातन धर्म बीच मे बैठा है और बहुत से लड़के चारो ओर घेरे बैठे हैं।)

सनातन धर्म—प्यारे संतानगण, देखो तुम लोगो के रहते भी हमारी कैसी दुर्दशा हो रही है। क्या तुम लोग अपने वृद्ध पिता के उद्धार का कोई उपाय न करोगे?

सब०—क्यों नही—क्यों नही—हम सब यथाशक्य उपाय कर ही रहे हैं पर ईश्वरेच्छा बलीयसी।

सनातन धर्म—प्यारो, ईश्वर का दोष कदापि मत दो, सब हमारे भाग्य का दोष है। भला तुम लोग अपना अपना उपाय तो बतलाओ कि क्या करते हो?

पंडित लोग—महाराज, हम लोग सबसे उत्तम उपाय करते हैं, पर क्या करैं कुटिल काल के आगे कोई वश नही चलता—हम लोगो ने लोगों के सुबीते के लिये अपने शास्त्रो को कामधेनु बनाया, जिसमे किसी को कष्ट न हो, जिसको जैसी आवश्यकता हो वैसी ही आज्ञा मिल जाय, जिसमे बहकने न पावे, और सच पूछिए तो वही हमारे काम आ रहा है, नही तो काहे को लोग व्यवस्था के लिये हमारे पास आते। हमारी तो कोई बात भी न पूछता, भूखे ही मरना पडता। ब्राह्मणो की महिमा गाई जिसमे लोग उन पर श्रद्धा करैं और धर्म की ओर रुचि हो, पाँच पैसे मे गऊदान कराया, जिसमे सब कोई कर सकै इत्यादि इत्यादि कहाँ तक गिनावै जितने उपकार हम लोगों के धर्म पर हैं उतने किसी के नही। देखिए,

अब तक बराबर सभाओं में जाकर एक दूसरे का सिर इसी लिये फोड़ते हैं जिसमे धर्म की उन्नति हो। पर अब काल के प्रभाव से सब उलटा ही हो गया, अब लोग हमारा ही दोष देते हैं। पर महाराज जो हम लोगो ने इतनी गुंजाइश न रखी होती तो आज एक हिंदू भी न दिखलाई पडता।

वैरागी वा वेदांती—आहा! हम लोगो ने तो ससार को तार ही दिया। सबको मिथ्या जाल से छुड़ा दिया। अगर हम न होवे तो कोई ब्रह्म को न पहिचानकर ससार के बखेड़ों ही मे पड़ा सड़ा करता।

"रचि के मत वेदांत को हिंदुन ब्रह्म बनाय।
सबको पुरुषोत्तम किए 'तोरि हाथ अरु पाय'"॥

ब्राह्मण देवता—अपने तो जिजमान की बढ़ती मनावा करीथै और धर्म की जयजयकार—साल भर में कुछ नाहीं तो सौ पचास गऊदान तो ब्राह्मण के वचन और विष्णु के प्रसाद से करावत होइबै—करिया अच्छर भैंस समान 'जो पठतव्यम् सो मरतव्यम् दाँत खटाखट कि करतव्यम्' और का नहीं तो।

शैव—हम जितना काम करते हैं उतना क्या कोई करैगा। सबेरे से उठकर स्नान ध्यान संध्या पूजा पाठ यात्रा, और शिवजी को जल चढ़ाने ही में तीसरा प्रहर करते हैं और संझा को बूटी रगड़ भोलानाथ को चढ़ा प्रसादी लेने ही मे सबेरे की खबर लेते हैं। निदान रात दिन धर्म ही के अपेण करते हैं। धर्म के लिये वैष्णवों को लाखों गालियाँ देते हैं और अगर बखत पड़ा तो आपुसै में सिर कटाने को भी तयार।

शाक्त—हमे तो चंडीपाठ और तंत्रों ही से छुट्टी नहीं मिलती करैं सो क्या करैं। और फिर हम न होते तो भगवती चामुडा की जीभ लाल कैसे होती।

कौल—हम तो भाई धर्म के लिये और भ्रातृभाव बढ़ाने के लिये * * खाने तक को तैयार हैं इससे बढ़कर और क्या कर सकते हैं ?

वैष्णव—हम तो अपने धर्म मे ऐसी रुचि रखते हैं जैसी कोई नहीं रखता। गुरु की सेवा अपने चित्त से करते हैं। जो गुरु सोई गोविंद, 'तन, मन, धन, श्रीकृष्णार्पण'।

सनातन धर्म—बस बस बहुत हुआ। हमे इतना समय नहीं है कि सब मत वालों की बात सुनें।

'भए सब मत वारे मतवारे।
अपुनो अपुनो मत लै लै सब झगरत ज्यों भटियारे॥
कोउ कछु कहत ताहि कोउ दूजो खंडत निज हठ धारे।
कह झगड़े ही मैं तेइ मान्यौ पागल भए विचारे॥
आपुस मे पहले सब मिलि निश्चै करि होइ न न्यारे।
हरीचंद आओ तौ भाखै जामैं मिलैं पियारे॥'

अब जरा बाबू साहब, साव जी, लाला साहब, इत्यादि का हाल सुनना चाहते हैं क्योंकि ससार का काम इन्हीं लोगो से चलता है और ये लोग चाहें तो बात करते करते हमारा उद्धार हो सकता है। (मारवाड़ी की तरफ देखकर) सेठजी! आप कहिए क्या करते हैं ?

मारवाडी—म्हाँ तो महाराज, पुरोहित जी की आज्ञा बिना कोई काम करैं नहीं। घर बार लड़का, जोरू धरम सरम सबका हाल पुरोहित जी जान छे। उनसे पूछो।

साव जी—हमरे तो पुरखा लोग जो कुछ थोड़ा बहुत छोड़ गए हैं ओही से गुजारा चलथै। नित्त सबेरे गंगाजी नहाय आइथै और अपना एक पइसा घाटिया के दे दिहा। एकादसी एकादसी एक ठे

बाभन जेवाय दिहा। अपन तो बाबा पुन्न धरम का बड़ा खयाल रक्खीथै। बाकी अब के लड़कन के देख के तो अकिलै काम नाहीं करती—

'लोग क्रिस्तान भए जाथैं बनथैं साहेब।
कैसा अब पुन्न धरम गंगा नहाना कैसा॥'

बाबू साहब —

'सिजदे से गर बिहिश्त मिलै दूर कीजिए।
दोजख ही सही सिर का हिलाना नही अच्छा॥
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे।
उमरा को हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा॥'

लाला साहब—कलमदान कसम, हम तो खुदा का नाम लिए बिना कोई काम करते ही नहीं। बंदः तो तसबीह हाथ से छोडता ही नहीं।

सनातन धर्म—शाबाश। क्यों न हो।

पंचपिरिए—हमरे तो गाजी मियाँ बाबा सहाय हैं। अहा! शहीद बाबा की लीला भी अपरंपार है। हम तो साल में तीन पियाला देइथै। धन है नोनिया चमाइन के, उनकी कला भी परतच्छै है—हे गहरू दादा, सब तोहरै पुन्न परताप।

सनातन धर्म—बहुत हुआ। कान भर गए, कलेजा कबाब हो चुका, अब रहने दीजिए—भला ये नई रोशनी के लोग जिनसे कि बहुत कुछ आशा की जाती है क्या करते हैं?

दयानंदी—महाराज मैं क्या करूँ, इन सब मूर्ख लोगों और पोप लोगों के मारे कुछ नहीं होने पाता। यदि जैसा स्वामीजी कहते थे वैसा सब करने लगते तो हिंदू देवता हो जाते। क्या आवश्यकता है पत्थर की मूर्ति की? क्या आवश्यकता है कंठी माला की? 'कंठी बाँधे हरि मिलैं तो बंदा बाँधे कुंदा'।

ब्राह्मो—हमारा कहना लोग मानता और हमारे माफिक चलता तो अलबत हम ब्रादरहुड फैला देता। डोम चमार को भट्टाचार्ज महाशय का साथ खिलाता, और ब्राह्मण का विधवा हलालखोर का साथ विवाहता। लोग मूर्ख—कुछ सुनतइ नेई।

थियोसोफिस्ट—हमको तो ये मूर्ख लोग कूएँ मे गिरा बतलाते हैं। जो हमारा कहना मानते तो बात की बात मे कर्नेल साहब और मैडम साहिबा की कृपा से डाढी जटा बढ़ाकर संसार योगी हो जाता। धन्य प्रभु कुटूमी लाल सिंह!

न्यूफेशनिये—आ यू ओल्ड फूल्स!!

'या संसार असार मे चार वस्तु है सार।
जूआ मदिरा मांस अरु नारी संग बिहार॥'

नेटिव क्रिश्चियन—जिस दिन हजरत ईसा पर लोग ईमान लावैगा उस दिन दुनिया का सच्चा तरक्की होगा और आपका बी उद्धार हो जायगा—और ईठी सब बखेडा छूट जायगा।

नेचरिए या नास्तिक—जब तक लोग अंधेरे कूएँ मे पड़े ईश्वर को खोजा करेंगे कभी उनका उद्धार न होगा—जिस दिन व्यर्थ ईश्वर का भ्रम छोड़कर लोग नेचर का प्रभाव जानेंगे उसी दिन कंट्री रिफार्म्ड हो जायगी।

सनातन धर्म—चुप रहो अब कान मत फोड़ो, भाग्य मे जो कुछ था सो सब सुन चुके, अब केवल मरना बाकी है।

प्रेमी भक्त—महाराज कुछ थोडी सी मेरी भी बिनती है यदि आज्ञा हो तो सुनाऊँ?

सनातन धर्म—कहो।

प्रेमी भक्त—महाराज, इन सभों ने तो अपना अपना धर्म कहा पर मुझे बड़ा शोच है कि मेरी क्या दशा होगी?

'न हिंदुश्रम् न मुसल्मों न काफिरम् न यहूद ।
ब हैरतम् कि सरंजामें मा चि ख्वाहद बूद ॥'

हमको तो यह सब बखेड़ा ही सा प्रतीत हुआ। हमारी समझ मे तो—

'जाति पाँति पूछै नहि कोई ।
हरि को भजै सो हरिका होई ॥'

व्यर्थ सब सिर फोड़ते हैं ।

'नाहिं इन झगरन मैं कछु सार ।
क्यों लरि लरि कै मरो बावरे बादन फोरि कपार ॥
कोइ पायो कै तुम ही पैहौ सो भाखौ निरधार ।
हरीचंद इन सब झगरन सो बाहर है वह यार ॥'

इसमें तो विचार करके देखै और शांत भाव से अनुभव करै तब कुछ ठिकाना लगै ।

'लगाओ चसमा सबै सपेद ।
तब सब वर्यों को त्यों सूझैगो जैसो जाको भेद ॥
हरो लाल पीरो अरु लीलो जो जो रंग लगायो ।
सोइ सोइ रंग सबै कछु सूझत यासों तत्त्व न पायो ॥
आग्रह छोड़ि सबै मिलि खोजहु तब वह रूप लखैहै ।
हरीचंद जो भेद भूलिहै सोई हरि को पैहै ॥'

कहाँ तक कहूँ—असिल बात तो यह है कि चुप होकर अनुभव करे और चूँ भी न करे—

'पियारे तुव गति अगम अपार ।
या मैं खोलै जीह जौन सो मूरख कूर गँवार ॥
तेरे हित बकनो बिन बातहि ठानि अनेकन रार ।
या सों बढ़िकै और जगत नहिं मूरखता व्यवहार ॥

कहाँ मन, बुद्धि, वेद अरु जिह्वा, कहाँ महिमा बिस्तार ।
हरीचद बिन मौन भए नहिं और उपाय बिचार ॥'

प्यारे भाइयो, इन सब बखेड़ों को छोड़ो, जरा शात भाव धारण करो, भगवान् के श्रीचरणो मे चित्त लगाओ, देखो सब मगल ही होगा ।

'तृण गत जल कन सों चपल जीवन छिन विश्वास ।
परम धर्म हरि पद भजन तजहु न एकहु सॉस ॥
ऊँचे भुज करि टेरि कै कहत पुकारि पुकारि ।
बिनु हरि काम न आइहैं कछू धर्म धन नारि ॥'

सनातन धर्म—साधु साधु सच है 'बिनु हरि काम न आइहैं कछू धर्म धन नारि' प्यारे बालको! देखो इन बातो पर ध्यान दो, इस स्वर्ग का सुखानुभव करो, देखो सारा संसार मगलमय हो जायगा। जब तक नखचद्रछटा का आश्रय न लोगे तब तक कदापि इस अँधेरी कोठरी से न निकल सकोगे। सावधान! सावधान! भूलना मत, इन बातों को अपने हृदय-पट मे वज्रलेखनी से लिख रखो और अपने मगल के साथ इस किनारे के रूख अपने वृद्ध पिता का भी मंगल साधन करो।

(सब एक साथ कोलाहल करते हैं और आपस मे लड़ते हैं)

सनातन धर्म—हाय! मेरे इतने बकने का कुछ भी फल न हुआ! न जाने ईश्वर क्यों हमसे इतना रूठा है। हाय! जिसको एक लड़का नही होता सो लड़के के लिये तरसता है पर मेरे इतने लड़के होने पर यह दुर्दशा !!!

'कोऊ नहि पकरत मेरा हाथ ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हाहा! होइ अनाथ ॥
जाकी सरन गहत सोइ मारत सुनत न कोउ दुख गाथ ।
दीन बन्यो इत तें उत डोलत टकरावत निज माथ ॥

दिन दिन विपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ।
सब विधि दुखसागर में डूबत आइ उबारौ नाथ ॥'

(मूर्छित होना चाहता है)

(एक साथ परम प्रकाश के साथ साहस और आशा का प्रवेश)

साहस—हैं! हैं! यह क्या ? हमारे बाल्य सखा सनातन धर्म हमे बिल्कुल भूल ही गए ? एं हमारे रहते भी क्या हमारे परम सहायक की यह दशा हो सकती है ? मित्र! हमारे जीते ही तुम इतने घबडाए जाते हो। उठो एक बेर उद्योग करो "हारिए न हिम्मत बिसारिए न हरि नाम, जाही बिधि राखै राम ताही बिधि रहिए।"

आशा—हमारे रहते किसी ने भी प्राण दिए हैं कि यही देगा। देखो मैं अपनी उसी मोहनी शक्ति से जिससे सारे संसार को मोहती हूँ और जिस बड़े खंभे पर सारा संसार खड़ा है इसको जगाती हूँ (सनातन धर्म के मुँह पर हाथ फेरकर) प्यारे सनातन धर्म भला तुम इतने बड़े बुद्धिमान् और धैर्यवान् होकर ऐसा बच्चों की नाईं घबड़ा गए! छिः! तुम्हारा अभी बिगड़ा क्या है! तुम्हारे इतनी संतानें हैं इन्हे सचेत करो, आज दिन भी कोई तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता। उठो।

सनातन धर्म—(सचेत होकर) हाय! सुख से मरने भी नहीं पाते। न जाने हमारी क्या दुर्दशा होनेवाली है। हे दयासिंधु यदि इस अमोघ दयासागर में से एक बिंदु भी मुझ पर छिड़क दो तो मेरा कल्याण हो जाय और तुम्हारा कुछ भी न बिगड़े। (मेघों की ओर देखकर)।

'पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधिनीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सुंदरता सरसौ ॥

घन आनँद जीवन दायक हौ कबौं मेरियौ पीर हिए परसो।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान को लै बरसो ॥'

(आकाश मे फूल बरसाती तीन अप्सरा गान
करती दिखलाई पड़ती हैं।)

सबै मिलि जै जैकार मचाओ।
जयति सनातन धर्म जयति जय प्रेम बधाई गाओ ॥
प्रेम, भक्ति ज्ञानामृत ले ले पीओ और पिलाओ।
दास क्षमा आनँद रस माते सब जग को ललचाओ ॥

[पटाक्षेप

---

(४) महाराणा प्रतापसिंह

महाराणा प्रतापसिंह संवत् १९५४ में समाप्त हुआ। इसमे उदयपुर के महाराणा प्रतापसिंह की वीरता और धीरता तथा बादशाह अकबर की कुटिल राजनीति का वर्णन किया गया है। इस नाटक का बहुत आदर हुआ है और यह कई बेर किंचित् परिवर्तन के साथ खेला भी जा चुका है।

संपादक

निवेदन

पूज्यपाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी ने एक याददाश्त पर लिखा था कि "किसी नाटक मे (प्रतापसिंह के) अकबर की पालिसी स्पष्ट करके दिखाना"। उसे देखकर मैंने इस नाटक को लिखना आरभ किया और जगदीश्वर की कृपा से आज पूरा करके आप लोगों की भेंट करता हूँ।

यद्यपि वीरवर महाराणा प्रतापसिंह तथा राजनीतिविशारद अकबर का चरित्र जैसा अंकित करना चाहिए वैसा करने की तो मुझे सामर्थ्य नही है, तथापि यदि मेरे इस नाटक से उक्त भारतमुखोज्ज्वलकारी प्रातःस्मरणीय महानुभाव के वीरचरित्र का प्रचार इस आत्मविस्मृत देश मे कुछ भी हो, तथा सहृदय पाठकों का कुछ भी मनोरंजन हो सके, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

इस नाटक को पहले मित्रवर बाबू जगन्नाथदास बी० ए० (रत्नाकर) ने अपने "साहित्यसुधानिधि" मासिक पत्र मे छापना आरंभ किया था तथा इसके संशोधन आदि में बहुत कुछ सहायता दी थी परंतु हिंदी रसिकों के अभाव से उक्त मासिक पत्र बहुत शीघ्र बंद हो गया और ग्रथ अधूरा ही रह गया। परंतु फिर पंडित जगन्नाथ मेहता और बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए० के उत्साह से यह पूरा हुआ और मुझे आप सज्जनों की भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ। अतएव मैं अपने इन मित्रों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

उदयपुर-निवासी मित्रवर कुँवर योधसिंह मेहता ने मुझे बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं तथा कविताओं के संग्रह मे सहायता

ही और उत्साहित किया इसलिये मैं उन्हें भी धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता।

इस ग्रंथ के लिखने मे मुझे टाड साहब के "राजस्थान," पूज्य भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी के "उदयपुरोदय," कुँवर योधसिंह मेहता के "मेवाड का संक्षिप्त इतिहास," मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ जोधपुर के "महाराजा प्रतापसिंह का जीवन-चरित्र" तथा कवि गणपतिराम राजाराम के गुजराती "प्रताप नाटक" से बहुत कुछ सहायता मिली है, इसलिये मैं हृदय से इन ग्रंथकारों को धन्यवाद देता हूँ।

मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भारतवर्ष के गौरव-स्वरूप प्रसिद्ध व्यक्तियों के चरित्र, किसी को नाटक, किसी को उपन्यास और किसी को इतिहास स्वरूप में यथावकाश अपने पाठकों की भेंट करूँ, परंतु यह इच्छा पूरी करना उन्हीं सहृदय पाठकों के हाथ है। यदि आप लोगों से यथोचित उत्साह मिलेगा और मुझे यह निश्चय होगा कि मेरा लेख आपको रुचिकर हुआ, तो मैं शीघ्र ही फिर आपकी सेवा मे, परम प्रसिद्ध भगवद्भक्तिपरायणा मीराबाई का नाटक तथा जीवन-चरित्र (जिसे मैंने बहुत परिश्रम और खोज से संग्रह किया है) लेकर फिर उपस्थित होऊँगा।

अंत मे मेरी प्रार्थना है कि विज्ञ महाशयों की दृष्टि में जो त्रुटि इस नाटक मे दिखाई दे कृपा कर उससे वे मुझे मित्रभाव से अवश्य सूचित करें जिसमे यदि उचित हो तो दूसरे संस्करण में धन्यवादपूर्वक वे त्रुटियाँ दूर कर दी जायँ।

काशी चौखंभा
श्रीगिरिधर-जन्मोत्सव
संवत् १९५४ मि० पौषकृष्ण
ता० १२ दिसंबर सन् १८९७ ई०

हिंदी रसिकों का सेवक
श्रीराधाकृष्णदास

भूमिका

महाराणा उदयसिंह संवत् १५९७ (१५३९-४० ई०) मे चित्तौर (मेवाड़) की राजगद्दी पर बैठे, अकबर ने बडी धूम-धाम से धावा किया परंतु वह हार खाकर लौट आया। कुछ दिनों पीछे मेवाड़ मे आपस की फूट देखकर अकबर को अवसर मिला और चित्तौर पर फिर उसने धावा किया। उदयसिंह अपनी जान लेकर भागे परंतु राजपूत सरदारो ने अपना प्राण रहते चित्तौर शत्रुओं को न दिया। घोर युद्ध हुआ, जयमल और पुत्ता ने बड़ी वीरता से लड़ाई की। अंत मे मेवाड़ की राजलक्ष्मी भाग्यवान् अकबर के हाथ आई। इस लडाई मे तीस हजार राजपूत वीर काम आए और बहुत सी स्त्रिया भी लडकर मर गईं। शेष जो रह गई थीं उन्होंने "जहरव्रत" किया अर्थात् जलकर अपनी पवित्रता को बचाया। अकबर ने चित्तौर दखल किया। इसका पूरा वृत्तांत फिर कभी निवेदन करेंगे।

उदयसिंह भागकर पिपली राज्य के जगलों मे गोहिल जाति की सहायता से रहने लगे। वहाँ से वे अरावली की घाटी मे आए, जहाँ बाप्पा रावल भी रहे थे। उन्होंने पहले उस स्थान पर अपने राजत्वकाल मे एक झील बनवाई थी जिसका नाम उदयसागर है। अब एक छोटा सा महल बनवाया और फिर तो उसके आसपास और भी इमारते बन गईं और वह एक छोटा सा नगर हो गया। उसका नाम उदयपुर रखा जो कि अब तक मेवाड राजवंश की राजधानी है।

चित्तौर जाने के चार वर्ष पीछे ४२ वर्ष की अवस्था मे उदयसिंह ने संसार छोड़ा। उन्हे पचीस बेटे थे। मरते समय उदयसिंह ने

छोटे बेटे को कुल की प्रथा के प्रतिकूल अपना उत्तराधिकारी बनाया। जगमल गद्दी पर बैठ गया परंतु यह बात मेवाड़ के सरदारों को बहुत ही बुरी लगी और उन लोगों ने शीघ्र ही उसे उतारकर महाराणा प्रतापसिंह को गद्दी पर बैठाया।

प्रतापसिंह का जन्म जेठ सुदी १३ संवत् १५९६ को हुआ था और मिती फागुन सुदी १५ संवत् १६१८ को गाँव गाघूंदे मे वे गद्दी पर बैठे थे।

प्रतापसिंह राज्याधिकारी तो हुए परंतु न तो उनके पास कुछ विशेष राजसी ठाट और न कोई दृढ़ किला रहा। प्रतापसिंह वीर पुरुष थे, उत्साह से हृदय भरा हुआ था, भीतर भीतर चित्तौर मुसलमानों से छीनकर अपने कुल का गौरव पुन: स्थापन करने की अग्नि सुलग रही थी। यद्यपि सरदार लोग लड़ाई मे हारते हारते टूट गए थे और उनका जी छोटा हो गया था परंतु इनकी दृढ़ता, वीरता और उच्चाभिलाष देखकर फिर सभों को साहस हुआ, फिर सब कमर कसकर खड़े हुए, प्रतापसिंह ने इसकी तनिक भी परवा न की कि अकबर ऐसे बादशाह से लड़ने के लियें कोई सामान ठीक नहीं है। परंतु उनका हृदय स्वाधीनता के सुस्वादु फल चखने की उमंग से भरा हुआ था। उन्होंने यह सोचकर, कि जैसे हमारे पूर्वजों ने इस चित्तौर की रक्षा की है और अपने शत्रुओं को इसी दुर्ग में कैद किया है क्या हम वैसा न कर सकेंगे, अकबर की सेना और सामान को तुच्छ जाना।

जिस समय प्रतापसिंह अकबर से लड़ने के लिये सन्नद्ध हो रहे थे, उस समय अकबर ऐसे उपायों में लग रहा था, जिनको सुनकर प्रतापसिंह अत्यंत ही दुखित हुए। वह उनके जाति-भाइयों तथा संबंधीगण को अपनी ओर मिला रहा था।

मारवाड, बीकानेर, आमेर, (जो कि पहले प्रताप के साथ थे) अकबर के पक्षपाती हुए, यहाँ तक कि प्रतापसिंह का सगा छोटा भाई (सक्ताजी) सगरजी भी उनको छोड़कर बादशाह से जा मिला और इसके बदले मे उसे उसके पूर्वजों की राजधानी चित्तौर का किला दिया गया और वह राणा की पदवी से भूषित किया गया।

ज्यों ज्यों उनके विरुद्ध सामान बढ़ते जाते थे त्यों त्यों प्रताप का उत्साह और साहस भी बढ़ता जाता था। उन्होने अपनी जननी के दूध की सौगंध खाई कि जैसे होगा अपनी मातृभूमि का उद्धार करूँगा। अकेले निःसहाय प्रतापसिंह ऐसे प्रतापी शत्रु के साथ २५ वर्ष तक बडे पराक्रम से लड़ते रहे और अंत मे एक प्रकार सफलमनोरथ भी हुए।

महाराज मानसिंह गुजरात विजय करके लौटते हुए उदयपुर के रास्ते आए, प्रतापसिंह ने उनका बडा आतिथ्य सत्कार किया परंतु वे उनके साथ खाने मे शरीक न हुए, यही जड़ लड़ाई आरभ होने की हुई।

मानसिंह के दिल्ली आने पर, बादशाह ने राणा पर क्रुद्ध होकर, मानसिंह के साथ मिती चैत्र सुदी ५ सवत् १६३३ को पॉच सहस्र सेना भेजी। इस सेना के साथ आसिफखॉ मीरबख्शी, गाजीखाँ, सैयद अहमद, सैयद हाशिम, राय लूनकरण आदि सरदार भी थे। टाड साहब ने लिखा है कि इस लड़ाई मे शाहजादा सलीम भी आए थे परंतु यह भ्रम है, शाहजादा सलीम उस समय केवल ७ वर्ष के थे।

यह लडाई हल्दी घाटी की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है।

ग्वालियर के राजा रामसिंह का एकलौता बेटा इस लडाई में मारा गया, परतु इससे उक्त राजा दुखी न होकर और भी उत्साह के साथ लड़े तथा काम आए, और ग्वालियर के राजसिंहासन को अनाथ छोड़ गए।

राणा ने अपने घोड़े चेतक को मानसिंह के हाथी पर कुदाकर बरछी मारी, परंतु वह वार खाली गया। हौदे को तोड़कर बरछी महावत को लगी और वह मारा गया। फिर तो बादशाही फौज इन पर टूट पड़ी और समीप था कि राणा मारे जाते परंतु स्वामिभक्त झाला मानसिंह राणा के छत्र और झंडे को लेकर एक ओर भागे। मुसलमानों ने समझा कि राणा उधर ही भागे जाते हैं, सब उसी ओर झुक पड़े और इधर अवसर पा राणा निकल गए। झाला मानसिंह अपने सब साथियों के साथ वहीं खेत रहे और ऐसी वीरता के साथ अपने स्वामी का प्राण बचाया। राणा ने इसके पलटे में उक्त झाला राना के वंशधरों को अपने दाहिने ओर स्थान दिया और आज्ञा दी कि ये लोग महल तक नक्कारा बजाते अपने छत्र और झंडे के साथ आया करें।

राणा को भागते हुए पहचानकर दो मुगलों ने उनका पीछा किया। परंतु एक बरसाती नदी बीच में आ गई और राणा का घोड़ा चेतक बहुत घायल होने पर भी अपने स्वामी को लेकर नदी फाँद गया। इधर इस असहायावस्था में राणा को देखकर उनके भाई सक्ता जी का भी भ्रातृस्नेह उमड़ आया और वे प्राचीन बैर भुलाकर उनके पीछे दौड़े, और जिस समय दोनों मुगल नदी उतरने के उद्योग में थे उनको ललकारा और दोनों को लड़कर मार गिराया। इस भाँति राणा दूसरी बार जान जोखों से बचे।

चेतक, ज्योंही राणा उससे उतरे, गिरकर मर गया। राणा ने उसके मरने पर बड़ा शोक किया और उस स्थान पर एक चबूतरा बनवाया। वे प्राय. स्वयं वहाँ जाया करते थे।

टाड साहब के लेखानुसार यह लड़ाई मिती सावन बदी ७ संवत् १६३३ को हुई थी और इसमें ५०० मनुष्य राणा

के तथा ३५० तोमर (तुँवर) राजा रामसिंह ग्वालियरवाले के काम आए।

"अकबरनामे" मे लिखा है कि बादशाही फौज उखड चुकी थी और निकट था कि भाग खडी होती, परंतु महतरखाॅ ने चालाकी की, वह चदैाल की फौज को दौड़ाए हुए आया और यह बात प्रसिद्ध की कि बादशाह आ पहुँचे, बस फिर सभो को साहस हो गया और राणा की सेना हताश होकर लौट पडी।

मुशी देवीप्रसाद मु सिफ जोधपुर ने महाराणा प्रतापसिंह का जीवनचरित बहुत खोज के साथ लिखा है। हम आगे का वृत्तांत अविकल उन्ही के ग्रथ से धन्यवादपूर्वक उद्धृत करते हैं—

"इस लडाई के पीछे महाराणा ने कुँभलमेर के किले मे अपनी गद्दी जमाई जो उदयपुर से पश्चिम की तरफ पहाड़ों मे परगने गोढ़-वाड के ऊपर है और मैदान का तमाम मुल्क जिसको बहुत करके मेवाड कहते ह उजाड़ दिया और वहा के आदमियो को पहाड़ों मे बुलाकर अजमेर मालवे और गुजरात के रास्तों पर लूट मार शुरू कर दी जिससे नाज और दूसरी व्योपार की चीजों का आना जाना बद हो गया और बादशाही लश्कर पर बडी तकलीफ गुजरने लगी। आसिफखाॅ और मानसिंह से कुछ बदोबस्त न हो सका और इसकी शिकायत बादशाह के कानों तक पहुँची। मगर बादशाह का दिल उस वक्त बंगाले की तरफ लगा हुआ था क्योंकि वहाॅ उनकी फौज पठानों से लड रही थी और वे खुद उसकी मदद के वास्ते सावन बदी २ को बंगाले की तरफ रवाना हुए। खुशनसीबी से उसी मिती को जो पचीसवां दिन गोगूँदे की फतह से था बगाला फतह हो गया और बादशाह यह खबर सुनकर रास्ते से राजधानी मे लौट आए। वहाँ से जाहिर मे तो जियारत और असल मे मेवाड के लश्कर को

मदद पहुँचाने के लिये रवाना होकर आसोज सुदी ७ को अजमेर पहुँचे। वहाँ सुना कि गोगूंदे के लश्कर मे रास्तों की तकलीफों से नाज कम आया है और कुँवर मानसिंह ने राणा का मुल्क लूटने की मनाई कर रखी है इस सबब से गोगूंदे में बड़ी तकलीफ है। इसके सिवाय कुँवर और आसिफखाँ मे अनबन भी है। इस पर बादशाह ने लश्कर के अमीरों के नाम छड़ी सवारी से हाजिर होने का हुक्म भेजा। जब वे हाजिर हुए तो कुँवर और आसिफखाँ की ड्योढी कई दिन तक बंद रखी फिर कसूर माफ करके रूबरू बुलाया।

"इस अवसर मे महाराणा ने सिरोही के राव सुरतान देवड़ा, जालौर के खान ताजखाँ और ईडर के राजा नारायणदास को भी अपने में शामिल कर लिया और यह सब मिलकर अरवली पहाड़ों के दोनों तरफ गुजरात के रास्तों पर लूट-मार और फसाद करने लगे। बादशाह ने जालौर और सिरोही के ऊपर तरसूखाँ और रायसिंह को भेजा और वे दोनों सरदार डरकर अजमेर में बादशाह के पास हाजिर हो गए। तब बादशाह ने तरसूखाँ को पाटन की हुकूमत पर भेजा और रायसिंह को नांदोत में रहने का हुक्म दिया जिससे महाराणा का गुजरात मे आने जाने का रास्ता बंद हो गया।

"अब बादशाह ने कातिक बदी ६ को अजमेर से गोगूँदे की तरफ कूँच किया और फौज को तो दो दिन पहले से बकतर पाखर पहिना दिए थे। गोगूँदे पहुँचकर कुतुबुद्दीन, राजा भगवंतदास और कुँवर मानसिंह को तो पहाड़ों में महाराणा के ऊपर और कुलीचखाँ वगैर: को ईडर की तरफ भेजा और इनके साथ ही हाजियों के काफिले यानी संग को भी हल्दोदर की घाटी से गुजरात की तरफ रवाना किया और मेवाड़ के पहाड़ों में होकर ईडर पहुँचा। महा-

राणा और नारायणदास लूटने का काबू न पाकर एक तरफ हो गए मगर ईडर कातिक बदी १३ को फतह हो गया।

"फिर बादशाह गाजीखाँ वगैर: अमीरो को मोही मे जो गोघूँदे से २० कोस है और अबदुलरहमान वगैर: को मदारिये मे छोड़कर पूस सुदी ८ को बाँसवाड़े के रास्ते से मालवे की तरफ रवाने हुए। कुतुबुद्दीनखाँ और राजा भगवंतदास जो हाजियो को गुजरात की सरहद तक पहुँचा चुके थे बगैर हुक्म आकर शामिल हो गए मगर उन पर खफगी हुई और कुछ दिन तक दरबार बंद रहा।

"बादशाह उदयपुर होकर बाँसवाड़े को रवाने हुए। उदयपुर में शाह फखरुद्दीन और जगन्नाथ को उदयपुर के दरे यानी दहवाड़ी की घाटी में राजा भगवतदास और सैयद अबदुल्लाखाँ को छोड़कर लश्कर की अफसरी कुतुबुद्दीनखाँ की जगह आसिफखाँ को दे गए और बाँसवाड़े होकर कि जहाँ डूँगरपुर और बाँसवाड़े के रावल परताप और आसकरन हाजिर हो गए थे देपालपुर मे पहुँचे और वहाँ कुछ दिन रहे।

"बादशाह के गोघूँदे की तरफ आने और पहाड़ों में होकर मालवे की तरफ जाने का एक मतलब यह भी था कि किसी तरह महाराणा भी दूसरे रईसों के माफिक उनके पास हाजिर हो जावें तो यह यात्रा सुफल हो जावे। मगर महाराणा तो ऐसी पट्टी पढे ही नहीं थे, उनको सब तरह से अपना नुकसान करना मजूर था लेकिन बादशाह को सिर झुकाना हरगिज मर नहीं था। और तो क्या एक भाट, जिसको महाराणा ने अपनी पगडो दी थी, जब बादशाह से मुजरा करने को गया तो उसने पगडी उतार हाथ में ले ली और नंगे सिर मुजरा किया। बादशाह ने सबब पूछा तो कहा कि यह पगड़ी राणा प्रतापसिंह की है जिसने कभी किसी हिंदू

मुसलमान को सिर नहीं झुकाया है, इसलिये मैंने भी उसका अदब रखा।

"बादशाह कम से कम ६ महीने के करीब महाराणा के मुल्क में और उसके आसपास रहे और उन्होंने महाराणा के तंग करने में भी कसर नहीं रखी, तो भी महाराणा ने कुछ परवाह न की और सलाम तक उनको नहीं कहलाकर भेजा बल्कि हर तरह से उनको दिक करते रहे और जब देखा कि बादशाह उनके मुल्क से निकल गए तो पहाड़ों से उतरकर बादशाही थानों पर चढ़ाई करना शुरू किया और मेवाड़ की तरफ से आगरे का और बादशाह के लश्कर का रास्ता बंद कर दिया जैसा कि मुल्ला अबदुलकादिर लिखता है कि मैं उस वक्त बीमारी के सबब से वतन में रह गया था और बाँसवाड़े में से लश्कर में जाना चाहता था मगर हिंडोन में अबदुल्लाखाँ ने वह रास्ता बंद और भयानक बताकर मुझको लौटाया, तब मैं ग्वालियर सारंगपुर और उज्जैन के रास्ते से देपालपुर में जाकर बादशाह के पास हाजिर हुआ।

"इस असरे मे सुरतान देवड़ा भी बादशाह के लश्कर से भागकर सिरोही में जा पहुँचा था और ईडर का राव नारायणदास भी फिसाद करने लगा था। बादशाह ने यह खबरें सुनकर माघ सुदी ७ को फिर राजा भगवंतदास, कुँवर मानसिंह, मिरजाखाँ और कासिमखाँ वगैरः को गोघूँदे की तरफ भेजा और सुरतान देवड़े के वास्ते राय रायसिंह को और नारायणदास की बाबत आसिफखाँ को लिखा कि राय रायसिंह ने तो सिरोही और आबूगढ़ सुरतान से छीन लिया और आसिफखाँ के ऊपर नारायणदास को महाराणा ने मदद देकर भेजा। वह ईडर से दस कोस पर पहुँचकर बादशाही थाने ईडर पर छापा मारना चाहता था कि आसिफखाँ ने फागुन

सुदी ६ को सात कोस आगे जाकर मुकाबिला किया और लड़ाई मे हराकर भगा दिया, लेकिन राजा भगवंतदास और मिरजाखाँ वगैर: से कुछ बंदोबस्त महाराणा का न हो सका, वे उसी तरह थानों के ऊपर दौड़ते रहे। बादशाही अमीर उनके पकड़ने की बहुत कोशिश करते थे मगर उन तक पहुँच भी नही सकते थे और जब कि वे पहाड़ को महाराणा का ठहरना सुनकर घेरते थे तो महाराणा दूसरे पहाड से निकलकर छापा मार जाते थे। वे कभी एक जगह या किले मे जमकर नही बैठते थे कि इसमे बाज़ वक्त बहुत मुशकिल पड़ जाती है। हमेशा इधर उधर बादशाही अमीरो की देख-भाल मे फिरा करते थे। इस दौड़ धूप का यह फल हुआ कि उदयपुर और गोघूँदे से बादशाही थाने उठ गए और मोही का थानेदार मुजाहदबेग मारा गया।

बादशाह का दुबारा अजमेर में आना

"अकबर बादशाह कातिक बदी १२ को मामूल के माफिक फिर अजमेर आए और अगली फौज से मेवाड़ मे कुछ काम निकला हुआ न देखकर कातिक सुदी १५ को मेड़ते से फिर एक फौज महाराणा के ऊपर भेजी। उसमे अफसर तो वही राजा भगवंत-दास, कुँवर मानसिंह, पायँदाखाँ, मुगल सैयद कासिम, सैयद हाशिम, सैयद राजू असदतुर्कमान और गजरा चौहान वगैर थे लेकिन बख्शी आसिफखाँ की जगह शहबाजखाँ को किया और इख्तियार भी कुल फौज का उसी को दिया। यह बड़ा चालाक अफसर था। इसने पहले तो हाजियों के काफिले को, जिसके साथ बहुत रुपया मक्के को भेजा गया था, महाराणा की सरहद से पार उतार दिया और फिर बादशाही थाने देखकर सरहद के जाबते

के लिये बादशाह से और मदद माँगी। बादशाह ने शेख इब्राहीम फतहपुरी को कुछ फौज देकर भेजा। उसके पहुँचने पर शहबाजखाँ ने महाराणा से कुंभलगढ़ को लेने का इरादा करके राजा भगवतदास और कुँवर मानसिंह को तो तरफदारी के वहम से बादशाह के पास जाने की सीख दे दी और फिर शरीफखाँ, गाजीखाँ और मिरजाखाँ वगैर: के साथ आकर उस किले को घेरा। बैसाख * बदी १२ संवत् १६३५ को महाराणा ने अंदर से लड़ाई की। मगर एक बड़ी तोप के फट जाने से किले का सामान जल गया।

"महाराणा लाचार किला छोडकर बाँसवाड़े की तरफ निकल गए मगर उनके नामी राजपूत पहले किले के दरवाजे पर लड़े और फिर मंदिरों और घरों के आगे बहादुरी से मुकाबिला करके काम आए। शहबाजखाँ गाजीखाँ को किले मे छोड़कर महाराणा के पीछे रवाना हुआ। दूसरे दिन दोपहर को गोघूँदे मे और आधी रात को जयपुर में अमल किया और बहुत सा माल लूटा।

"मूता नैणसी की ख्यात मे लिखा है कि अकबर की फौज ने संवत् १६३३ मे कूँभलमेर फतह किया, सोनगरा भान, अखेराजोत और कई चाकर राणाजी के मार गए। मालूम नहीं कि यह दो बरस की गलती संवत् मे क्यों है।

"महाराणा शहबाजखाँ को पहाड़ों मे बहुत लिए लिए फिरे मगर हाथ नहीं आए। आखिर उसने थककर पीछा छोड दिया

* मेवाड़ में असाढ़ बदी १५ संवत् १६३५ मानते हैं। हमने बैसाख बदी १२ अकबरनामे में लिखी हुई तारीख १४ फरवरदीन से हिसाब करके लिखी है। इनसे २ महीने का फरक आता है; मगर फरवरदीन महीना कभी असाढ़ में नहीं आता, चैत बैसाख में ही आता है जब कि सूरज मेष राशि पर हो। शायद ऐसा हुआ हो कि लड़ाई बैसाख बदी १२ को शुरू हुई और किला असाढ़ बदी १५ को फतह हुआ।

और पता लगाकर उनका डेरा लूट लिया। राय सुरजन हाड़ा का बेटा दूदा जो बादशाह से बागी रहा करता था और बरस दिन पहले बादशाही लश्कर से लडकर महाराणा के पास चला आया था, शहबाजखॉं के पास हाजिर हो गया। वह उसी को लेकर पजाब मे बादशाह के पास गया। अषाढ़ सुदी १३ संवत् १६३५ को उसका मुजरा हुआ। बादशाह ने उसकी अरज से दूदा के कसूर बख्श दिए।

"शहबाजखॉं के जाने पर महाराणा बॉसवाड़े की तरफ से, छप्पन के पहाड़ों मे आए और बादशाही थानों को काटने लगे। बादशाह ने फिर पौष बदी १४ संवत् १६३५ को शहबाजखॉं और गाजीखॉं को भेज मुहम्मदहुसेन, शेख तेमुर बदखशी और मीरजादा अलीखॉं और बहुत से अमीरों को साथ किया। महाराणा फिर पहाडों के ऊपर चढ़ गए। शहबाजखॉं फिर दो तीन महीने तक मेवाड मे फिरा और थानों मे हर जगह कारगुजार आदमी रखकर पीछे चला गया और जेठ सुदी १४ सवत् १६३६ को बादशाह के पास पहुँचा और महाराणा को फिर अपने काम करने का मौका मिल गया जिससे कातिक बदी १३ संवत् १६३६ को बादशाह खुद अजमेर मे आए और सुदी १२ को पीछे जाने लगे। तब मुकाम सॉंभर से फिर शहबाजखॉं को सूबे अजमेर का बंदोबस्त कायम रखने के वास्ते छोड़ गए। इससे पाया जाता है कि महाराणा ने मेवाड़ के सिवा और जगह भी सूबे अजमेर मे दस्तदाजी की थी।

"शहबाजखॉं ने फिर महाराणा का पीछा किया। इस दफे उनको बहुत मुश्किल पडी, खाना खाने तक की फुरसत नही मिलती थी। जिधर, जाते थे दुश्मन पीछा दबाए चला आता था। एक दिन ऐसा हुआ कि पॉंच दफे खाना छोड़कर भागना पड़ा ऐसा

विखा कभी किसी को नहीं हुआ होगा कि दुश्मन हरदम तलवार लिए हुए सिर पर खडा मिले और विखे का भुगतना भी महाराणा प्रतापसिंह का ही काम था कि ऐसी ऐसी कड़ी झेलते थे। बड़े लोगों ने जो यह वचन कहा है कि शूरवीर उसको कहना चाहिए कि जिसके तेवर हार में भी न बदले सो यह महाराणा प्रतापसिंह मे अच्छी तरह से देखा जाता था कि हार पर हार होती थी और जमीन सब जाती रही थी तो भी लडने मरने ही पर तैयार रहते थे और दीन वचन मुँह से कभी नहीं निकालते थे। टाड राजस्थान मे लिखा है कि एक दफे उनकी बेटी अपने हिस्से की रोटी आधी तो खा गई थी और आधी दूसरी बार के वास्ते रख छोड़ी थी कि एक बिल्ली आई और उसको खा गई जिसके वास्ते वह लड़की चिल्लाकर रोई। यह दुःख महाराणा से नहीं सहा गया और उन्होंने अकबर को लिखा कि मेरी तकलीफ कम करो। अकबर इससे बड़ी शेखी मे आ गया और दरबार करके यह लिखावट सबको दिखाई। बीकानेर के राजा रायसिंह के भाई पृथ्वीराज* ने कहा कि यह

पृथ्वीराज के विषय मे "भक्तमाल" मे नाभाजी लिखते है—

नरदेव उभै भाषा निपुन पृथ्वीराज कविराज हुव।
सवैया गीत श्लोक वेलि दोहा गुन नव रस॥
पिंगल काव्य प्रमाण बिबिध बिध गायो हरि जस।
परदुख विदुखि सलाध्य वचन रसना जु उचारै॥
अर्थ विचित्रनि मोल सबै सागर उद्धारै।
रुक्मिणि लता वर्णन अनूप वागीश वदन कल्यान सुव॥
नर देव उभै भाषा—१४०

टीका। प्रियादास जी लिखित—

माड़वार देश बीकानेर को नरेश बड़ो
पृथ्वीराज नाम भक्तराज कविराज है।

किसी ने राणा के नाम पर बट्टा लगाने के वास्ते जालसाजी की है। राणा को मैं जानता हूँ। वह कभी ऐसा हर्फ नहीं लिखेगा और फिर पृथ्वीराज ने महाराणा को इस हरकत से रोकने के वास्ते बहुत

सवा अनुराग अरु नियम वैराग ऐसी
रानी पहिचानी नाहि, मानो देखी आज है ॥
गयो विदेश तहा मानसी प्रवेश कियो
हियो नहीं छुवै कैसे सर मन काज है।
बीते दिन तीन प्रभु मंदिर के दीठ परे
पाछे हरि देखि भयो सुख को समाज है ॥ ५३० ॥
लिखि कै पठायो देश सुंदर सँदेस यह
मंदिर न देख हरि बीते दिन तीन है।
लिख्यो आयो साचु बांचि अतिही प्रसन्न भए
लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रवीन है ॥
सुनी और एक यो प्रतिज्ञा करि हिय धरी
मथुरा शरीर त्यागि करै रस लीन है।
पृथ्वीपाल जानिकै मुहीम भई काबिल की
बल अधिकाई नहीं काल के अधीन है ॥ ५३१ ॥
जीवन अवधि रहे निपट अलप दिन
कलप समान बीति पल न विहात है।
आगम जनाइ दियो वाहै इन्हे सांचो कियो
लियो भक्ति भाव जाके छायो गात गात है ॥
चल्यो चढ़ि सांड़िनी पै, लई मधुपुरी आनि
करिके स्नान प्रान तजे सुनी बात है।
जय जय धुनि भई गई व्यापि चहुँ ओर
अहो भूपति चकोर जस चंद दिन रात है ॥ ५३२ ॥

बाबू शिवसिंह और डाक्टर ग्रिअर्सन साहब ने भी अपने ग्रंथो मे पृथ्वी-राज का वर्णन किया है।

श्री राधाकृष्णदास।

से चमत्कारी दोहे बनाकर भेजे जिनके सुनने से महाराणा को १०००० घोड़े का बल हो गया। सो हमारी समझ में निरी कहानी मालूम होती है क्योंकि अकबर बादशाह की किसी तवारीख से भी नहीं पाया जाता है कि महाराणा ने कभी कोई ऐसी दरख्वास्त बादशाह से की हो। जो की होती तो अबुलफजल जिसने जरा जरा सी बात को बना बनाकर लिखा है इसको राई का पहाड़ बनाकर लिखता। मगर कहीं अकबरनामे में ऐसा जिक्र नहीं है जिससे यह बात साफ बनावट की मालूम होती है। हाँ, यह सही है कि जब शहबाजखाँ का पीछा लेने से महाराणा के पाँव उखड़ गए और उनको कहीं आस पास ठहरने के लिये जगह नहीं मिली तो वे मूँधा के पहाड़ों में, जो आबू से १२ कोस पच्छिम में है जहाँ पहले राणा मोकलसीजी भी विखे में रह चुके थे, चले गए। वहाँ देवल राजपूतों की बस्ती है। उन्होंने महाराणा की बहुत आवभगती की और लायाणे ठाकुर राय धवल ने जो सब देवलों में पाटवी था अपने पास कोई अच्छी चीज उनकी नजर के लायक न देखकर अपनी बेटी उनको ब्याह दी और पहाड़ के ऊपर उनको बड़ी खातिर और हिफाजत से रखा। महाराणा ने वहाँ बाग लगाया और बावड़ी बनवाई जो अब तक मौजूद है।

"मूधा पहाड़ पर रहने से मेवाड़ में फिर कुछ पता महाराणा का शहबाजखाँ को नहीं लगा और उसी अरसे में बादशाह का हुक्म उसके नाम पूरब में जाने के वास्ते आया जहाँ और बिहार के अमीर बागी होकर फसाद कर रहे थे। शहबाजखाँ मेवाड़ से रवाने होकर आसाढ़ सुदी ६ संवत् १६३७ (मेवाड़ी १६३६) को फतहपुर में बादशाह के पास पहुँचा। महाराणा उसका जाना सुनकर अपने मुल्क में आने के वास्ते राय धवल से रुखसत हुए। उस वक्त

राय धवल की खिदमतो का इनाम देने के वास्ते उनके पास कुछ न था तो भी उसको राणा का खिताब देकर अपने बराबर कर लिया।

"बादशाह ने शहबाजखाँ की जगह रुस्तमखाँ को अजमेर का सूबेदार करके भेजा था। वह चार महीने मे ही कछवाहो के मुकाबिले मे मारा गया। उसकी जगह मिरजाखाँ * मुकर्रर होकर आया जो बाद को खानखाना कहलाया। मालूम होता है कि यह महाराणा का दोस्त था और महाराणा की तारीफ मे इसके बनाए हुए दोहे बहुत मशहूर हैं। इसने महाराणा से छेड नही की जिससे उनका जमाव अपने मुल्क मे फिर हो गया और वे धीरे धीरे आगे भी बढने लगे।

"मूता नैणसी ने लिखा है कि बैसाख सुदी सवत् ३८-३९ मे महाराणा ने शेरपुरे का थाना मारा। यहाँ मिरजाखाँ की बेगम पकड़ी गई मगर महाराणा ने बहुत इज्जत और हुरमत के साथ पीछे मिरजाखाँ के पास भेज दी।

"राजप्रशस्ति मे लिखा है कि कुँवर अमरसिंह मिरजाखाँ के कबीलो को पकड लाया था जब कि बादशाह उसको गोघूँदे छोड़ गए थे और महाराणा ने फौरन उसको मिरजाखाँ के पास पहुँचा दिया।

"खैर कभी हुआ हो यह काम बडी भलाई का था जो महाराणा की तरफ से अपने दुश्मनो के साथ हुआ और शायद इस इहसान के बदले मे खानखाना ने वे दोहे महाराणा की तारीफ मे बनाए हो।

"मिरजाखाँ सवत् १६३८ के पौष तक अजमेर के सूबे मे रहा क्योंकि माघ सुदी ६ को जब कि बादशाह काबुल से फतेहपुर मे पीछे आए थे अकबरनामे मे उसका नाम दरबारियो मे लिखा है और उस दिन नगर चेन मे बखशियों ने बादशाह के हुक्म से उसको

* अबदुल रहीमखाँ खानखाना।

शहबाजखाँ के ऊपर खड़ा किया था। इससे शहबाजखाँ ने बुरा माना और अदूल हुकमी करने को तैयार हुआ। बादशाह ने खफा होकर उसको रायसाल दरबारी के पहरे में बिठा दिया।

"इससे मालूम होता है कि मिरजाखाँ माह में या कुछ पहले अजमेर से चला गया था और फिर इस काम पर नहीं आया।

"मिरजाखाँ के जाने से महाराणा को और सुभीता हुआ। वे फिर अपना मुल्क दबाने लगे। हर एक थाने पर लड़ाई शुरू हुई; रास्ते बंद हो गए। फिर बादशाह तक पुकार पहुँची, बादशाह ने इस दफे जगन्नाथ कछवाहे की अफसरी में फौज तैयार की। बख्शीगीरी मिरजा जाफरबेग को दी। फागुन बदी १ को यह लोग रवाने हुए। सैयद राजू को मांडल में छोड़कर महाराणा के ऊपर गए। महाराणा दूसरी घाटी से निकलकर मेवाड़ में आए और कई गाँव लूट लिए। सैयद राजू लड़ने को गया तब चित्तौर की तरफ मुड़े। उधर से जगन्नाथ भी आ गया मगर राणाजी तो लड़ते मारते पहाड़ों में चले गए और कुछ अरसे पीछे फिर आए। यह फिर पीछे पड़े। एक दफे बहुत ही पास जा पहुँचे थे मगर महाराणा फिर भी हाथ न आए। तब यह पता लगाकर उनके कबीलों के ऊपर गए जो एक विकट जगह पर भीलों की हिफाजत में थे मगर महाराणा को खबर हो गई और वे उनको भी ले गए। ये गुजरात की सरहद तक पीछे गए मगर महाराणा का पता न लगा तब डूँगरपुर के रावल से जुरमाना लेकर लौट आए।

"गरज इसी तरह से जगन्नाथ भी दो बरस तक पहाड़ों में भटकता रहा फिर मजाहदबेग की बदली तो बादशाह ने इलाहाबाद के सूबे में कर दी और जगन्नाथ भी संवत् १६४२ में काश्मीर को चला गया।"

महाराणा की फतह

"इस वक्त से महाराणा के दिन फिरे। बादशाह की फिर कोई फौज नहीं आई। अकबरनामे मे १२ बरस यानी १६५३ तक महाराणा का जिक्र नहीं आता है। सिर्फ उस सवत् मे उनके मरने की खबर लिखी है। इतनी मुद्दत तक बादशाह के चुप रहने और फौज नहीं भेजने का यह सबब था कि संवत् १६४१ से पंजाब मे रहते थे और उनका ध्यान जियादातर उत्तर और पश्चिम की तरफ था क्योकि तूरान के बादशाह अब्दुल्लाखाँ उजबक से बिगाड़ हो गया था और अकसर खबरे उसके काबुल और हिंदुस्तान के ऊपर चढ़ाई करने की उडा करती थीं।

"टाड राजस्थान मे लिखा है कि महाराणा के ऊपर तकलीफ देखकर उनके पुश्तैनी दीवान भीमाशा का जी जला और जो दौलत उसके बाप दादा की जोड़ी हुई चली आती थी वह सब उसने महाराणा के नजर कर दी और महाराणा उस रुपए से घोडा और राजपूतों की सजाई करके बादशाही लश्कर पर जो दबेर मे पड़ा था जा पड़े और उसको गाजर मूली की तरह से काटकर भागे हुओं के पीछे आमेर तक गए और उसी गरमागरमी मे कुंभलमेर के ऊपर हमला करके अब्दुल्ला और उसके लश्कर को काट डाला और फिर उसी तरह दुश्मनों के २२ थाने छीनकर उनको मार भगाया।

"मेवाड की तवारीख लिखनेवाले कहते हैं कि एक ही साल यानी सवत् १६४२ की लडाई मे तमाम मेवाड अजमेर चित्तौर और मांडलगढ़ के सिवाय दुबारा फतह हो गया और हिंदूपति ने राजा मानसिंह और जगन्नाथ को बदला लेने के लिये जो फूले फूले फिरते थे कि हमने महाराणा को कैसा खराब कर दिया, आमेर के ऊपर

हमला किया और उसके मालदार शहर मालपुरे को लूटकर खाक मे मिला दिया।

"महाराणा की बाकी उमर आराम से गुजरी क्योंकि १२ बरस तक फिर कोई चढ़ाई मुगलों की नहीं हुई। इस मुद्दत में उन्होंने अपने उजड़े मुल्क को सँभाला। उदयपुर को जो दुश्मनों की चढ़ाइयों से बसते बसते रह गया था नए सिरे से बसाया, सरदारों को जो विखे मे साथ रहे थे बड़ी बड़ी जागीरें दीं और उनके दरजे और कुर्थ जियादे किए।"

महाराणा का इंतकाल

"सवत् १६५३ में महाराणा का देहांत हुआ। मिती मालूम नहीं हुई, न टाड राजस्थान में देखी गई, न मूता नेणसी की ख्यात में है। मगर अकबरनामे में लिखा है कि तारीख बहमन सन् ४१ जलूसी को राणा* कीका का जमाना खतम हो गया। उसके अधर्मी बेटे अमरा ने जहर खिला दिया और एक कड़ी कमान के खैंचने से भी झटका लगा था सो हिसाब लगाने से यह तारीख माघ सुदी पंचमी सवत् † १६५३ के मुताबिक होती है।"

टाड राजस्थान में महाराणा के मरने का हाल इस तौर पर लिखा है

"महाराणा की तमाम उमर विखे और लड़ाइयों मे गुजरी, उनका तमाम बदन जखमों से चूर था, वे गम और फिक्र के मारे

---

* अकबर बादशाह महाराणा प्रतापसिंह को कीका कहते थे।

† यह लिखने के पीछे हमको उदयपुरी एक मित्र की लिखावट से मालूम हुआ कि महाराणा का देहांत माह सुदी ११ को हुआ।

जवानी मे ही वृद्ध हो गए थे, उनके हाथ-पाँव रात-दिन की दौड़-धूप से ढीले हो गए थे, कमजोरी से उनको तरह तरह की बीमारियाँ पैदा हुईं। उनके मरने की हालत भी उनकी बहादुरी साबित करती थी। उन्होने अपने वली अहद को कसम दिलाई कि तुम हमेशा दुश्मन से लडते रहना और कभी लडाई से पीछे मत हटना। अमरसिह ने कसम खाई और वचन दिया तो भी महाराणा को तसल्ली न हुई क्योकि वे जानते थे कि मेरा बेटा कभी आजादी और विखे की तकलीफो को न सह सकेगा और सबब ऐसा समझने का यह था कि महाराणा और उनके साथियों ने पीछोला झील के किनारे पर कई झोपडे डाल रखे थे जिनमे वे अपने बिखे के दिन तै करते थे और अँधेरे और मेह मे सिर छिपाकर बैठ जाते थे। राजकुमार अमरसिह को यह ख्याल तो रहा नही कि झोपडा बहुत नीचा है और उसका एक बाँस बाहर को निकला हुआ है और वैसे ही निकल खडे हुए। मुड़ास डाँडे मे अटका उसको वैसा ही ऐंचते हुए चले गए।

"धीरे धीरे महाराणा ने जो अपने बेटे की यह जल्दबाजी देखी तो उनको बड़ा रंज हुआ और उन्होने जान लिया कि वह कभी उन मेहनतों को नही झेल सकेगा जो दुश्मनों से लड़ने मे आ पड़ती हैं।

"हिंदूपति उस वक्त एक टूटे से झोपड़े मे थे और उनके सरदार जो बुरे वक्तों मे आडे आए थे सब उनके सिरहाने बैठे थे और उनके दम तोड़ने की हालत को बडी लाचारी, बेबसी और दु:ख से देख रहे थे। जब बहुत देर हुई तो सलूमर के सरदार ने ठढी साँस भरकर पूछा कि ऐसी क्या मुश्किल आपकी जान पर पडी है जो वह निकलती नही।

"महाराणा ने सँभाला लेकर जवाब दिया कि मेरी यह तसल्ली करो कि यह मुल्क मेरे पीछे कही तुरकों को तो नही दे दिया

जावेगा। मैं उस झोपड़ेवाली कैफियत से अपने बेटे के मिजाज का हाल मालूम करके तो यही समझ रहा हूँ कि वह इनकी जगह बड़े बड़े ऊँचे मकान और महल बनवावेगा और उनमें आराम से बैठ जावेगा और मेवाड़ का स्वतंत्रपना कि जिसके वास्ते मैंने इतना खून बहाया है उसके हाथ से जाता रहेगा। क्या तुम लोग भी उसी के माफिक करोगे? सरदारों ने यह सुनकर बाप्पा रावल के तख्त की कसम खाई और कहा कि हम राजकुमार की तरफ से जामिन होते हैं कि जब तक मेवाड़ की आजादी (स्वतन्त्रता) दुबारा हासिल नहीं हो जावेगी हम कभी राजकुमार को महल नहीं बनाने देंगे और न आराम से बैठने देंगे।

"इस बात के सुनने से महाराणा की पूरी तमन्ना हो गई और फिर उनकी जान झट से निकल गई।

"टाड साहब कहते हैं कि उन मुल्कों के मालिक को कि जो उथला पुथली से बचे हुए हों सोचना चाहिए कि कितनी बहादुरी और सूरबीरपने का जोश इस राजपूत बादशाह में होगा, जिसने थोड़ी सी ही फौज और दौलत से ऐसे बड़े शाहनशाह का सामना किया जिसका लश्कर गिनती में उस दम (मेकदार) में ही कहीं ज्यादा था कि जो कभी ईरानी लोग यूनान के ऊपर चढ़ा ले गए थे।

"अरवली पहाड़ में कोई ऐसी घाटी नहीं है कि जहाँ महाराणा ने कोई काम बहादुरी का न किया हो, जिसमें उनको या तो फतह हुई या ऐसी शिकस्त कि जिससे उनकी और शान बढ़ गई हो और नाम भी हुआ हो। इन लड़ाइयों में से हल्दी घाटी और देवर की लड़ाई ज्यादा मशहूर है।"

राजस्थान-केशरी

अथवा

महाराणा प्रतापसिंह

छप्पय

प्रभु की बातहिं टारि आपुनी बातहि राखूँ।
हरि को शस्त्र गहाऊँ कै निज शस्त्रहि नाखूँ॥
पांडव दलहि कँपाइ कृष्ण बच टारन भाखूँ।
चक्र धारि धावत लखि जीवन फल निज चाखूँ॥
इमि दृढ़प्रतिज्ञ लखि बीरबर धाए तुरतहि चक्र लै।
जय भक्तमानरच्छक सदा जादवपति जय जयति जै॥

इति नांदी

[सूत्रधार का प्रवेश]

सूत्र०—(चारों ओर देखकर) आहा ! संसार कैसा परिवर्तन-शील है ! क्षण क्षण पर इसका रूप बदलता रहता है। देखो क्या यह वही भारत-भूमि है जिसमे एक समय लोग विमानों पर आकाश-मार्ग मे विहार करते थे, तपबल से ऋषिगण जिधर निकलते थे, प्रकाश हो जाता था। विद्या, कला, कौशल प्राणीमात्र मे शोभा पाती थी। अवश्य अब वे सब बातें दूर गईं, अब यह भारत वह भारत नही है, परंतु क्या यह भारत वह भारत ही नहीं है ? अथवा अब इसमे कोई शोभा ही नही है ? नहीं, ऐसा कदापि नहीं। यह भारत वही भारत है, इसमे सभी कुछ वर्तमान है परतु काल के प्रभाव से रूपांतर अवश्य हो गया है, परतु वही भूमि, वही आकाश, वही मनुष्य, वही पशु-पक्षी, सब वही है। उस समय

की शोभा दूसरी थी इस समय की दूसरी, उस समय विमान पर लोग घूमते थे, इस समय रत्न रूपी भूम्रयान पर, उस समय योगबल से ऋषिगण घर बैठे त्रिलोक के समाचार जान सकते थे, इस समय टेलीग्राफ द्वारा, उस समय सुंदर रथो पर महारथी शोभायमान थे, इस समय डाइकस की बड़ी बड़ी फिटनें वेलर की जाड़ियाँ चौड़ी चौड़ा सड़कों की शोभा बढ़ाती हैं, उस समय सोने चाँदी के रत्न-जटित पात्र घर के गौरव को बढ़ाते थे, इस समय सुंदर शीशे के ग्लास, रिकाबी आदि स्वच्छता की झलक दिखाते हैं। उस समय सोने चाँदी के सिक्कों के रखने का स्थान न था, इस समय कागज के सिक्के उड़ते दिखाई देते हैं, उस समय गली गली मे वेदध्वनि प्रतिध्वनित होती थी इस समय कदम कदम पर अँगरेजी की धारा बहती है। निदान इस समय भारत की शोभा दूसरी ही चाल की हो रही है, शहरों मे लंबी चौड़ी हवादार सड़कें बन गई हैं, उनमे लालटेनों की माला जगमगाती नगर की शोभा को चतुर्गुण करती है।

[परिपार्श्वक का प्रवेश]

परि०—मित्र ! आज तुम कौनसा पचड़ा लेकर बैठे हो ? इन निरर्थक बकवादो से क्या लाभ है ? देखो यह कैसा भयानक समय उपस्थित हुआ है, चारों ओर से शत्रुओं ने आकर ब्रुटिश गवर्नमेंट को घेर रखा है, नाना प्रकार के उपद्रव मच रहे हैं, हम लोग आदि काल से राजभक्त प्रजा हैं, क्या इस समय हम लोगों को हँसी खेल मे मस्त रहना उचित है ?

सूत्र०—भाई ! यह तो तुमने ठीक कहा परंतु हम लोग कर ही क्या सकते हैं और गवर्नमेंट को सहायता ही क्या दे सकते हैं ?

परि०—क्यों नहीं, हम लोग बहुत कुछ कर सकते हैं। क्या तुमने इतिहासों को नहीं देखा है ? तुम्हें विदित नहीं है कि प्राचीन

कवि लोग अपनी वीर कविता से राजपूत योद्धाओं का उत्साह बढ़ा-
कर कैसे उमग के साथ लड़ा दिया करते थे ?

सूत्र०—हाँ हा यह सब तो हम जानते हैं पर इससे क्या ?
हम कुछ कवि तो हैं ही नहीं कि युद्ध के समय उपस्थित रहकर
वीरों का उमग बढा सकें ।

परि०—तुमने समझा नहीं । काव्य दो प्रकार के होते हैं, एक
दृश्य और दूसरा श्रव्य—दृश्य काव्य का जैसा शीघ्र असर होता है
उसका अनुभव तो तुम्हे नित्य ही हुआ करता है । हमारी इच्छा है
कि हम लोग ऐसे वीररसपूर्ण नाटक खेले कि जिससे हमारे भारतीय
वीरगण प्रोत्साहित होकर अपने शत्रुओ से जी छोडकर लडें ।
भारतसरक्षण अकेले अँगरेजो के किए कदापि नहीं हो सकता जब
तक कि हिदुस्तानी योद्धागण उनके साथ अपना पराक्रम न दिख-
लावे, क्योंकि यह हिदुओं का देश है, हिदू प्रजा ही यहाँ विशेष
रहती है और सरकारी पल्टनों मे भी हिदू ही विशेष हैं, अतएव
आज किसी ऐसे राजपूत वीर का चरित्र दिखाना चाहिए जिसके
नाम सुनने ही से भारतीय वीरगण प्रोत्साहित हो जायँ ।

सूत्र०—हाँ यह तो तुम्हारी सम्मति बहुत ही उचित है और
इसी की समग्र भारतवासियों को कमी है, क्योकि वे अपने पूर्वजों
के उदार चरित्र भूल रहे हैं; उनका स्मरण कराना आवश्यक है ।
परंतु ऐसा कौन सा नाटक है ?

परि०—क्यों, मुद्राराक्षस, नीलदेवी, महारानी पद्मावती आदि
कई एक नाटक हैं, जो इच्छा हो खेलो ।

सूत्र०—नहीं नहीं वे सब तो कई बेर खेले जा चुके, अब कोई
नवीन नाटक खेलना चाहिए जो मनोरंजक भी हो और उत्साह-
वर्द्धक भी हो ।

परि०—आहा ! अच्छी याद आई, अभी हम लोगों के परम प्रिय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी के वात्सल्यभाजन बंधु श्रीराधाकृष्ण-दास ने महाराणा प्रतापसिंह का नाटक लिखा है, उसको खेलो। वह समयानुकूल है, क्योंकि एक तो वीरकेशरी प्रात स्मरणीय प्रताप-सिंह का पवित्र चरित्र, दूसरे जगत्प्रसिद्ध अकबर बादशाह का राजत्व-वर्णन सभी को अच्छा लगगा और अकबर के काल से अँगरेजी काल मे बहुत बातों मे समानता भी है ।

सूत्र०—बस, बस ठीक कहा, चलो शीघ्रता करो। लोग उकता रहे हैं। (दोनों जाते हैं)

प्रथक अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—उदयपुर राजदरबार

(महाराणा प्रतापसिंह, भीमाशा मंत्री तथा कृष्णसिंह आदि सरदारगण)

[नपथ्य में]

जय जय भानु-वंश मे भानु ।
जासु प्रताप प्रकाशित जग में चहुँ दिसि भानु समान ।
जाके हृदय सदा ही जागत सुभग आर्य कुल कान ।।
सोई या डूबे भारत असि रच्छन को इक स्थान ।।

प्रतापसिंह—हाय ! मेरे हृदय में इस सिंहासन पर पैर रखते अग्निज्वाला सी भभक उठती है, यह राजसिंहासन कंटकमय प्रतीत होता है। मेरे प्यारे सरदारो ! जिस दिन से हमारे पिता ने इस आसन पर पैर रखा उसी दिन से इसका पतन आरंभ हुआ, इस उदयपुर का उदय हृदय को शोकाकुल कर देता है, हाय अंबर,

जोधपुर, बीकानेर आदि महाराज लोग आज दिन यवनों से घनिष्ठ संबंध करने और बेटी ब्याहने में अपने को धन्य मानते हैं और इसमें अपना गौरव समझते हैं और कहाँ तक, इस पवित्र सिसोदिया कुल के कलंक सक्ताजी ने भी अकबर के कृपापात्र होकर सेवकाई स्वीकार कर ली है।

कृष्णसिंह—महाराज आप यथार्थ कहते हैं, एक मान-संभ्रम ही में क्यों, खजाने की दशा भी तो शोचनीय हो रही है।

भीमाशा—यथार्थ आज्ञा होती है अन्नदाताजी। खजाने की तो बात ही न पूछिए, आज कै कै बरस से इन दुष्टों के उपद्रव और लड़ाई से मालगुजारी एक पैसा नहीं मिलती, स्वर्ग सदृश मेवाड़ प्रांत मानों जंगल हो रहा है।

प्रतापसिंह—ऐसी राजगद्दी से तो तापस वेष अच्छा। यदि यह बखेड़ा पीछे न लगा होता तो आज दिन हम एकांत में भगवान् का भजन तो करते होते! अब तो साँप छछूंदर सी गति हो रही है। हमने व्यर्थ इस गद्दी को कलंकित किया।

रामसिंह—महाराज, यह आप क्या कहते हैं? इस पवित्र वंश की महिमा स्वर्ग तक फैल रही है, बाप्पा रावल से लेकर आज तक इस गद्दी का नाम परमेश्वर ने रखा है। आप ऐसा जी न करें। सिंह के सिंह होते हैं। जिस समय आप कृपाणहस्त होकर सिंहनाद करेंगे, ये सब गीदड़ जहाँ के तहाँ दबक रहेंगे।

प्रतापसिंह—यह ठीक है, पर समय फिर गया है। देखिए, चारों ओर म्लेच्छगण छा गए हैं, राजपूत राजा लोग इनके संबंधी बनने में अपना अहोभाग्य मानते हैं। आप ही के घर के सक्ताजी ने उनकी वश्यता कर ली है। स्वदेशप्रेमी वीर राजपूतगण मन ही मन जल रहे हैं, ऐसे दुःसमय में कहिए क्या हो सकता है?

कृष्णसिंह—महाराज, आपका ध्यान किधर है? इन बातों को आप कभी स्वप्न में भी न विचारिए। परमेश्वर उसे ही को बड़ा करता है, जिसके हाथ असिधारण करने का सामर्थ्य है, जिसका हृदय साहस और बल से पूर्ण है, जिसका मस्तिष्क स्वाधीन भाव से भरा है उसी महापुरुष के सिर राजमुकुट शोभा देता है। उसके वीर दर्प के आगे किसकी सामर्थ्य जो ठहर सके? देखिए सिंह को मृगराज कौन बनाता है? गरुड़ को पक्षिराज का तिलक किसने किया है? और आपके पूर्वजों को इस राजासन पर किसने बिठाया है? केवल अपने बाहुबल ने, अपने स्वाभाविक तेज ने, अपने हृदय की दृढ़ता ने। सूर्य का प्रकाश होने पर भी क्या दुष्ट चोरगण इधर उधर नहीं भागते? क्या प्रताप के प्रतापोदय होने पर ये दुराचारी खड़े रह सकते हैं।

मानसिंह—महाराज तनिक आँख खोलकर देखिए। इस समय स्वदेशभक्त प्रजामात्र आपकी बाट जोह रही है; वीरों की दक्षिण भुजाएँ बार बार आप ही के भरोसे फड़क रही हैं, सब एक दृष्टि आप ही की ओर देख रहे हैं, आपके उठने ही से फिर सब सामान एकत्र हो जायँगे! संसार में कीर्ति ही मुख्य है, शरीर का क्या है, यह तो नाशमान हुई है। आप स्मरण करें किस महान् वंश में आपका अवतार हुआ है। सिंह के बच्चे को क्या कोई शिकार करना सिखा सकता है? आप क्या अपने कुल का यह वाक्य भूल गए?—

"जो दृढ़ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार"

[नेपथ्य में]

सिसोदिया कुल साख, जान चहत बिन तुव उठे।
राखि सकै तो राख, यह अवसर पैहै न फिर॥

प्रतापसिंह—हैं! यह अमृतवर्षा किसने की ?

चोबदार—धर्मावतार, कविराजा जी पधारते हैं।

प्रतापसिंह—आदर के साथ लिवा लाओ।

[कविराजा का प्रवेश]

कविराजा—घणी खमा अन्नदाता—

गुणग्राहक नरपाल, राजपूत कुल केशरी।
गो-ब्राह्मण-प्रतिपाल, तुव प्रताप दिन दिन बढे॥

कृष्णसिंह—कविराजा जी, आप बड़े समय पधारे। इस समय इस राज्य की वर्तमान दशा पर विचार हो रहा था। ऐसे समय मे आपका पधारना परम मंगलसूचक है।

कविराजा—महाराज, इस समय का विचार ही क्या ? सुनिए—

जब लौं उगे न भानु तबहि लौं जग अँधियारो।
जब प्रताप भयो उदय भयो मँगल जग सारो॥
जबहि धार असि हाथ सिंह सम टुक हंकारो।
तबहि शत्रु धड शीश आपुही ह्वैहैं न्यारो॥
शत्रु नारि सौभाग्य तजि विधवा लच्छन धारिहैं।
बालक गण निज पितृ को तबही पिंडा पारिहैं॥

खंडेराव—वाह कविराजा जी वाह, क्या अच्छी बात कही है, भविष्यत् का कैसा सुंदर चित्र आँख के सामने खींच दिया है।

कविराजा—महाराज सुनिए, पूर्वपुरुषों की कीर्ति सुनिए—

सूर्यवंश इक्ष्वाकु जगत मे कीरत छाई।
प्रगटे पूरन ब्रह्म राम रावनहि नसाई॥

तिनके लव सुत भए शत्रु हति कीरति थापी ।
बापा तिनके वंश जासु भय पृथ्वी काँपी ॥
जनमे जंगल माहि आइ चित्तौरहिं छीन्यो ।
मारि वंश परमार माग मेवारहि लीन्यो ॥
हिंदूपति हिंदकुल सूरज नाम धारिकै ।
हिंदू जस की ध्वजा उडाई गगन फारिकै ॥
नवएँ भए खुमान पराक्रम जग मे छायो ।
काबुल लौं करि विजय मुहम्मद कैद बनायो ॥
समरसिंह भए समरसिंह भारत-रखवारे ।
पृथ्विराज सँग यवन जूझि सुरपुरी सिधारे ॥
कर्म देवि पति राज्य पुत्र सह रच्छन कीनो ।
कुतुबुद्दिनहि हराइ यवन मसि टीका दीनो ॥
करणसिंह तब यथासमय निज राज सँभार्यो ।
ता सुत रावल महप तिनहि झालोर मार्यो ॥
रहपसिंह झालोर मारि निज राजहि थाप्यो ।
रावल नामहि पलटि महाराणा जग छाप्यो ॥
रतनसेन या वंश आप संभ्रमहि बढ़ायो ।
अलादीन के दाँत तोड़ि निज धर्म बचायो ॥
ग्यारह पुत्र कटाइ बारहें अजय बचायो ।
ठानि जहरब्रत नारि धर्म कुलधर्म रखायो ॥
अजयसिंह करि विजय केलवाड़ा बस कीनो ।
मुंज अचानक अजय सीस में घाव जु दीनो ॥
सोइ जो लावै मुंज सीस युवराज हमारो ।
तब पुत्रन प्रति यह आज्ञा महराज प्रचारो ।
निज पितु शत्रु हराइ मुँज सिर हम्मिर काटे ।

बैठे तब हम्मीर केलवाड़ा के पाटे ॥
मुहमद शा करि कैद चित्तौरहिं फेरि बसायो ।
यवन दर्प दरि आर्य ध्वजा आकाश उड़ायो ॥
प्रबल पराक्रम खेतसिंह जब गादी पायो ।
यवन मारि अजमेर जीत निज राज मिलायो ॥
जहाजपुर दच्छिण लो जय करि राज बढ़ायो ।
यवन सीस पग धारि बैर अपनो पलटायो ॥
लक्खो राणा सीस राजलक्ष्मी तब आई ।
लक्ष्मी चारो ओर मनहुँ छाई छितराई ॥
किए पहाडो प्रांत आप बस रत्नखानि सह ।
सोना चाँदी रत्न अमोलक जड़े महल मह ॥
किले महल बहु बने राजश्री चहुँ दिसि राजे ।
फीके शत्रुहि किए अटल सिर छत्र बिराजे ॥
प्रबल पराक्रम साथ पौत्र कुभा जब बैठे ।
शत्रु-हृदय दलमले क्रूर कायर घर पैठे ॥
कविकुल-मुकुट कहाइ नाम थिर जग मे थापे ।
विजय कियो गुजरात यवन हिय भय सो काँपे ॥
याही कुल रानी मीरा जग कीरति छाई ।
गिरधरलाल रिझाइ बहुत विधि लाड़ लडाई ॥
राणा साँगा कीरति जग मैं को नहि जानै ।
जाके असि को तेज शत्रु जिय सहजहि मानै ॥
बाबर को बावरो कियो रण-स्वाद चखाई ।
कितेक राजा रावल रावत सिरहि नवाई ॥
रत्नसिंह मेवाड़ रत्न निःसंक सदाई ।
पुर के फाटक रात दिवस राखे खुलवाई ॥

निज भुजबल नहिं गुमन दिए यवनन रजधानी।
जिनके यश की सदा जगत में चली कहानी॥
बिगत निसा भए उदय भानु खल लंपट लाजे।
चहुँ दिसि छयो प्रताप-सिंह लखि गीदड भाजे॥
अब सोचन की बात कौन है शूर बीर गन।
उठो उठो कटि कसो याद करि निज पवित्रपन॥
जिनके नायक खुद प्रताप तिनको का संसय।
जिनकी टेढ़ी भृकुटी लखि भाजत जग के भय॥
जबलों जीवन देह तबहि लौं जग के झंझट।
आपु मुए जग परलय तासों सुनहु महा भट॥
जब लौं घट में प्रान न तबलौं छूअन दीजै।
यवन सैन संवारहि लखि लखि हाथनि मीजै॥
पिंजरबद्ध बिहंगम से परवस जीवन धिक।
जब लौं जीवन रहै दु:ख नहि होइ मानसिक॥
अब बिलंब को काज नहीं असि बेग उठावहु।
निज प्रताप अब हे प्रताप अरिगनहि देखावहु॥
कोउ काज जग कठिन नहीं जौ दृढ़व्रत धारो।
तातें हे नरव्याघ्र बेगि रन घोष प्रचारो॥
आगो पीछो त्यागि होहु सब एक प्रेममय।
यह निहचय जिय धरौ धर्म जित जय तित निसचय॥

प्रतापसिंह—(आवेश से खड़े होकर) सुनो सुनो मेरे वीर सरदारो—

जब लौं तन में प्रान न तब लौं टेकहि छोड़ौं।
स्वाधीनता बचाइ दासता शृंखल तोड़ौं॥

जो निज कुल मरजाद सहित जीवन तौ जीवन ।
नहि तातें शत गुणित मरन रन मैं जस पीवन ॥
जौ पै निज शत्रुहि मारि कै यह परतिज्ञा राखिहौं ।
तौ या सिंहासन पै बहुरि पग धारन अभिलाखिहौं ॥

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—उदयपुर का किला

(सैनिकगण)

१ सैनिक—क्यों भाई, कुछ तुमने भी सुना ?

२ सैनिक—कौन बात ?

१ सैनिक—सुना है चित्तौर उद्धार के हेतु दर्बार तयारी कर रहे हैं ।

२ सैनिक—उड़ती उडती खबर तो हमने भी सुनी है, भगवान् श्री हजूर को सुमति दे कि जल्दी ही उधर की ओर रुख करैं । भाई बीरसिंह, अब तो सही नही जाती ।

वीरसिंह—हम लोग तो उसी समय नही हटते थे पर क्या करे बड़े दर्बार ने माना नहीं, नही तो चित्तौर ले लेना इन लोगों को मालूम हो जाता ।

१ सैनिक—इसमे कौन संदेह था, देखो एक वीरवर जयमल अड गए तो दो घड़ी लग गई और जान पड़ा कि चित्तौर लेना कैसी टेढ़ी खीर है ।

वीरसिंह—जयमल और पुत्त ने ससार मे अपनी कैसी कीर्ति छोड़ो ! हाय ! हम अभागे थे जो उस समय काम न आए ।

१ सैनिक—भाई मालिक को भी तो अकेला छोड़ना उचित न था। करते क्या? अच्छा, क्या चिंता है, प्रतापसिंह के प्रताप का अब उदय हुआ ही चाहता है, अब ये कहाँ टिकते हैं। जैसे भगवान् सूर्यनारायण के उदय होते ही चोर लंपट अंतर्धान हो जाते हैं, देखना वैसे ही उनका उदय यवनों को नाश कर देगा।

वीरसिंह—हाँ हाँ और क्या, अब वह समय पहुँचा ही चाहता है, सब लोग दृढ़ रहो, देखें कौन कहाँ तक वीरता दिखाता है।

१ सैनिक—अजी हम सब तयार हैं, प्राण रहते तो कोई हटते ही नहीं पर सिर कटने पर भी धड़ दो एक को ले ही मरेगा।

वीरसिंह—देखो देखो श्री हजूर की सवारी इधर ही को आखेट को पधारती है। आओ हम लोग ऐसे गीत गावें जिसमें और भी हमारे मालिक का उत्साह बढ़े।

(सब सैनिक गाते हैं)

तजि सोच उठौ सब बीर बाँधि दृढ़ आसा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥
दुखमय परबस की रैन अहो सब बीती।
दिन गए यवनगन जो चितौर गढ़ जीती॥
चलि बेग लगाओ मसि उनके मुख चीती।
कसि कमर उठौ अब एक होइ करि प्रीती॥
सब भाजहिंगे लखि इनको तेज बिकासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ १॥
चलि शत्रुन के दल भेदि निसान उड़ावैं।
फिर चित्रकूट पर आर्य ध्वजा फहरावैं॥
आनँद सों सब मिलि नाचैं कूदैं गावैं।
स्वाधीन दिवस सब सुख सों सदा बितावैं॥

निर्द्वंद होहु चित चाव बढाइ हुलासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ २ ॥
अपनी अपनी करतूति सबै दिखराओ।
लरि लरि अरि सैनहि इत तें तुरत भगाओ ॥
जड़ सों भारत ते इनके नाम मिटाओ।
फिर आर्य सुजस की नदी पवित्र बहाओ ॥
करि कै अब विजय मिटाओ जग परिहासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ ३ ॥
परसन्न होइ परताप जबहि प्रगटायो।
तौ विजय महूरत अब तुम्हरे दिसि आयो ॥
चूकौ जिनि समयो ऐसो सुंदर पायो।
तुम्हरे सिर राजत छत्र प्रताप सुहायो ॥
उत्साह सहित उठि कीजै शत्रु विनासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ ४ ॥

(सभो का प्रस्थान)

तृतीय गर्भांक

स्थान—उदयपुर—अंतःपुर

(महाराणा विराजमान हैं)

महाराणा—कैसा कठिन समय उपस्थित हुआ है ! जब से यहाँ मुसलमानों के कदम आए सारा देश उजाड़ हो गया, खजाना खाली पड़ा है, खेत ऊसर हो रहे हैं, सारी श्री जाती रही, जिस वंश की उन्नत ध्वजा सदा आकाश भेद कर उड़ा करती थी, हाय ! आज वह वंश भी अपनी आँखों से चित्तौरगढ़ मे विजातीय शत्रुओ का निवास चुपचाप सहन कर रहा है। पितृचरण ने न जाने क्या

और किस जीवन के लाभ से जीते जी चित्तौर छोड़ दिया और अपने शरीर में प्राण रहते भी शत्रुओं को प्रवेश करने का अवसर दिया। धन्य है वीरवर जयमल और पुत्त को कि जिन्होंने उस डूबती हुई मेवाड़ की कीर्ति को कुछ तो ठहरने का ठिकाना किया। आह! कैसी वीरता और साहस के साथ प्रबल पराक्रमी शत्रुओं का गतिरोध किया था। क्या उनकी अक्षय कीर्ति कभी लोप हो सकती है? ऐसे पुरुषरत्न क्या हमें सहायक मिलेंगे? जो चार वीर ऐसे साहसी हमें मिलें तो हम प्रतिज्ञापूर्वक मेवाड़ ही से क्या सारे भारत से इनको निकाल दें। पर क्या हुआ जो हमारे राज्य में इन्होंने प्रवेश किया है, हमारे हृदय पर तो हमारा पूरा अधिकार है। लाख लाख कठिनाइयाँ के पहाड़ गतिरोध करने को क्यों न खड़े हों परंतु प्रताप के वेग को कौन रोक सकता है? यद्यपि इस समय राजस्थान के सब राजाओं ने स्वार्थ के वश होकर आत्मविस्मरण कर दिया है, इन विधर्मी शत्रुओं के साथ संबंध कर लिया है और यहाँ तक कि हमारे ही छोटे भाई ने अकबर से मित्रता कर ली है, परंतु क्या इससे हम कभी हताश हो सकते हैं? कभी नहीं, यदि इन कुलांगारों को अपना प्रताप न दिखाया और इनकी इस नीचता के लिये लज्जित न किया तो मेरा नाम प्रतापसिंह नहीं। अपने पिता के लिये हम बहुत शीघ्र रामगंगा में स्नान करके प्रायश्चित्त करेंगे। हमारे हृदय मे शक्ति चाहिए, हमारे हाथ मे बल चाहिए फिर हमारे आगे कौन ठहर सकता है? देखो, हमारे वंश के मूल पुरुषों ने कैसे पराक्रम और साहस के कर्म किए हैं। भगवान् श्रीरामचंद्र जी ने अपने ही बाहुबल से बानर और भालुओं की निमित्त मात्र सैन्य बनाकर रावण ऐसे प्रबल श ु का विनाश किया था, बाप्पा रावल ने खुरासान तक विदेश में जाकर अपनी ध्वजा फहराई थी,

खुमान ने काबुलियों का सारा कट्टरपन भुला दिया था, योंही बराबर एक से एक वीर होते ही गए, क्या उनके पवित्र कुल मे जन्म धारण करके हम इस कुल को कलंकित करे ? कभी नहीं, और फिर जैसी कठिनाइयाँ उन्हे झेलनी पडी थी उनसे तो कहीं कम हमारे आगे हैं। हम तो अपने घर अपने स्वदेशप्रेमी वीरों के बीच मे बैठे हैं। इन भुनगो को दूर करना हमारे लिये क्या बड़ा भारी काम है। भगवान् इस समय सानुकूल प्रतीत होते हैं। जिधर देखते हैं उत्साह दिखाई देता है, जिससे सुनते हैं उमग-भरी बाते कान मे आती हैं। क्या ऐसा अवसर चूकने योग्य है ? कभी नहीं, और फिर ऐसे पराधीन निर्जीव जीवन से तो मरना ही उत्तम ! या तो चित्रकूट गढ की ऊँची शिखर पर सिसोदिया कुल की पवित्र ध्वजा फहराती देखकर अपनी छाती ठंढी करेगे अथवा अचल कीर्ति ससार मे छोड़-कर अक्षय धाम के सिंहासन पर अधिकार करेगे। (आवेश मे) प्रताप-सिंह ! तुझे अपनी जननी के दूध की सौगंध है जो प्राण रहते कभी इन म्लेच्छों के निकालने की चेष्टा से निरस्त हो। जो अपनी प्रतिज्ञा पालन कर सके तो वीर माता का दूध पीना सफल है, नहीं तो ऐसे जीवन पर धिक्कार ! अकबर अपने को बड़ा प्रतापी, बडा चतुर, बडा वीर लगाता है, दक्खिन का राज्याधिकार करके उसे बड़ा गर्व हुआ है, राजपुताने के कुलांगारो को अपना साला सुसरा बनाकर बड़ा फूला है, अपना राज्य अटल समझता है। परंतु प्रताप ! तेरा नाम तभी है जब तू इस रावण सरीखे शत्रु का मुकुट अपने चरण-तल मे मर्दन करे। कुछ चिंता नहीं, जो इसका दर्प चूर्ण न किया तो संसार मे अपना मुँह न दिखाऊँगा। (नेपथ्य की ओर देखकर) अच्छे अवसर पर राजमहिषी आ रही हैं। इनके मन की थाह तो लें। देखें ये कितने पानी मे हैं।

| राजमहिषी का प्रवेश |

रानी—आर्यपुत्र की जय हो! क्या मैं सुन सकती हूँ आज आपकी चिंता का क्या कारण है?

महाराणा—भला तुमसे न कहेंगे तो किससे कहेंगे? हम तो अभी तुम्हें बुलाने ही वाले थे, अच्छे अवसर पर तुम्हारा आना हुआ। हम इस समय यही सोच रहे थे कि इस कठिनाई के समय में हमें क्या करना उचित है? क्या हम भी जयपुर की तरह अपनी प्राण से भी प्यारी बेटी को यवनराज की भेंट करके अपना झूँठा लाज बाज बढ़ावें और अपने बड़ों की कीर्त्ति को मिट्टी में मिलावें?

रानी—महाराज कभी नहीं। आपको ऐसा कभी विचारना ही न चाहिए। ऐसा विचार भी करने में प्रायश्चित्त लगता है। बिचारी भोली भाली हिंदुओं की लड़कियाँ अपना भला बुरा क्या जानें, उनका तो सुख दुख सब माँ बाप के हाथ है, जो वे किसी लोभ में पड़कर वा प्राण के डर से उनका सर्वनाश करते हैं तो न केवल अपनी कुलमर्यादा को उल्लंघन करके संसार में अपयश के भागी होते हैं वरन् उन्हें परमेश्वर के यहाँ भी उत्तरदाता होना पड़ता है। मैं तो कभी अपनी प्यारी बेटी को म्लेच्छ-कुल-कलंक की हवा भी न लगने दूँगी चाहे आप भी इसमें बुरा मानें तो मानें और फिर महाराज यह जीवन कितने दिन का! इस नाशमान शरीर की रक्षा के लिये अपने कुल को कलंकित करना कभी उचित है? मैं तो स्त्री हूँ, मेरी तो छोटी बुद्धि है पर मेरी दो ही इच्छाएँ हैं; या तो इन विजातीय शत्रुओं को मारकर महाराज के साथ चित्तौर राजसिंहासन की गौरव के साथ अधिकारिणी बनूँ अथवा वीरदर्प से गिरे हुए महाराज के पवित्र शरीर को अपनी गोद में

लेकर हँसते हँसते भारत रमणियों का मुख उज्ज्वल करके पतिलोक मे आपसे मिलूँ।

महाराणा—साधु महाभागे, साधु! प्रतापसिंह की अर्द्धांगिनी होने का अधिकार तुम्हारे अतिरिक्त किसको है? तुम निश्चय रखो जब तक इस शरीर मे प्राण हैं हम कभी इन म्लेच्छों की अधीनता स्वीकार न करेंगे।

[धूलिधूसरित राजकुमार का प्रवेश]

राजकुमार—(रानी की पीठ पर लपटकर तुतलाते हुए) माँ! दलबाल जवनों का छिकार खेलने जाँयगे।

रानी—(मुख चूमकर) हाँ, हाँ बेटा तुम भी जरूर जाना। अच्छा बताओ तो हमारे लिये क्या लाओगे।

राजकुमार—भाई अम तो छहजादा को माल्रेंगे उछके गले की हीले की कथी ले आवेंगे छो तुमको देगे औल उछकी तलबाल दलबाल को देंगे और तोपी हम लेगे?

महाराणा—भला मुसलमान की जूठी टोपी तुम पहिरोगे?

राजकुमार—काहे तुमी न कहते थे कि लाजा का मुकुट जूथा नहीं होता?

(महाराज गोद मे लेकर मुख चूमते हैं)

[नेपथ्य मे गान]

सबै मिलि सावधान अब होय।
उदय होत भारत नभ सूरज तिमिर यवन कुल खोय॥
अपुने अपुने काज सँभारहु तजि आलस सब कोय।
करहु पवित्र शत्रु यवनन के रुधिर भूमि को धोय॥

महाराणा—ओह! बड़ी देर हो गई। दरबार का समय हो गया। सुना है मानसिंह दक्षिण विजय करके आते हैं, उदयपुर भी

रहनेवाले हैं, इनके आतिथ्य का भार मंत्री को सौंपा है क्योंकि हम तो उस म्लेच्छप्राय हिंदू कुलकलंक का मुख नहीं देखना चाहते।

(प्रस्थान)

(इति प्रथम अंक)

द्वितीय अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—दिल्ली, जनाना मीना बाजार

(एक से एक चढ़ बढ़कर तैयारी की दूकानें और उन पर रूपवती स्त्रियाँ सौदा बेचती हुई। बड़े-बड़े घरों की बहू बेटियाँ सखियों के साथ घूम रही हैं। अकबर एक ऊँची खिड़की से चिक की ओट मे दिखाई देता है।)

[पृथ्वीराज* की रानी का प्रवेश और एक वृद्धा का उसके पास आगमन]

वृद्धा—बेटी तू किसी बड़े घराने की जान पड़ती है। जो तुझे बाजार की सैर करने की ख्वाहिश है तो आ मैं तुझे सैर करा दूँ, क्योंकि बहुत बड़ा बाजार है, तू नाहक फिरैगी।

रानी—आप कौन हैं ?

वृद्धा—ऐं, मैं इसी शहर की रहनेवाली हूँ, कोई नंगी लुच्ची नहीं हूँ। तुम डरो मत, तुमसे मैं कुछ सवाल न करूँगी।

रानी—(मन में) जान पड़ता है इसी कुटनी के द्वारा अकबर अपनी घृणित इच्छा को चरितार्थ करता है। शकुन तो अच्छा

---

* महाराज बीकानेर का भाई और अकबर का दरबारी सरदार।

मिला। आज यदि भगवान् की कृपा होगी तो इन सभों को इसका मजा चखाऊँगी।

वृद्धा—(चटक मटक कर) ऐ बलैया लूँ; बेटी तू किस सोच मे पड़ी है, मैं तुझे ऐसी ऐसी सैर कराऊँगी कि तू खुश हो जायगी।

रानी—नहीं नही और कुछ नही सोचती थी—आपकी भलमनसाहत सोच रही थी। (मन मे) भला नानी देखै आज तू मुझे सैर कराती है या मैं तेरे बाप के साथ तुझे जहन्नुम की सैर कराती हूँ।

वृद्धा—यह आपकी मेहरबानी है, मैं किस काबिल हूँ ? (मन मे) वह मारा अब कहाँ जाती है। आज का शिकार तो बहुत ही नफीस है। आज भारी गठरी हाथ आएगी। (प्रगट) अच्छा हुजूर, अब इधर मुलाहिजा फर्मावे, यह जौहरिन की दूकान है, कैसे कैसे बेबहा जवाहिरात रौनकबख्श हैं कि जिनकी चमक से सारा बाजार खिल रहा है। (हँसकर जौहरिन की ओर देखकर) और बी जौहरिन ने तो अपने याकूत लब गौहर दंदाँ की आब के आगे सब को मात कर रखा है।

जौहरिन—(भौंह टेढ़ी करके) चल मुई बूढ़ी खब्बीस, तुझे हर वक्त दिल्लगी सूझती है। (रानी से) हुजूर देखैं यह याकूत की अंगुश्तरी कैसी खूबसूरत है। यह हुजूर ही के काबिल है। (रानी अँगूठी लेकर देखती है।)

एक सखी—(वृद्धा से) क्यों बूआ, अब भी जो तुम्हें ये जेवरात पहिरा दिए जायँ तो क्या किसी से कम जँचो ?

वृद्धा—(प्रसन्न होकर) अब क्या बेटी, जब हमारा जमाना था तब था अब तो बूढ़े मुँह मुँहासे।

जौहरिन—नहीं नहीं, ऐसा क्यों जी छोटा करती हो। अब भी तुम्हारे कदरदान—

वृद्धा—(रानी से) ए हुजूर, जो लेना देना हो लेकर चलिए। अभी बहुत बाकी है। नावक्त हो जायगा।

रानी—ठीक है। (एक सखी से) यह अँगूठा ले लो।

(अँगूठी का दाम देकर सब आगे बढ़ती हैं)

वृद्धा—देखिए यं बजाजिन की दूकान है और इस मनिहारिन को इधर मुलाहिजा फर्माइए। मुसौवरिन की दूकान पर कैसी कैसी खूबसूरत तस्वीरें आवेजाँ हैं, अहाहाहा! यह देखिए हमारे बादशाह सलामत की तस्वीर है ओ हो हो। कैसा शबाब है!

(रानी के मुँह की ओर देखती है)

रानी—(घृणा नाट्य करती हुई मन ही मन) भला बड़ा देखा जायगा तेरा यह शबाब। (प्रकाश) यह सुंदर चित्र किस का का है?

मुसौ०—हुजूर यह बादशाह की बेगम जोधाबाई की तसवीर है।

रानी—यह वही कुलकलंकिनी है?

वृद्धा—(मन में) घबराइए न। अभी आपकी भी कलई खुली जाती है। (प्रकाश) ए हुजूर, वक्त नावक्त होता है। अभी हुजूर को बड़ा बड़ी सैर करानी है। एक एक दूकान पर इतनी देर करने से कैसे काम चलेगा?

मुसौ०—मर राँड़ मुँहजली, तेरे मारे किसी का भला काहे को होने पाएगा।

(रानी हँसकर एक चित्र मोल लेकर आगे बढ़ती है और वृद्धा रानी को दिखाते ही दिखाते नेपथ्य की ओर चली जाती है।)

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—दिल्ली, बादशाही महल के भीतर एक अँधेरा रास्ता

(पृथ्वीराज की रानी की सखियाँ घबराई हुई)

१ सखी—यह क्या अंधेर हुआ, महारानी कहाँ चली गईं, कुछ पता नहीं लगता। यह ठग की बुड्ढी न जाने किधर महारानी को लेकर गुम हो गई। हाय! अब क्या करें?

२ सखी—हम सब तो बेमौत मारी गईं। अब महाराज को चलकर कौन मुँह दिखाएँगी?

३ सखी—अरे अभी तो हम लोगों के साथ थीं, इतने ही में वह निगोड़ी महारानी को लेकर किधर समा गई?

४ सखी—हा! हमारी सखी की कौन जाने क्या दशा होती होगी। हम लोगों ने साथ ही रहकर क्या किया?

५ सखी—महाराज जब सुनेंगे उनकी क्या दशा होगी? हममें से एक को भी जीता न छोड़ेंगे।

(व्याकुल होकर इधर उधर घूमती हैं)

[एक खवासिन का प्रवेश]

खवासिन—तुम सभों ने क्या शोर मचा रखा है? जानती नहीं हो यह शाही महल है? यहाँ अदब से रहना चाहिए।

१ सखी—हम सब अदब क्या जाने! इस समय तो हम लोगों का जी ठिकाने नहीं है। हमारी रानी का पता नहीं लगता। बहिन तुम जानती हो तो बताओ, बड़ा जस मानेंगी।

खवासिन—(मुस्कराकर) तुम्हारी रानी? तुम्हारी रानी इस वक्त हमारी रानी बनी है। तुम लोग घबराओ मत।

२ सखी—चल लुच्ची! तुझे इस समय भी हँसी सूझती है! सच सच बता हमारी रानी कहाँ हैं?

खवासिन—(हँसकर और चमककर) ऐं ! तुम मानती ही नहीं हो तो हम क्या कहें ? अच्छा अभी दम भर में देखना तुम्हारी रानी मालामाल यहाँ पहुँचती हैं । यह तो शाही महल है, यहाँ का दस्तूर है कि खाली आवे और भरी जावे । (व्यंग्यपूर्वक हास्य)

सखिया—(रूखी होकर) चल निगोड़ी, तेरा सत्यानाश हो। तेरी जीभ निकाल लें ।

खवासिन—(ँसकर) तो तुम सब क्यों रश्क खाती हो, चलो न तुम सभो का भी बंदोबस्त हम किए देते हैं । यह शाही महल है । यहाँ कमी क्या है ?

(सब सखियाँ उसे पकड़ने को दौड़ती हैं और
वह हँसती हुई भागती है)

| पटपरिवर्तन

तृतीय गर्भांक

स्थान— बादशाही महल में एक सुसज्जित कमरा

(अकबर उत्कंठित भाव से इधर उधर घूमता और
द्वार की ओर देखता है)

[नेपथ्य में गान]

मधुकर काहे को अकुलात ।
खिलन चहत पंकज की कलियाँ अब न दूर परभात ॥
यह पराग तेरे ही बाँटे क्यों नाहक ललचात ।
छन ही छकिके प्रेम सुधा तू डोलेगो इतरात ॥

अकबर—हाय ! मैं इतना बड़ा शाहनशाह, मेरे यहाँ दुनियाँ के ऐशो इशरत के सामान मुहय्या, मगर मेरे दिल को एक दम भी राहत नहीं, शबोरोज फिक्र, लहजः बलहजः तरद्दुदात, रोज नई ख्वाहिशें, रोज नए हौसिले और हाय ! इन गुलबदनों की चाह ने

तो मुझे पागल ही बना दिया। कितनी देर से कितने कामों का हर्ज करके बावला सा यहाँ घूम रहा हूँ मगर अब तक सिवाय हसरत के कुछ हाथ न आया। (नेपथ्य मे पैर की आहट सुनकर) मालूम होता है वी नसीरन हमारे गुलेमुराद को लिए आ रही हैं। किसी ने खूब कहा है—

"वादए वस्ल चूँ शवद नजदीक।
आतिशे शौक तेजतर गर्दद॥"

(द्वार खुल जाता है और वृद्धा का रानी का हाथ
पकडकर खीचते हुए प्रवेश)

वृद्धा—उम्रो दौलत की खैर, तरक्किए जाहो हशमत, मुरादें भरपूर—लौंड़ी दुआगो अब रुखसत की तलबगार है।

रानी—(वृद्धा को पकड़कर) क्यो री हरामजादी, यही सैर कराने लाई थी, अब चली कहाँ ?

वृद्धा—(हाथ छुड़ाकर मुस्कराती हुई) बेटा, दम भर बाद इसी सैर को फिर जन्म भर तरसोगी।

(रानी वृद्धा को एक लात मारती है; वह गिर पड़ती है और
उठकर कमर पकड़े गिरती पडती बड़-बड़ करती जाती है)

अकबर—(रानी के पास आकर) प्यारी, इधर आओ, जरा आराम फर्माओ, किस सोच मे हो, देखो यह वह शाहनशाहे दिहली जिसकी निगाह की कोर दुनिया के बादशाह देखते रहते हैं आज तुम्हारे कदमों की गुलामी की ख्वाहिश करता हाजिर है।

रानी—(मुँह फेरकर और रूखे स्वर से) देख अकबर, तू बहुत बड़े सिहासन पर बैठा है। ऐसे दुष्कर्मों से इस राजसिहासन को कलुषित न कर और मुझे अभी मेरे घर पहुँचा।

(अकबर रानी का हाथ पकड़ना चाहता है और रानी झटककर हट जाती है)

अकबर—ऐ जानेजाँ, इस नीमजाँ को अब न सताओ। तुम्हारे इस जानिसार ने इसी वक्त तुम्हारी नाजनी अदा पर जो कवित्त तसनीफ किया है उसको भी जरा सुन लो—

"शाह अकब्बर बाल की बाँह अचिंत गही चल भीतर भौने।
सुंदरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिवे की भ्रम पावत गौने॥
चौंकत सी सब ओर बिलोकत संक सकोच रही मुख मौने।
यों छबि नैन छबीले के छाजत मानो बिछोह परे मृगछौने॥

रानी—(क्रोध से) देख नराधम दिल्लीपति कुलांगार! मैं राजपूत बाला हूँ, मेरा अंग स्पर्श न करना, नहीं अभी तुझे भस्म कर दूँगी।

अकबर—(हाथ जोड़कर) नहीं, नहीं, खफा होने की बात नहीं है, देखो, यह नौलखा हार, यह बेशकीमत चंपाकली, यह बेबहा मोतियों का सतलड़ा, ये सब एक से एक उमदा जवाहिरात सब तुम्हारी नजर हैं और यह दिल्ली का बादशाह हमेशः के लिये तुम्हारा गुलाम है। आज अपनी जरा सी मेहर की निगाह से बादशाहत को बिला कीमत खरीद सकती हो।

रानी—(लाल लाल आँखें निकालकर और निर्लज्ज भाव से) क्यों रे नर-पिशाच, तू मेरी बात न सुनेगा? क्या तेरा काल ही तेरे सिर पर नाच रहा है? क्या आज मुझी को नरपतिहत्या से अपना हाथ अपवित्र करना होगा? सुन, मैं तेरी सब दुष्टता सुन चुकी हूँ और आज तेरे हाथ से निर्बोध राजपूत बालाओं के सतीत्व-रक्षार्थ मैं तैयार होकर आई हूँ। तुझसे फिर भी यही कहती हूँ कि अपने इस नीचता के काम को छोड़ और अपने कर्त्तव्य की ओर देख।

(अकबर फिर रानी का हाथ पकड़ना चाहता है। रानी झपटकर अकबर को धरती पर पटककर अपनी कमर से छिपाए कटार को निकाल अकबर की छाती पर बैठ क्रोध से हाँफती हुई)

रानी—ले नराधम, जो तू मानता नहीं तो आज तेरा यही निबटेरा किए देती हूँ और तेरे बोझ से पृथ्वी को हलका करती हूँ। (कटार अकबर के गले के पास ले जाती है)

अकबर —(आर्त्तस्वर से) तौबा तौबा, मैं हाथ जोड़ता हूँ, मेरी बात खुदा के लिये सुन लो, मुझे न मारना, मेरी एक बात सुन लो—

रानी—कह, क्या कहता है।

अकबर—मैं अपने गुनाहों के लिये सख्त नादिम हुआ, मेरा कुसूर मुआफ करो, मेरी जाँ-बख्शी करो, मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ, मुझे मेरी उम्रे नातजुर्बाकार और दुनियावी यारों ने धोखा दिया। मैं अब तक इस पाकदामनी, इस बहादुरी, इस नेकचलनी को कभी ख्वाब मे भी न सोच सकता था। मेरे ख्याल मे औरतों का रकीक दिल तमः के फंदे से फाँसना आसान था। वह परदा आज दूर हुआ। मुझे बखशिए। लिल्लाह मुझे बखशिए। अब कभी किसी के साथ ऐसा गुनाह सरजद न होगा।

रानी - मुझे तेरी बात का विश्वास कैसे हो? हाय! जिन राजपूत वीरों की सहायता से आज तुझे यह प्रताप प्राप्त हुआ है, रे कुलांगार, उन्हीं की बहू बेटियो पर हाथ डालते तुझे लज्जा नहीं आती! धिक्कार है तुझको।

अकबर—आप मुझ नापाक गुनहगार को जितना धिक्कार दे बजा है मगर याद रखे', यह हुमायूँ का बेटा अकबर जब कि खुदायपाक के नाम पर आज अहद करता है अगर कभी फिर उससे

यह गुनाह हुआ तो इस दुनिया में मुँह न दिखायगा। अब मुझे ज्यादा न शर्माएँ और मेरी जाँ बख्शी करें।

रानी—देख, तू बड़ा बादशाह है। मेरे स्वामी ने तेरा नमक खाया है इसलिये तुझे आज छोड़ देती हूँ परंतु समझ रख, तेरा राज्य केवल राजपूतों के बाहुबल से है। यदि आज पीछे कभी तेरी यह हरकत सुनने में आयगी, सारे राजपूताने में तेरे इस भेद को खोल दूँगी और एक दिन में राजपूत मात्र को तेरा बैरी बनाऊँगी। (अकबर को छोड़ देती है)

अकबर – (रानी के पैरों पर गिरकर) मैं आपके इहसान से कभी सुबुकदोश नहीं हो सकता। आपने न सिर्फ आज मेरी जाँ-बख्शी की बल्कि बहुत बड़े गुनाह से बचाया। मेरे ऊपर जैसे इतना करम हुआ यह भी वादा फर्माया जाय कि यह भेद किसी से जाहिर न किया जाय और मेरा गुनाह मुआफ फर्माया जाय।

रानी—मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि यह भेद किसी से न प्रकाश करूँगी। परंतु मैं गुनाह मुआफ करनेवाली कौन? उस करुणामय जगत्पिता की सच्चे जी से क्षमा प्रार्थना कर, वही क्षमा करेगा।

(अकबर घुटनों के बल बैठकर भगवान् से क्षमा-प्रार्थना करता है। रानी कटार लिए खड़ी है)

अकबर—

रहा मैं गुमराह जिंदगी भर इलाही तौबा इलाही तौबा।
चला न नेकी की हाय राह पर इलाही तौबा इलाही तौबा॥
दी इसलिये मुझको बादशाही कि तेरे बंदों को पहुँचे राहत।
व ले किया मैंने जुल्म इन पर इलाही तौबा इलाही तौबा॥
रहा लगा नफ्स-पर्वरी में न दिल दिया दाद-गुस्तरी में।
पड़े मेरी अक्ल पर ये पत्थर इलाही तौबा इलाही तौबा॥

बहाना जालिमकुशी का करके किए बहुत मुल्क फतह हमने ।
व ले किए और उनप बदतर इलाही तौबा इलाही तौबा ।।
भला हो इस हूर पारसा का उठाया आँखों से जिसने परदा ।
हैं जिश्त एमाल मेरे अकसर इलाही तौबा इलाही तौबा ।।
हुआ है दामन गुनाह यो तर कि गर निचुड़ जाय वह जमी पर ।
तो डूब जाऊँ मैं उसमे ता सर इलाही तौबा इलाही तौबा ।।
फकत तेरे बखशिशो करम का है एक भरोसा मुझे खुदाया ।
नही कोई और अब है यावर इलाही तौबा इलाही तौबा ।।
नजर जो किर्दार पर मेरे की तो हो चुकी शक्ल मुखलिसी की ।
निगाह अपनी करम पः तू कर इलाही तौबा इलाही तौबा ।।*

[धीरे धीरे पटाक्षेप

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—दिल्ली, शाही महल का एक कमरा

[अकबर का चिंतित भाव से प्रवेश]

अकबर—हाय, मैं इतने दिनों तक किस तारीकी मे था, इतनी उम्र किस गुनहगारी मे बिताई, इलाही, इस अपने बंदे पर करम कर। अब इस दिले बेचैन को सब्र अता कर।

खुदाया !

"एवज न कर मेरे जुर्मो गुनाह बेहद का ।
इलाहि तुझको गफूरुल रहीम कहते हैं ।।
कही कहैं न उदू देखकर मुझे मुहताज ।
यह उनके बंदे हैं जिनको करीम कहते हैं ।।"

---

* यह गजल मित्रवर बाबू जगन्नाथदास बी० ए० (रत्नाकर) की सहायता से बनी है।

अहा ! दरहकीकत उसके बराबर कौन करीम है। अपने बंदे को गुमराह देखकर आज इस पाकदामन औरत के जरिए से कैसी नसीहत दी। उफ ! बला की तेजी, गजब की दिलेरी, कैसा खुदाई नूर था ! क्या यह वाकिआ कभी भूलने का है ? हर्गिज नहीं। अगर मेरी यह हरकत इसी तरह जारी रहती और यह खबर बहादुर राजपूतों के कान तक पहुँचती, जरूर था कि हमारी सल्तनत पर जवाल आता। आहा ! उस जनाबेबारी की दर्गाह में किस जुबाँ से शुक्रिया अदा करूँ। उसकी बेहद शफाकत का किस मुँह से बयाँ करूँ। आहा ! कैसे मुसीबत के वक्त में इस नाचीज की पैदायश हुई ! ओफ ! उस संगदिल चचा की सख्ती क्या कभी भूल सकती है ! ओफ ! उस वक्त खुदायपाक ने कैसी मुश्किलात आसान कीं ! फिर से यह तख्तो ताज बखशा, खान बाबा की बगावत जिस वक्त याद आती है, दिल काँप उठता है, मगर वाह रे मुश्किलकुशा, अपने इस बन्दे की बात उस वक्त कैसी रखी। (कुछ ठहरकर) अहा हा, हिंदू मुसल्मानों की रिश्तेदारी की बुनियाद कैसी उम्दा डाली गई है। अगर इसमें पूरे तौर पर कामयाबी हुई तो खांदान तैमूरिया कभी हिंदोस्तान से नहीं हट सकता। मगर वाह रे भगवानदास, तेरे बराबर दूरंदेश कोई काहे को पैदा होगा ! हमारी पूरी चाल न जमने पाई। जो कहीं हमारे घर की लड़कियाँ हिंदुओं के घर जातीं तो सब काम बन जाता। फिर तो इन्हें मुसलमान बनाने में कुछ भी देर न थी। मगर उस दानिशमंद ने इस चाल को ताड़ लिया। अच्छा, कुछ मुजायका नहीं, जाते कहाँ हैं। जो चाल चली है उसी की तरक्की होने का नतीजा वह भी होगा। (कुछ सोचकर) यह हिंदुओं का मुल्क है। यहाँ हिंदू ही बसते हैं, इनकी बहादुरी का मुकाबिला दुनिया में कोई कौम नहीं कर सकती

हालाँ कि इस वक्त इन पर जवाल है मगर कब खुदा ताला किसको उरूज देगा इसका कौन ठिकाना ? इसलिये जब तक इनके दिल से मुसलमानों से नफ़रत न दूर की जावेगी, जब तक इनके दिल मे बिरादराना मुहब्बत न पैदा की जायगी तब तक मुमकिन नही कि मुसलमानी सल्तनत को कयाम हो और यह तब तक मुमकिन नही जब तक कि मजहबी जोश, मजहबी खियालात इनके मजबूत हैं। मगर क्या बजोर शमशेर इनका मजहबी खियाल तबदील हो सकता है ? हर्गिज़ नहीं बल्कि खौफ है कहो उल्टी आग न भभक उठे। इसको मिटाने, इनको मुसल्मान बनाने की अगर दुनिया मे कोई तदबीर है तो यही कि इनसे नाता-रिश्ता बढ़ाकर इनके दिल से अपनी तरफ से नफरत दूर करना, इनके मजहब की तारीफ करना, इनकी मजहबी तकरीबों मे शिरकत करके इनकी निगाह मे खुद हिंदू बनकर कुल पर-हेजो को दफा करना। हाय, हमारे नाआकबतअंदेश मुसल्मान भाई हमारी इस दूरंदेशी पर तो खियाल करते नही और हम्ही से नाखुश होते हैं। हाँ—मगर मैं अपनी इस चाल को नही तबदील कर सकता। अकबर ! अगर तुझ पर खुदा की मेहरबानी हो और पूरी उम्र अता हो, तो तू साबित करके दिखला कि तैने मुसलमानी सल्तनत की मेख हिंद मे किस कदर मजबूती के साथ गाड़ी है और इन काफिरों के मजहब मे दीन इसलामिया की बू किस तरह मह्व कर दी है।

[एकाएक राजा टोडरमल का प्रवेश]

अकबर—(मन मे) यह तो बड़ा गजब हुआ, जो कहीं इन्होंने हमारी गुफ्तगू सुनी होगी तो बड़ा बुरा हुआ। (प्रकाश) आइए राजा साहब, आज इस वक्त आप कहाँ ?

टोडर—खुदावंद, फिदवी एक जरूरी अम्र मे गुजारिश करने की गरज से हाजिर हुआ है।

अकबर—फरमाइए।

टोडर—जहाँपनाह, हुजूर के साया मे रएेयत निहायत अमनो अमान से है और शेर व बकरी एक ही घाट पानी पीते हैं। अगर इसे रामराज्य कहे तो भी मुबालिगा न होगा, मगर अफसोस की बात है कि मुसलमान भाइयों के दिल से तअस्सुब रफा नहीं होता और वे रोज नए फिसाद उठाते हैं। सुनने मे आया है कि खिलाफ हुक्म बंदगाने आली आज फिर कुछ शूरा पेश है जिससे लोग खौफजदा हो रहे हैं।

अकबर—राजा साहब, मैं इन अपने भाइयों की नादानी से सख्त परेशान हूँ। आप देखिए, वालिदा माजिदा की वफात मे अगर मैंने बाल बनवाए तो क्या बेजा किया? मगर इन सभों ने कैसा वावैला मचाया। चाहे कोई खुश हो या नाखुश मैं तो हिंदुओं के मजहब का कायल हूँ। जहाँ तक मैं हिंदू वेदांतशास्त्र में डूबता हूँ एक अजीब लुत्फ हासिल होता है। मुझे तो अपने कौम का मुतलक एतबार व भरोसा नहीं। मेरा तो दारोमदार आप ही जैसे रुकनेसल्तनत पर है। आप लोगो को तशफ्फी दें, मैं अभी आकर इंतजाम करता हूँ। अकबर का हुक्म किसकी मजाल है जो टाल सके।

टोडर—ऐ शाहनशाहे आलम, आप इतमीनान रखें, हिंदू प्रजा का सर हुजूरेआली के कदमों में हमेश: हाजिर है और आली-जाह, अपने बादशाह से बगावत करना तो हिंदू कौम ने सीखा ही नहीं है। ताबेदार इस वक्त रुखसत हो!

अकबर—हाँ आप चलें—मैं भी अभी आता हूँ। (मन में) शुक्र है इन्होने कुछ न सुना। अकबर का दिली इंदिया किसी को मालूम होना दिल्लगी नही है। (टोडरमल का प्रस्थान)

[पटाक्षेप

(इति द्वितीयांक)

तृतीय अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—उदयपुर, महाराज मानसिंह का आतिथ्य

(एक सुसज्जित कमरा—महाराजा मानसिंह और कुँवर अमरसिंह बैठे हैं। भीमाशा मंत्री और सरदारगण खड़े हैं)

(नेपथ्य में गान)

क्यों तू भरि गुमान इतरात।
इत उत चमकि फूलि निज छबि पै रे खद्योत इठलात॥
है दिन चार साहिबी तेरी जब ही लौं बरसात।
तापै भानु समान होन को अरे मूढ़ ललचात॥
भानु उदय कहुँ देखि न परिहै कोउ न पूछिहै बात।
रविकुलरवि प्रताप के जागे रिपुकुल मानत मात॥

मानसिंह—(स्वगत) यहाँ के ढँग कुछ विलक्षण दिखाई देते हैं। यह सब बौछार हम्ही पर है। अच्छा देखैं यह अभिमान कब तक ठहरता है। (प्रकाश) आज हम पर राणाजी ने बड़ी कृपा की है और हमारे लिये बड़े सामान किए हैं, परंतु अब तक आप क्यों नहीं पधारे ?

मंत्री—(हाथ जोड़कर) हुकुम अन्नदाताजी आज श्री हुजूर का शरीर अच्छा नहीं है, कुँवरजी तो पधारे ही हैं। उनमें और इनमें भेद क्या है, देखिए शास्त्रों ने भी कहा है—"आत्मा वै जायते पुत्र'।"

मानसिंह—हाँ, आपका कहना एक प्रकार से अनुचित तो नहीं है पर संसार की जो रीति है वही बरती जाती है। यों तो शालग्राम की बटिया क्या छोटी क्या बड़ी, हमारे तो यह सिरताज ही

हैं परंतु जब तक श्री एकलिंगजी की कृपा से राणाजी वर्तमान हैं इनकी गिनती लड़कों ही मे गिनी जायगी, और आप न पधारकर लडकों को भेजना अपने घर में आए हुए मेहमान का अनादर करना है। आप हमारी ओर से राणाजी से बिनती कीजिए, हमारी जो कुछ भूल चूक हो क्षमा करें और पधारें। जब तक आप न पधारेंगे, हम मुँह मे ग्रास न देंगे।

मंत्री—नहीं धर्मावतार, आपको ऐसा न समझना चाहिए। यह बात नहीं है। श्री जी हुजूर के माथे में दर्द न होता तो वे अवश्य ही पधारते।

मानसिंह—(दर्प के साथ मोछों पर हाथ फेरता हुआ) माथे में जिस कारण से दर्द है हम खूब समझते हैं। राणाजी ने अपने घर आए हुए हमारा अपमान किया पर हम अन्न का अनादर न करके उसे सिर चढ़ाते हैं। (चावल के दाने पगड़ी में रखकर) याद रखना इस माथे के दर्द की दवा लेकर हम बहुत जल्द फिर आवेंगे और तब दिखावेंगे मानसिंह का अपमान करना कैसा होता है। (चलने को उद्यत होते हैं)

(प्रतापसिंह वेग के साथ आते हैं)

प्रतापसिंह—सुनो महाराज मानसिंह—

जिन कुल की मरजाद लोभ बस दूर बहाई।
जीवन भय जिन खोइ दई आपनी बड़ाई॥
जिन जग-सुख-हित करी जाति की जगत हँसाई।
लखि जिनको मुख वीर सबै सिर रहे नवाई॥
तिनके सँग खानो कहा मुख देखन हू पाप है।
जाइ सीस बरु धर्म हित यह सिसोदिया थाप है॥

अच्छा अब आप सुख से पधारिए और अपने हिमायती के साथ शीघ्र ही फिर हमारी अतिथिसेवा रणक्षेत्र मे स्वीकार कीजिए, यही प्रार्थना है।

(मानसिंह क्रोध के साथ राणा की ओर देखते हुए जाते हैं)

प्रतापसिंह—मंत्री—

यह पवित्र थल जेहि न विधर्मी छाया दरस्यो।
ताहि आज या कुल कलंक ने पायन परस्यो॥
तातें याहि धुवाइ शुद्ध गंगोदक छिरकौ।
नाना विधि दै धूप वायु के मल को हिरकौ॥
हमहूँ सवत्सा गाय दान बिप्रन को दैही।
मुख देखन को आप प्रायछित निज कर लैही॥
अहो वीरगण निर्भय रहौ सचेत सदाई।
निज पवित्र पुरुषारथ को फल देहु चखाई॥
रहै धर्म तौ प्रान नहीं जौ धर्म प्रान नहिं।
कोउ न कहै नहिं रहे वीर छत्री भारत महिं॥
बहु देसनि करि विजय ब्याह अधमन की बाला।
अकबर को मन बहकि रह्यो धन मद एहि काला॥
गर्व खर्व करि थापि आपुनी हाँक तासु जिय।
अहो बहादुर चूकौ जिन अवसर न हाथ दिय॥
जहँ साहस जहँ धर्म जहाँ साँचे सब संगी।
तहीं विजय निहचय तासों सब होहु इकंगी॥

सब—महाराज ऐसा ही होगा।

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—उदयपुर

(राणा चिंतित भाव से बैठे हैं और पुरोहित सामने बैठे हैं)

प्रताप—पुरोहितजी ! कल का वृत्तांत तो आपने सुना ही होगा, अब बहुत शीघ्र मेवाड मे समराग्नि भभकना चाहती है।

पुरोहित—हुकुम अन्नदाताजी, मैंने सब सुना। मुझे तब से बडी चिंता है।

प्रताप—चिंता किस बात की है, क्या आप प्रतापसिंह को निरा असमर्थ समझते हैं ?

पुरोहित—नहीं अन्नदाताजी, मैं ऐसा कभी नहीं समझता, परंतु मुझे इस लड़ाई में देश की महान् दुर्दशा दिखाई पड़ती है। इससे मैं निवेदन करता हूँ कि अब भारतवर्ष मे मुसल्मानो की जड़ ऐसी जम गई है कि इसे निर्मूल करना कठिन ही नहीं वरंच असंभव है, फिर व्यर्थ बैठे बिठाए देश को उजाड़ करने से क्या लाभ ? अब हमारा उनका चोली दामन का साथ है, अब तो ऐसे उपाय करने चाहिएँ जिनसे आपस मे भ्रातृभाव बढे।

प्रताप—पुरोहितजी ! आपका कहना ठीक है पर आपने इसका पूरा वृत्तांत नहीं सुना है इसी से ऐसा कहते हैं, नहीं तो कदापि ऐसा न कहते। प्रतापसिंह क्षत्रिय संतान है—क्षत्रियों का यह काम नहीं है कि व्यर्थ परमेश्वर की सृष्टि को नाश करें और उसके आगे अप-राधी बनें। दूसरे हम लोग हिंदू हैं, हम लोगों का धर्म अत्यंत उदार भावपूर्ण है, प्राणी मात्र की रक्षा करना हमारा धर्म है, फिर यह क्योंकर संभव है कि हम ईर्षावश विधर्मी लोगों का नाश करें। क्या वे लोग उसी जगत्पिता की संतान नहीं हैं ? परंतु महाराज,

हमारे क्रोध का कारण दूसरा ही है। हमारा यह कर्त्तव्य अवश्य है कि हम अपने धर्म और अपने देश की रक्षा करैं। जब कोई हमे छेड़ेगा हम कभी चुप नही रह सकते। देखिए हमारे पुरुषों ने जिस चित्तौरगढ के लिये निःसंकोच अपना प्राण अर्पण किया, जिसका गौरव अपने प्राण से बढ़कर पुत्ररत्न को गँवाकर भी नष्ट नही होने दिया, उसी चित्तौरगढ पर—उसी परम पवित्र आराध्य चित्तौरगढ़ पर मुसल्मानी झडा फहराय और हम उसे सुख से देखैं! हमारे आर्य भाइयों को मुसल्मान बनावै और हम आख बंद कर ले?

पुरोहित—धर्मावतार, यह आप ठीक आज्ञा करते हैं परतु जगदीश्वर को यदि यही अभीष्ट है तो हम लोग क्या कर सकते हैं? पृथ्वीनाथ, देखैं श्रीमद्भागवत ही मे आज्ञा हुई है कि इनके पीछे गौरांगो का राज्य होगा। फिर जब भारत के भाग्य मे ऐसा ही लिखा है तो व्यर्थ बैठे बिठाए अपने ऊपर झगडे खड़े करने से क्या लाभ?

प्रताप—पुरोहितजी, यह आप क्या कहते हैं? क्या यह समझकर कि कल तो हमको मरना ही है आज ही से खाना पीना छोड़ देना उचित है? आप निश्चय रखिए अब जो आवेगे इनसे अच्छे ही आवेगे। एक यूरोप का विद्वान् अकबर के दर्बार मे है। अनुमान होता है गौरांग जाति का ही वह है, उसकी बड़ी प्रशसा सुनने में आई है। वह दिन भारत के सौभाग्य का होगा जिस दिन इन सभो के हाथ से यह राज्य निकल जायगा, परंतु क्या यह सब सोच-विचारकर आज ही से हमको निराश होकर अपने राज्य को कौन कहै अपने धर्म को भी उसे सौंप देना चाहिए? क्या आप आज्ञा देते हैं कि उसके प्रार्थनानुसार राजकुमारी का विवाह उसके बेटे के साथ कर दिया जाय?

पुरोहित—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, ऐसा भी कभी हो सकता है ? उस दुष्ट की इतनी बड़ी स्पर्द्धा है ? महाराज, उसे तब तो अवश्य ही समुचित दंड देना चाहिए।

प्रतापसिंह—गुरुदेव,

जेहि मुख तें ये बैन भरे अभिमान निकारे।
सिसोदिया कुल करन कलंकित बचन उचारे॥
करि वश क्षत्रिय कुल कलंक ह्वै चार बिचारे।
बढ़ि बढ़ि बोलत जौन आजु सब शंक निवारे॥
जबलौं तिनको मसलि नहि तुम पद गेंद बनाइहौं।
तबलौं हे गुरुदेव नहि सुख सों दिवस बिताइहौं॥

पुरोहित—अन्नदाताजी, आप सब कुछ कर सकते हैं। श्रीएकलिंग-जी आप पर प्रसन्न हैं। हमारी इच्छा है कि हम लोग सबसे पहले एक-लिंगजी की सेवा में यह सब निवेदन करके इस उपलक्ष मे आज पूजन करें।

प्रताप—अवश्य, चलिए।

(दोनों का प्रस्थान)

तृतीय गर्भांक

(उदयपुर के एक सुंदर उद्यान मे पुष्पित गुलाब के वृक्ष के निकट एक सुंदरी खडी है और दूर पर एक कुंज की ओट से एक युवा पुरुष अलक्षित भाव से अतृप्तनेत्र से उसकी ओर देख रहा है। *)

सुंदरी—(एक फूल तोड़कर)

अरे तेरे कोमल तन पर वारियाँ
मधुर रंग माधुरी गंध पै तन मन भई बलिहारियाँ॥

* गुलाबसिंह और मालती के चरित्र से कोई ऐतिहासिक संबंध नहीं है।

झलक लखत बाँकी तुव अँग मैं, मैं तो भई मतवारियाँ।
तुव मिलाप मैं कंटक जेवे, कसक कसक उर फारियाँ॥

अहा, गुलाब तेरा रूप जैसा सुंदर है नाम भी वैसा ही मनोहर है और मेरे जीवन का मूल कारण ही है। प्यारे गुलाबसिंह देखो, तुम्हारे वियोग के दिनों को इन्हीं गुलाबों के साथ काटती हूँ, ये ही मेरे आराध्य देव हैं। अहा, कहीं ये ही गुलाब गुलाबसिंह हो जाते।

युवा—(कुंज की ओट से)

'या आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।
फिर बसंत ऐहै सखो इन डारन तरु फूल॥

सुंदरी—(चकपकाकर) हैं, यह अमृतवर्षा कहाँ से!

युवा—(कुंज की ओट से)

अरे कोउ मधुकर की सुधि लेहु।
घायल तलफत प्रान गँवावत तेहि बिसारि जनि देहु।
रे मालति तुव बिरह भौंर भटकत बन बन तजि गेहु।
राखि लेत किन बरसि दया करि प्रेमसुधा घन मेहु॥

सुंदरी—वाह! यह तो वही स्वर जान पड़ता है जिसकी झंकार सदा मेरे हृदय मे गूँजा करती है (युवा को कुंज की ओट से निकलकर धीरे धीरे अपनी ओर आते देखकर घबराई हुई दाँतों के नीचे उँगली दाबकर) हैं तो गुलाबसिंह ही। हाय, मैंने आज तक अपने हृदय के भाव को कैसी कठिनाई से छिपा रखा था, पर आज अनायास वह प्रकाश हो गया। अब क्या करूँ? (लज्जा के साथ वस्त्र को सँभालकर उँगली दाँत के नीचे दाबे दूसरे हाथ मे लिए गुलाब की ओर नीची दृष्टि से देखती पुतली की भाँति, कुछ मुड़कर खड़ी हो जाती है)

गुलाबसिंह—(सुंदरी के पास आकर उत्कंठित भाव से) प्यारी मालती, अब कब तक भटकाओगी ? हाय, तनिक तो जी में दया बिचारो ।

मालती—(उसी भाव से) गुलाबसिंह, तुम क्यों दुःख उठाते हो ? इस उद्यान मे बहुत से सुंदर फूल हैं, किसी और की ओर जी लगाओ, इसकी आशा छोडो ।

गुलाबसिंह—

चातक स्वाती तजि कबौं अमृत हू परसै न ।
ताकी गति जग और को जेहि मारे तुव नैन ॥

मालती—(गुलाबसिंह की ओर फिरकर) गुलाबसिंह, मैंने बहुत चाहा था कि अपने जी के भाव को तब तक छिपाऊँ जब तक अवसर न पाऊँ, पर क्या करूँ आज दैवयोग से वह आप ही प्रकाश हो पडा। मैं क्या करूँ, मेरी तो प्रेम और नेम के बीच में साँप छछूंदर सी गति हुई । मैं चत्राणी हूँ इससे अपनी प्रतिज्ञा से लाचार हूँ और इसी से तुम्हे निराश होने के लिये कहती हूँ ।

गुलाबसिंह—क्या मैं उस प्रतिज्ञा को सुन सकता हूँ ?

मालती—हाँ, हाँ, उसके सुनने के अधिकारी तुम्हीं तो हो, सुनो—

प्रबल शत्रु दल दलि निज बल मेवार बचावै ।
म्लेच्छ रुधिर प्यासी भुव की जो प्यास बुझावै ॥
आर्य धर्म की धुजा गगन को भेदि उड़ावै ।
चत्रिय कुल मेवाड़ देश को नाम बढ़ावै ॥
ताकी सेवा करन मैं बडभागिनि सुख पाइहौं ।
नहिं तौ यह जीवन सदा इकली बैठि बिताइहौं ॥

गुलाबसिंह—(आवेश से) अच्छा तो आज मैं भी जो प्रतिज्ञा करता हूँ उसे सुन रक्खो—

जब लौं निज बल को फल इनकौं नाहि चखाऊँ।
म्लेच्छ धुजा को काटि न जब लौं भूमि गिराऊँ॥
आर्य धर्म की जय धुनि सों सब जग न कँपाऊँ।
निष्कंटक मेवार देस जब लौं न बनाऊँ॥
तब लौं मुख करि सामुहे तुमसों कबहुँ न भाषिहौं।
अरु कोमल कर परस को मन मे नहि अभिलाषिहौं॥

(वेग से जाता है और मालती अतृप्त नयन से उसकी ओर देखती है)

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—उदयपुर, राजपथ

[गुलाबसिंह का चिंतित भाव से प्रवेश]

गुलाबसिंह—

भूलि जिय काहू सों न लगै।
जब लौं रहै रहै निज बस को दूजे सों न पगै॥
पगै तो वाही संग पगै जो अपुने रग रँगै।
दई निरदई प्रेममई सों कबहूँ नाहि पगै॥

हाय! आज कितने दिनों की कितनी आशा और अभिलाषा को उसने एक दम में पलट दिया! प्यारी मालती! भला अपने इस व्याकुल प्रेमी की दो दो बातें तो सुन ली होतीं, इसके दुःखो की कहानी तो अपने कानों तक पहुँच लेने दी होती, जी भरके एक बेर देख तो लेने दिया होता, तूने तो ऐसी लट्ठ सी मार दी कि मेरे सभी हौसले पस्त हो गए! (कुछ ठहरकर) और मैं ही धीरज धर कर दो दो बातें कर लेता तो क्या होता, पर हाय! मैं क्या

करता, उसकी प्रतिज्ञा सुनकर मैं अपने आपे मे तो था ही नहा, कहता क्या और सुनता क्या ! उस स्वाभाविक वेग को सँभालना मेरे सामर्थ्य के बाहर था। अच्छा, अब जो हुआ अच्छा ही हुआ। अब तो प्रतिज्ञा की है उसे पूरी करने का उद्योग करना चाहिए।

[वीरसिंह का प्रवेश]

वीरसिंह—यह आज आप बेपेंदी के लोटे की तरह क्यों लुढ़कते फिरते हैं !

गुलाबसिंह—कुछ तो नहीं।

वीरसिंह—कुछ तो नहीं क्या ? "कछु पिय सों खटपट भई टप टप टपकत नैन" का मामला दिखाई देता है—क्यों यार कैसा ताड़ा ?

गुलाबसिंह—(हँसकर) तुम्हे सदा हँसी ही सूझती है—खटपट किस बात की ?

वीरसिंह—यह जानो तुम—यहाँ तो सदा पौ बारह है।

गुलाबसिंह—अच्छा, अब यह मसखरापन रहने दो—हमारी इच्छा है कि आज दिल्ली चलें।

वीरसिंह—क्यों ? क्या उधर से यह आज्ञा मिली है ?

गुलाबसिंह—देखो, हर समय की हँसी अच्छी नहीं होती। यहाँ तो न जाने क्या बीत रही है और तुम मानते ही नहीं।

वीरसिंह—यह न कहिए—"जादू वह जो सिर पर चढ़के बोले" मैंने तो पहले ही कहा था।

गुलाबसिंह—तुम्हे हाथ जोड़ते हैं तंग न करो। यह बताओ तुम हमारे साथ दिल्ली चलोगे या नहीं ?

वीरसिंह—सुनो भाई हम तो तुम्हारे साथ नरक मे भी चलने को तैयार हैं पर बिना तुम्हारा मतलब सुने न आप जायँगे न तुम्हें जाने देंगे।

गुलाबसिंह—मतलब क्या ? तुम नहीं जानते कि महाराज मानसिंह यहाँ से चिढ़कर गए हैं ?

वीरसिंह—तो फिर, तुम्हे क्या ?

गुलाबसिंह—अजी वहाँ जाकर एक की अट्ठारह लगावेंगे और न जाने क्या उपद्रव उठावेंगे, चलो आगे से उसकी खबर छिपकर ले आवे।

वीरसिंह—हाँ तो मैं चलने को तैयार हूँ। (मन मे) ऐसे ही तो खबर लानेवाले थे, आज जान पड़ता है कि उधर से मुँह की खाई तो जी मे यही समाई। (प्रगट) अच्छा तो जरा घरवाली से भी बिदा हो लूँ।

गुलाबसिंह—हाँ हाँ, पर शीघ्र आना।

वीरसिंह—आया, और—और तुम भी जरा उधर—(आँख मटकाता है)।

गुलाबसिंह—चल लुच्चे—(ढकेलता है)।

(एक ओर से वीरसिंह हँसता हुआ और दूसरी ओर से गुलाबसिंह कुछ अप्रतिभ सा होकर जाता है)

[पटाक्षेप

(इति तृतीय अंक)

चतुर्थ अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—श्रीवृंदावन

[तानसेन के पीछे पीछे भृत्यवेश में तानपूरा लिए हुए अकबर का प्रवेश]

तानसेन—(अकबर की ओर फिरकर) जहाँपनाह, यह बड़ा ही गजब कर रहे हैं।

अकबर—तानसेन ! चुप भी रहो, कोई जान लेगा तो फिर सब लुत्फ जाता रहेगा। आहा ! तानसेन, यहाँ तो कुछ जी ही और हुआ जाता है, गैर मजहब होने पर भी यहाँ की मिट्टी में लोटने को बेतरह जी चाहता है और इन भोली भाली व्रजवासिनियों की महज बातें तो तान सुर को मात करती हुई जी को खींचे लेती हैं। (चौंककर) वह देखो, मोर बोला और जी में कुछ और ही झलक सी झलकी।

तानसेन—खुदावंद ! मैं हुजूर से गलत थोड़े ही अर्ज करता था, यह जमीन कुछ और ही है और फिर जब हुजूर मेरे गुरुजी महाराज श्री स्वामी हरिदासजी का दर्शन करेंगे उम्मीद है तबीयत ही दूसरी हो जायगी।

अकबर—भाई, उनके इश्तियाक ने तो मुझे बावला ही बना रखा है। उन्हीं के दर्शन के लिये तो यह सूरत बनाई है। (आगे की ओर देखकर) वह देखो चंद व्रजवासिनी गाती हुई जल भरने के लिये इधर ही की ओर आ रही हैं। वाह वाह क्या समा है ! धन्य ! व्रजगोपिका धन्य !

(दोनों एक किनारे खड़े होते हैं। कुछ व्रजवासिनी सिर पर घड़ा लिए गाती हुई आती हैं)

व्रजवासिनीगण—(गीत)

"माई री नेकु न निकसन पैए।
घाट बाट पुर बन बीथिन में जहाँ तहाँ हरि पैए॥
उत सुनियत इत को चलियत हू मन वाही पै जैए।
ब्रह्मदास छूटिए कहाँ लों कान्हमई व्रज मैए॥

एक व्रज०—अरी बीर !

दूसरी व्रज०—का कहै बीर !

पहली ब्रज०—अरी नेक पाँय बढ़ाए चल। या ब्रज मे ऊधमी को राज ठहरयो। कहूँ काहू पै दीठ न परि जाय—सिदौसिऐ घर कूँ चल।

तीसरी ब्रज०—हम्बे बीर-चल।

(सब जाती हैं)

तानसेन—(विह्वल होकर) खुदावद! इस ब्रजभूमि के रूप को हुजूर ने देखा? धन्य है उनके भाग्य, जिन्हे ब्रजरज नसीब हो।

अकबर—तानसेन! आज तुमने मुझ पर बड़ा इहसान किया। आज तुम्हारी बदौलत मुझसे नापाक बदबख्त को भी ब्रजरज नसीब हुई। धन्य है बीरबल को, जिनका काव्य ये ब्रजगोपिका गाती हैं।

तानसेन—इसमे तो शक नही। हुक्म हो तो ताबेदार इस वक्त हस्ब हाल कुछ सुनावै।

अकबर—जरूर—मैं तानपूरा छेडता हूँ।

तानसेन—

"नैन माँगौ इंद्र सों जासों दरसन करौं अघाय अघाय।
रसना माँगि लेहुँ सहसफन सों जासों गोविद गुन गायो जाय॥
लंकापति सों सीस माँगि लेहुँ जो बंदन करूँ बनाय बनाय।
सहसबाहु सों भुज माँगि लेहुँ तानसेन के प्रभु परसन कों पाय॥

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—दिल्ली, राजपथ

[एक हिंदू और एक मुसलमान नागरिक का प्रवेश]

मुस०—(हिंदू को देखकर बड़े प्रेम से सलाम करके) अल्लाह भाई बिहारीलाल! आज तो बाद मुद्दत के मुलाकात हुई। कहिए सब खैरियत तो है।

हिंदू—(प्रेमपूर्वक मुसलमान का कर स्पर्श करके) आपकी दया से सब खैरियत है। क्या कहें भाई महरअली ! कामकाज की भीड़ में छुट्टी तो मिलती ही नहीं, क्या करें कहां जायँ ? अपनी खैरसलाह खैराफियत कहिए !

मुस०—(सलाम करके) शुक्र है, कहो दोस्त आजकल रोज-गार का क्या हाल है ?

हिंदू—भाई परमेश्वर इस मुसलमानी बादशाहत को कायम रक्खे और हमारे बादशाह सलामत को उम्र दे। इन दिनों जैसे आनंद से दिन कटते हैं कुछ कह नहीं सकते। बेखटके खूब रोजगार करते हैं और खूब बरकत होती है।

मुस०—इसमें तो शक नहीं—भाई साहब हमारा तुम्हारा तो चोली दामन का साथ है—अगर हमारे हाथ से तुम्हे कोई ईजा पहुँची तो तुफ है हम पर ! चंद नाआकबतअंदेश बादशाहों ने तुम लोगों की कुछ ईजारसानी की थी, अब खुदा चाहेगा तो मुसलमानी सल्तनत में हिंदुओं को बहुत आराम मिलेगा।

हिंदू—परमेश्वर ऐसा ही करें—भाई हम लोग तो राजभक्त प्रजा हैं, हमारी यह इच्छा नहीं कि हम राजगद्दी पर बैठें, हम तो अपने राजा को चाहे वह कैसा ही क्यों न हो ईश्वर का अवतार ही सम-झते हैं। हाँ जरा हमसे चुमकारकर बोलिए हम प्रसन्न हो जायँ, डाँट दीजिए हम मन ही मन मसूस कर रह जायँ, देखिए पंडितराज ने हमारे हजरत सलामत के बारे में क्या अच्छा कहा है—"दिल्ली-श्वरो वा जगदीश्वरो वा" और हम लोगों का यही विश्वास भी है।

मुस०—भाई हमारे बादशाह सलामत तो तुम्हीं लोगों के भरोसे शाही करते हैं और तुम्हारे ही बल पर नाजाँ हैं, देखो आधे

से ज्यादा वजरा हिंदू ही हैं, महाराज टोडरमल, महाराज बीरबल, महाराज मानसिंह, राजा मटट्टूशाह वगैरह कैसे कैसे दकाक और खैरख्वाह वजीर हैं, और लुत्फ तो यह है कि इनके हाथ से जो इंसाफ और फैज मुसलमान रैयत को मिलता है वह मुसलमान वजरा से नहीं खुदा हम दोनो हिंदू मुसलमानो की मुहब्बत यों ही ता अबद निबाह दें।

हिंदू—तथास्तु, सुना है आज दर्बार मे बड़ा जशन होगा, महाराज मानसिंह दक्खिन फतह कर आते हैं, चलिए हम लोग भी जरा दर्शन कर आवैं।

मुस०—बिस्मिल्लाह, तशरीफ ले चलिए।

(एक ओर से दोनों जाते हैं, दूसरी ओर से चारण के वेश मे गुलाबसिंह और वीरसिंह का प्रवेश)

गुलाबसिंह—वीरसिंह, दिल्ली की शोभा अकथनीय है, ऐसा सुंदर और श्रीमान् नगर तो इस समय संसार मे दूसरा कोई न होगा। यह चौडी सड़क, आकाश से बात करनेवाले महल, मन को प्रसन्न किए देते हैं।

वीरसिंह—इसी लिये मैं दिल्ली नहीं आता था। मैं तो पहले ही से जानता था कि कहीं आपका बिगडैल जी किसी महल मे न मचल जाय, सो कुछ लक्षण दिखाई देने लगा।

गुलाबसिंह—तुम तो एक विलक्षण मनुष्य हो, कोई बात ही ऐसी न बोलोगे कि जिसमे व्यंग न हो।

वीरसिंह—अच्छा लो अब हम न बोलेंगे, हमारी बात तुम्हें नहीं सुहाती तो हम बोलेंगे ही नहीं।

गुलाबसिंह—(उँगली से दिखाकर) वीरसिंह, देखो वही वीरवर पृथ्वीराज का कीर्तिस्तंभ जान पड़ता है। हाय

वीरसिंह—(मुँह फेरकर) चुप ।

गुलाबसिंह—वीरसिंह—इधर देखो ।

(वीरसिंह निश्चल)

गुलाबसिंह—हाथ जोड़ते हैं अब कुछ न कहेंगे । जरा इधर तो फिरो ।

(वीरसिंह और भी हट गया)

गुलाबसिंह—सुनते हो कि नहीं ।

(वीरसिंह चुप)

[नेपथ्य में]

सावधान सब लोग होहु निज पथ अनुसारा ।
मिले भूर मैं सहज जौन मरजादहिं टारा ॥
देश देश बस करत बाहुबल अरिहि चखावत ।
दिल्लीपति मरजाद थापि मन मोद बढ़ावत ॥
करि विजय शत्रु दल दलन करि मान महीपति आवहीं ।
कर कुसुम लिए सुरबधूजन चढ़ि विमान जस गावहीं ॥

गुलाबसिंह—जान पड़ता है, महाराज मानसिंह दर्बार में जाते हैं । तो अब हम लोगों को भी शीघ्र चलना चाहिए ।

(दोनों जाते हैं)

तृतीय गर्भांक

स्थान—शाही दर्बार

(अकबर सिंहासन पर विराजमान है, दोनों ओर कतार बाँधे राज्यपारिषदगण खड़े हैं । कई एक नर्तकी गान और नृत्य कर रही हैं, बड़ा प्रकाश और बड़ी तैयारी है)

बढ़े औज इस तख्त का या इलाही ।
दुरख्शाँ रहे कौकबे बख्ते शाही ॥

उदू होवे पामालो मगलूब शह के।
पड़े उनके सर पर सरासर तबाही ॥
रहे हुक्मरॉ सबका अल्लाह अकबर।
जहॉ में जहॉ तक कोई होवे राही ॥
तेरे सायए फैज से बहरवर हो।
है मखलूक जो माह से ता ब माही ॥

अकबर—आज निहायत खुशी का दिन है, हमारे कूवते बाजू महाराज मानसिह आज वह काम करके तशरीफ लाते हैं जो कि ख्वास हम भी शायद न कर सकते। सूबए दक्खन का फतह करना कोई दिल्लगी न थी, यह काम महाराज मानसिह ही के हिस्से का था। (दर्बारियों से) जिस वक्त महाराज तशरीफ लावैं आप सब लोग उन्हे मुबारकबादी दें।

सब—बजा इर्शाद खुदावंदे आलम।

अकबर—मगर देर बहुत हुई, महाराज की सवारी की खबर तो बहुत अर्सा हुआ आई थी।

[नेपथ्य मे]

सावधान दिगपाल सँभारहु निज दिशान को।
हे नच्छत्र थिर रहौ सफल निज निज सुथान कों ॥
अहो सिधु मरजाद गहो जौ चहौ मान कों।
हे अभिमानी बीर भगौ चाहौ जु प्रान को ॥
निज भुज बल जग बस करत कायर हृदय कँपावहीं।
विजय लच्छमी लुटत पद मान महीपति आवहीं ॥

अकबर—वह महाराज आ गए।

चोबदार—(स्वर से) निगाह रूबरू जहॉपनाह सलामत।

[महाराज मानसिंह का प्रवेश]

अकबर—(अर्धाभ्युत्थान देकर) मुबारक महाराज, दक्खन की फतह आपको मुबारक।

(सब लोग इसी को दोहराते हैं)

मानसिंह—(महा क्रोध के साथ पगड़ी को अकबर के सामने पटककर कंपित स्वर से)

रहै मुबारक यह मुबारकी शाहनशाहा।
बढ़े औज शब रोज़ तख्त का जहाँपनाहा॥
दुश्मन हों पामाल आपके आली जाहा।
रैयत हो दिलशाद दुआएँगो ऐ नरनाहा॥

इस गुलाम नाचीज की खता बख्श सब दीजिए।
रजा बख्श के अब हमें इज्जतबख्शा कीजिए॥

अकबर—(आश्चर्य और क्रोध के साथ खड़े होकर) इसके मानी क्या हैं? महाराज, हम लोग आज आपकी फतहयाबी पर कैसी खुशियाँ मना रहे हैं और आप ऐसे रंजीदः हो रहे हैं। फर्माइए तो किस नाकाम का काम आज पूरा होनेवाला है, किसने सिंह की गुफा में जान बूझकर हाथ डाला है?

कहिए तो दिल को आपके है किसने दुखाया।
खुद जान बूझ मर्ग को है किसने बुलाया॥
अकबर के तेग तेज को है किसने भुलाया।
नाम उसका हमे जल्द कहो बहरे खुदाया॥
उसको हम एक आन में पामाल करेंगे।
उसके लहू से तेग के दामन को भरेंगे॥

मानसिंह—खुदावंद, इस दुनिया मे सिवाय अभिमानी प्रतापसिंह के और कौन जन्मा है जो हुजूर के गजब से न डरता हो?

पृथ्वीराज—(मन मे) सच है, सिह का कान सिह ही खुजलाता है।

अकबर—(मानसिह को पगड़ी अपने हाथ से पहिराकर) क्या प्रतापसिह का दिल इतना बढ़ गया है कि उसने महाराज मानसिह का अपमान किया ? सच है, चींटे की जब मौत आती है उसे पर जम जाते हैं। फर्माइए तो हुआ क्या ?

मानसिह—खुदावद ! मैं दक्खिन से लौटने के वक्त उदयपुर के रास्ते आया। राणा ने बड़ी तैयारी के साथ मेहमानी की, मगर मेरी बेइज्जती की गरज से खाने मे खुद न शरीक होकर अपने कुँवर को भेज दिया और जब मैंने खुद आए बगैर खाने से इंकार किया तो बड़े तैश के साथ आकर बोले—जिसने अपनी बहिन मुसलमान के साथ ब्याही उसके साथ मैं कभी नही खा सकता। (क्रोध से आँखे लाल हो जाती हैं।)

पृथ्वीराज—(मन मे) धन्य प्रतापसिंह, धन्य ! तुम्हारे सिवाय और किसमे इतना जात्यभिमान है ?

अकबर—(क्रोध से काँपता हुआ) प्रताप की इतनी बडी जुरअत हो गई ? उसको इस बात का गर्रा है कि अब तक उसकी लडकी इस खांदान मे नही ली गई ! खैर (मुहब्बतखॉ की ओर) आप उदयपुर पर चढ़ाई का सामान बहुत जल्द करे, देखा जायगा प्रताप-सिह का कितना प्रताप है।

[एक चोबदार का प्रवेश]

चोबदार—(हाथ जोड़कर) खुदावंद ! दो परदेशी फर्यादी आए हैं, कहते हैं उन लोगों को उदयपुर के राणा ने लूट लिया है।

अकबर—हाजिर लाओ।

(चोबदार का जाना और एक जौहरी तथा एक पोर्तुगीज फिरंगी को साथ लेकर आना)

अकबर—तुम लोग कौन हो ?

पोर्तुगीज—खोडावंद, अम पोर्तुगीज हैं, अमारा नाम अगस्टाइन है। अमारा गोआ के गवर्नर ने अमको हजूर के लिये बहुत सा नजर लेकर भेजा ठा, राह मे उदयपुर के राजा ने अमको लूट लिया, बोला अमार सिवाय बाडशाह कौन है, यह नजर अमारा है।

जौहरी—(हाथ जोडकर) जहाँपनाह फिद्वी जौहरी है, बहुत से बेशकीमत जवाहिरात लेकर हुजूर को मुलाहिजा कराने के लिये आता था। मैं यह समझकर कि हुजूर के अहदेहुकूमत में किसकी मजाल है जो शाही रैयत पर आँख उठावेगा, बेखटके आ रहा था मगर रास्ते मे उदयपुर के राणा ने मेरा सब माल लूट लिया। हाय ! अब मैं क्या करूँ !

अकबर—तुम लोग घबराओ मत, अब उसका प्याला लबरेज हो गया, बहुत जल्द वह अपनी सजा पायगा और तुम लोगों की हालत पर भी खयाल किया जायगा। (मानसिंह से) महाराज, बिहतर होगा कि आप भी मुहब्बतखाँ के साथ तशरीफ ले जायँ और उस नाबकार को उसके किर्दार का मजा चखाएँ।

मानसिंह—जो हुक्म खुदावंदे आलम !

तब ही लौं सब दाप, जब लौं दीठ न तुव फिरी।
कह बापुरो प्रताप, कोपे अकबरशाह जब ॥

सब—आमीं आमीं।

[पटाक्षेप

चतुर्थ गर्भाक

स्थान—दिल्ली मे पृथ्वीराज का घर

[पृथ्वीराज, गुलाबसिंह और वीरसिंह आते है]

पृथ्वीराज—यहाँ का हाल तो तुमने छिपकर अपनी आँखो से देख ही लिया, अब तुरत उदयपुर जाओ और राणाजी को समाचार दो। यहाँ की फौज पहुँचो जानो। हमारी ओर से निवेदन करना कि सारे क्षत्रियों ने तो डुबा ही दी है, अब केवल मान मर्यादा आप ही के हाथ है, सो आप दृढ़ रहैं, कही से डिगै नही। श्री एकलिगजी की कृपा से अच्छा ही होगा। और यहाँ मैं आपका सेवक हुई हूँ, बराबर यहाँ के समाचार देता रहूँगा।

गुलाबसिंह—कुँअरजी, आप किसी बात की चिता न करे। प्रताप-सिह क्षत्रिय वश का नाम हँसने न देगे। उनके हाथ मे शस्त्र-ग्रहण की सामर्थ्य है। मैं अभी जाता हूँ, रात दिन चलकर पहुँचूँगा और आपका सदेसा ठीक समय से पहुँचाऊँगा, पर आप एक पत्र भी दें तो बहुत अच्छा हो।

पृथ्वीराज—अच्छा मैं पत्र लिख देता हूँ। तुम कही रुकना मत, सीधे चले जाना। (पत्र लिखता है)

वीरसिंह—भाई गुलाबसिह, तुम दर्बार से सिपारस करके मह-राज मानसिह की मेहमानदारी हमे दिला देना।

गुलाबसिंह—तुम क्या मिहमानी करोगे ?

वीरसिंह—अजी देख ही न लेना, (हाथ से दिखाकर) यह बड़े बड़े तो बारूद के लड्डू खिलाऊँगा और आबे खंजर का जल

पिलाऊँगा। जब पेट भर अघा जायगे खूब स्वच्छ चमकता हुआ तिलक करके हाथ मे नारियल देकर विदा करूंगा।

(सब लोग हँसते हैं)

गुलाबसिंह—तुम्हें दिल्लगी ही की सूझती है।

वीरसिंह—अच्छा न सही, तुम्हीं उनकी खातिरदारी करना। जिसमे दिल्लगी न हो सो करना।

पृथ्वीराज—(पत्र देकर) अब आप लोग बिना विलंब किए चले जायँ और खूब सावधान रहें।

(दोनों चलने को उद्यत होते हैं)

[नपथ्य मे गान]

जय जग जननि उदार, दनुज दलनि भवभय हरनि।
लै खप्पर तरवार, रच्छा निज जन की करहु॥

पृथ्वीराज—अहा! शकुन तो बहुत अच्छा मिला। मा! कब तक चुपचाप बैठी रहोगी? कब तक अपने संतानो की दुर्दशा देखती रहोगी? अब उठो, मौन साधने का समय नहीं है, (खड होकर) देवीजी की आरती का समय है। चलैं, हम भी प्रार्थना करें।

[प्रस्थान

पंचम गर्भांक

स्थान—दिल्ली, मुसलमानों की गोष्ठी

एक मुसलमान—यार हम लोगों को तो अब कोई पूछता ही नहीं, क्या करैं।

दूसरा—अजी पूछे कहाँ से—अपनी पौ बारह तो तब हो जब कुछ राग रंग हो, कुछ इधर उधर झाँक झूँक हो, सो यहाँ कोई ठिकाना ही नहीं।

तीसरा—कुछ पूछो मत, हमारे बादशाह सलामत तो ऐसे मुल्लाजी हैं कि कभी कोई फर्माइश ही नहीं करते। सिवाय अपनी बीबी के कभी इधर उधर की हवा ही नहीं खाते।

चौथा—अजी निरा मजदूरा है, यह क्या बादशाह होने काबिल है? रात दिन पीसना पीसा करता है, जब देखो हजरत काम मे मशगूल हैं—ऐश-आराम तो इसे ख्वाब मे भी नसीब नही।

पाँचवाँ—शहर की तवायफे तो बिल्कुल राँड हो गई। उन सभों की हालत पर तो रहम आता है, भाई मुझे तो एक दिन के लिये भी कही तख्त मिल जाय तो रग बाँध दूँ, उन बिचारियो के दु:ख दरिद्दर दूर कर दूँ और सारे शहर मे रज गज मचा दूँ।

पहला—अब वह दिन दूर गए, बैठे रोया करो, मुहर्रमी सूरत बनाए रहो, दर्बार मे तो कदम रखने का जी नही चाहता। जिन लोगो से जूते उठवाते थे अब वे सब दर्बार मे बड़े मंसब पाकर बढ़ बढकर बोलते हैं।

चौथा—(लबी साँस लेकर) भाई जान, कहे क्या, जब अपना ही सोना खोटा हो तो परखवइया का क्या क़ुसूर? अरे जब हजरत सलामत ही काफिर हो गए तो फिर ये सब क्यों न उभड़ें।

तीसरा—और लुत्फ तो यह है कि हम लोग लब भी नही हिला सकते। जरा बोले नही कि वह बेभाव की पड़ने लगे कि सिर खुजलाकर रह जाना पड़ता है।

(बी इलाहीजान का प्रवेश—सब उठ उठकर लबी चौडी आदाब अर्ज करते हैं)

इलाहीजान—(सबको सलाम का जवाब देकर) क्यों हजरत, क्या हम लोगो के नसीब के साथ आप लोगो का दिल भी फिर गया?

पहला—भला ऐसा कभी हो सकता है, जानेमन! हम लोगों की तो जिन्दगी तुम हो। तुमसे कभी दिल फिर सकता है? मगर करें क्या मजबूरी है, क्या मुँह लेकर आवे, न गिरह मे दाम है और न कहीं किसी उम्रा के यहाँ कुछ तार लगता है।

तीसरा—अजी इस मनहूस बादशाह ने तो शहर को बेरौनक कर डाला, और तुर्रा यह है कि आप तो आप, आपके मुसाहिबीन और वजरा भी जामय पारसाई पहिने हैं! अब हम लोग क्योंकर जीएँगे?

इलाहीजान—अब इसकी फिक्र कहाँ तक करोगे। अगर हम तुम सलामत रहेंगे, तो बहुतेरे गाँठ के पूरे आँख के अंधे फँसेंगे ही, मगर मुलाकात क्यों तर्क करते हो? मैं कभी कुछ कहती हूँ?

चौथा—तुम्हारे इसी सब्र का नतीजा तो है कि इसी मनहूस के वक्त मे एक मौका हाथ आया।

सब—(घबराकर) कौन मौका?

चौथा—(बड़ी शेखी के साथ) अजी हजरत आप लोग कुछ खबर भी रखते हैं, अलमस्त पड़े रहते हैं, बंदा रात दिन इसी फिराक में पड़ा रहता है, आपको क्या?

पहला—फर्माइए तो मुआमिला क्या है?

दूसरा—वल्लाह कहो तो सही क्या गुल खिलाया?

तीसरा—लिल्लाह अब देर न करो, जल्द जुबाँ खोलो।

पाँचवाँ—मीर साहेब, आप बड़े काबू हैं, आपकी क्या बात है। आपको सिर की कसम जल्द उकदःकुशाई कीजिए।

(चौथा सिर हिला हिला मोछों पर ताव देता हुआ
इधर उधर देखता है पर बोलता नहीं)

इलाहीजान—(मीर साहब का हाथ पकड़कर) वल्लाह ! जब से तुमने यह खुशखबरी दी कलेजा उमडा पडता है, खुदा के लिये जल्द फर्माइए क्या मौक हाथ आया।

मीर—खुदा की कसम इन सभो को तो मैं हर्गिज न बतलाता मगर तुम्हारी बात नही टाल सकता ! उदयपुर के राना ने राजा मानसिह से कुछ बेहूदगी की है इसलिये शाही फौज की उस पर चढाई होनेवाली है, बस अब यार लोगों की भी बन पड़ेगी, फौज के हमराह हम भी चलैंगे, मौक पाकर अपना काम बनाएँगे, लूट का माल तो ऐनुल माल ही ठहरा और फिर इधर उधर मौके से कोई घात लग गया तो उसमे भी कोई मुजायका नही। वहाँ से लौटकर आवेंगे तब फिर आपको हाजिरी देंगे और सारे दिनों की कसर निकालेगे।

(सबके सब मारे हर्ष के उछल पड़ते हैं और "खूब," "खूब" कह कहकर एक दूसरे से हाथ मिलाते और कहकहा मारते हैं)

इलाहीजान—(मन मे प्रसन्न होकर परंतु प्रकाश मे कातर स्वर से) नहीं, नहीं, लड़ाई मे बड़े खतरे रहते हैं। मैं तुम लोगों को न जाने दूँगी।

मीर—तुमने क्या हम लोगों को बेवकूफ समझा है। अरे हम लोग लड़ाई के वक्त टल रहते हैं और जब लूट का वक्त आता है तब सबसे आगे कूदते हैं।

इलाहीजान—और अगर शाही फौज ने शिकस्त खाई ?

मीर—तो हमारा नुकसान क्या ? उस्तुरा पास रखेंगे फौरन डाढ़ी मूँड़ जुनार पहिर हिंदू बन जायँगे।

इलाहीजान—अच्छा, तो आओ हम लोग खुदावंद तआला से कामयाबी के लिये दुआ माँगें।

(सब मिलकर गाते हैं)

मुरादें बर आएँ हमारी खुदाया।
हमेश: हो मतलब बरारी खुदाया॥
जहाँ में जहाँ तक गुजर हो हमारी।
बिछाए रहें जाल भारी खुदाया॥
बनाएँ निशाना जिसे वह न छूटे।
न हो वार खाली हमारा खुदाया॥
कोई मत का हीना औ पूरा गिरह का।
रहे करता खिदमतगुजारी खुदाया॥
ये बुड्ढ़े खबासों से दुनियाँ हो खाली।
हो नौउम्र जी अखतियारी खुदाया॥
गली कूचे घर घर में ऐशो तरब हो।
हमेश: रहे दौर जारी खुदाया॥
हो घर में मुयस्सर न रोटी व कपड़े।
मगर हो न कम मै खुमारी खुदाया॥

[पटाक्षेप

(इति चतुर्थ अंक)

पंचम अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—उदयपुर, देवीजी का मंदिर

(मालती पूजा कर रही है)

[नेपथ्य में गान]

जय जग जननि हरनि भवभय-दुख भक्ति मुक्ति सुख कारिनि।
असुर निकंदिनि सुर नर बंदिनि जय जय विश्व बिहारिनि॥

जब जब भीर परत भक्तन पै तब तब निज वपु धारी।
असुर सँहारत भक्त उबारत आरत हृदय विचारी॥
तुव पद बल हम गिनत न काहू चरित उदार तुमारे।
अब जिनि बिलम करहु जगजननी मेटहु दुःख हमारे॥ १॥

मालती—माँ!

"मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सबही के॥"

मैंने कठिन व्रत धारण किया है। माँ! ऐसी सुमति देना जिससे मन न डिगने पावे। एक ओर प्रेम और दूसरी ओर धर्म है; जननी! इसका निबाह मेरी सामर्थ्य से बाहर है, केवल तुम्हारी कृपा साध्य है। इस तुच्छ हृदय को इसके सहने का बल प्रदान करो—गुलाबसिंह का उद्योग सफल हो। जगतजननि! उनकी सफलता के साथ तुम्हारे संतानो की भी सफलता है, अतएव इधर ध्यान दीजिए। माँ! अशरणशरणि! त्राहि!

(गद्गद कंठ से प्रणाम करती है, सखियाँ आरती लिए आती हैं, मालती आरती करती है, सभों का एक साथ गाना)

राग रामकली

"जय जय जगजननि देवि, सुर नर मुनि असुर सेवि,
भक्ति मुक्ति दायिनि, भय हरनि कालिका।
मंगल मुद सिद्धि सदनि, पर्व शर्वरीश बदनि,
ताप तिमिर तरुण तरणि, किरण मालिका॥
वर्म्म चर्म कर कृपाण, शूल सैल धनुष बाण,
धरणि दलनि दानव दल रण करालिका।
पूतना पिशाच प्रेत, डाकिनि शाकिनि समेत,
भूत ग्रह वेताल खग, मृगाल जालिका

जय महेश भामिनी, अनेक रूप नामिनी,
समस्त लोक स्वामिनी, हिम शैल बालिका।
भारत आरत अनाथ, दीजै सिर अभय हाथ,
जय जय जगदंब पाहि, प्रणत पालिका॥

(मंदिर में प्रकाश हो जाता है और देवीजी के कंठ
से माला खसककर गिरती है)

सखियाँ—ले सखी! तुझे बधाई है, माँ ने प्रसन्न होकर तुझे प्रसाद दिया है।

(मालती माला उठा सिर चढ़ाती है, धीरे धीरे परदा गिरता है)

द्वितीय गर्भांक

स्थान—उदयपुर, राणा का दर्बार

(राणा और सरदारगण यथा यथा स्थान बैठे हैं,
गुलाबसिंह राणा के सामने खड़ा है)

गुलाबसिंह—हुकुम अन्नदाता! बीकानेर कुँवर पृथ्वीराज श्रीदर्बार के बड़े शुभचिंतक हैं। उन्होंने यह पत्र दिया है। (पत्र देता है)

राणा—(पत्र मंत्री को देकर) मंत्री! इसे पढ़ो।

(मंत्री पढ़ता है)

स्वस्ति श्री हिंदू कुल गौरव मान बढ़ावन।
वीरनाद हुंकारि शत्रुदल हृदय कँपावन॥
रविकुलरवि सिसौदिया ध्वज जग में फहरावन।
श्री प्रताप राणा प्रताप जग मैं फैलावन॥
पृथ्वीराज तुव दास अनेकन करत प्रणामा।
इतै कुशल उत ईश सँवारैं सब तुव कामा॥

सुनिए इत की कथा मान—उतते जब आए ।
बरनत निज अपमान रोष बेहद्द बढ़ाए ॥
ताही समय और फरियादिहु आनि पुकारे ।
लूट्यो शाही भेंट कह्यो—कह शाह बिचारे ॥
बादशाह भए आग बबूला यह सब सुनतहि ।
मान मुहब्बतखानहि आज्ञा दीनी तुरतहि ॥
एक लाख लै सैन तुरत राना पै धाओ ।
उदयपूर करि चूर सकल गढ़ धूर मिलाओ ॥
थापि आपनी थाप दाप परताप मिटाओ ।
करि बंदी तेहि तुरत आज दर्बार पठाओ ॥
सुनि आज्ञा फरमान किए सेना पर जारी ।
मान, मुहब्बतखान कूच की करत तयारी ॥
पहुँचे ममुझौ तिन्हे सदा रखियो हुसियारी ।
परम प्रबल अरि दलन, दलन की करो तयारी ॥
हम सबनै तो राजपूत को नाम डुबायो ।
अबलौं तुमहीं एक मान मरजाद बचायो ॥
पितर खरे आकाश-मार्ग-तुम्हरो मुख जोवत ।
इक तुम्हरी ही आस वीर छत्री सब सोअत ॥
जब लौं तन मैं रहै प्राण तब लौं जिनि डगियो ।
हे प्रताप भारत प्रताप सुधि जिय मैं पगियो ॥
ह्याँ के सब संवाद भेजियौं तुम्हे बराबर ।
ह्वाँ निज जय की खबर हमे दीजौ किरपा कर ॥
तुव प्रताप राणा प्रताप सब पूरि रहै छिति ।
विजय लच्छमी तुम्हैं मिलै नित किम् अधिकम् इति ॥

राणा—(आवेश के साथ) आवै , आवैं , हम सदा उनके

लिये तैयार हैं, वे आवैं तो सही, (सर्दारों के प्रति) हमारे वीर सर्दारो !

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदाहीं।
जागत ही सब रहैं रैन हूँ सोवैं नाहीं॥
कसे रहे कटि रात दिवस सब वीर हमारे।
अस्व पीठ सों होहि चारजामे जिनि न्यारे॥
तोड़ा सुलगत रहैं चढे घोडा बंदूकन।
रहैं खुली ही म्यान प्रतंचे नहि उतरैं छन॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर जवन बहादुर।
आवहि तो सनमुख चढ़ि कायर क्रूर सबै जुर॥
दैहैं रन को स्वाद तुरतहि तिनहि चखाई।
जोपै इक छन हू सनमुख है करहिं लराई॥

(धीरे धीरे परदा गिरता है)

तृतीय गर्भांक

स्थान—अजमेर, शाही फौज का खेमा

(शाहजादा सलीम, * मानसिंह और मुहब्बत खाँ तथा और सेनापतिगण)

मानसिंह—(शाहजादे से) हम लोग दौड़ा दौड़ तो यहाँ तक पहुँचे, अब हुजूर का क्या कस्द है ?

सलीम—मेरी राय है कि अब यहाँ दो चार दिन आराम करके तब आगे बढ़ा जाय।

---

* टाड साहब ने अपने राजस्थान में उदयपुर की लड़ाई में शाहजाद: सलीम का जाना लिखा है, परन्तु अब यह निश्चय हो गया कि शाहजाद उस समय बहुत ही छोटा था और वह इस लड़ाई में नहीं भेजा गया था।

मुहब्बतखाँ—खुदावंद ! ताबेदार की राय नाकिस मे अब एक लहज: भी तवक्कुफ करना मुनासिब नहीं, क्योंकि अगर दुश्मनो को जरा भी खबर हो जायगी तो फिर फतहयाबी मुश्किल हो जायगी, एकाएक जा गिरना चाहिए।

मानसिंह—खबर की आप क्या कहते हैं ? प्रतापसिंह कोई मामूली आदमी नही है। उसने जब सोते सिंह को छेड़ा है तब पहले ही से बचने का भी उपाय किया ही होगा। जिस वक्त उसके यहाँ से हम बिदा हुए उसी समय उसका दूत भी दिल्ली खबर लेने छूटा होगा, अब जितनी ही देर होगी उतना ही वह तैयार हो सकेगा।

सलीम—खबर ही होकर क्या होगी ? क्या उसकी फौज हमसे जियाद: है ?

मानसिंह—शाहजादे सलामत ! आपको कभी इनसे काम पड़ा होता तो हर्गिज ऐसा न फर्माते। उसकी फौज हम लोगो की चौथाई भी न होगी मगर एक राजपूत दस आदमियों के लिये काफी है—तिस पर मेवाड़ के राजपूत तो गजब के बहादुर होते हैं। जरा चित्तौर के जंग का हाल खाँ साहब से पूछें तब कैफियत मालूम होगी।

मुहब्बतखाँ—इसमे कोई शुबह नहीं—अगर वे लोग पहले से खबरदार हो जायँगे हर्गिज फतह नसीब न होगी, चित्तौर पर बडी ही मुश्किलों से फतह नसीब हुई थी वह भी घर की फूट से।

सलीम—तो बिस्मिल्लाह कीजिए—सलीम आरामतलब नही है। आप लोग मेरी तरफ से इतमीनान रखें। मैं तो महज आप लोगो के आराम के खयाल से कहता था—मगर महाराज मानसिंह ! अगरचि राजपूत बड़े बहादुर हैं—मगर मुगल भी कोई ऐसे वैसे नही हैं। राजपूतों को घर बैठे लड़ना था मगर मुगलों ने तो हजारों कोस से आकर हिंद को फतह किया था। सलीम ने भी

कमजोर हाथ से तलवार नहीं पकड़ी है और फिर हमारे साथ तो राजपूतकुलतिलक महाराज मानसिंह हैं।

मानसिंह—यह कौन कहता है कि मुगल बहादुर नहीं हैं। मगर खुदावंद—अगर घर में नफाक न होता तो जरा हिंद को फतह करना मुश्किल था, खैर—मेरी गरज सिर्फ यह है कि देर करने में बजुज नुकसान के कोई फायदा नहीं।

सलीम—बेशक—तो आज ही कूच करना चाहिए।

मानसिंह—(सेनापतियों के प्रति) बादशाह सलामत ने आप ही लोगों के भरोसे इस जंग को छेड़ा है और अपने लख्ते जिगर शाहजाद: सलीम का साथ दिया है। आप लोग ऐसी मुस्तैदी और बहादुरी के साथ उदयपुर पर धावा करें कि चलते ही दुश्मनों को हटा दें।

एक सेनापति—हुजूर! इसकी कैफियत मैदान जंग में मालूम होगा, हम लोग तो जानिसार हैं। मगर मेरी अक्ल नाकिस में इधर से कोई शख्स ऐसा जाना चाहिए कि जो वहाँ की भीतरी खबर भी ले और अगर मुमकिन हो तो उनमें से कुछ चीद: सरदारों को अपनी तरफ मिलावे।

मुहब्बतखाँ—खूब खूब तुमने यह खूब सोचा, मगर इस वक्त इस काम के लिये तुमसे बढ़कर और कौन है?

सेनापति—(मन में) "जो बोले सो घी को जाय" (प्रकाश) हालाँ कि फिद्वी किसी काबिल नहीं, मगर तामील इर्शाद फर्ज समझ कर रजा चाहता है।

सलीम—शाबाश, आपही सा जवाँमर्द मुस्तैद शख्स तो ऐसा काम अंजाम दे सकता है, अच्छा अब आप अल्लाहो अकबर का नाम लेकर कूच कीजिए। (सेनापति को पान देता है और वह सलाम करके जाता है।)

मानसिंह— (सेनापतियों के प्रति)

चलो चलो सब वीर बहादुर कमर कसो अब ।
दिल्लीपति सेवा को अवसर फिर पैहो कब ॥
निज प्रताप बल तुच्छ प्रताप प्रताप मिटाओ ।
थापि आपनी थाप ताप निज अरिहि तपाओ ॥
चढि शिखर उदयपुर महल के शाही ध्वज फहरावहो ।
जय नाद जु अकबर शाह की चारो ओर मचावहो ॥

सब—आमी-आमी-आमी ।

[पटाक्षेप

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—उदयपुर, अंतःपुर

(महाराणा और महारानी)

प्रतापसिंह—मानसिंह ने जो कुछ किया वह तुमने सुना ही ।

महारानी—महाराज ! मानसिंह का कौन दोष है ? आपने जो सलूक उनके साथ किया उसके बदले वह और करते ही क्या ?

प्रताप—प्रिये ! तुम प्रतापसिंह की स्त्री होकर ऐसी बात कहती हो ? मानसिंह को अपनी करतूत पर लज्जित होकर घर बैठना था, या एक अनुचित काम करके उसे ढाकने के लिये दूसरा घोरतर अनुचित काम करना था ? जब मान ही नहीं तो फिर मानसिंह क्या ? चाहे हम लोगो का हिंदू धर्म भला हो या बुरा परंतु जब तक हम हिंदू धर्म अवलंबन किए हैं उसके नियमों का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। जहाँ हमारे धर्मानुसार हिंदुओ ही मे एक जाति दूसरी जाति का बनाया अन्न नही खाती, वहाँ विधर्मी मुसलमानों

को बेटी देना क्या कम लज्जा और घृणा की बात है? और फिर यदि उसने किसी कारण से ऐसा काम कर भी डाला था तो चुपचाप लज्जित होकर उसके लिये पश्चात्ताप करना उचित था, या यह कि और भी बचे बचाए लोगों का धर्मनाश करना? दो चार लड़ाइयों को जीतकर उसका मन बहुत ही बढ़ रहा था इसलिये मैं ऐसा न करता तो और क्या करता? यदि वह यहाँ से भी अपने घृणास्पद काम के लिये कुछ शिक्षा न पाता तो संसार में और कहाँ पाता? यह अधर्म भी तब धर्म ही समझा जाता, क्योंकि इस गद्दी की बड़ाई केवल हिंदू गौरवरक्षा के कारण है। यदि हम ऐसा न करते तो इस कुल को कलंकित करते, दूसरे यह कि उसे इस बात का बड़ा अभिमान होता कि राणा मेरे भय से दब गया और उसने मेरे धर्म पर ढाकन डाल दिया, इसलिये, प्यारी! मरना अच्छा—राज्यासन छोड़कर बन बन घूमना अच्छा, परंतु अपयश और अधर्म का भागी होना नहीं अच्छा।

तरु छाया आसन सिला भीलन संग निवास।
परम सुखद पै धर्म तजि रुचत न राज बिलास॥

रानी—नाथ! हमारा अपराध क्षमा कीजिए, हम स्त्री जाति कहाँ तक समझ सकती हैं। हमारे लिये तो यह भाग्य की बात है कि आपकी सेवा का अधिक अवसर मिलेगा।

जल भरि सब थल स्वच्छ करि नाना पाक बनाय।
बड़ भागिनि जीवन करूँ अमित पलोटौं पाय॥

प्रतापसिंह—शाबाश! यह बात तुम्हीं को शोभा देती है। भला, मानसिंह, भला, तुमने जो किया अच्छा किया। इसका प्रतिफल तुम्हें दिए बिना विश्राम नहीं लेने का।

जबलौं नहिं गढ़ ढाहि करि दासिन कौड़िन बेच ।
करौ न दच्छिण कर असन सेज न पगिया पेच ॥*

यह किवदती प्रसिद्ध है कि महाराणा प्रतापसिंह ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जयपुर का गढ अपने हाथ से ढहाकर दासियो को कौड़ी के मोल न बेचलूँगा न शय्या पर शयन करूँगा, न सिर पर पाग रखूँगा और न दाहिने हाथ से भोजन करूँगा। इस प्रतिज्ञा का पालन उस वंशवाले बराबर करते आते थे। जयपुर के महाराज रामसिंह ने सोचा कि क्षत्रियो की प्रतिज्ञा महा भयानक होती है, एक न एक दिन परिणाम बुरा होगा। इसलिये सन् १८७७ ईसवी मे जब श्रीमती भारतेश्वरी के प्रिय युवराज प्रिंस आफ वेल्स भारत मे आए थे उस समय महाराणा सज्जनसिंह और महाराज रामसिंह उनसे भेट करने बबई गए थे, तब महाराज रामसिंह आग्रहपूर्वक महाराणा साहिब को जयपुर ले गए। ज्योंही किले के दरवाजे पर पहुँचे तोप मे गोला भरा तैयार था। महाराज रामसिंह ने महाराणा साहिब से बहुत आग्रह करके उसे उनके हाथ से दगवाकर गढ के दो चार कनगूरे ढहवा दिए और दो चार गोपियो (दासियो) को अपने ही मुसाहिबो के हाथ कौड़ियो मोल बिकवा दिया। इस भाँति उनकी प्रतिज्ञा पूरी कराके उन्हे शय्या पर सुलाया और आप पगड़ी पहराई। यह किंवदती कहा तक ठीक है इसका निर्णय करने के लिये मैंने अपने मित्र कुँवर जोधसिंह (उदयपुर राज्य के सुयोग्य दीवान राय पन्नालाल बहादुर सी० आई० ई० के भ्रातुष्पुत्र) को लिखा था। उन्होने जो उत्तर दिया है अविकल प्रकाशित किया जाता है। पाठकगण इससे इसकी अलीकता समझ सकेंगे।

"प्रताप नाटक" आपने पद्मावती से भी अच्छा लिखा है। आपने जो प्रतापसिंह की जयपुर के लिये प्रतिज्ञा पूछी यह इधर प्रसिद्ध नहीं है और न मैंने भी किसी इतिहास मे पढ़ी। श्री महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदासजी निर्मित "वीरविनोद" नामक बृहत् इतिहास मे महाराणा प्रतापसिंहजी के प्रकरण मे इन प्रतिज्ञाओं का जिक्र नहीं है। यह बात भी निर्मूल है कि रामसिंहजी ने महाराणा सज्जनसिंह से कोई प्रतिज्ञा पूरी करवाई थी। न जाने ऐसी निर्मूल गप्पे क्यो लोक में प्रसिद्ध हो जाती है। आपने टाड राजस्थान या मेरे ही छोटे इतिहास में पढ़ा होगा कि महाराणा अमरसिंह जी द्वितीय ने

| नेपथ्य में |

आलस निसि भइ भोर, उदय होत रविकुल तरनि ।
भागहु कायर चोर, अब विलंब नहिं नास मैं ॥

ही जयपुर के महाराज सवाई जयसिंहजी को निज कन्या ब्याह दी थी और जयपुर से एक घर का सा व्यवहार हो गया था। व उनके उपरांत जयसिंह के पश्चात सवाई माधोसिंहजी उनके पुत्र और मेवाड़ के भानजे थे, गद्दी पर बैठे।

हां जयपुर से संबंध रखनेवाली श्री प्रतापसिंहजी के समय में कुँवर मान-सिंह और भगवानदास का अलहदा अलहदा तौर से श्रीजी के पास आना व हलदीघाटी की लड़ाई प्रसिद्ध घटना हुई थी। इसके सिवाय और भी कई घटनाएं श्री प्रतापसिंहजी के समय की प्रसिद्ध हैं और इतिहास में भी कई सन्निवेशित की गई हैं वे कहां तक लिखी जायँ पर उनमें भी जयपुर से संबंध रखनेवाली तो दो ही हैं।

आप अपने नाटक को सुखांत करोगे या दु:खांत ? क्योंकि उनके पिछले आठ वर्षों में अकबर ने फिर मेवाड़ पर चढ़ाई न की थी और उनके पुत्र अमर-सिंहजी के समय में अकबर के बाद तो जहांगीर ने ही अमरसिंहजी पर आप अजमेर में रहकर सेना भेजी थी। यदि दुःखांत करोगे तो प्रतापसिंहजी के परलोकवास की घटना के सिवाय कोई दुःखदायक वार्ता नहीं हुई। उनके पर-लोक करते समय का पश्चात्ताप तथा उपदेश बड़े वीरता के शब्दों से भरे थे।

आज मेरे पत्र में जिन वीर पुरुषों का विशेष हाल है उन्हीं के लिये यहां जो दोहे प्रसिद्ध हैं उन्हें लिखता हूँ और अंत में एक श्लोक भी लिखता हूँ जो प्रतापसिंहजी की खोदित लिपि में मिला है जिसमें हलदीघाटी की लड़ाई का वृत्तांत है। यदि उचित समझें तो इन दोहों को नाटक के टाइटल पर छपवा देवें।

सोरठा

अकबर समद अथाह । सूरायण भरियो सजल ॥
मेवाड़ी तिण माह । पायण फूल प्रताप सी ॥
अकबर घोर अँधार । ऊबाणो हिंदू अवर ॥
जागे जग दातार । पीहरे राण प्रताप सी ॥

प्रतापसिंह—प्रिये, अब बिदा करो, देखो कविराजा जी युद्ध आरंभ करने की सूचना दे रहे हैं।

रानी—(सहास्य) नाथ, आप सुख से पधारें परंतु दासी को भूल न जाइएगा।

(राजकुमार एक छोटी सी तलवार लिए दौडते हुए आते हैं)

राजकुमार—(तलवार खोलकर) मा ! हम बादशाह के बेते का छिल इछी तलवार छे कात कल खेलने का गेद बनावैंगे हमे भी दलबाल के छाथ जाने का हुकुम देव।

रानी—वत्स ! तुम अवश्य जाओ—पर लूट मे जो गहना लाना वह हमी को देना।

राजकुमार—हॉ हॉ, छब तुमको देगे पल छिलपेच औल कलँगी तो हमही पहिलैंगे।

(सब लोग हँसते हैं)

[नेपथ्य मे महाराज प्रतापसिंह की जय का कोलाहल होता है]

प्रतापसिंह—(खड़े होकर) सेना लड़ने के लिये बड़ी उत्सुक हो रही है। प्रिये ! अब जाता हूँ—देखें इस जन्म मे फिर तुम्हारा चंद्रानन देखने मे आता है कि नहीं।

अकबर एकण बार। दागल की सारी दुनी॥
बिन दागल असवार। एकज राण प्रताप सी॥

श्लोक

कृत्वा करे खङ्गलता सुवल्लभा प्रतापसिंहे समुपागते प्रगे।
सा खंडिता मानवती द्विषच्चमू सकोचयंती चरणौ पराङ्मुखी॥

ऐतिहासिक गलती

यह बात निश्चित रूप से प्रसिद्ध हुई है कि हलदीघाटी की लड़ाई मे अकबर स्वयं मौजूद न था और न उसका शाहजादा। पर मानसिंह था और उसके संग शाही सैनिक अफसर भी थे।

रानी—नाथ ! हमारा आपका साथ क्या कभी छूट सकता है ? भगवान् श्री एकलिंगजी बहुत ही शीघ्र विजयलक्ष्मी देंगे।

प्रतापसिंह—तथास्तु।

(प्रतापसिंह नंगी तलवार लिए आगे आगे, राजकुमार छोटी नंगी तलवार लिए पीछे पीछे मुड़ मुड़कर प्रेमपूर्वक रानी की ओर देखते हुए जाते हैं—रानी अतृप्त नेत्रों से देखती है)

[पटाक्षेप

पंचम गर्भांक

स्थान—उदयपुर, मैदान

(महाराणा की सेना, घोड़े पर महाराणा, सरदारगण तथा कविराजा)

कविराजा—

उमड़ी क्यों सुरबाला सब नभ मंडल माहीं।
ह्वै व्याकुल क्यों लरत करन जयमाला सोहीं॥
कटकटाइ क्यों अरी जोगिनी धावत उत इत।
गिद्धराज मँडरात व्यर्थ ही कलह करत कित॥
धरि धीर बैठि देखत न किन सबकी आशा पूरिहै।
जब वीर प्रताप कृपाण लै शत्रुन के तन धूरिहै॥
कहा कहत ? मम प्यास राम रावण रण माहीं।
कौरव पांडव लरे बुझी तब हूँ वह नाहीं॥
ताहि बुझावनहार कौन जग में है जायो।
हाय ! न कोऊ अब लौं मेरो हृदय जुड़ायो॥
चुप लखत न क्यों रे बावरे छिन ही मैं घबराइहै।
जब बाण गंग इत उमड़िहै तो पै पियो न जाइहै॥

अहो वीर क्यों करत विलम अवसर क्यों खोवत।
क्यों न शत्रु सिर गिरत बाट अब काकी जोवत॥
देखौ नभ मे पुरुषे तुव गति की गति जोहत।
हिय उछाह आनंदित मुख आतुरता सोहत॥
करि सिहनाद हरि शत्रु हिय अपुने पॉव बढाइयै।
जय जयति मिवार प्रताप जय कहि अरि हृदय कँपाइयै॥

(महाराणा प्रतापसिह की जय, मेवार की जय आदि कोला-
हल करते उत्साह के साथ सेना का नेपथ्य मे गमन
और दूसरी ओर से गुलाबसिह का प्रवेश)

गुलाब०—प्रेम! तेरा इतना बड़ा साहस कि तू पाषाणवत् कठोर वीर हृदय पर भी अपना अधिकार जमा लेता है? अरे जिस गुलाब-सिंह ने कभी स्वप्न मे भी शत्रु से पीछा न दिया होगा आज तैंने उसे डोर मे बाँधकर अपना बंदी बना लिया? किधर से आया, कब आया और कैसे इस दृढ़ हृदयगढ़ मे समाया कुछ जान भी न पड़ा कि भला मैं कुछ तो अपने जी की निकाल लेता, तुझे कुछ तो दिखला देता कि वीर हृदय पर चढ़ाई करने का फल क्या होता है? पर हाय! मैं अब क्या कर सकता हूँ, अब तो तेरे फंदे मे फँस गया, हिल तो सकतो ही नहीं वीरता क्या दिखलाऊँ! हाय! देशभक्त वीर क्षत्रिय लोग वह देखो रणभूमि मे पहुँच गए और मैं अभी यही खडा हूँ! कुछ चिंता नही। भाइयो! मैं भी पहुँचा। गुलाबसिह पीछे रहनेवाला नही है। तुम्हारा साथ देगा, अब मुझे प्राण विसर्जन करने मे तनिक भी आगा पीछा नही है। मैं अपनी प्रेम-पुत्तलिका से अंतिम बिदाई ले आया। अब उसके कोमल मुखकमल का ध्यान करते करते मैं निःसंकोच अपनी मातृभूमि के लिये प्राण खो सकूँगा। (कुछ ठहरकर इधर उधर टहलते हुए) प्राण!

क्यों घबराते हो! क्यों, शत्रुहीन पृथ्वी करने के लिये व्याकुल हो रहे हो? पृथ्वी मे कौन है जो तुम्हारी चोट को सम्हाल सकेगा? जब तुम अकेले थे तब तो कोई तुम्हारा सामना कर ही नहीं सकता था और अब? अब तुम्हारे साथ प्रेम के रहते कौन है जो तुम्हे जीत सके? अब तो "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि"। प्यारी मालती! देखो अपनी प्रतिज्ञा स्मरण रखना। देखो अभी तुम्हारा गुलाबसिंह तुम्हारी आज्ञा-पालन करके आता है। अभी अपनी असीम साहसाग्नि में शत्रुदल भस्म कर तुम्हारा हृदयराज्य अधिकार करेगा अथवा तुम्हारे प्रेममय मुख का ध्यान करता करता अनंत सुखधाम की ओर प्रस्थान करेगा। पर याद रखना तुम्हारा चातक कभी दूसरे जल से तृप्त न होगा; तुम भी कृपा कर उसकी सुध न भुला देना।

[नेपथ्य में कोलाहल]

(चौंककर) जान पड़ता है लड़ाई आरंभ हो गई। तो मैं भी पहुँचा—(उन्मत्त की भाँति वीरदर्प के साथ जाता है।)

षष्ठ गर्भांक

स्थान—एक पहाड़ी बरसाती नदी का किनारा

(नदी के एक किनारे पर चेतक घोड़े पर सवार प्रतापसिंह और पीछे पीछे घोड़े पर सवार सक्ता जी, दूसरी ओर दो मुगल सर्दार मुमूर्षु अवस्था मे भूमि पर पड़े छटपटा रहे हैं)

सक्ताजी—(राणा को ललकारकर) ओ नीले घोड़े के सवार!

राणा—(पीछे फिरकर सक्ताजी को देख घोड़े को रोककर मन ही मन) आह! यह क्या, सक्ता इस समय अपना बैर चुकाने आया है? अच्छा कुछ चिन्ता नहीं। उन नीच यवनों के हाथ

से मरने की अपेक्षा पवित्र सिसोदिया-कुल के हाथ से वीर-गति पाना सहस्र गुण श्रेय है। (प्रकाश ललकारकर) रे क्षत्रिय कुलकलंक! आ हम तेरी प्रतिहिंसा वृत्ति चरितार्थ करने के लिये प्रस्तुत हैं।

सक्ताजी—(घोड़े से कूदकर राणा के पैर पकड़कर) भैया प्रताप, वाक्यबाणों से हमारा हृदय मत बेधो। बहुत हुई, हम प्रतिहिंसा लेने नहीं आए हैं, हम अपराध-मार्जन कराने आए हैं। भाई प्रताप एक बेर हृदय से कहो—सक्ता, हमने तेरा घोर अपराध क्षमा किया।

राणा (सक्ता का हाथ थामकर साश्रुनयन) भाई सक्ता, प्यारे भाई, हमने तुम्हारे अपराधों को क्षमा किया। क्या तुम भी हमारे अनुचित बर्तावों को अपने हृदय से भुला दोगे ?

सक्ता—(रोते रोते) भैया, भैया, अब कुछ न कहो, अब नहीं सही जाती, हाय जिसने तुम्हारे जैसे वीर, देशहितैषी, उदार और प्रेम-पूरितहृदय भाई के साथ शत्रुता की, क्या उससे बढ़कर नीच कोई संसार में हो सकता है उसके साथ जो बर्ताव किए जायँ थोड़े हैं।

राणा—(आँखों को पोछकर—बात फेरकर) हाँ यह तो बतलाओ तुम यहाँ इस कुसमय मे कैसे आ गए ?

सक्ता—(आँखे पोछते पोंछते) जब हमने देखा कि रणक्षेत्र से तुम इस ओर बढे और इन दोनों नीच अन्यायी यवनो ने तुम्हारा पीछा किया, हमसे न रहा गया। न जाने कैसा भ्रातृस्नेह हृदय में उमड़ा कि हमसे रुक न सका, हम भी पीछे हो लिए। जब तुम्हारा प्यारा चेतक तुम्हें लेकर तीर की भाँति नदी पार हो गया और वे दोनों नीच नदी हलने मे हिचकिचाए हमने उन दोनो पर हमला किया और भैया प्रताप तुम्हारे चरणों के प्रताप से दोनो को मार गिराया, देखो वे दोनों पड़े छटपटा रहे हैं।

राणा—धन्य भाई सक्ता धन्य, भाई मिलै तो तुम सा। अहा! सच कहा है "मिलै न जगत सहोदर भ्राता।" आओ तुम्हें छाती से लगा हृदय शीतल करूँ। (राणा ज्योंही रिकाब से पैर निकालते हैं चेतक पृथ्वी पर गिरता और छटपटाता है)

राणा—(व्याकुल होकर) अरे यह क्या ? अरे मेरे बहादुर प्राणदाता चेतक, हाय, क्या तू मुझे यहाँ अकेला ही छोड़कर भागना चाहता है ?

(दोनों भाई दौड़कर चेतक की जीन आदि काट देते हैं। राणा दौड़कर नदी से अपनी पगड़ी भिगाकर जल लाते और चेतक के मुख मे चुलाते हैं। सक्ताजी अपने डुपट्टे से हवा करते हैं। चेतक हाँफता और एकटक राणा की ओर देखता आँसू बहाता है)

राणा—(चेतक के मुख को गोद मे लेकर मुख चूमकर स्नेह के साथ हाथ फेरते हुए) प्यारे घोड़े, मेरा विपत्तिसहचर चेतक, तू ऐसा क्यों कर रहा है? अरे तू यहाँ मुझे किस के भरोसे छोड़ जाता है? (आँखों से आँसू बहते हैं, चेतक जरा सा मुँह उठाकर धीमे शब्द से हिनहिनाता राणा की ओर देखता प्राणत्याग करता है, आँख खुली ही रह जाती है।)

प्रतापसिंह—(अत्यंत करुण स्वर से)

विपति सँघाती धीर, स्वामिभक्त साँचो सुहृद।
चल्यो होइ बेपीर, रे चेतक परताप तजि॥
सहे अनेकन घाय, चढ़ि सलोम गज सीस पै।
पीछो दियो न पाय, अब क्यों भाजत मोहिं तजि॥
रतन अमोलक तौल, सहस गुनो जो वारिए।
तौहू लहै न मोल, रे चेतक तुव सामुहै॥

करिके ऋनिया मोहि, हा हा चेतक चलि बस्यो।
सहि नहि सकत बिछोह, अब जीवन लागत वृथा॥

सक्ताजी—(सांत्वना देकर) भैया, तुम धीर वीर होकर ऐसे अधीर होते हो ? चेतक ने अपना काम किया, प्राण दिया पर अपने कर्तव्य से विमुख न हुआ और क्या प्रतापसिंह आज मोह के वशीभूत होकर निज कर्तव्य को भूल रहे हैं ? सारी हिंदू जाति इस समय एक तुम्हारा मुख देख रही है—उठो देर न करो। मेरे इस घोड़े पर चढ़कर किसी सुरक्षित स्थान पर जाकर अपने इन घावों की दवा करो, मेरे लिये कुछ चिंता न करना, मैं उन दोनों मुगलों के घोड़ों मे से एक को लेकर अभी मुगल शिविर मे जाकर उनकी खबर लेता हूँ।

(प्रताप के उत्तर की प्रतीक्षा न करके सक्ता का तीर की भाँति प्रस्थान और प्रतापसिंह का भौंचक से होकर इधर उधर देखते रह जाना)

[पटाक्षेप

(इति पंचम अंक)

षष्ठ अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—दिल्ली—शाही महल

(अकबर और पृथ्वीराज)

अकबर—अब तक उदयपुर की कोई खबर न मिली, तबीयत निहायत परेशान है।

पृथ्वीराज—हुजूर, राणा प्रतापसिंह को परास्त करना कोई हँसी खेल नहीं है। फौज इसी तरद्दुद मे होगी, इसी से कोई खबर

नहीं आई। पर मेरी समझ में ऐसे खतरे की जगह शाहजादा सलीम को भेजना कुछ अच्छा नहीं हुआ।

अकबर—राजा साहब, यह आप क्या फर्माते हैं? अकबर ऐसा बुजदिल नहीं है जो बमुकाबिल जंग अपनी या अपने औलाद की जान को अजीज समझे—अगर मैदान जंग में बहादुरी के साथ मेरा फर्जन्द काम आवै तो मैं समझूँगा कि वह अपने हक को अदा कर गया और अपने तई उसका वालिद होना फख्र मानूँगा। देखिए बचपन से मैंने जिस कदर तकलीफें उठाई और जैसे खतरों में अपने तई डाला अगर उनसे खौफ खाता तो हर्गिज आज यह दिन नसीब न होता।

[नेपथ्य में]

जय प्रताप तुव शाह विजयलक्ष्मी चेरी सी।
हाथ बाँधि मनु करत रहत चहुँ दिसि फेरी सी॥
जो हतभागी परत आइ तुव कोप-ज्वाल मैं।
भस्म होत छिन माहि पिसत सौ काल गाल मैं॥
मेवार छार जयहार लै फतेह मुबारक मुख कहत।
युवराज सलीम उमंग सों तुव पद चूमन अब चहत॥

पृथ्वीराज—(मन में) देता तो है बादशाह को विजय की मुबारिकबादी, परंतु पहले ही मुख से "जय प्रताप" निकला। मा दुर्गे, तेरी शरण—

[शाहजादा सलीम का प्रवेश]

सलीम—(बादशाह के पैरों पर गिरता है और बादशाह उठाकर छाती से लगाता है) जहाँपनाह को आज फतहेहिंद मुबारक हो।

अकबर—(फिर सलीम को छाती से लगाकर) जिसे तुम्हारा सा फर्जन्द खुदावंद तआला ने दिया हो उसके लिये ऐसी ऐसी

फतहयाबी क्या हकीकत है ? मगर यह तो कहो आज फतहेहिंद के क्या मानी ? क्या अब तक हिंद फतेह होने को बाकी था ?

सलीम—खुदावंद बंदगाने आली ने गो कि सारे हिंद पर फतहयाबी हासिल कर ली मगर जब तक इस छोटे से टुकड़े मेवार पर फतेह न हासिल हो, तब तक हिंदुओं की नजर मे हिंद फतेह नहीं हुआ। राणा को लोग हिंदूपति कहते हैं।

अकबर—तुम अभी फतेह की मुबारकबादी दे न रहे थे।

सलीम—जरूर, बएकबाले आली हम लोग फतेहयाब तो जरूर हुए मगर यह फतेह नहीं के शुमार मे है।

अकबर—क्यों क्यों—

सलीम—खुदावंद ! मैं शुरू से कैफियत अर्ज करता हूँ। हम लोगों ने जाते ही अजमेर से सिपहसालार जवाँमर्दखाँ को खबर लेने और दुश्मनों के चंद लोगों को काबू मे लाने की कोशिश के लिये भेजा, मगर खबर लाना और किसी को काबू मे लाना तो दूर किनार, वह हजरत खुद दुश्मनों के काबू मे आ गए और डाढ़ी मूँछ मुड़ा कलंदर की सूरत बनाकर प्रताप की तरफ से बतौर तुहफः हम लोगों के सामने पेश किए गए। एक तो तमाम फौज मुस्तैद थी ही दूसरे उसकी इस हरकत से सबके सब गजब मे आ गए और हम लोगों ने बड़े जोर शोर से चढ़ाई कर दी—फिर मैं क्या अर्ज करूँ, वाह रे बहादुराने राजपुताना ! जिस वक्त वे लोग भूखे शेर की तरह हमारी फौज पर टूट पड़े कुछ अक्ल काम न करती थी। वह मुट्ठी भर राजपूत हमारी बेशुमार फौज को आन की आन में मूली की तरह काटकर रख देते थे। हमारे कैसे कैसे सर्दार इस जंग मे काम आए हैं कि ताबेदार कुछ गुजारिश नहीं कर सकता और उन लोगों के लिये तो मरना कोई बात ही न थी। ग्वालियर

के राजा रामसिंह का इकलौता कुँवर खंडेराव बड़ी बहादुरी से लड़कर मारा गया मगर रामसिंह को उसकी कुछ भी परवा न थी, गोया बारूद में पलीता लगा दिया गया। फिर किस तरह पर जान छोड़कर वह लड़ा है कि फिद्वी अर्ज नहीं कर सकता।

अकबर—शाबाश बहादुर रामसिंह, शाबाश! हाँ फिर—

सलीम—मैं अपनी फौज के घेरे में हाथी पर अम्मारी में सवार था—देखता क्या हूँ कि खुद प्रताप देव की सूरत हाथ में भाला चमकाता घोड़ा फेंककर हाथी पर पहुँचा और एक ही हाथ में महावत को मार गिराया। उस वक्त बिजली की तरह कड़ककर उसने मुझसे जो कुछ कहा वह अब तक मेरे दिल में कड़क उठता है।

अकबर—(जोश में आकर खड़ा हो जाता है) क्या कहा?

सलीम—हुजूर! कहा कि "अरे लड़के! तू क्या जनानखाने में बैठकर लड़ाई की बहार देखने आया है? क्यों नहीं मैदान में निकलता? खैर, तुझे लड़का समझकर छोड़ देता हूँ, मगर ले यहाँ का निशान लेता जा" इतना कहकर अम्मारी पर एक ऐसा भाला मारा कि अगला खंभा पाशपाश हो गया।

अकबर—(घबराकर) फिर फिर—

सलीम—इतने में तो नीचे से हमारे बहादुर सरदारों ने गोलियों की झड़ी बाँध दी। प्रताप को सात घाव लगे, बहादुर घोड़े को भी गोली लगी, दोनों नीचे आए—फिर तो वह खौफनाक जंग हुआ कि जिसका बयान नहीं। इस जंग में प्रताप का तो काम तमाम हो चुका था क्योंकि प्रताप अकेला ही मेरी फौज में आ कूदा था और वह चौतरफ से घिर गया था मगर वाह रे निमकहलाल झाला राजा मानसिंह! यह तुम्हारा ही काम था। खुदावंद, वह बिजली की तरह बादल के मानिंद फौज को चीरता हुआ पहुँचा और राणा को

हटाकर आप राणा की जगह खड़ा हो गया और राणा के धोखे आप मेरे सिपाहियों के हाथ जाँ बहक हुआ मगर अपने मालिक को बचाया।

पृथ्वीराज—(मन मे) धन्य झाला राजा धन्य, तुम्हारा जन्म सुफल हुआ।

अकबर—फिर प्रतापसिंह का क्या हुआ ?

सलीम—हुजूर ! मेरे सिपाह तो यह समझकर कि प्रताप मारा गया खुशी के मारे मरने लगे और झाला राजा के सिपाह बिजली के मानिंद राणा को लेकर निकल गए।

अकबर—वाह रे बहादुराने राजपूताना, वाह ! क्यों न हो यह उन्हीं के हिस्से है—हाँ फिर क्या हुआ ?

सलीम—हमारे दो बहादुर सरदारों ने प्रताप का पीछा किया और करीब था प्रताप को मार लेते क्योंकि प्रताप तो मजरूह था ही लेकिन उसके बहादुर और वफादार घोडे चेतक ने बावजूदे कि निहायत ही जखमी था ऐसी वफादारी की जो इन्सान से नामुमकिन है; और अपने मालिक को बचा लिया। दर्मियान मे एक बरसाती नदी आ गई। हमारे सरदार जब तक उसके करीब पहुँचे चेतक राणा को लेकर तीर के मानिंद पार हो गया। मुगल सरदार नदी उतरने की कोशिश ही मे थे कि राणा के भाई सक्ताजी ने, जिनके साथ हुजूर ने इतने इहसान किए थे, उन दोनों पर हमला किया और दोनो को मार गिराया।

अकबर—(क्रोधपूर्वक) सक्ता से यह दगाबाजी ! तुमने उसे क्या सजा दी ?

सलीम—खुदावंद, उसने मुझसे जाँ बख्शी का कौल लेकर कुल सहीह हाल कह दिया इसलिये मैंने उसे मुवाफ कर दिया मगर उसे और उसके कुल सक्तावंशी सरदारो को शाही मुलाजिमत से अलाहद कर दिया।

अकबर—खूब किया, इस जंग में कितने राजपूत खेत रहे ?

सलीम—बाइस हजार फौज लेकर राणा ने चढ़ाई की थी जिनमें से सिर्फ आठ हजार जीते फिरे।

अकबर—शाबाश—हाँ फिर क्या हुआ ?

सलीम—फिर हम लोग फतह का डंका बजाते शहर में दाखिल हुए मगर वहाँ धरा क्या था। सारा शहर वीरान, जंगल हो रहा है, कहीं किसी का पता नहीं, कुछ भी हाथ न आया और उसी जंगलिस्तान में हमारी फौज पड़ी है। बकौल शख्से कि "बगुला मारे पंख हाथ।"

अकबर—शहर की यह हालत क्यों हुई ?

सलीम—सुना गया है कि बरसों पहले से प्रताप ने सारी बस्तियों को उजाड़ कर दिया था ताकि दुश्मन अगर फतहयाब भी हों तो कुछ न पाएँ। तमाम बाशिंदगान को जंगलों और पहाड़ों में रहने का हुक्म था और खुद कभी कभी आकर तहकीकात करता था कि उसके हुक्म की तामील हुई या नहीं। एक चरवाहा एक सब्ज: में अपनी भेड़ चराता पाया गया—फौरन् उसे फासी लटकवा दिया। इस सख्ती के साथ उसने मेवाड़ ऐसे खुशनुमा मुल्क को जंगल बना दिया है।

अकबर—आफरीं है इस दूरंदेशी पर, मगर तुम लोगों ने जंगलों में क्यों नहीं उसका पीछा किया ?

सलीम—जहाँपनाह ! एक तो उस पहाड़ी जंगल में हम लोगों का नावाकफियत की हालत में घुसना नामुनासिब दूसरे मौसिमे बरसात शुरू, इस वक्त तो नामुमकिन ही था।

अकबर—कुछ मुजायक: नहीं, बाद बरसात सही। मुझे मुल्क मेवाड़ की फतेह से सीमोजर की ख्वाहिश नहीं; मुल्कगीरी की ख्वाहिश नहीं, सिर्फ बातों की आन है। मगर देखना खबर-

दाग जिसमें प्रताप ऐसा बहादुर शख्स मारा न जाय, जिंदः गिरफ्तार हो। आहा! क्या ऐसा बहादुर भी रूए जमीन पर मौजूद है? अकबर, तू खुशनसीब है कि तुझे ऐसा दुश्मन मिला।

पृथ्वीराज—(मन मे) आहा!

साधु सराहैं साधुता जती जोगिता जान।
रहिमन साँचे सूर की बैरिहु करैं बखान॥

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

मेवाड़ -जंगल—गिरि-गुहा का बाहरी प्रांत

(एक पत्थर की चट्टान को काट छाँटकर सिंहासन बनाया हुआ, उस पर राणाजी विराजमान, ताड़ के पत्तो का छत्र लगा, चँवर होता, नकीब चोबदार आदि खड़े, सरदारगण यथा यथास्थान भूमि पर बैठे, दाहिनी ओर सिंहासन के पास भीलों का सरदार काछा काछे सिर पर लाल पाग मोर का पंख खोसे हाथ मे धनुष बाण लिए)

कविराज—

दिन दिन बढ़ै प्रताप प्रताप प्रताप ईस के।
होइ नास जम पास बास सब यवन कीस के॥
फिर मिवार सुखसार गरे जयमाल विराजैं।
देव रविन यह अवनि यवनि बिनु सब दिन छाजैं॥
हे देव दमन अशरन शरन अब न बिलम मन मे धरहु।
करि कृपा आर्य गौरव बहुरि थापि दु.ख दारिद हरहु॥

प्रतापसिंह—मेरे प्यारे भाइयो! मेरे कारण तुम लोगों को बड़ा क्लेश उठाना पड़ा है। आहा! कहाँ तुम लोग राजप्रासाद के रहनेवाले, राजसुख से सुखी और कहाँ कंटकमय मरु देश,

पहाड़ों का घूमना, चट्टानों पर सोना, उस पर भी स्वच्छंदता की नींद नहीं। एक स्थान पर जमकर रहना होता तो भी भला कुछ आराम के सामान हो जाते पर यहाँ इसका भी ठिकाना नहीं। आज यहाँ हैं तो यह निश्चय नहीं कि कल कहाँ कितने कोसों पर जंगल काटकर बैठने योग्य स्थान निकालना होगा—कल कैसा? यह भी तो स्थिर नहीं कि खाया यहाँ है तो हाथ कहाँ चलकर धोना होगा? आहा! जहाँ हजारों का भोजन देकर भोजन करते थे वहाँ अब अपने और अपने बच्चों के पेट भरने के लिये लालायित होना पड़ता है। आहा! बहादुर भाइयो! जो तुमने भी आज यवन बादशाहों की गुलामी स्वीकार की होती तो इन शिला-खंडों के बदले रत्नजटित सिंहासनों पर विराजमान होते, बड़े बड़े अभिमानी नरेश तुम्हारे चरणों पर अपने मुकुट झुलाते, संसार की यावत् सुख-सामग्री तुम्हारे आगे हाथ जोड़ खड़ी रहती और जो कहीं बादशाही महलों में अपनी बहिनों को पहुँचाए होते तब तो फिर कहना ही क्या था, सालों से बढ़कर किसका आदर होता है। जहाँ दिल्ली पहुँचते कि फिर तुम्हीं तुम दिखाई देते। पर हाय! मैं क्या करूँ; मेरी मोटी बुद्धि इन क्षणिक सुखों को सुख कहकर नहीं मानती। मैं गँवार आदमी, मुझे इस जंगल का बास उन शाही महलों से कहीं बढ़कर सुखद जान पड़ता है। आहा! हमारा हृदयमंदिर जो पवित्र आर्यगौरव वासना से पूरित है इन बाहरी शोभाओं से मोहित नहीं होता। मैं क्या करूँ मेरा मन उन सुखद सामग्रियों को दुःखद करके मानता है परंतु तुम लोग क्यों मेरे लिये कष्ट उठाते हो? अपने जीवन को क्यों व्यर्थ गँवाते हो? मुझे यहीं योंही भटकने दो, तुम लोग अपने कामों को देखो न? हम तुम लोगों को सुखी देखकर संतुष्ट होंगे।

एक क्षत्रिय—(क्रोधपूर्वक तलवार को राणा के सामने फेककर) महाराज ! यह लीजिए। जिस तलवार को हमने शत्रुओं के सिर जुदा करने के लिये बहुत दिनों से तेज कर रखा था, आज उसी से हम लोगों का सिर अपने हाथ से जुदा कर दीजिए, जो तलवार शत्रुओं के रक्तपान की प्यासी, देखिए मा दुर्गा की जीभ की भाँति लपलपा रही है, उसकी प्यास को हमी लोगों के रुधिर से बुझाइए। पर महाराज, इन हृदयवेधी वाक्यबाणों का प्रयोग न कीजिए। जो स्वाधीनता का स्वर्गीय सुख हम लोग यहाँ भोग रहे हैं क्या कभी बड़े से बड़े पराश्रित राजसिंहासन पर बैठने से भी वह सुख प्राप्त हो सकता है ? छि: ! मरना तो एक दिन हई है पर क्या उसके भय से आज ही हम अपने को बेच दे ? क्या दासत्व स्वीकार करने से हमारा मृत्यु-भय जाता रहेगा ? फिर महाराज ! जब मरना ही है तो मान खोकर मरने से क्या ?

"अहमद मोहि न सुहाय, अमिय पियावन मान बिनु।
जो विष देइ बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥"

भीलराज—सुणो राणाजी ! हम लोगों के पुरखों ने जान देकर इस राज का मान बचाया है, हम लोगों के जीते जी कभी यह न होने पावेगा। दूसरे की कौन कहै, आप भी चाहे तो हमारी स्वाधीनता को नहीं बेच सकते। आपका जी चाहे तो जाकर बादशाह से सुलह कर लीजिए, पर हम भील लोग तो प्राण रहते कभी सिवाय हिंदूपति के दूसरे किसी की गुलामी नहीं करने के।

प्रतापसिंह—धन्य आर्य वीर, धन्य ! हम तुम लोगों से ऐसे ही उत्तर की आशा रखते थे। तुम लोगों के ऐसे वीरों के सहायक रहते हमे पूरा विश्वास है कि हमारी स्वाधीनता को कभी कोई छू भी न सकेगा।

मान रहै तौ प्रान, मानहीन जीवन वृथा।
राखो दृढ करि मान, जौ जीवन चाहौ सुखद ॥

[रसोईदार का प्रवेश]

रसोइया—अन्नदाता, काँसा * तयार है।

प्रताप—लाओ, यहीं ले आओ—

(रसोइया एक पत्थर के बडे थाल मे कुछ वन्य फल तथा बहुत से पत्ते के दोनों मे उबाले हुए शाक और वृक्षो की जड़ रखकर लाता है, स्वयं राणा तथा सब क्षत्रिय सरदार एक ही थाल मे बैठते हैं)

[नेपथ्य मे गान]

जो पै मिलै तीन दिन बीते।
कद मूल फल शाक उबाले अनायास सुख ही ते ॥
बिना निहोरे, बिनु सेवकाई, सुख स्वतन्त्रता साने।
तो उनपै जग की सब सम्पति वारि सुधा सम माने ॥
राज साज, पकवान रसीले, धन सम्पत्ति बड़ाई।
सब ही तुच्छ, तुच्छतम निहचय निज मर्याद गँवाई ॥
बन रजधानी, महल गिरि गुहा, फूल आभरन सोहैं।
धर्म हेतु दुख सहत सुखी ते देव बधू लखि मोहैं ॥

(ज्योंही सब लोग ग्रास उठाते हैं त्योंही एक सैनिक घबराया हुआ आता है)

सैनिक—(हाथ जोड़कर) घणी खमा, अन्नदाताजी बड़ी भारी मुसलमान सेना इधर को उमड़ी चली आ रही है।

प्रताप—(भोजन छोड़ दर्प के साथ खड़े हो और तलवार खींचकर) कितनी दूर है?

---

* काँसा—राजाओ के यहाँ भोजन के थाल को काँसा कहते हैं।

सैनिक—धर्मावतार! अभी आध कोस पर होगी।

प्रताप—कुछ चिंता नहीं, बहादुर सरदारो! आप लोग दुखी न हो, अभी तो पाँच ही बेर परोसी थाल छोड़नी पड़ी है, जो सौ बेर भी छोड़नी पड़े तो क्या चिंता है! अब इस स्थान को अभी छोड़ देना चाहिए। रामसिंह, आप स्त्रियों को लेकर जंगली रास्ते से आगे बढ़ें, हम लोग पीछे पीछे आते हैं, यदि शत्रु पास पहुँच भी जायँगे तो हम लोग थोड़ी देर तक अटका रखेंगे, जब तक आप स्त्रियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचा दीजिएगा।

[नेपथ्य से]

धन तुव हृदय प्रताप, तजे सबै जग के सुखनि।
सहत दुसह संताप, पै न तजत निज धर्म हठ।

(एक ओर से प्रतापसिंह तथा सरदारों का और दूसरी ओर से रामसिंह का वेग से जाना)

तृतीय गर्भांक

स्थान—जंगली कुंज—एक स्वच्छ शिलाखंड

(मालती और गुलाबसिंह)

गुलाब—प्यारी मालती! तुम हमारे कारण बड़े दुख उठा रही हो। आहा! यह सुकुमार अंग और यह कठिन तापस व्रत!

मालती—देखो जी, तुम हमें बार बार लजाया न करो। भला मैंने ऐसा क्या किया है जो तुम सदा ऐसा ही कहा करते हो? धन्य तो है तुम्हारा यह असीम साहस!

गुलाब—हमारा साहस? हमारा साहस भी क्या अपने मन से है? उसकी जड़ भी तो तुम्हीं हो।

मालती—चलो चलो, रहने दो, बहुत बातें न बनाओ। देखो हमने यह जंगली फूलों की एक माला बनाई है, लाओ तुम्हें पहिरावैं, देखैं कैसी लगती है।

गुलाब—(अलग खड़े होकर) नहीं, नहीं—मालती! अभी नहीं

जब लौं निज बल को फल इनको नाहि चखाऊँ।
म्लेच्छ ध्वजा को काटि न जब लौं भूमि गिराऊँ॥
आर्य धर्म की जयध्वनि सो सब जग न कँपाऊँ।
निष्कंटक मेवार देश जब लौ न बनाऊँ॥
तब लौं मुख करि सामुहे तुम सों कबहुँ न भाखिहौं।
अरु कोमल कर परस को मन मैं नहि अभिलाषिहौं॥

[नेपथ्य में]

वीर हृदय जौ कछु कहै फबै सबै तेहि साँच।
पै न फबै सुख बिलसिबो जब लौं बुझै न आँच॥

गुलाब—(धीरे से, दाँत के नीचे जीभ दाबकर) अरे कविराजजी को हम लोगों का यहाँ रहना कैसे विदित हो गया! देखो कैसी चितावनी दे रहे हैं? अच्छा प्यारी मालती! अब विदा दो, मुझे छद्म वेष करके उदयपुर जाना है, क्योंकि बरसात आ गई, देखूँ मुसल्मानी सेना क्या कर रही है।

मालती—हाँ, इसमे देर न करनी चाहिए। मा दुर्गा सदा तुम्हारी रक्षा करै।

(गुलाबसिंह धीरे धीरे सतृष्णनेत्र मालती की ओर मुड मुडकर देखते हुए जाते हैं)

मालती—धन्य गुलाबसिंह धन्य! यह तुम्हारा ही काम है। इस कठिन परीक्षा मे ठहरना सहज नहीं है। हाय! मुझ अभागिनी के कारण तुम्हें इतने कष्ट भोगने पड़ते हैं। पर मालती! तू

भी धन्य है जो तूने अपना हृदय ऐसे वीर हृदय को सौंपा है। (आँखों मे आँसू डबडबा आते हैं) आहा! कितने साध से यह बनैले फूलों की माला गाँथी थी पर हाय! एक क्षण भी मैं इसे उनके गले मे पहिराकर अपनी आँखो को ठंढा न कर सकी, तो चलूँ अब इसे मा विपत्ति-विदारिणी ही के चरणो मे अर्पण करके उनकी मगल प्रार्थना करूँ। (चौंककर) और क्या उन्हे इस विपत्ति मे अकेले ही जाने देना चाहिए? नही नही, मैं भी चुपचाप उनके पीछे पीछे भेष बदलकर चलूँ।

[नेपथ्य मे]

धन्य देश मेवार वारिए तुम पै सब जग।
जहँ फूले ये फूल किए सौरभमय सब मग॥
धन्य वीर परताप थाप तुम न्याय विराजै।
जासु सहायक ऐसे तिन्हे अकर कहा काजै॥
रे कवि तुव जन्म सुफल भयो करि सेवकाई वीर की।
धन बाणी कहि विरुदावली धर्म धुरधर धीर की॥

(मालती का प्रस्थान)

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—जगली प्रांत, राजकुमार, राजकुमारी, भील बालक बालिका तथा राजपूत बालक

(राजकुमार के सिर पर फूलों की कलगी तुर्रा और गले मे जगली फूलो के हार–राजकुमारी के सब अंगों मे फूलों का शृंगार–कुमार पत्थर के शिलाखंड पर बैठे हैं, दो भील बालक बाँस के मोटे मोटे लट्ठों के आसा बनाकर आगे खड़े हैं, एक ताड का छाता राजछत्र के बदले मे लिए पीछे खड़ा है)

एक चोबदार—(आगे बढ़कर) घणी खमा अन्नदाता, दिल्ली से पाच्छाह का एक दूत आया है।

कुमार—(बेपर्वाई से) आने दो।

[सन को रँगकर कृत्रिम दाढ़ी लगाए एक दूत का प्रवेश]

दूत—(सलाम करके) हजूर, हमको दिल्ली के पाच्छाह छलामत भेजा है।

कुमार—(टेढ़ी दृष्टि से देखकर) अच्छा, तुम्हारा पाच्छा क्या बोला ?

दूत—पाच्छा बोला है कि आप हमसे क्यों लडाई करता है। इसमें बर नहीं आवेगा इससे हम जो चाहा था उसके करने से हम आपको सबसे बड़ा मनसब देगा।

कुमार—(बड़े ही क्रोध से) कोई है इस बेअदब बेतमीज को मुँह काला करके हमारे शहर से निकाल दे।

(चारों ओर से सब लड़के "जो हुकुम" "जो हुकुम" करके कूदते ताली बजाते इकट्ठे हो जाते हैं और दूत को मारते घसीटते नाचते कूदते ले जाते हैं। दूत दोहाई दोहाई पुकारता जाता है)

कुमार—कोई है ? सेनापति को बुलाओ।

एक चोबदार—जो हुकुम अन्नदाता।

(जाता है और सेनापति को लाता है। सेनापति चिथड़े का परतला, सिर मे लाल कपड़े की पट्टी बाँधे कमर मे तलवार लटकती आकर प्रणाम करके अदब से खड़ा होता है)

कुमार—देखो सेनापति, डिल्ली का पाच्छा अब बड़ी बेअदबी करने लगा। उस पर फौज लेकर अभी चढ़ाई करो।

सेनापति—जो हुकुम अन्नदाता—

(ताड़ की पोपली बिगुल की तरह बजाता है। चारों ओर से कूद कूद सब लड़के इकट्ठे हो जाते हैं और एक ओर राजपूत बालक और दूसरी ओर भील बालक श्रेणीबद्ध होकर

फौज की नाईं खड़े हो जाते हैं। सेनापति सबों से कवायद कराता है और कुमार की सलामी उतरवाकर आगे आगे सेनापति पीछे पीछे श्रेणीबद्ध सेना जाती है)

राजकुमारी—(बालिकाओं के प्रति) अरी तुम सब खड़ी मुँह क्या देख रही हो। जब तक फौज दिल्ली जीतकर आवे तुम सब दर्बार के आगे नाचो गाओ।

(सब लड़कियाँ मंडप बाँधकर नाचती गाती हैं)

जियो जियो मेवाड़ ना महाराजा—जियो—
मेवाड़ ना महाराजा, मेवाड़ ना महाराजा।
जियो जियो।
राजपूत कुल ना रखवारा भारत ना सिरताजा।
जियो जियो।
लाओ लाओ सइयो, चुनि चुनि कलियाँ,
रग रंग अभरन काजा।
अपणा धणी ने रचि पहिरावाँ मंगल रूप बिराजा।
जियो जियो।

["एकलिंगजी की जय", "मेवाड की जय", "रानी की जय" इत्यादि कोलाहल करते नाचते कूदते लड़कों की सेना का प्रवेश]

(सब नाचते और गाते हैं)

"सिपाहियाँ नो कलो बनती आवेरे महाराजा।
आवी लागी दरवा पेले काठे रे महाराजा॥
नीला पीला तंबुड़ा खीचावो रे महाराजा।
रूपा केरी खूटा धमकावो रे महाराजा॥

सोना केरी डोरे बिछावो रे महाराजा।
गोडोला बलाश्रो रावली पाएगाँ रे महाराजा॥
गोड़ीला छुडाश्रो हरश्रा मुँगेरे महाराजा।
हाथीड़ा नीरावों छूटा सुरमा रे महाराजा॥
ऊठोश्राँ ने नाखो कडवा नीवा रे महाराजा।
सरदारां ने देवो चावल चोखा रे महाराजा॥
सीपा श्राने देवो तोल माँ भाता रे महाराजा।
फोजाँ मे तो वतरी बाजा बाजे रे महाराजा॥
बाजारे बाजे भवाश्राँ नाचे रे महाराजा। *"

सेनापति—(आगे बढ़कर कुमार को सलाम करके) घणी खमा अन्नदाता, डिल्ली की फतह मोमारक।

कुमार—(प्रसन्नतापूर्वक) साबास, साबास, डिल्ली फतह कर आए! पाच्छा क्या हुआ?

सेनापति—धर्मावतार, पाच्छा श्रीजी हुजूर के डर से आगरे भाग गया।

कुमार—कुछ पर्वा नहीं, भागनेवाले को भागने दो।

एक भील बालक—(आगे बढ़कर) अब हम दर्बार को तिलक करेगे।

एक राजपूत बालक—(आगे बढ़कर) नहीं नहीं, तुम मेवाड़ की गद्दी का तिलक नहीं कर सकते हो, डिल्ली की फतह का तिलक हम करेंगे, हम भाई बेटे हैं। (दोनों आपस मे द्वंद्व युद्ध करते हैं कुमार दोनों को छुड़ाते हैं)

कुमार—(राजपूत बालक से) सुनो भाई, आपस मे लड़ते क्यों हो, तुम तो हमारे अंग ही हो, हमको तिलक हुआ तो

---

*. यह भीलों का गीत मित्रवर कुँवर योधसिंह मेहता द्वारा प्राप्त हुआ है।

तुमको हुआ। पर तिलक करने का अधिकार बहादुर भील सरदारों ही को है।

(भील बालक "जय हिंदूपति की" कहते और तिलक करते हैं। सब लोग नजर मे फल फूल, दही आदि पेश करते हैं और कुमार किसी को "पंच हजारी" किसी को 'सेह हजारी' किसी को 'हजारी' आदि पदवी वितरण करते हैं)

[पटाक्षेप

पचम गर्भांक

स्थान—उदयपुर, किले का एक भाग

(पाँच चार मुसलमानों की गोष्ठी। कोई शराब के प्याले ढाल रहा है और कोई अफीम घोल रहा है)

एक—(अफीम घोलते घोलते) अजी हजरत, अजब मनहूस जगह है। न कोई सैरगाह, न कोई दिल्लगी का शगल, जी घबरा गया—लाहौल वला कूवत।

दूसरा—(शराब की झोंक मे) और क्या जनाब, जहन्नुम है, जहन्नुम। न मालूम क्या किस्मत फूटी कि इस जंगलिस्तान में आ फँसे।

तीसरा—(मोछों पर ताव फेरते हुए) हजरत मेरी भी इतनी उम्र हुई, सैकड़ो ही जंग इन्ही हाथों फतह किए मगर जनाब, यह मायूसी, यह कोर कोरा रहना तो कही भी नसीब न हुआ। एक फूटी कौडो भी हाथ न आई।

चौथा—भला यह तो फर्माइए, बी इलाहीजान से बड़े बड़े वादे कर आए थे—मीर साहब, अब उन्हे क्या मुँह दिखाइएगा ?

मीर साहब—(रोना सा मुँह बनाकर) जनाब कुछ न पूछिए, मेरी तो इसी फिक्र मे रूह फिना हुई जाती है—यार जो कहीं वहाँ

खाली हाथो गए ते वह बे भाव की पड़ेगी कि सर मे एक बाल भी न रहने पावेगा।

खाँ साहब—भाई, बंद.दर्गाह तो घर मे सेंद लगाएगा, बीबी साहबा की नथ तक बेचेगा मगर जनाब वहाँ झूठा नहीं बनने का। वहाँ तो जो कह आए हैं खाली हाथ नही कदम रखने का।

एक—और क्या मर्दों के यही मानी—"जाय लाख रहै साख।"

दूसरा—(उसे एक चपत जमाकर) अबे ओ साखवाले धन्ना सेठ के नाती, जरा अपनी टोपी तो सँभाल, फिर लाख की फिकिर करना। बचो नामर्दा, अबे जो रंडी ही के सिर न घहराए और उसी से न पुजाया तो मर्दानगी क्या? यार लोग भी कहीं टका दे-कर कुछ काम करते होगे।

तीसरा—(मोछों पर ताव फेरते फेरते) बहर हाल, यहाँ से तो खाली हाथो घर चलना मसलहत नही।

(एक मुसलमान घबराया हुआ आता है)

आगतुक मुसलमान—अबे पहले दाढ़ी मोछे तो खैरियत से घर पहुँचा तब दूसरी चीजो की फिक्र करना।

तीसरा—(चेहरे का रंग फक हो जाता है) ऐं ऐं क्या कहो? दाढ़ी मूँछ? अरे क्या हुआ? क्यों क्यों क्या गनीम आए?

आ० मुसलमान—पूछता है गनीम आए? अबे आए कि आ पहुँचे—दम साइत मे हम सभों का वारा न्यारा है।

सब—तोबः तोबः या इलाही तू ही मुईनो मददगार है।

[नेपथ्य मे "हिंदूपति की जय" का कोलाहल]

तीसरा—अरे यार-उस्तरा कहाँ गया—अरे जल्दी करो नहीं सब मारे जायँगे।

मीर—हाय! बी इलाहीजान, तुमने पहले ही कहा था।

खॉं साहब—(मीर को एक चपत लगाकर) अबे तुझे इलाहीजान की ही पड़ी है—अरे कलुआ कंबख्त मेरी बीबी से निकाह कर लेगा—हाय! मैं क्या करूँ ?

एक—हाय! बरसात मे यह जगली रास्ते कैसे तै होगे ? अरे रास्ते का निशान भी तो मिट गया है—या खुदा क्या जंगलिस्तान मे कुत्तों की मौत मरना पडेगा ?

(नेपथ्य मे "एकलिंगजी की जय" और ' अल्लाहो अकबर" का कोलाहल और भी निकट आ जाता है और सब गिरते कॉंपते हुए भागते हैं)

षष्ठ गर्भांक

स्थान—रणक्षेत्र

(कोई सिर कटा, कोई हाथ कटा, कोई मरा, कोई सिसकता पड़ा है—शवों के ढेर मे जीते और मरो का पता भी नही लगता, मुमूर्षुओं का आर्तनाद गूँज रहा है—एक सन्यासिनी आकर शवों में किसी को ढूँढ़ रही है)

संन्यासिनी—(उदासी और उत्साह के साथ)

"बताय दे मेरे जोगिया को किन्ने बिलमाया रे—
बताय दे मेरे—
अंग भभूत गले मृगछाला घरघर अलख जगाया रे।
उनही पर जोग कमाया रे।"

गुलाबसिंह—(मुमूर्षु अवस्था मे पडा हुआ टूटे फूटे स्वर से) हैं—यह असमय अमृतवर्षा कहाँ से ? मन! अपने को सँभाल—भला इस भयानक रणभूमि मे प्यारी मालती कहाँ ?

मालती—(दौड़कर गुलाबसिंह के मस्तक को अपनी गोद मे रखकर) नाथ आप घबड़ायँ नही, सचमुच मैं ही हूँ। अब आपका शरीर कैसा है ?

गुलाबसिंह—बहुत अच्छा—जो कसर थी वह भी पूरी हुई। आहा!

जनमभूमि अरु स्वामि हित रण गंगा मे न्हाय।
तजत प्राण प्रिय अंक मे मो सम कौन लखाय॥

(राणाजी राजवैद्य को साथ मे लिवाए हुए
घबराए से आते हैं)

राणा—वैद्यराज! आज जो आप गुलाबसिंह को बचा सकें तो मैं आपका सदा ऋणी रहूँगा—आहा, आज के युद्ध मे गुलाबसिंह की वीरता प्रशसनीय थी और मुझे बचाने ही मे उसकी यह दशा हुई। गुलाबसिंह की रक्षा होने से मुझे चित्तौर की रक्षा से भी अधिक आनंद प्राप्त होगा।

वैद्य—हुकुम अन्नदाता, मेरे पास वह जड़ी बूटी हैं कि जो तन मे प्राण होगा तो बचने मे कोई संदेह नहीं।

राणा—(मालती को देखकर) बेटी मालती! तू यहाँ कहाँ? धन्य तेरा प्रेम।

गुलाबसिंह—(राणा का पैर छूकर टूटे फूटे स्वर से) स्वामिन्! आपने क्यों कष्ट किया? आहा मुझसे तुच्छ पर इतनी कृपा!

(वैद्य गुलाबसिंह की नाड़ी तथा घावों को देखते हैं)

[नेपथ्य मे गान]

जियो जुग जुग जुग ऐसे वीर।
जे निज देश, स्वामि हित कारन गिनत न अपनी पीर॥
धन धन ते रमनी जे पति सों मिलत मनौं पय नीर।
धन्य स्वामि जिनके सेवक हित निस दिन प्राण अधीर॥

[धीरे धीरे परदा गिरता है

(इति षष्ठ अंक)

सप्तम अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—उदयपुर का जंगली मैदान

(बादशाही फौज—मुहब्बतखाँ और फरीदखाँ)

मुहब्बतखाँ—छिः तुम लोगों ने क्या बहादुरी का नाम डुबाया ! उदयपुर दुश्मनों के हाथ छोड़ते तुम्हे शर्म न आई ?

फरीदखाँ—हुजूर बजा इर्शाद, मगर मौसिमे बरसात इस मुल्क मे हम अजनबियों को कयामत का सामना है, एक तो कम्बख्त नहरू का मर्ज करीब करीब निस्फ फौज को तग किए था, दूसरे हम लोग यह समझकर कि अब शिकस्त पर शिकस्त खाकर ये मर्दूद पस्त हो गए होंगे इतमीनान से थे और कही इनका नामोनिशान भी न था, मगर खुदा की पनाह न जाने किस खोह से ये टिड्डी दल की तरह हम लोगो पर आ गिरे, हालाँ कि हम लोगो के बहादुरों ने जी छोड़कर मुकाबिला किया, मगर बेशुमार जर्रार राजपूतों और भीलों के सामने कहाँ तक ठहर सकते थे, पैर उखड़ गए। जनाबेआली, हम लोग तो खुद ही निहायत नादिम हैं।

मुहब्बतखाँ—खैर कुछ मुजायक नहीं, "गुजश्त रा सलवात आइंद: रा इहतियात" हालाँ कि जहाँपनाह निहायत ही गजबनाक थे मगर हम लोगों ने उनके गुस्से को यही वजूहात दिखलाकर फरो कराया, अब हुकुम दिया है कि अगर इस जग मे सच्ची बहादुरी का सुबूत मिलेगा और उदयपुर फतह करके आवेगे तो सब गुनाह मुआफ फर्माए जायँगे और आला मनसब दिए जायँगे, वरन: हमारे रूबरू आने की जरूरत नही।

फरीदखाँ—खुदावद, इंशाअल्ला तआला अब ऐसा ही होगा।

(नेपथ्य मे "राणा प्रतापसिंह की जय" का कोलाहल।)

मुहब्बतखाँ—(फौज की ओर फिरकर) देखो बहादुरो, दुश्मनों की फौज आ पहुँची, अब तुम्हारे आजमाइश का वक्त है, नमक अदा करने और बिहिश्त हासिल करने का यही वक्त है।

(नेपथ्य से गुलाबसिंह अट्टहास्य करते हुए)

"और दोजख मे जाने का यही वक्त है।"

(मुसलमान सेना "काफिर काफिर" पुकारती हुई बड़े जोश के साथ एक ओर से आती है और दूसरी ओर से राणा की सेना आती है, आगे आगे कविराजा जी)

कविराजा—

चलो चलो सब वीर चलो घनघोर युद्ध करि।
मेटे हिय की कसक यवन हित आजु पाँय दरि॥
देखो देखो मातु कालिका जीभ निकारैं।
यवन रुधिर प्यासी सुलोल जिह्वा चटकारै॥
वह देखो तुव प्रभु प्रताप निहारत तुव मुख।
है तुम्हरे ही हाथ आत्मगौरव मेवार सुख॥
निज पुरुषन की करौ याद जिन सह्यो सबै दुख।
पै न तज्यो स्वाधीनपनो छोड़्यो जग के सुख॥
बढ़ौ बढ़ौ सब वीर आर्य ध्वज नभ फहरावै।
चढ़ौ चढौ सब वीर यवन ध्वज धूरि मिलावै॥
लरौ लरौ सब वीर आर्य पौरुष दिखरावैं।
धरौ धरौ सब वीर यवन धरि दास बनावैं॥
तरौ तरौ सब वीर युद्ध गंगा मे न्हावै।
करौ करौ सब वीर अकर कर कीर्ति बढ़ावैं॥

अरौ अरौ सब वीर यवन पग आजु डिगावैं ।
परौ परौ सब वीर शत्रु के पीछे धावैं ॥
हरौ हरौ सब वीर देस दुख आजु नसावै ।
मरौ मरौ सब वीर—

(अचानक नेपथ्य से एक गोली आकर कविराजा को लगती है और गिरते गिरते)

—स्वर्ग चलि आजु बसावै ।

(सब आवेश मे आकर नेपथ्य मे शाही फौज पर टूटते और कुछ लोग कविराजा के मृत शरीर को लेकर नाचते कूदते हैं)

क्षत्रियगण—चलो, चलो "स्वर्ग चलि आजु बसावै" ।

(नेपथ्य मे 'श्रीएकलिंग की जय" "अल्लाहो अकबर" का कोलाहल)

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—जंगली मार्ग

(कई भील सिर पर बड़े बड़े पिटारे लिए घबराए हुए आते हैं)

एक भील—चलो, चलो, भाइयो पैर बढ़ाए चलो ।

रानी—(एक पिटारे के भीतर से) अरे दर्बार कहाँ हैं ? उनकी क्या दशा है ?

दूसरा भील—चुप, चुप, माजी चुप, अभी दुश्मन दूर नही हैं, अभी साँस न लेना ।

तीसरा भील—माँ, दर्बार के लिये कुछ चिन्ता न करना । जब तक एक भी भील बच्चा जीता रहेगा आप लोगों मे से किसी का एक बाल भी न खसकने पावेगा ।

[नेपथ्य मे]

"धन्य स्वामिभक्ति" ।

सब भील—अरे कौन आया ? चलो चलो जल्दी भागै ।
(सब भागते हैं)

[वीरवेष से बहुत जख्मी गुलाबसिंह का प्रवेश]

गुलाबसिंह—धन्य स्वामिभक्ति धन्य, आहा ये गँवार इस समय प्रभु की कैसी सेवा कर रहे है ! धिक्कार है हम लोगो को कि प्रभु के एक काम न आए। न जाने कहाँ दरबार पड़ गए हैं, बहुत खोजा कहीं पता न लगा, हाय ! हे दीनानाथ, प्रतापसिंह की रक्षा करना। इस समय हिंदू मान गौरव का एक वही आश्रय है, उसे न छीन लेना ।

[नेपथ्य से]

छिः ! प्रभु को अकेले छोड़कर कायरो की तरह बड़बड़ा रहे हो ! अरे जाओ, जल्दी जाओ, या तो राणा की रक्षा करो या वहीं तुम भी उनका साथ दो ।

गुलाबसिंह—(चौंककर) हैं ! इस असमय मे यह अमृत-वर्षा किसने की ! (नेपथ्य की ओर देखकर) आहा ! प्यारी मालती के बिना और किसका इतना उदार हृदय होगा ? धिक्कार है हमको कि दरबार विपत्ति मे फँसे हैं और हम प्राण लेकर यहाँ खड़े हैं। (जाने के लिये उद्यत होता है और आगे की ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक) अहाहा ! वह देखो राणाजी तो भील-वेष मे चले आ रहे हैं। जान पड़ता है प्रभुभक्त भीलो ने अपने को राणा बना, दर्बार को अपने वेष मे बचाया, धन्य भील जाति धन्य—आज तुम्हारा जन्म

सुफल हुआ, अब जो तुम्हें नीच कहै, वह आप नीच। चलैं हम भी प्रभु की सेवा करैं। (जाता है)

तृतीय गर्भांक

स्थान—घोर जंगल

(एक गुफा की चट्टान पर राणा जी सोए हैं और रानी पैर दाब रही हैं)

रानी—(मन ही मन) हाय! देवतुल्य शरीर इस घोर जंगल मे इस पत्थर की सेज पर सोने योग्य है? जिसे सैकड़ो ही दास दासी अपनी सेवा से प्रसन्न नही कर सकते थे उसे मैं जिसे कभी सेवकाई सीखने का काम न पड़ा, कैसे प्रसन्न कर सकती हूँ? तिस पर इन बालको के लालन-पालन से और भी समय नही मिलता कि इनकी कुछ सेवा कर सकूँ। (राणा की ओर सजल नेत्र से देखकर) नाथ! इस अभागिनी के कारण आपको बहुत दु ख सहने पडते हैं—क्षमा करना, हाय! मैं तुम्हारी कुछ सेवा नही कर सकती। मैं जब से तुम्हारी सेवा मे आई दुःख ही देती रही, हाय! मैं इसका क्या उत्तर परमेश्वर को दूँगी? जो मैं अभागिन आज मर भी गई होती तो तुम्हारी बहुत चिंता कम हो जाती। मेरी ही रक्षा के लिये तुम्हे हैरान रहना पड़ता है। (आँसू पोंछती है)

राजकुमारी—(आकर रानी के गले से लिपटकर) मा, बड़ी भूख लगी है।

रानी—बेटी, अभी थोड़ी ही देर न हुई है कि तुमने खाया है।

रा० कु०—हूँ हूँ आधी ही तो रोटी दी थी, उससे पेट तो भरा ही नही, फिर बड़ी भूख लगी है।

रानी—अच्छा, हौरा न कर, नहीं दर्बार की नींद खुल जायगी।

रा० कु०—(धीरे से) मा, दर्बार उदयपुर कब चलेंगे ?

रानी—(आँखों में आँसू भरकर) जब भाग ले जाय।

रा० कु०—अच्छा खाने को तो दे, अब भूख नहीं सही जाती।

रानी—प्राण मत खा, जा उस पत्थर के नीचे आधी रोटी ढकी है उसे खा न।

रा० कु०—मा, घास की रोटी और कब तक खानी होगी। यह रोटी तो रूखी खाई नहीं जाती। और कुछ नहीं है ?

रानी—(आँखें डबडबाकर) बेटी, जब जो मिले तब उसे प्रसन्न होकर खाना चाहिए, अन्न को ऐसा नहीं कहना।

(राजकुमारी जाकर ज्योंही पत्थर उठाती है कि बिल्ली झपटकर उस आधी रोटी को भी खींच ले जाती है, राजकुमारी चोंखकर रोने लगती है। रानी भी अपने वेग को नहीं रोक सकती फूट-कर रो उठती है, राणा चौंककर खड़े हो जाते हैं।)

राणा—क्या हुआ ? क्या हुआ ? दुश्मन आए क्या ? (राजकुमारी की ओर देखकर) बेटी, तू क्यों इस तरह रो रही है ?

(राजकुमारी कुछ बोल नहीं सकती, रोती हुई उँगली से बिल्ली की ओर दिखाती है)

राणा—क्या तेरी रोटी बिल्ली उठा ले गई ?

रा० कु०—(राणा से लिपटकर रोते रोते) ब-ड़ो-भू-ख-ल-गी-है।

राणा—(वेगपूर्वक आँसू रोककर स्वगत) हाय, वह प्रताप का हृदय जो कभी बड़े बड़े शत्रु-दल में नहीं हिला, आज क्यों काँपा जाता है, जो आँखें बड़ी बड़ी विपत्तियों में फँसने से और बड़े बड़े दुःख पड़ने पर भी तर न हुईं आज उनमें स्वतः आँसू क्यों उमड़े आते हैं ? (रानी की ओर देखकर) भद्रे ! हमारे हिस्से की

रोटी हो तो इसे देकर चुप कराओ। इसके रोने से तो हमारा कलेजा उमड़ा आता है।

(रानी निरुत्तर होती है)

राणा—तो क्या तुम्हारे पास ऐसा कुछ भी नही है जिससे इसकी भूख बुझा सको ?

(रानी बड़े वेग से रो उठती है)

राणा—हाय, आज मेवाड के राणा की यह दशा हुई कि घास की जड की रोटियाँ भी उसके संतान को प्राप्त नही। दीनानाथ ! हमने ऐसे कौन से दुष्कर्म किए हैं जो ऐसे दारुण दु ख सहने पडते हैं ? हे प्रभु ! क्या मैं जो इस आर्यभूमि की रक्षा और गौरव बढ़ाने के लिये इतने कष्ट उठा रहा हूँ, वे तुम्हे नही रुचते ? जाना, जाना, तुम्हारा कोप इस देश पर है इसलिये अपनी इच्छा के प्रतिकूल कार्य करने के कारण तुम प्रताप पर रुष्ट हो; पर नाथ ! इन अबोध बालकों ने क्या बिगाडा है जो तुम्हे इन पर भी दया नहीं आती ? (उन्मत्त की भाँति घूमता हुआ) अच्छा जाने दो, जाने दो, इस अभागे देश को रसातल मे जाने दो, मुझे क्या, मैं भी न बोलूँगा, तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही—(कुछ ठहरकर) सारा देश अकबर के करतलगत है, सब क्षत्रिय अपनी स्वतंत्रता स्वतंत्रतापूर्वक बेच रहे हैं, किसी को कुछ इसकी पर्वा ही नहीं है तो प्रताप, तू क्यों व्यर्थ प्राण दिए देता है—अरे अकेले तेरे किए क्या होगा ? क्यों व्यर्थ इन कुसुम-सुकुमार बालको को कष्ट दे देकर सताता है ? हाय, यह प्रताप का वज्र हृदय हिमालय के उच्चतम शिखर से गिराए जाने की चोट सह सकता है, वह बड़े बड़े गोले, गोली, तीर कमान छाती पर रोक सकता है, इस शरीर को टुकड़े टुकड़े कर डालो यदि मुँह से उफ भी निकले जबान खींच

लेना, पर हाय इन सुकुमार अबोध बच्चों के करुण वचन तो सहे नहीं जाते, हृदय को छेदे डालते हैं—

सहे सबै दुख नेकु न अपने प्रण ते हटके।
राज गयो, धन गयो, फिरे बन बन मे भटके ॥
बंधु बाधव कटे आपुने सुतहिं कटायो।
राखि आपुनी टेक सबै तृण सरिस सहायो ॥
पै हाय सही अब जात नहिं जीवत इन नैननि निरखि।
इन दूध पीवते बालकनि रोटी हित रोवत बिलखि ॥

प्रभु अपनी सृष्टि को सँभालो, आज अनहोनी हो रही है, वज्र-हृदय प्रताप का हृदय आज द्रव हुआ जाता है, आज क्या होनहार है? (राजकुमारी रोते रोते सो जाती है) आहा! सचमुच नींद सी सच्ची सहचरी इस संसार मे कोई नहीं। देवी! इस समय तुमने हमारा बड़ा उपकार किया, हम तुम्हे प्रणाम करते हैं। (रानी से) तुम यहीं रहो, मैं देखूँ जो कुछ मिल सकै तो लाऊँ, नहीं नीद खुलते ही फिर—

[नेपथ्य मे]

अरे राणाजी कहाँ हैं, जल्दी उन्हे खबर दो, शत्रुओं को यहाँ का भी पता लग गया।

राणा—हाय अब नही सही जाती, और तो और इस भूख की मारी छोकरी को कैसे जगावे? (घबराया हुआ बाहर जाता है)

[पटाक्षेप

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—दिल्ली, अकबर का मन्त्रणागृह

[अकबर हाथ मे एक पत्र लिए और पीछे पीछे खानखाना का प्रवेश]

अकबर—क्यों भाई रहीम, क्या फिर कभी वैसी खुशी हासिल होगी जो हम लोगों को बचपन मे उस रेगिस्तान और जंगलों के खेल मे हासिल होती थी ? वह जेठ बैसाख की धूप और वह तपी हुई रेत, हम लोगों को गोया क्वार कातिक की चाँदनी और जमुना किनारे की सर्द और मुलायम बालू जान पडती थी।

खानखाना—और उस वक्त के उन खटमिट्ठे जंगली बेर, और चने के साग मे जो मजा आता था वह इस वक्त इन इंतिहा के लजीज खानों मे नसीब नहीं। क्यों याद है, उस रोज जो दरख्त से गिरे थे ?

अकबर—खूब—अरे यार कुछ न पूछो, एक तो चोट लगी, दूसरे खानबाबा बे भाव की लगे जमाने।

खानखाना—(कुछ अप्रतिभ होकर) हमारे बाबा का स्वभाव जरा गुस्सेवर था।

अकबर—हजरत कुछ यह भी खबर है अगर उनकी तालीम न होती तो आज हमको आपको यह दिन भी न मयस्सर आते—बाबा उस वक्त कैसी मुसीबत मे थे, खानबाबा को उधर उनकी दिलजोई करनी इधर हम लोगों की खबरगीरी करनी और साथ ही फिर सल्तनत हासिल करने की कोशिश करनी।

(नेपथ्य मे एकाएक बाजे बजने लगते हैं और तोपों की आवाज होने लगती है)

अकबर—हैं, यह एकबारगी क्या हुआ ?

[एक खलीता लिए हुए चोबदार का प्रवेश]

चोबदार—(जमीन चूमकर) निगाह रूबरू खुदावंद नेश्रामत दौलत दराज, जानोमाल की खैर—अभी एक साँडनी-सवार उदयपुर से आया है, यह खलीता लाया है और सारे शहर मे शादयाना मचाया है।

(अकबर खलीता खोलकर पढ़ता है और मारे आनंद के उछल पड़ता है)

अकबर—(चोबदार को अपने हाथ की एक अँगूठी देकर) जाओ, अभी उस कासिद को सीमोजर से मालामाल करो, जशने नौरोज की तैयारी हो, शहर मे आज रोशनी होने का हुक्म जारी हो।

(चोबदार जमीन चूमकर जाता है)

खानखाना—खुदावद, इस खत के मजमून को जानने के लिये जी उमडा आता है।

अकबर—(खत देते हुए) यह लो, मेरे हिंद के बादशाह होने की सनद देखो।

(खानखाना पत्र लेकर पढते हैं, पृथ्वीराज आते हुए दिखाई देते हैं)

पृथ्वीराज—(आप ही आप) सुना है, आज सूर्यनारायण अपना राज्यासन निशिनाथ को देकर बंगाले की खाड़ी मे निवास के लिये चले जा रहे हैं। राणा प्रतापसिंह ने मुगलराज से सन्धि का प्रस्ताव किया है। देखे यह बात कहाँ तक सही है। (आगे बढ़कर अकबर को सलाम करता है)

अकबर—अल्लाह। आइए महाराज, लीजिए आपके राना उदयपुर ने यह सुलह का पैगाम दिया है। आपको मुबारक हो। (पत्र पृथ्वीराज को देता है)

पृथ्वीराज—(पत्र पढ़कर)

भूखे प्राण तजै भले, केसरि खर नहिं खाय।
चातक प्यासो ही रहै, बिना स्वाति न अघाय॥
बिना स्वाति न अघाय, हंस मोती ही खावै।
सती नारि पति बिना, तनिक नहिं चित्त डिगावै॥
त्यौं परताप न डिगै, होय सब ही किन रूखे।
अरि सन्मुख नहि नवै, फिरे किन बन बन भूखे॥

अकबर—तो क्या आपको इस खत मे कुछ शक है।

पृथ्वीराज—खुदावंद, पूरा शक है, क्योंकि—

बरु दिनकर पच्छिम उए, ग्रहपति पूर्व अथायँ।
सागर मर्यादा तजै, पंकज गगन लखायँ॥
पंकज गगन लखायँ, केसरी खर बरु खावैं।
नभ नछत्र कर मिलै, केदली फेरि फरावैं॥
जब लौं तन मे प्रान, प्रान मे बुद्धि रतिक भर।
तजै न हठ परताप, उऐ पच्छिम बरु दिनकर॥

अकबर—तो आपका शक किस तरह रफः हो सकता है।

पृथ्वीराज—जब तक मैं खुद न तसदीक कर लूॅ।

अकबर—क्या मुजायका है, आपका जैसे जी चाहे इतमीनान कर ले।

(पृथ्वीराज कृतज्ञतापूर्वक सलाम करके एक ओर से जाता है और दूसरी ओर से अकबर खानखाना जाते हैं)

———

पचम गर्भांक

स्थान—अरवली पार्वत्यप्रांत

(राणा प्रतापसिंह अकेले घूम रहे हैं)

राणा—हाय, मेरा इतना किया सब नष्ट जाता है, एक काम न आया, जिस निर्दय दैव ने मुझे इस विपत्ति सागर में डाला उसी ने न जाने इस समय कैसी मोहनी माया मेरे हृदय पर डाल रखी है जो मेरी बुद्धि मे ऐसा विपर्यय हो रहा है—हाय, प्रताप, तू भी अब यवनों का दास बनेगा ! अरे तुझे भी अब दिल्ली मे सलामो बजानी पड़ेगी ! देख, तेरे इस कर्म से आज कुलगुरु सूर्यनारायण का मुख भी मलिन हो रहा है । (सूर्यनारायण की ओर देखकर) देव ! रक्षा करो । अपने कुल—

[गुलाबसिंह का एक पत्र लिए हुए प्रवेश]

गुलाबसिंह—(हाथ जोड़कर) घणीखमा अन्नदाता, दिल्ली से कुँवर पृथ्वीराजजी का यह पत्र लेकर एक दूत आया है ।

राणा—(आग्रहपूर्वक) पढो, पढो, हमारे विपत्तिसहचर पृथ्वीराज क्या लिखते हैं ?

(गुलाबसिंह पत्र पढते हैं)

स्वस्ति श्री अरवली-बली जन-आश्रयदायक ।
जहाँ बसत परताप शत्रु-हिय-ताप-विधायक ॥
पराधीन दिल्लीवासी नित दास वृत्ति कर ।
महा अधम प्रिथिराज छुअत तुव चरन पुण्यतर ॥
अब कुशल कहाँ इत है रही गई बिदा ह्वै कै कवै ।
उत रही कछुक भाजत सोऊ सुख प्रताप मोरयो जवै ॥ १ ॥

बूड़े राज समाज, दिल्ली यवन समुद्र मैं ।
आरज गौरव लाज, इक राखी परताप तुम ॥ २ ॥
अकबर परम प्रवीन, राजपूत दागिल किए ।
इक मिवार दागी न, तुव प्रताप बल कारनै ॥ ३ ॥
दिल्ली रूप बजार, बिकीं सबै कुल-कामिनी ।
वीर रहे सिर डार, राणावत ही इक बची ॥ ४ ॥
छत्र छेत्र निःछत्र, भयो होत निहचय कबै ।
जौ न धरत सिर छत्र, परम हठी परतापसिंह ॥ ५ ॥
खोए राजसमाज, असन बसन खोए सबै ।
खोए सब सुख-साज, पै राखी जातीयता ॥ ६ ॥
लै परताप उछंग, जननी जन्म सुफल भयो ।
अकबर काल भुअंग, कुचले फन जिन पग तरैं ॥ ७ ॥
जदपि न राज-समाज, फिरत सहत दुख बनहि बन ।
तउ न तजी कुल लाज, विमल कीर्ति छाई जगत ॥ ८ ॥
सबै अचंभो होय, कौन सहाय प्रताप को ।
सोच सहायक कोय, वीर हृदय असि वीर सम ॥ ९ ॥
अब लौं तजी न टेक, धर्म मान स्वाधीनता ।
डिगन दियो नहि नेक, अभिमानी परताप नै ॥ १० ॥
सुनत हाय कह आजु, प्रलय होन चाहत कहा ।
राना छोड़त लाज, झुकत जु अकबर सामुहे ॥ ११ ॥
दिल्ली के दरबार, झुकिहै सिर मेवार को ।
दिल्ली रूप बजार, शोभित राणावत करै ॥ १२ ॥
जननि धरित्री हाय, क्यो न फटत तू तुरत ही ।
पृथ्वीराज समाय, सुनै न फिर ये दुखद बच ॥ १३ ॥

देखु प्रताप बिचारि, नासमान ससार यह ।
यह जीवन दिन चारि, क्यों सुखहित कीरति तजत ॥ १४ ॥
देखौ साँचै वीर, एक आस गुन तुव गहे ।
जियत धारि जिय धीर, सो आसा जिन तोरिए ॥ १५ ॥
यह दिन ह्वै सुखकाज, कीरति अक्षय जिन तजहु ।
क्षत्रिय-लाज-जहाज, जवन-समुद्र न बोरिए ॥ १६ ॥
जो पवित्रतर मान, रच्छयो सहि सहि असह दुख ।
सो न दीजिए जान, दिल्ली की बाजार मैं ॥ १७ ॥
सिला सिला टकराय, टूक टूक रोटी बिना ।
भूखन किन मरि जाय, सँग स्वतंत्रता अतुल धन ॥ १८ ॥
तुव पुरुखे निज छाप, जो रच्छयो जन सीस दै ।
सो बेचत परताप, क्षणिक सुखहि के कारनै ॥ १९ ॥
नासमान करि आस, अविनासी की आस तजि ।
नासमान सुख-रास, बुद्धिमान राना चहत ॥ २० ॥
इक दिन अकबर नाहि, मुगल राज्य हूँ नहि रहै ।
तुव कीरति रहि जाहि, जब लौं भारत नाम थिर ॥ २१ ॥
ह्वैहै वह दिन एक, जब अकबर हूँ नहि रहै ।
रखिहैं कुल की टेक, सब क्षत्रिय तुव सरन गहि ॥ २२ ॥
खोवहु जिन निज धीरता, धोवहु जिन निज लाज ।
सोवहु जिनि सुख-सेज पैं, जब लौं सरै न काज ॥
जब लौं सरै न काज, न तब लौं थिर ह्वै रहिए ।
जो दुख सिर पै परै, धीर ह्वै सब कुछ सहिए ॥
अहो वीर परताप, हृदय-दुर्बलता गोवहु ।
उठौ उठौ कटि कसौ, क्लीवता जड़ सों खोवहु ॥ २३ ॥

और अधिक हम कह लिखैं, तुम हौ परम सुजान।
मान राखिए आपुनो, हँसै न जासों मान * ॥ २४ ॥

प्रतापसिंह—(क्रोधपूर्वक, मोछों पर हाथ फेरता हुआ) अरे अधम प्रताप धिक्कार है तुझको ! छिः !

"पराधीन ह्वै कौन चहै जीवौ जग माँही।
को पहिरै दासत्वशृंखला निज पग माँही ॥

---

* खेद का विषय है कि पृथ्वीराज के पत्र की मूल प्रति हमें प्राप्त न हो सकी। उदयपुर से भी नैराश्यपूर्ण उत्तर मिला। बाबू गोकर्णसिंहजी बाँकीपुर निवासी द्वारा केवल ये आठ सोरठे और दोहे हमें मिले हैं—

सोरठा

अकबर घोर अँधार, ऊघाणा हिंदू अवर।
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥ १ ॥
अकबरिये इक वार, दागिल की सारी दुनी।
अण दागल असवार, एकज राण प्रताप सी ॥ २ ॥
अकबर समद अथाह, सूरायण भरियो सुजल।
मेवाडो तिण माह, पोयण फूल प्रतापसी ॥ ३ ॥
आई हों अकबरियाह, तेज तिहारी तुरकडा।
नगि नमि नौसरियाह, राण बिनासह राजवी ॥ ४ ॥
चौथी चेतौडाह, बांटी बाजंती लणूं।
दीसै मेवाड़ाइ तो सिरगण परताप सी ॥ ५ ॥

दोहा

जननी सुत अहडा जणे, जहडो राण प्रताप।
अकबर सूतो औधके, जाण सिराणे साप ॥ ६ ॥

सोरठा

पातल पाघ प्रमाण, साँची सांगा हरतणी।
रही अभोगत राण, अकबर सू ब भी अणी ॥ ७ ॥
सोवै सह ससार, असुर पलोलै ऊपरै।
जागै तू निणवार, पाहेरे राण प्रताप सी ॥ ८ ॥

इक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम।
पल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहु ते उत्तम ॥*"

सुनो सुनो—

जब लौं तन मैं प्राण न तब लौं मुख को मोडौं।
जब लौं कर मे शक्ति न तब लौ शस्त्रहि छोड़ौं ॥
जब लौं जिह्वा सरस दीन बच नहि उच्चारौं।
जब लौं धड़ पर सीस झुकावन नाहिं बिचारौं ॥
जब लौं अस्तित्व प्रताप को क्षत्रिय नाम न बोरिहौं।
जब लौं न आर्यध्वज नभ उडै तब लौं टेक न छोरिहौं ॥

[नेपथ्य मे]

जब लौं जग परताप, क्षत्रियत्व तब लौं अभय।
कौन करत परिताप, परि संसय निर्मूल मैं ?

प्रतापसिंह—आहा ! गुरुदेव अच्छे समय आए। चलैं उनसे परामर्श करके पृथ्वीराज को उत्तर लिख दें।

(प्रस्थान)

षष्ठ गर्भांक

स्थान—मेवाड़ का सीमाप्रांत

(आगे आगे घोड़े पर सवार राणा प्रतापसिंह, पीछे पीछे घोड़े पर कुछ सरदार लोग)

राणा—मेरे विपत्ति के सहायक भाइयो, मेरे साथ तुम लोगो ने बड़े दु.ख उठाए और अंत मे अब यह दिन आया कि मुझ भाग्य-हीन के साथ तुम्हे भी अपनी प्यारी जन्मभूमि को छोड़ना पड़ता है। आहा सच है—

---

* "हिंदी बंगवासी" १२ अप्रैल सन् १८९७ से उद्धृत।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।"

एक सर्दार—अन्नदाता ! यह आपके कहने की बात है ? क्या आप अपने लिये यह कष्ट उठा रहे हैं ? जिस जन्मभूमि की रक्षा मे आप इतने दु ख सह रहे हैं वह क्या हमारी नही है ? उसकी रक्षा क्या हमारा कर्त्तव्य नही है ?

राणा—पर भाई इस अधम प्रताप के किए जन्मभूमि की रक्षा भी तो नही हुई ? अब तो जन्मभूमि को भी शत्रुओं के हाथ मे छोड़कर अज्ञातवास करने चले हैं ।

सर्दार–क्या हुआ पृथ्वीनाथ, कोई यह तो न कहेगा कि राणा प्रताप-सिह ने सुख की चाह मे अपनी जननी जन्मभूमि को यवनो के हाथ बेचा ? परमेश्वर की लीला कौन जानता है, क्या आश्चर्य है कि फिर ऐसा समय आवै जब श्री हुजूर अपने देश को शत्रुओ से लौटा सकैं, धर्मावतार, उस समय कलकित पैर से तो इस राज-सिहासन पर न चढ़ेंगे ।

राणा—इसमे तो संदेह नहीं, और फिर अपनी आँखों से अपने देश की यह दुर्दशा देखते हुए जीते रहने से तो अनजाने विदेश मे मरना ही अच्छा, क्योकि—

"मरनो भलो विदेश को जहाँ न अपुनो कोय ।
माटी खायँ जनावराँ महा महोच्छव होय ।।"

एक सर्दार—ठीक है—

"दुरदिन पड़े रहीम कहि दुरथल जैए भाग ।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागत आग ।।"

राणा—सच है, अच्छा चलो भाइयो ! चलो, अब इस स्थान की मोह माया छोड़ौ । (आँखो मे आँसू भरकर)—

"जेहि रच्छी इक्ष्वाकु सो अब लौं रविकुलराज ।"
हाय अधम परताप तू तजत ताहि है आज ।।

तजत ताहि है आज प्राण सम प्यारी जो ही।
हे मिवार सुखसार कृपा करि छमियो मोही॥
रह्यो सदा करि भार काज आयो तुम्हरे कहि।
बिदा दीजिए हमैं भार हलकाय आजु जेहि॥

(सब लोग सजलनेत्र से बेर बेर पीछ की ओर देखते देखते घोड़ा बढ़ाते हैं और दूर से घोड़ा दौड़ाते हाथ उठाकर इन लोगो को रोकते हुए भामाशा दिखाई पड़ते हैं)

भामाशा—(पुकारकर) ओ मेवार के मुकुट ! ओ हिंदू नाम के आश्रयदाता ! तनिक ठहरो, इस दास की एक बिनती सुनते जाओ। भामाशा को अकेले छोड़कर मत जाओ।

राणा—(घोड़ा रोककर) भामाशा ऐसे घबराए हुए क्यो आ रहे हैं ?

(भामाशा पास आ जाते हैं और घोड़े से कूदकर राणा के पैरों पर रोते हुए गिरते हैं, राणा घोड़े से उतरकर भामाशा को उठा छाती से लगाते हैं, दोनों खूब रोते हैं)

राणा—मंत्रिवर, तुम ऐसे धीर वीर होकर आज ऐसे अधीर क्यों हो रहे हो ?

भामाशा—प्रभो, मेरे अधैर्य का कारण आप पूछते हैं ?

धिक सेवक जो स्वामि-काज तजि जीवन धारै।
धिक जीवन जो जीवन हित जिय नाहि बिचारै॥
धिक सरीर जो निज कर्तव्य विमुख ह्वै बचै।
धिक धन जो तजि स्वामिकाज स्वारथ हित संचै॥
धिक देशशत्रु किरतघन यह भामा जीवत नहि लजत।
जेहि अछत वीर परताप बर असहायक देशहि तजत॥

राणा—परंतु इसमे तुम्हारा क्या दोष है ? तुमने तो अपने साध्य भर कोई बात उठा नहीं रखी ?

भामाशा—अन्नदाता, यह आप क्या कहते हैं ? परमस्वार्थी भामाशा ने आपके लिये क्या किया ? अरे आपके अन्न से पला हुआ यह शरीर सुख से कालक्षेप करै और आप बन बन की लकड़ी चुनैं और पहाड़ पहाड़ टकरायँ ! प्रतापसिंह स्वाधीनता रक्षार्थ, हिंदू नाम अकलंकित करणार्थ देशत्यागी हों और भामाशा अपने जन्म-भूमिनिवास का स्वर्गोपम सुख भोगै । जिन राणा की जूतियों के कारण भामाशा भामाशा बना है, वही राणा पैसे पैसे को मुहताज हों, सहायताहीन होने के कारण निज देशोद्धार में असमर्थ हों, प्राणोपम जन्मभूमि को छोड मरुभूमि की शरण ले, और भामाशा धनी मानी बनकर, ऐसे उपकारी स्वामी की सेवा छोड़कर, विदेशीय विजातीय हिंदू नाम को कलंकित करनेवाले राजा की प्रजा बनकर सुखपूर्वक कालयापन करे । धिक्कार है ऐसे धन पर । धिक्कार है ऐसे सुख पर !! धिक्कार है ऐसे जीवन पर !!!

राणा—पर भामाशा, तुम इसको क्या करोगे, जो भाग्य में होता है वही होता है, अब तुम क्या चाहते हो ?

भामाशा—धर्मावतार, आज मेरी एक बिनती स्वीकार हो, यही मेरी अंतिम बिनती है ।

राणा—क्या प्रतापसिंह ने कभी तुम्हारी बात टाली है ?

भामाशा—तो अन्नदाता ! एक बेर फिर मेवार की ओर घोड़े की बाग मोड़ी जाय । इस दास के पास जो पचीसों लाख रुपये की संपत्ति दर्बार की दी हुई है उसी से फिर एक बेर सेना एकत्रित की जाय और एक बेर फिर मेवार की रक्षा का उद्योग किया जाय । जो इसमे कृतकार्य हुए तब तो ठीक ही है और नहीं तो फिर जहाँ स्वामी वहीं सेवक, जहाँ राजा वहीं प्रजा ।

(राणा सरदारों की ओर देखते हैं)

भामाशा—आप इधर उधर क्या देखते हैं, अरे यह धन क्या मेरा या मेरे बाप का है, यह सभी इन्हीं चरणों के प्रताप से है। मैं तो आगोरदार था अब तक अगोर दिया, अब धनी जाने और उनका धन जाने।

कविराज—धन्य मंत्रिवर, धन्य ! यह तुम्हारा ही काम था—

जेहि धन हित संसार बन्यो बौरो सो डोलै।
जेहि हित बेचत लोग धर्म अपुने अनमोलै॥
जो अनर्थ को मूल सूल हिय मे उपजावै।
पिता पुत्र, पति पत्नि, अनुज सों अनुज छुड़ावै॥
सो सात पुरुष संचित धनहि तृण समान तुम तजत हौ।
धन स्वामिभक्त मंत्रीप्रवर ताहूँ पैं तुम लजत हौ॥

[बहुत से राजपूत और भीलों का कोलाहल करते हुए प्रवेश]

सब—महाराज, हम लोगों को छोडकर आप कहाँ जा रहे हैं? चलिए एक बेर और लौट चलिए, जब हम सब कट मरैं तब आपका जिधर जी चाहे पधारैं।

राणा—जो आप लोगों की यही इच्छा है तो और चाहिए क्या ?

चलो चलो सब वीर आजु मेवार उबारैं।
अहो आज या पुण्यभूमि तें शत्रु निकारैं॥
चिर स्वतंत्र यह भूमि यवन कर सों उद्धारैं।
हिंदू नामहि थापि धर्म अरिगनहि पछारैं॥
नभ भेदि आजु मेवार पै उडै सिसोदिया कुल ध्वजा।
जा सीतल छाया तरे रहै सदा सुख सों प्रजा॥

(चारो ओर से "महाराणा की जय" "हिंदूपति की जय" आदि पुकारते हुए लोग उमंग पूर्वक कूदते उछलते हैं)

[पटाक्षेप

सप्तम गर्भांक

स्थान—दिल्ली—शाही महल

(अकबर और खानखाना)

अकबर—उदयपुर से तो निहायत ही मनहूस खबर आई है, राणा के वफादार वजीर ने अपनी पुश्तहापुश्त की कमाई दौलत बेदरेग राणा को दे दी है। सुना है उसके पास इतनी दौलत है जिससे वह पचीस हजार फौज की बारह बरस तक परवरिश कर सकता है। शाबाश है उसकी दर्यादिली और वफादारी को, आफरीं है उसके हुब्बेवतनी और बेदारमगजी को। क्या दुनिया में ऐसे भी लोग हैं ?

खानखाना—और सुना है, प्रताप बड़े जोश के साथ फौज मुहय्या कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।

अकबर—वाह रे प्रतापसिंह, मैंने भी बहुत सी तवारीखे देखी हैं मगर इसकी मिसाल मुझे कोई न मिली, शाबाश! गजब का बहादुर और गजब का जफाकश है।

खानखाना—मगर खुदावन्द, अब तो मेरी यही इल्तिजा है कि ऐसे शख्स को अब जियादा तकलीफ न दी जाय। हुजूर, ऐसे बहादुर शख्स को सताना नाजेबा है।

अकबर—दिल तो हमारा भी यही चाहता है कि अब प्रताप-सिंह को बाकी जिंदगी आराम से काटने दें। राजा पृथ्वीराज आते हैं, देखें इनके पास राणा का क्या जवाब आया है ?

[पृथ्वीराज का प्रवेश]

अकबर—आइए राजा साहब तशरीफ रखिए, कहिए उदयपुर से कुछ जवाब आया ?

पृथ्वीराज—हाँ जहाँपनाह, राणाजी लिखते हैं "मैंने कभी संधि की प्रार्थना नही की, मेरी यदि कोई प्रार्थना है तो यही है कि अकबर स्वय युद्ध-स्थल मे आवे, एक हाथ मे उनके तलवार हो और एक मे हमारे, तब हमारा जी भर जाय, वह क्या वहाँ से बैठे बैठे लड़कों को तथा अपने साले ससुरो को भेजते हैं, हम क्या इन पर शस्त्र चलावे ?"

अकबर—ठीक है, बहादुर प्रतापसिह जो कुछ कहै सब बजा है, ये कलमे उसी को जेबा हैं।

खानखाना—अब तो जहाँपनाह मेरी इल्तिजा कुबूल हो और प्रतापसिह पर बखशिश की निगाह मबजूल हो।

अकबर—नवाब साहब, अगर आप लोगो की यही राय है तो मुझे कोई उज्र नही है। शहबाजखाँ को लिख भेजिए वापस चले आयँ।

पृथ्वीराज—(स्वगत) धन्य गुणग्राहकता, यह अकबर ही के हृदय का काम है।

[एक चोबदार का प्रवेश]

चोबदार—(जमीन छूकर सलाम करके) जहाँपनाह, उदयपुर से एक सिपाही आया है।

अकबर—फौरन हाजिर लाओ।

[घबराए हुए एक मुसलमान सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—(जमीन छूकर सलाम करके) खुदावंद, बडा गजब हुआ, राना ने उदयपुर फिर दखल कर लिया।

अकबर—सब सरगुजश्त जल्द बयान कर जाओ।

सैनिक—आलीजाह, परताप मुतवातिर शिकस्त खाते खाते शिकस्तः-दिल होकर अरवली की सरहद छोड़कर भागने की फिक्र मे हुआ। हम लोगों को इतमीनान हुआ कि अब मेवार बे खरखशः हो

गया, मगर इतने ही मे उसके वजीर ने उसे बहुत सी दौलत की मदद दी और वह एकाएक बड़ी फौज इकट्ठा कर हम लोगो पर टूट पड़ा, सिपहसालार शहबाजखाँ की फौज को टुकड़े टुकड़े काट डाला, अब्दुल्लाखाँ और उसकी फौज बिल्कुल मारी गई। गरीबपरवर हम लोगो पर मुतवातिर ३२ हमले किए गए। करीब करीब तमाम मेवार इस वक्त दुश्मनों के कब्जे मे है। सुना गया है कि अम्बर तक राना चढ़ गया था और मालपुरा की बाजार लूट ले गया। मैं किसी तरह जान बचाकर हुजूर को खबर देने आया, और लोगों की मालूम नही क्या हालत है।

अकबर—(क्रोधपूर्वक खानखाना से) कहिए अब आप क्या फर्माते हैं ?

खानखाना—खुदावन्द, प्रताप के लिये तो यह कोई नई बात नही है, मगर हुजूर का हुक्म जो एक मर्तबा जुबान मुबारक से निकल चुका क्योंकर पलट सकता है ?

अकबर—मगर इसमे सख्त बदनामी होगी।

पृथ्वीराज—जगत्‌विजयी अकबर के उद्दंड प्रताप को कौन नही जानता ? प्रताप के मुकाबिले अकबर को कौन बदनामी दे सकता है ?

खानखाना—और फिर मेरी अकल-नाकिस में तो प्रताप ऐसे बहादुर से दरगुजर करना ऐन फख्र का बाइस है बल्कि उसे सताना ही बदनामी है।

(नेपथ्य से "अजान" का शब्द सुनाई दिया)

अकबर—नमाज का वक्त हो गया, इस वक्त यह शूर' मुलतवी रहै, फिर गौर किया जायगा।

(सभों का प्रस्थान)

———

अष्टम गर्भांक

स्थान—उदयपुर—राज-दर्बार

(परम सुसज्जित तथा आलोकमय राजसिंहासन पर महाराणा प्रतापसिंह विराजमान, दोनों ओर गुलाबसिंह, भामाशा, कविराजा आदि तथा राजपूत और भील सरदारगण श्रेणीबद्ध खड़े हैं। नर्तकी-गण नाचती और गाती हैं)

गाओ गाओ आनंद बधाइयाँ।
हिंदूपति छत्रिय-कुल-गौरव राणा सुख सरसाइयाँ।
राखी लाज आज भारत की अपुनी टेक निबाहियाँ॥
जुग जुग जीए मेरे साईं तन मन धन सब वारियाँ॥

राणा—मेरे प्यारे भाइयो! आज श्री एकलिंगजी की कृपा और तुम लोगों के उद्योग से यह दिन देखने मे आया कि इस पवित्र स्थान से हिंदूद्वेषी यवनों का पौरा गया और फिर आज हम लोगों ने अपनी प्यारी जन्मभूमि का दर्शन पाया। जिस स्वाधीनतारक्षार्थ हम लोगों के अगणित पूर्व-पुरुषो ने अकुंठित हो संग्रामस्थल मे परम प्रिय जीवन विसर्जन किया था, आज जगदीश्वर की कृपा से वह हमे प्राप्त हुई, इससे बढ़कर भी कोई आनंद की बात हो सकती है? प्यारे भाइयो, बस हमारा यही उपदेश है कि संसार मे जीना तो अपने गौरवसहित जीना, नहीं मरना तो हई है। आहा! महा-बाहु अर्जुन का कैसा आदरणीय और अनुकरणीय सिद्धांत था।

"आयुः रक्षति मर्माणि आयुरन्नं प्रयच्छति।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्॥"

कविराजा—ठीक है पृथ्वीनाथ, आप जो आज्ञा कर रहे हैं उसे प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप कर भी दिखाया। आहा!

जो न प्रगट होते प्रताप भारत-हितकारी।
को करि सकत कलंकरहित हिंदू व्रतधारी॥
अकबर से उद्दंड शत्रु दरि निज प्रण राखी।
को हिंदू गौरव को सब जग करतो साखी॥
या प्रबल म्लेच्छ इतिहास मैं हिंदू नाम बिलावतो।
को हे प्रताप बिनु तुव कृपा यह अपवाद मिटावतो॥

राणा—कविराजजी, आप मुझे व्यर्थ की बड़ाई देते हैं, मैं तो निमित्त मात्र था। जो ये सब राजपूत और भील सरदारगण सहायता न करते तो मैं अकेला क्या कर सकता था? आहा! झाला महाराज मानसिंह ने तृणवत् अपना शरीर दे दिया और मुझे बचाया, महाराज खंडेराव, राजा रामसिंह ऐसे वीर पुरुषो ने मेरे लिये क्या क्या न किया। हाय! मैं अब इनके लिये क्या कर सकता हूँ? बड़े कविराजा जी ने अपने देश की जैसी सेवा की और जिस भाँति प्राण दिया कौन नही जानता? जब तक पृथ्वी रहेगी इन लोगो का यश स्वर्णाक्षरो मे मेवार के इतिहास मे अंकित रहेगा। प्यारे चेतक ने पशु होकर मेरा जैसा उपकार किया उससे मैं कभी उऋण नही हो सकता। मंत्रिवर, जहाँ चेतक का शरीर गिरा है एक उत्तम समाधि बनवाई जाय और प्रति वर्ष उसके सम्मानार्थ वहाँ मेला लगाकर, मैं स्वयं वहाँ चला करूँगा। (कविराजा से) कविराजाजी, आप एक पर्वाना लिखिए कि जब तक मेरे और भामाशा के वंश मे कोई रहै, मंत्री का पद उसी को दिया जाय और मैं इन्हे प्रथम श्रेणी के सरदारों मे स्थान देकर झाट कपट ताजीम, पैर मे सोने का लगर पाग पर मॉझा आदि यावत् प्रतिष्ठा बखशता हूँ, जो इनकी सेवा के आगे सर्वथा तुच्छ है। (गुलाबसिंह के प्रति) वत्स गुलाबसिंह, तुमने अपने प्रण को जैसी दृढ़ता से निबाहा सबको

उससे शिक्षा लेनी चाहिए। आहा ! तुम्हारा और मालती का प्रेम आदर्श स्वरूप है। तुम दोनों ने अपने अपने प्रण को दृढतापूर्वक निबाहा, इसलिये अब विलब का प्रयोजन नही। मत्री, मेरी ओर से मालती के विवाह की तयारी की जाय। दायजे मे जागीर आदि का सब प्रबध मैं स्वयं करूँगा। आप एक शुभ मुहूर्त दिखलावे और अब इस शुभ संयोग मे विलब न करे, मैं स्वयं इन दोनों का विवाह अपने हाथ से करूँगा।

(गुलाबसिह राणा के पैरों पर गिरता है और राणा उठाकर उसे हृदय से लगाते हैं)

(राजकुमार के प्रति) देखो कुँवरजी अपने धर्म और देश-रक्षार्थ मैंने जो जो कष्ट सहे हैं तुमने अपनी आँखो से देखा है, देखो ऐसा न हो कि तुम हमारे पीछे विलास-प्रियता मे पड़ अपने पिता का नाम डुबाओ, प्रताप की कीर्ति पर धब्बा लगाओ और मरने पर मेरी आत्मा को सताओ। मेरे इन वाक्यो को सदा स्मरण रखना--

जब लौं जग मे मान तबहिं लौं प्रान धारिए।
जब लौं तन मे प्रान न तब लौं धर्म छाडिए॥
जब लौं राखै धर्म तबहि लौं कीरति पावै।
जब लौ कीरति लहै जन्म स्वारथ कहवावै॥
हे वत्स सदा निज वंश की मरजादा निरबाहियो।
या तुच्छ जगत सुख कारनै जिनि कुल नाम हँसाइयो॥

(सरदारों के प्रति)

मेवाड़ की शोभा, मेरे प्यारे भाइयो,—

यह बालक अज्ञान, सौंपत तुमको आजु हम।
जब लौं तन मे प्रान, मान जान जिनि दीजियो॥

(सब सरदारगण सिर झुका हाथ जोड़ सजलनेत्र पृथ्वी की ओर देखते हैं)

(नर्तकीगण गाती हैं)

यह दिन सब दिन अचल रहै।
सदा मिवार स्वतंत्र विराजै निज गौरवहि गहै॥
घर घर प्रेम एकता राजै, कलह कलेस बहै।
बल, पौरुष, उत्साह, सुदृढ़ता, आरजबंस चहै॥
वीरप्रसविनी वीरभूमि यह वीरहिं प्रसव करै।
इनके वीर क्रोध मैं परि अरि कायर कूर जरै॥
राजा निज मरजाद न टारै, प्रजा न भक्ति तजै।
परम पवित्र सुखद यह शासन सब दिन यहाँ सजै॥
जब लौं अचल सुमेरु विराजत जब लौं सिंधु गँभीर।
तब लौं हे प्रताप तुव कीरति गावैं सब जग वीर॥
हे करुणामय दीनबंधु हरि नित तुव कृपा बसै।
यह आरत भारत दुख तजिकै परम सुखहि बिलसै॥

[परम प्रकाश के साथ धीरे धीरे पटाक्षेप

(५) सती-प्रताप

इस रूपक के पहले चार दृश्यों को भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने लिखा था। पीछे से सन् १८९२ मे बाबू राधाकृष्णदास ने उसकी पूर्ति की। इसमे सावित्री सत्यवान की कथा दृश्य रूपक में दिखाई गई है।

संपादक

—— ——

उपक्रम

यह दृश्य रूपक स्वर्गीय भाई साहिब बाबू हरिश्चंद्रजी ने पूरा न किया था कि अपना जीवन पूरा कर हम लोगों को छोड़ परम-धाम चल बसे। यद्यपि इसके पूरा करने का साहस करना न केवल मूर्खता बरंच बड़े दोष का भागी होना है; परंतु दो विचारो ने इस दु:साहस पर आरूढ कराया, एक तो यह कि इस सर्वहितकारी ग्रंथ के अधूरा रह जाने से पूज्यपाद भाई साहब की अभिलाषा सिद्ध न होगी, दूसरे यह कि यदि कुछ त्रुटि होगी तो मुझे उनका वात्सल्य-भाजन जानकर पाठकगण अवश्य ही क्षमा करेंगे।

इस बात के प्रकाश करने की आवश्यकता नहीं है कि मेरा लिखा कहाँ से है क्योंकि लेख का भद्दापन आप ही प्रकाश कर देगा। मेरी इच्छा कदापि यह नहीं थी कि इसमे अपना नाम प्रकाश करूँ परंतु मेरी अशुद्धि कदाचित् भाई साहब की अकीर्ति का कारण हो इस विचार से यह प्रकाश किया गया।

यदि इसकी लेखप्रणाली सज्जनों को रुचैगी तो और भी ग्रंथों को पूरा करने का उद्योग करूँगा।

दासानुदास

राधाकृष्णदास

सती-प्रताप

(एक गीति-रूपक)

पहला दृश्य

हिमालय का अधोभाग

(तृणलतावेष्टित एक टीले पर बैठी हुई तीन,अप्सराएँ गाती हैं)

१ अप्सरा—

(राग झिझौटी)

जय जय श्री रुकमिन महरानी ।
निज पति त्रिभुवन-पति हरिपद मे छाया सी लपटानी ॥
सतीसिरोमनि रूपरासि करुनामय सब गुनखानी ।
आदि शक्ति जग-कारिनि पालिनि निज भक्तन सुखदानी ॥

२ अप्सरा—

(राग जगला या पीलू)

जग मे पतिव्रत सम नहि आन ।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग मे यासु समान ॥
अनसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान ।
पति देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान ॥
धन्य देस कुल जहँ निबसत हैं नारी सती सुजान ।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य ब्याह असथान ॥
सब समर्थ पतिबरता नारी इन सम और न आन ।
याही ते स्वर्गहु मे इनको करत सबै गुन गान ॥

३ अप्सरा—

(रागिनी बहार)

नवल बन फूलीं द्रुम वेली।

लह लह लहकहि मह मह महकहि मधुर सुगंधहि रेली ॥

प्रकृति नवोढ़ा सजे खरी मनु भूषन बसन बनाई।

आँचर उड़त बात-बस फहरत प्रेम धुजा लहराई ॥

गूँजहि भँवर विहंगम डोलहि बोलहिं प्रकृति बधाई।

पुतली सी जित तित तितली गन फिरहि सुगंध लुभाई ॥

लहरहि जल लहकहि सरोज मन हिलहि पात तरु डारी।

लखि रितुपति आगम सगरे जग मनहु कुलाहल भारी ॥

[पटाक्षेप

दूसरा दृश्य

तपोवन

(लता-मंडप मे सत्यवान बैठा हुआ है)

(रंग गीति-पीलू-धमार)

क्यो फकीर बन आया बे मेरे वारे जोगी।

नई बैस कोमल अंगन पर काहे भभूत रमाया बे ॥

किन वे मात पिता तेरे जोगी जिन तोहि नाहि मनाया बे।

कॉचे जिय कहु काके कारन प्यारे जोग कमाया बे ॥

(चैती गौरी तिताला)

बिदेसिया बे प्रीति की रीति न जानी।

प्रीति की रीति कठिन अति प्यारे कोई बिरले पहिचानी ॥

सत्यवान—यह कोमल स्वर कहाँ से कान मे आया ? प्रतिध्वनि के साथ यह स्वर ऐसा गूँज रहा है कि मेरी सारी कदवखंडी शब्द-ब्रह्ममय हो गई। बीच बीच मे मोर कुहुक कुहुककर और भी

गूँज दूनी कर देते हैं। (कुछ सोचकर) हाय! मेरा मन इस समय भी स्थिर नहीं। हाय! प्रासादों मे स्फटिक की छत पर चलने मे जिनके चरण को कष्ट होता था आज वह कंटकमय पथ में नंगे पाँवों फिर रहे हैं! और दुग्धफेन सी सेज के बदले आज मृग-चर्म पर सोते हैं। हाय! हमारे माता पिता बुढ़ापे से सामर्थ्यहीन तो थे ही ऊपर से दैव ने उन्हे अधा बनाया। हाय अभागे सत्यवान से कभी माता पिता की सेवा न बन पड़ी। कभी उनके वात्सल्य-पूर्ण प्रेमामृत-वचन ने मेरे कान न शीतल किए। और न ऐसा होना है। जनमते ही तो तपस्या करनी पड़ी। धन्य विधाता! दरिद्र को धनवान और धनवान को दरिद्र करना तो तुम्हे एक खेल है। किंतु दरिद्र बना के फिर क्यों कष्ट देते हैं! दारिद्र्य ही सही पर मन को तो शाति दो। भला दो घड़ी वृद्ध माता पिता की सेवा करने पावे। (चिंता)

(सावित्री को घेरे हुए गाते गाते मधुकरी, सुरबाला और लवंगी का आना और फूल बीनना)

सखी जन—

(गौरी)

भौंरा रे बौरानो लखि बौर।
लुबध्यौ उतहि फिरत मडरान्यौ जात कहूँ नहिं और—
भौंरा रे बौरानो॥

(चैती गौरी)

फूलन लागे राम वन नवल गुलबवा।
फूलन लागे राम—महुआ फले आम बौराने डारहि डार भँवरवा
झूलन लगे राम॥

(गौरी)

पवन लगि डोलत बन की पतियाँ ।
मानहु पथिकन निकट बुलावहि कहन प्रेम की बतियाँ ॥
अलक हिलत फहरत तन सारी होत हैं सीतल छतियाँ ।
यह छबि लखि ऐसी जिय आवत इतहि बितैए रतियाँ ॥

सुरबाला—सखी कैसा सुंदर वन है ।

लवंगी—और यह बारी भी कैसी मनोहर है ।

मधुकरी—आहा ! तपोवन ऋषि मुनि लोगों को कैसा सुखदायक होता है ।

सावित्री—सखी, ऋषि मुनि क्या तपोवन सभी को सुख देता है ।

सुरबाला—क्योंकि यहाँ सदा वसंत ऋतु रहती है न ।

सावित्री—वसंत ही से न तपोवन ऐसा नहीं है ।

मधुकरी—अहा ! यह कुंज कैसा सुंदर है । सखी देखो माधवी लता इस कुंज पर कैसी घनघोर छाई हुई है ।

सावित्री—सहज वस्तु सभी मनोहर होती है । देखो इस पर फूल कैसे सुंदर फूले हैं जैसे किसी ने देवता की फूल मंडली बनाई हो ।

सुरबाला—और उधर से हवा कैसी ठढी आती है ?

लवंगी—और हवा मे सुगंध कैसी है ?

मधुकरी—सखी ! एकटक उधर ही क्यों देख रही हो ?

सुरबाला—सच तो सखी, वहाँ क्या है जो उधर ही ऐसी दृष्टि गड़ा रही हो ?

लवंगी—तू क्या जानै । तपोवन में सैकड़ों वस्तुएँ ऐसी होती हैं ।

सावित्री—

(राग सोरठ)

लखो सखि भूतल चंद खस्यौ।
राहु केतु भय छोड़ि रोहिनिहि या बन आइ बस्यौ ॥
कै सिव-जय-हित करत तपस्या मनसिज इत निबस्यौ।
कै कोऊ बनदेव कुंज मे बनविहार बिलस्यौ ॥

मधुकरी—सच तो, तपसियों मे ऐसा रूप !

सुरबाला—जाने दो वनवासी तपस्वी मे ऐसा रूप कहो !

सावित्री—यह मत कहो। विधना की कारीगरी जैसी नगर मे वैसी ही वन मे। (सत्यवान की ओर सतृष्ण दृष्टिपात)

सुरबाला—देखती हो ? एक-मन एक-प्राण होकर कैसा सोच रही है ?

लवगी—(परिहास से) आज जो हम तापस कुमार के बदले राजकुमार होते तो घर बैठे गंगा बही थी।

मधुकरी—सखी इसका कुछ नेम नहीं है कि राजकुमारी का ब्याह राजकुमार ही से हो।

सावित्री—विधाता ने जिस भाव से राजपुत्र को सिरजा है उसी भाव से मुनिपुत्र को। और फिर राजधन से तपोधन कुछ कम नही होता।

सत्यवान—(आप ही आप) यह क्या वनदेवी आई हैं।

मधुकरी—हम उनके पास जाकर प्रणाम तो कर आवैं।

(मधुकरी का कुंज की ओर बढना और सत्यवान का लता-मंडप से निकलकर बाहर बैठना)

मधुकरी—(सत्यवान के पास जाकर) प्रणाम। (हाथ जोड़कर सिर झुकाना)

सत्यवान—आयुष्मती भव। आप लोग कौन हैं ?

मधुकरी—हम लोग अपनी सखी मद्र देश के जयंती नगर के राजा अश्वपति की कुमारी सावित्री के साथ फूल बीनने आई हैं।

सत्यवान—(स्वगत) राजकुमारी ! वामन को चंद्र स्पर्श।

मधुकरी—कृपानिधान ! आप सदा यहीं निवास करते हैं ?

सत्यवान—जब तक दैव अनुकूल न हो यहीं निवास है।

मधुकरी—इससे तो बोध होता है कि किसी राजभवन को सूना करके आप यहाँ आए हैं।

सत्यवान—सखी ! उन बातों को जाने दो।

मधुकरी—हमारे अनुरोध से कहना होगा। दयाल सज्जनगण अतिथि की यांचा व्यर्थ नहीं करते। विशेष करके पहले ही पहल।

सत्यवान—हम शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र हैं। हमारा नाम चित्राश्व वा सत्यवान है। इस मेध्यारण्य नामक वन मे पिता की सेवा करते हैं।

मधुकरी—(आप ही आप) तभी ! गंगा समुद्र छोड़कर और जलाशय की ओर नहीं झुकती। (प्रगट) तो आज्ञा हो तो प्रणाम करूँ।

सत्यवान—(कुछ उदास होकर) यह क्यों ? बिना आतिथ्य स्वीकार किए हुए ?

मधुकरी—इसका तो मैं सखी से पूछ लूँ तो उत्तर दूँ। (सावित्री के पास आकर) सखी ! कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा।

(सावित्री सखियों का मुँह देखती है)

लवंगी—(परिहास से) अवश्य, अवश्य। इसमे क्या हानि है ?

सावित्री—(कुछ लज्जा करके) सखी ! उनसे निवेदन कर दे कि हम लोग माता पिता की आज्ञा लेकर तब किसी दिन आतिथ्य स्वीकार करेंगे। आज विलंब भी हुआ है।

मधुकरी—(सत्यवान के पास जाकर) कुमारी कहती हैं कि किसी दिन माता पिता की आज्ञा लेकर हम आवेंगे तब आतिथ्य स्वीकार करेंगे। आप तो जानते ही हैं कि आर्यकुल की ललनागण किसी अवस्था मे भी स्वतंत्र नहीं हैं। इससे आज क्षमा कीजिए।

सत्यवान—(कुछ उदास होकर) अच्छा। (सखियों के साथ सावित्री का प्रस्थान) (उधर ही देखता है) यह क्या ? चित्त मे ऐसा विकार क्यो ? क्या स्वर्ण और रत्न मे भी मलिनता ? क्या अग्नि मे भी कीट की उत्पत्ति ? वह ! फिर वही ध्यान ! यह क्या ? अब तो जी नहीं मानता। चलें आगे बढकर बदली मे छिपते हुए चद्रमा की शोभा देखकर जी को शांति दें। (जाता है)

[पटाक्षेप

तीसरा दृश्य

जयंती नगर का गृहोद्यान

(जोगिन बनी हुई सावित्री ध्यान करती है)

(नेपथ्य मे वैतालिक गान)

प्र० वै०—नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि
फूल-माल गरे बन झालरि सी लाई है।
भँवर गुजार हरि नाम को उचार तिमि
कोकिला सी कुहुकि बियोग राग गाई है ॥
हरीचद तजि पतझार घर बार सबै
बौरी बनि दौरी चारु पौन ऐसी धाई है।

तेरे बिछुरे तें प्रान कत के हिमंत अंत
तेरी प्रेम जोगिनी बसंत बनि आई है ॥

द्वि० वै०—पीरो तन पर्यो फूली सरसों सरस सोई
मन मुरझान्यो पतझार मनों लाई है ।
सीरी स्वास त्रिबिध समीर सी बहति सदा
अँखियाँ बरसि मधुझरि सी लगाई है ॥
हरीचंद फूले मन मैन के मसूसन सों
ताही सों रसाल बाल बदि कै बौराई है ।
तेरे बिछुरे ते प्रान कंत के हिमत अंत
तेरी प्रेम जोगिनी बसंत बनि आई है ॥

प्र० वै०—"बरुनी बघबर मैं गुदरी पलक दोऊ
कोए राते बसन भगौंहैं भेख रखियाँ ।
बूड़ी जल ही मैं दिन जामिनी हूँ जागैं भौंह
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ ॥
आँसू ज्यौं फटिक-माल काजर की सेली पैन्हि
भई हैं अकेली तजि चली संग सखियाँ ।
दीजिए दरस देव कीजिए सँजोगिन ये
जोगिनि ह्वै पैठी हैं बियोगिनि की अँखियाँ" ॥

द्वि० वै०—एकै ध्यान एकै ज्ञान एकै मन एकै प्रान
दसो दिसि अबिचल एकै तान तानो है ।
जग मैं बसत हूँ मनहुँ जग बाहिर सी
हियौ तन दोऊ निसि दिवस तपानो है ॥
हरीचंद जोग की जुगति रिद्धि सिद्धि सब
तजि तिनका सी एक नेह को निभानो है ।

बिना फल आस सीस सहनी सहस्र त्रास
जोगिन सों कठिन बियोगिन को बानो है ॥
(सावित्री ध्यान से आंख खोलती है)

सावित्री—अहा ! एक पहर दिन आ गया। सखीगण अब तक नही आई। इसी से ध्यान भी निर्विघ्न हुआ, हमारी वासना सत्य है तो अंतर्गति जाननेवाली सती-कुल सरोजिनी भगवती भवानी हमारी भावना अवश्य पूर्ण करैंगी। मन बच कर्म से हमारी भक्ति पति के चरणारविंद मे है तो वह हमको अवश्य ही मिलैंगे। अथवा न भी मिलैं तो इस जन्म मे तो दूसरा पति हो नहीं सकता। स्त्री-धर्म बडा कठिन है। जिसको एक बेर मन से पति कहकर वरण किया उसको छोड़कर स्त्रीशरीर को अब इस जगत् में कैान गति है ? पिता माता बड़े धार्मिक हैं। सखियों के मुख से यह संवाद सुनकर वह अवश्य उचित ही करैंगे वा न करैंगे तो भी इस जन्म मे अन्य पुरुष अब मेरे हेतु कोई है नहीं। (अपना वेष देखकर) अहा ! यह वेष मुझको कैसा प्रिय बोध होता है। जो वेष हमारे जीवितेश्वर धारण करैं वह क्यों न प्रिय हो। इसके आगे बहु-मूल्य हीरों के हार और चमत्कारदर्शक वस्त्र सब तुच्छ हैं। वही वस्तु प्यारी है जो प्यारे को प्यारी हो। नहीं तो सर्व सम्पत्ति की मूल-कारण स्वरूपा देवी पार्वती भगवान भूतनाथ की परिचर्या इस वेष से क्यों करतीं। सती-कुल-तिलका देवी जनकनंदिनी को अयोध्या के बड़े बड़े स्वर्ग-विनिंदक प्रासाद और शची-दुर्लभ गृह-सामग्री से भी वन की पर्णकुटी और पर्वतशिला अति प्रिय थी, क्योकि सुख तो केवल प्राणनाथ की चरण-परिचर्या मे है। जब तक अपना स्वतंत्र सुख है तब तक प्रेम नहीं। पत्नी का सुख एक मात्र पति की सेवा है। जिस बात मे प्रियतम की रुचि उसी में सहधर्मिणी की

रुचि। अहा! वह भी कोई धन्य दिन आवेगा जब हम भी अपने प्राणाराध्य देवता प्रियतम पति की चरणसेवा मे नियुक्त होगी। वृद्ध श्वशुर और सास के हेतु पाक आदि निर्माण करके उनका परितोष करेंगी, कुसुम दूर्वा तुलसी समिधा इत्यादि बीनने को पति के साथ वन मे घूमेंगी। परिश्रम से थकित प्राणनायक के स्वेद-सीकर अपने अंचल से पोंछकर मंद मद वनपत्र के व्यजन-वायु से उनका श्रीअंग शीतल और चरण-सवाहनादि से श्रम गत करेगी। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं)

(गान करते हुए सखीगण का आगमन)

सखी-त्रय—

(ठुमरी)

देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो। जोगी पिय मन भाई हो।
खुले केस गोरे मुख सोहत जोहत दृग सुखदाई हो॥
नव छाती गाती कसि बाँधी कर जप माल सुहाई हो।
तन कंचन दुति बसन गेरुआ दूनी छबि उपजाई हो॥
देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो।

(सावित्री के पास जाकर)

लवंगी—

(लावनी)

सखि! बाले जोबन महा कठिन ब्रत कीनो।
यह जोग भेख कोमल अंगन पर लीनो॥
अबहीं दिन तुमरे खेल कूद के प्यारी।
पितु मातु चाव सों भवन बसो सुकुमारी॥
ओढ़ौ पहिरौ लखि सुख पावै महतारी।
बिलसौ गृह संपति सखी गईं बलिहारी॥

तजि देहु स्वाँग जो सबही बिधि सो हीनो ।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनो ॥

मधुकरी—सखि ! यही जगत की चाल जिती हैं कारी ।
उनके सबही बिधि मात पिता अधिकारी ॥
जेहि चाहैं ताकहँ दान करैं निज बारी ।
यामैं कछु कहनो तजनो लाज दुलारी ॥
विनती मानहु हठ मॉहि वृथा चित दीनो ।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनो ॥

सुरबाला—सखी ! औरहु राजकुमार बहुत जग मॉहीं ।
विद्या बुधि गुन बल रूप समूह लखाहीं ॥
चिरजीवी प्रेमी धनी अनेक सुनाहीं ।
का उन सम कोऊ और जगत मे नाहीं ॥
जाके हित तुम तजि राजभेष सुख भीनो ।
यह जोग-भेष निज कोमल अँग पर लीनो ॥

सावित्री—(ईषत् क्रोध से)

बस बस ! रसना रोको ऐसी मति भाखो ।
कछु धरमहु को भय अपने जिय मैं राखो ॥
कुलकामिनि ह्वै गनिका-धरमहि अभिलाखो ।
तजि अमृतफल क्यो विषमय विषयहि चाखो ॥
सब समुझि बूझि क्यौं निदहु मूरख तीनौं ।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनौं ॥

लवंगी—सखी को कैसा जल्दी क्रोध आया है ?

सावित्री—अनुचित बात सुनकर किसको क्रोध न आवेगा ?

सुरबाला—सखी ! हम लोगों ने जो वचन दिया था वह पूरा किया ?

सावित्री—वचन कैसा ?

सुरबाला—सखी, तुम्हारे माता पिता ने हम लोगो से वचन लिया था कि, जहाँ तक हो सकेगा, हम लोग तुमको इस मनोरथ से निवृत्त करैंगे।

सावित्री—निवृत्त करोगी ? धर्मपथ से ? सत्यप्रेम से ? और इसी शरीर मे ?

सुरबाला—सखी, शांत भाव धारण करो। हम लोग तुम्हारी सखी हैं कोई अन्य नही हैं। जिसमे तुमको सुख मिलै वही हम लोगों को करना है। यह सब जो कुछ कहा सुना गया, केवल ऊपरी जी से।

सावित्री—तब कुछ चिता नहीं। चलो अब हम लोग माता के पास चलै किंतु वहाँ मेरे सामने इन बातों को मत छेड़ना।

तीनो सखियाँ—अच्छा चलो।

[जवनिका-पतन

चौथा दृश्य

तपोवन—द्युमत्सेन का आश्रम

(द्युमत्सेन, उनकी स्त्री और ऋषि बैठे हैं)

द्युमत्सेन—ऐसे ही अनेक प्रकार के कष्ट उठाए हैं, कहाँ तक वर्णन किया जाय।

१ ऋषि—यह आपकी सज्जनता का फल है।

(छप्पय)

क्यौं उपज्यौ नरलोक ? ग्राम के निकट भयो क्यौं ?
सघन पात सों सीतल छाया दान दयो क्यौ ?
मीठे फल क्यौं फल्यौ ? फल्यौ तो नम्र भयो कित ?
नम्र भयो तो सहु सिर पैं बहु विपति लोक कृत।

तोहि तोरि मरोरि उपारिहैं पाथर हनिहैं सबहि नित।
जे सज्जन ह्वै नै कै चलिहि तिनकी यह दुरगति उचित॥

२ ऋषि—ऐसा मत कहिए। वरंच यों कहिए—

चातक को दुख दूर कियो पुनि दीनो सबै जग जीवन भारी।
पूरे नदी नद ताल तलैया किए सब भाँति किसान सुखारी॥
सूखेहू रुखन कीने हरे जग पूर्‌यौ महा मुद दै निज वारी।
हे घन! आसिन लौं इतनी करि रीते भए हूँ बड़ाई तिहारी॥

द्युमत्सेन—मोहि न धन को सोच, भाग्य बस होत जात धन।
पुनि निरधन सों दोस न होत यहौ गुन गनि मन॥
मोकहँ इक दुख यहै जु प्रेमिन हू मोहि त्याग्यौ।
बिना द्रव्य के स्वानहु नहि मोसों अनुराग्यौ॥
सब मित्रन छोडी मित्रता बन्धुन हू नातो तज्यौ।
जो दास रह्यौ मम गेह को मिलनहुँ मैं अब सो लज्यौ।

१ ऋषि—तो इसमे आपकी क्या हानि है? ऐसे लोगो से न मिलना ही अच्छा है।

द्युमत्सेन—नही उनके न मिलने का मुझको अणुमात्र शोच नही है। मुझको तो ऐसे तुच्छमना लोगों के ऊपर उलटो दया उत्पन्न होती है। मुझको अपनी निर्धनता केवल उस समय अति गढ़ाती है जब किसी सत्पुरुष कुलोन को द्रव्य के अभाव से दुखी देखता हूँ। उस समय मुझको निस्संदेह यह हाय होती है कि आज द्रव्य होता तो मैं उसकी सहायता करता।

२ ऋषि—आपके मन मे इसका खेद होता है तो मानसिक पुण्य आपको हो चुका। और आपकी मनोवृत्ति ऐसी है तो वह अवश्य एक न एक दिन फलवती होगी।

१ ऋषि—सज्जनगण स्वयं दुर्दशाग्रस्त रहते हैं तब भी उनसे जगत् मे नाना प्रकार के कल्याण ही होते हैं।

द्यु मत्सेन—अब मुझसे किसी का क्या कल्याण होगा। बुढापे से शरीर मे पौरुष हई नहीं। एक आँख थी सो भी गई। तीर्थ-भ्रमण और देवदर्शन से भी रहित हुए।

१ ऋषि—आपके नेत्रो के इतने निर्बल हो जाने का क्या कारण है ? अभी कुछ आपकी अवस्था अति वृद्ध नही हुई है।

द्यु मत्सेन—वही कारण जो हमने कहा था। (उदास होकर) पुत्रशोक से बढ़कर जगत् मे कोई शोक नही है। गणक लोगो ने यह कहकर कि तुम्हारा पुत्र अल्पायु है मेरा चित्त और भी तोड़ रखा है। इसी से न मैं ऐसा घर ऐसी लक्ष्मी सी बहू पाकर भी अभी विवाह सबंध नही स्थिर करता।

२ ऋषि—अहा! तभी महाराज अश्वपति और उनकी रानी इस संबंध से इतने उदास हैं। केवल कन्या के अनुरोध से संबध करने कहते हैं।

(हरिनाम गान करते हुए नारद जी का आगमन)

नारद—(नाचते और वीणा बजाते हुए)

(चाल नामकीर्तन महाराष्ट्री कटाव)

जय केशव करुणा कंदा। जय नारायण गोविंदा॥
जय गोपीपति राधानायक। कृष्ण कमललोचन सुखदायक॥
माधव सुररिपु रावणहंता। सीतापति जदुपति श्रीकंता॥
बुद्ध नृसिंह परशुधर बावन। मच्छ कच्छ वपुधर जगपावन॥
कल्कि वराह मुकुंदा। जय केशव करुणा कंदा॥
जय जय विष्णुभक्त भयहारी। वृंदाबन बैकुंठ बिहारी॥
जसुदा सुवन देवकीनंदन। जगबंदन प्रभु कंस-निकंदन॥

शख चक्र कौमोदकि धारी। वशीधर बक-बदन-विहारी ॥
जय वृंदावन चदा। जय केशव करुणा कंदा ॥
जय नारायण गोविंदा।

(सब लोग प्रणाम करके बैठाते हैं)

द्युमत्सेन—हमारे धन्य भाग्य कि इस दीनावस्था मे आपके दर्शन हुए।

नारद—राजन्, तुम्हारे पास सत्यधन तपोधन धैर्यधन अनेक धन हैं, तुम क्यों दीन हो ? और आज हम तुमको एक अति शुभ संदेश देने को आए हैं। तुम्हारे पुत्र का विवाह संबंध हम अभी स्थिर किए आते हैं। सावित्री के पिता को भी समझा आए हैं कि उनकी कन्या सावित्री अपने उज्वल पातिव्रत धर्म के प्रभाव से सब आपत्तियों को उल्लंघन करके सुखपूर्वक कालयापन करैगी और अपने पवित्र चरित्र से दोनों कुल का मान बढ़ावैगी। तुमसे भी यही कहने आए हैं कि सब संदेह छोड़कर विवाह का संबंध पक्का करो।

द्युमत्सेन—मुझको आपकी आज्ञा कभी उल्लंघनीय नहीं है। किंतु—

नारद—किंतु फिंतु कुछ नहीं। विशेष हम इस समय नहीं कह सकते। इतना मात्र निश्चय जानो कि अंत में सब कल्याण है।

द्युमत्सेन—जो आज्ञा।

नारद—अब हम जाते हैं।

(गान चाल भैरव ताल इकताला वा बाउल भजन की चाल पर ताल आड़ा)

बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम।
गोविंद गोविंद केशव केशव गोपाल गोपाल माधव माधव ॥

हरि हरि हरि वंशीधर वंशीधर श्याम नारायण वासुदेव।
नंदनंदन जगबंदन बृंदाबन चारु चंद्र गरे गुंजदाम॥
हरीचंद जनरंजन सरन सुखद मधुर मूर्त्ति।
राधापति पूर्ण करन सतत भक्त काम॥

(नृत्य और गीत)

[जवनिका पतन

———

पाँचवाँ दृश्य*

वनदेवी और वनदेवता आते हैं

दोनो—(गाते हुए)

हम वनवासी हो रामा।
जाँहि न पास नगर के कबही सबसे रहत उदासी हो रामा॥
फल भोजन फूलन के गहिना गिरि-कंदरा-निवासी।
जगत जाल सों बचि हम विहरत केवल प्रेम उपासी हो रामा॥

वनदेवी—(गाती हुई—पूरबी)

आओ प्यारे प्रान हमारे बैठो सीतल छाँही हो।

वनदेवता—तुमहुँ थकी ग्रीषम दुपहरिया चलौ दिए गलबाँही हो॥

(दोनों एक कुंज के पास जाते हैं)

वनदेवी—यह रसाल की सीतल छाया तापर मालति छाई हो।

वनदेवता—वैसे तुमहू प्यारी मेरे कंठ रहौ लपटाई हो॥

(दोनों कुंज मे एक शिला पर बैठते हैं)

वनदेवी—देखहु प्यारे उपवन सोभा कैसी छई लुनाई हो।

वनदेवता—वासो बढ़ि तुव अंग अंग मे प्यारी देत लखाई हो॥

---

* इस दृश्य से बाबू राधाकृष्णदास की कृति आरंभ होती है।

वनदेवी—प्राणनाथ ! देखो जब से सती-कुल-तिलक श्री सावित्री देवी के पवित्र चरण इस वन मे पड़े है तब से इसकी शोभा दूनी हो गई है ।

वनदेवता—इस वन मे जिस शोभा के अंकुर को महात्मा सत्य-वान ने लगा रखा था उसे पतिप्राणा सावित्री ने अभिसिचन करके पूरी उन्नति पर पहुँचाया । जैसे प्यारी ! तुमने हमारे प्रेमांकुर को सींचकर पुष्पान्वित किया ।

वनदेवी—प्राणवल्लभ ! पति भी स्त्री के लिये कैसा देवता है ।

पतिसम जग मे नहि कोउ देव ।
हम अबलन कहँ पति ही को बल प्रानपतिहि कहँ सेव ॥
पतिप्राना नारी सो सुख धन कोउ जग मे नहि लेव ।
पति बिनु नारीजीवन बिरथा ज्यो बारी बिनु नेव ॥

वनदेवता—भगवान तुम्हारी सी पतिप्राणा भार्या सबको दे ।

नारी सम जग मे नहिं सुखमूल ।
पतिबरता नारी मिलबे सम सुख नहि पायो भूल ॥
पतिहि उधारे तीन पुरुष सँग एक सुलच्छन नारि ।
ऐसी प्राणपियारी ऊपर दीजै सब जग वारि ॥

वनदेवी—आहा नाथ ! प्रेम सा अमूल्य रत्न ससार मे नहीं है । देखो उसके उदय होते ही तुम्हारे कमलनेत्रों मे मुक्ता फूल उठे । (मुँह फेरकर आँसू पोछती है और दोनों गले लगकर प्रेमाश्रु से अभिसिंचित होते हैं)

दोनों—गाओ सब मिलि प्रेम बधाई ।
प्रेमहि सुख सागर अरु प्रेमहि तीन लोक को राई ॥
प्रेम-रज्जु मैं बँध्यो सकल जग याकी फिरत दुहाई ।
प्रेमनाथ ही की स्वर्गहु मैं एकछत्र ठकुराई ॥

प्रेम ही जग का जीवन प्रान।
प्रेमहि सगरो काम करावत प्रेम बढ़ावत मान ॥
बिना प्रेम के जो नर जग मे सो नर पसू समान।
प्रेमहि सुख संपत्ति रतन को अति अनुपमतर खान ॥
प्रेम मैं निसि दिन बसत मुरारी।
बिना प्रेम पैए नहि पीतम लाख संपदा बारी ॥
बिना प्रेम रीझत नहिं प्यारो वृंदा बिपिन बिहारी।
प्रेमहि जग को तारन कारन प्रेमहि भव-भय-हारी ॥

वनदेवी—(नेपथ्य की ओर देखकर) प्यारे! देखो वह सती-सिरोमनि सावित्री देवी शोभा को बढ़ाती वन को हँसाती अपने प्राणपति के साथ इसी कुंज मे पधारती हैं।

वनदेवता—और देखो सत्यवान भी प्रेम मे मग्न अपनी प्यारी का मुख एकटक देखता और कोमल पुष्पकली की वर्षा करता मदोन्मत्त झूमता कैसा शोभायमान है। आहा! इन दोनों नव-किशोरों को तापसी वेष कैसा सजा है जैसे साक्षात् शिव पार्वती का जोड़ा हो।

वनदेवी—प्यारे चलो हम लोग इस कुंज की आड़ मे से इन दोनों के पवित्र प्रेम पुरान को सुनकर अपना जीवन चरितार्थ करें।

(दोनों कुंज की ओट मे छिपते हैं)

[पटाक्षेप

छठा दृश्य

(मालती कुंज मे शिला पर सावित्री और सत्यवान बैठे हैं)

सावित्री—तुम मेरे बहुत जतन के प्यारे।

तुव दरसन लालसा पियारे कह कह कठिन नेम नहिं धारे ॥

तुमहि प्रानधन जीवन-सर्वस तुम मम नैनन के तारे।

अब तौ नेकहु नाहिं टरौं पिय दुष्ट काल हू जो पै टारै ॥

सत्यवान—(मुख चुंबन करके)

तुव मुख चद चकोर ये नैना।

पलक न लगत पलहु बिनु देखे भूलि जात गति पलहु लगै ना ॥

अरबरात मिलिबे को निसि दिन मिलेइ रहत मनु कबहुँ मिलै ना।

भावत रसिक रसिक की बातैं रसिक विना कोउ समुझि सकै ना ॥

दोनों—प्रीत की रीति ही अति न्यारी।

लोक वेद सब सो कछु उलटो केवल प्रेमिन प्यारी ॥

को जानै समझै को याको बिरली समझनहारी।

हरीचंद अनुभव ही लहिए जामैं गिरवरधारी ॥

सत्यवान—प्यारी! जब से तुम यहाँ पधारी तब से इस वन की शोभा ही दूसरी हो गई। अहा! वह सुंदर राजप्रासाद और वे सब सुख के सामान जैसे सुखद थे उनसे कहीं बढकर यह वन तुम्हारे कारण सुखप्रद है।

सावित्री—नाथ! यह सब केवल तुम्हारा ही प्रभाव है। भला मेरे भाग्य कहाँ जो मैं इस शरीर से तुम्हारी सेवा कर सकूँ, पर न जाने किस देवता की कृपा से आज मैं तुम्हारे चरणों की दासी हुई, जिसके लिये लोग जनम जनम पच मरते हैं पर नहीं पावे। (आँखों मे आँसू भर आते हैं)

सत्यवान—(गाढ़ आलिंगन करके) मेरी प्राण ! धन्य हमारे भाग्य जो तुम सी नारी हमने पाई। हमारे ऐसा बडभागी कोई स्वर्ग मे भी न होगा। अहा !

हम सम जग मैं नहि कोउ आन।
जा घर तुम सी नारि विराजत ताके कौन समान ॥
रूपरासि गुनरासि छबीली प्रेममयी मम जीवन प्रान।
सकल संपदा वारूँ तुम पर प्यारी चतुर सुजान ॥

सावित्री—प्राणनाथ ! क्यों मुझे लजाते हो ? मैं कदापि तुम्हारे योग्य नही। न जाने मेरे कौन से पुरबले पुन्य उदय हुए जो आपकी श्रीचरणसेवा मेरे बाँट पड़ी। प्राणवल्लभ ! आपके गुणों का अनुभव जो मेरे चित्त को है उसे क्या यह बिचारी चमड़े की जीभ कभी भी जान सकती है ? (प्रेमाश्रु आँखो मे भर आते हैं)

सत्यवान—चलो रहने दो शिष्टाचार की बातें बहुत हो चुकीं। (ऊपर देखकर) ओ हो ! हम लोगों की बातों मे इतना दिन चढ़ आया। पिता के अग्निहोत्र का समय हो गया। अभी लकड़ी चुनकर ले जाना है। प्यारी ! तुम यही ठहरो मैं अभी काष्ठ लेकर आता हूँ।

सावित्री—नही प्राणनाथ ! तुम्हे जाने देने को जी नहीं चाहता। आज न जाने क्यों जी उदास हो रहा है। न जाने कैसा कैसा जी कर रहा है, आप मत जाइए।

सत्यवान—स्त्रियो का स्वभाव अत्यंत कोमल और प्रेममय होता है इसी से तुम्हारा जी ऐसा हो रहा है और कुछ बात नहीं है। अब हम जाते हैं।

सावित्री—(दहिनी आँख का फड़कना दिखाकर) नहीं नहीं, आप मत जाइए, देखिए मेरी दहिनी आँख फड़कती है। आज न जाने क्या होनहार है ! मैं आपको न जाने दूँगी।

सत्यवान—यह स्त्रियो के स्वाभाविक दौर्बल्य का कारण है और कुछ भी नही है। होता वही है जो उसकी इच्छा होती है। अब तुम आग्रह मत करो, हमे जाने दो, देर हो रही है, पिता दिक हो रहे होंगे! (जाता है और सावित्री वेर बेर मना करती है और व्याकुलता नाट्य करती है)

सावित्री—(अत्यंत उदास होकर) आज जी ऐसा क्यों हो रहा है! आज ऐसा जान पडता है कि कोई भारी अनर्थ होगा। (चौंककर) हैं! क्या आज ही वह भयानक दिन है जो मुनि ने बतलाया था? हाय! मैंने बुरा किया जो प्राणनाथ को अकेले जाने दिया। हाय! अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? क्या मुझ निगोडी को मौत नही है? प्राणनाथ तुम कहाँ गए? एक बात हमारी सुनते जाओ। (कुछ ठहरकर) जान पड़ता है दूर निकल गए। तो चलूँ मैं ही खोजकर मिलूँ। मैंने बुरा किया जो आज उन्हें अकेले जाने दिया। (अत्यत व्याकुलता के साथ जाती है)

[नेपथ्य मे गान]

हाय सुख देख सकत नहिं नेक।
महा कठोर विधाता कीनी सुख भजन की टेक॥
द्वै दिन हू सुख सो नहि बीतत भोगत जग के चैन।
दुख-सागर बोरत अचानचक नेकहु दया करै न॥
जग के झूठे सुख सपति मे धोखेहु भूलहु नाहि।
अरे बावरे बेग धाइ गहु चरन तरोवर छाँहि॥

[पटाक्षेप

सातवाँ दृश्य

घोर अरण्य

(एक बडे वृक्ष के नीचे सत्यवान मूर्छित सा पडा है और
सावित्री उसका सिर अपनी गोद मे रखे
अत्यत व्याकुल बैठी है)

सावित्री—प्राणनाथ—जीवनधन—यह तुम्हे क्या हुआ ? अरे अभी ताे अच्छे विच्छे हमसे बिदा होकर आए थे अभी यह क्या दशा हो गई ? हाय ! यह गुलाब की पत्ती सा कोमल सुंदर मुख इतनी ही देर मे ऐसा श्याम क्यों हो गया ? अरे कोई दौडे रे—किसी वैद्य गुणी को बुलाओ—(कुछ ठहरकर) हाय ! यहाँ कौन बैठा है जो मेरी इस विपत्ति मे सहायता करेगा—हे दीनानाथ अशरण-शरण ! मुझे सिवाय तेरे और कोई अवलंब इस समय नही है—देखो तुम्हारे रहते मैं अबला इस घोर वन मे अनाथों की तरह लूटी जाती हूँ—मुझे बचाओ ।

सत्यवान—(कुछ सचेत होकर सावित्री की ओर देखकर) प्रिये तुम यहाँ कहाँ ? मैं तो चला; मेरे कारण तुम्हे बड़े बडे कष्ट उठाने पड़े, मुझे क्षमा करना और कभी कभी इस अभागे की भी स्मरण करना—(कुछ रुककर) पिता से मेरा बहुत तरह सें प्रणाम कहना और कहना कि मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि मैं आपकी सेवा बहुत कम करने पाया । मेरे अपराधों को आप क्षमा करैं—मातृचरण मे भी मेरा प्रणाम पहुँचाना । मुझे बडा ही दु:ख है कि मैं अंत समय उनके दर्शन न कर सका—तुम अपने सास ससुर की सेवा बड़ी सावधानता से करना, भगवान के चरणो मे सदा स्नेह रखना । (घबडाहट नाट्य करके) उह ! अब चले कंठ सूखा जाता है । बड़ी प्यास लगी है । पानी—पानी—

सावित्री—(घबडाकर) हाय! यहाँ पत्र भी नहीं कि पानी लाऊँ। (दौड़कर अंचल में भिगाकर पास के तालाब से पानी लाकर सत्यवान के मुँह मे निचोडती है)

सत्यवान—(कुछ स्थिर हो जाता है) धन्य देवी धन्य। इस समय तुमने मानो अमृत के बूँद चुआ दिए।

सावित्री—इन सब बातो को रहने दीजिए यह बतलाइए अभी तो आप अच्छे चंगे थे, अभी यहाँ क्या हो गया?

सत्यवान—(मुमुर्षू अवस्था मे) मैं—तुम—से—बिदा होकर लकड़ी चुनने आया। इस झाड़ी मे घुसकर उस सूखे वृक्ष की लकडा ज्योंही काटी मुझे जान पड़ा मानो मेरा सिर एकदम उडा जाता है। ऐसी भारी वेदना मेरे सिर मे अकस्मात् उठी कि मैं किसी तरह सम्हल न सका, किसी किसी तरह झाड़ी से निकला, यहाँ तक आते आते तो असुध होकर गिर ही पड़ा। फिर मुझे कुछ ज्ञान नहीं। जब ज्ञान हुआ तो तुम्हे बैठे पाया—उह! बड़ी ज्वाला, शरीर झुका जाता है—अब चला—(मूर्च्छित हो जाता है)

[नेपथ्य मे गान]

यमदूत है हम भूत हैं मजबूत हैं रन में।
सोने के घर को खाक हमी करते हैं छन मे॥

सावित्री—हाय! क्या यमदूत आ गए? क्या अब मुझसे प्राणनाथ का वियोग ही होगा? कभी नहीं—कभी नहीं—यदि हमारा सतीत्व सत्य है तों देखते हैं यमदूतों की क्या सामर्थ्य है जो प्राणनाथ के अंग को छू भी सकें।

(अंधकार हो जाता है और यमदूत आते हैं)

यमदूतगण—(गाते और नाचते हुए)

यमदूत है हम भूत हैं मजबूत हैं रन मे।
सोने के घर को खाक हमी करते हैं छन मे॥
हो बादशाह या भिखारी ही कोई हो।
ज्ञानी हो या कि पापी हो जो चाहे जोई हो॥
इक दिन सभी हमारे ही चगुल मे फँसेंगे।
उस दिन किसी फरेब से हमसे न बचेंगे॥
हम मुश्क बाँध बाँध के सबको ले जायँगे।
हम कूद कूद खूब ही डडे लगाएँगे॥
हम जिसको लेगे उससे जरा भी न डरेंगे।
जो कुछ कि जी मे आवैगा हम वही करेंगे॥
यमदूत हैं हम भूत हैं—

एक दूत—अरे तुम सब नाचा ही गाया करोगे या कुछ काम करोगे?

सब—(घबड़ाकर) हाँ हाँ चलो भाई सत्यवान के प्राण को अभी प्रभु के पास ले चलना है। (सब आगे बढ़ते हैं)

एक दूत—(डरकर) हैं! यहाँ तो आग सी जल रही है किसकी सामर्थ है जो इसमे कूदेगा? (सब आश्चर्य और भय से उसी ओर देखते हैं)

दूसरा—सच तो, हमने भी असंख्य जीवों के प्राण लिए, यही करते जन्म बीता; पर ऐसा चमत्कार कभी नही देखा था। अब महाराज से चलकर क्या कहैंगे?

तीसरा—छि:—तुम सब निरे डरपोक हो, हम लोग रातदिन के नरकाग्नि मे रहनेवाले लोग, हमारा इस आग मे क्या होना है, देखो हम अभी लाते हैं। (सत्यवान के पास तक जाता है और बड़े जोर से चिल्लाकर "अरे बाप रे मरे" कहकर अचेत हो गिरता है)

सब—(मारे डर के कॉपते हुए) भाइयो ! जान बचाना हो तो जल्दी यहाँ से भागो। जो दशा देखते हैं वही वहाँ निवेदन कर देंगे।

एक दूत—जरा ठहरो एक बेर इनसे यह तो कहना चाहिए कि ये हट जायँ। देखैं क्या कहती हैं तब वैसा चलकर कहैंगे।

दूसरा—तुम्हें अपनी जान भारी पडी हो तो कहो, हम तो न कहैं वहैंगे।

पहला—(साहसपूर्वक दूर से हाथ जोडकर) देवी ! तुम जरा सा हट जाओ तो हमारे प्रभु की जो आज्ञा है वह करके हम लोग शीघ्र ही प्रभु के पास जायँ। अब व्यर्थ दु.ख करने का क्या फल ?

सावित्री—(तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर) खबरदार एक पैर भी आगे मत रखना। जाकर अपने प्रभु से कह दो कि प्राण रहते हुए इस शरीर को न छूने दूँगी।

सब—(घबड़ाकर) अरे बाप रे जले रे ! (सब भागते हैं)

[नेपथ्य में गान]

(राग पीलू या जंगला)

जग मे पतिव्रत सम नहि आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग मे यासु समान ॥
अनसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान।
पति देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान ॥
धन्य देस कुल जँह निवसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह असथान ॥
सब समर्थ पतिव्रता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वर्गहु मे इनको करत सबै गुन गान ॥

[यमराज का हाथ मे लौह-दंड लिए हुए प्रवेश]

यम—(आप ही आप) आहा ! देखो सतीत्व का कैसा तेज है मानो प्रलयाग्नि बल रही हैं। मुझे यह निष्ठुर कार्य करते इतने दिन हो गए पर ऐसा अपूर्व दृश्य कभी नही देखा। (प्रगट) देवी ! तुम क्यों वृथा हठ करती हो। जब दिन पूरे हो जाते हैं तो किसी को सामर्थ्य नही है जो जीव को बचावै। तुम जरा हट जाओ हम सत्यवान के प्राण-वायु को ले जायँ।

सावित्री—(हाथ जोड़कर) महाराज ! ऐसी बात मत कहिए। इसके सुनने से हमारा कलेजा फटा जाता है। ये (सत्यवान) हमारे जीवनसर्वस्व हैं इनको छोड़कर हम कहाँ रह सकती हैं ?

यम—सावित्री ! तुम्हारे पवित्र सतीत्व मे कुछ संदेह नही—पर पूर्व जन्म के पाप का फल भोगना ही पडता है। विधाता के लेख को कौन मिटा सकता है ? अब व्यर्थ हठ मत करो, हट जाओ।

सावित्री—धर्मराज ! यदि आपको ऐसा ही आग्रह है तो मुझे भी ले चलिए, इनके (सत्यवान) बिना मैं जी ही कर क्या करूँगी ?

यम—यह हमारी सामर्थ्य से बाहर है; अभी तुम्हारे दिन नही पूरे हुए हैं अच्छा हमे अब बहुत देर होती है।

सावित्री—हाय ! आपको मुझ अबला पर तनिक भी दया नही आती !

यम—सावित्री ! हम क्या करैं हमारी क्षमता के बाहर जो बात है वह हम कैसे कर सकते हैं ? सत्यवान के सिवाय तुम और जो कुछ चाहो हम देने को प्रस्तुत हैं।

सावित्री—महाराज ! मेरे बूढे सास ससुर की आँखें जाती रही हैं सो आप कृपा करके दें।

यम— एवमस्तु । अच्छा लो अब हट जाओ । (सावित्री हट जाती है) और यमराज सत्यवान् के प्राणवायु को लेकर जाते हैं और पीछे पीछे सावित्री भी जाती है) ।

[नेपथ्य मे गान]

तुझ पर काल अचानक टूटैगा ।
गाफिल मत हो लवा बाज ज्यो हँसी खेल में लूटैगा ॥
कब आवैगा कौन राह से प्रान कौन विधि छूटैगा ।
यह नहि जानि परैगी बीचहि यह तन दरपन फूटैगा ॥
तब न बचावैगा कोई जब कालदड सिर कूटैगा ।
हरीचद इक वही बचैगा जो हरिपद रस घूँटैगा ॥

(वह पर्दा हट जाता है दूसरा दृश्य घोर अरण्य अंधकारमय दिखाई पडता है । आगे आगे यमराज पीछे पीछे रोते हुए सावित्री का प्रवेश)

यम—(फिरकर सावित्री को देखकर) देवि ! तुम क्यों हमारे साथ आती हो ? जाओ अपने घर । होना था सो तो हो चुका ।

सावित्री—सूने घर मे जाकर क्या करूँ ? जहाँ ये (सत्यवान) वहीं सावित्री ।

यम—तुम्हारे सतीत्व से हम अत्यत सतुष्ट हुए सत्यवान के प्राण को छोड़ और जो इच्छा हो सो माँगो ।

सावित्री—महाराज ! जो आप प्रसन्न हैं तो हमारे ससुर का राज्य जो शत्रुओं ने छीन लिया है सो फिर मिलै ।

यम—तथास्तु । अच्छा अब तुम फिर जाओ ।

(यमराज आगे बढ़ते हैं सावित्री पीछे पीछे चलती है, वह पर्दा उठ जाता है, दूसरा दृश्य भयानक वन महा अंधकार)

यम—(पीछे देखकर) ऐं ! तुम अभी भी नहीं गईं ! क्यो व्यर्थ का प्रयास करती हो—जाओ—अब सत्यवान का मिलना असंभव ही समझो ।

सावित्री—धर्मराज ! एक बात और भी प्रार्थनीय है ।

यम—सत्यवान के सिवाय और जो कुछ चाहो मिल सकता है ।

सावित्री—महाराज ! मेरे श्वसुरकुल मे वंश चलानेवाला कोई नही है इससे मुझे यह वर दीजिए कि सत्यवान से मुझे एक सौ लडके हों ।

यम—तथास्तु ।

(यम आगे बढ़ते हैं सावित्री उनका अनुसरण करती है । वह पर्दा उठ जाता है । दूसरा दृश्य स्वर्ग का द्वार, महा उज्ज्वल तीन अप्सराएँ हाथ मे माला लिए खडी हैं)

अप्सरागण—आओ सावित्री के जीवन ।
बहुत दिनन की आसा पूजी अधरसुधा रस पीवन ॥
तुव हित प्रेम मालिका गूथी पहिरावैं निज हाथ ।
निर्भय ह्वै नदन वन बिहरैं पलहूँ तजै न साथ ॥

यम—(पीछे सावित्री को देखकर) क्या तुम अभी तक हमारे साथ ही हो ?

सावित्री—महाराज ! क्या अपने दिए हुए वर को अभी भूल गए ? इन (सत्यवान) का प्राणवायु मुझे दीजिए ।

यम—धन्य देवि धन्य ! मैं तुमसे हारा । यद्यपि विधाता के नियम के विरुद्ध है तथापि मैं तुम्हे सत्यवान का जीवन दान करता हूँ (सत्यवान का प्राण दान) आज से मैंने जाना सती नारी को सब कुछ करने की सामर्थ्य है, ससार मे सती का अकर्तव्य कोई काम नही है । सावित्री ! तुम्हारी यह विमल यशध्वजा अनंत

काल तक संसार मे उड़ती रहैगी, तुम्हारा पवित्र गुणगान संसार को पावन करता रहैगा, और तुम्हारा पूजनीय नाम पतिव्रता स्त्रियों का सर्वस्व होगा। आहा! इस अलौकिक सतीत्व के आगे मुझे भी पराजित होना पडा। सतीत्व की जय—सावित्री की जय! (यही शब्द चारों ओर से प्रतिध्वनित होता है और आकाश से पुष्प-वृष्टि होती है। तीनों अप्सरा सावित्री को बीच मे करके नाचती और गाती हैं)

गाओ सब मिलि प्रेमबधाई।
पतिप्राना नारी के आगे काहू की न बसाई॥
पतिहि जिवायो निज सतीत्व बल कालहु दियो हराई।
इनके जस की सुभग पताका तीन लोक फहराई॥
थाप्यो थिर करि प्रेम पंथ जग निज आदर्श दिखाई।
देव-बधूगन आनंदित ह्वै प्रेम बधाई गाई॥

(सावित्री वहाँ से चलती है और एक एक करके वही दृश्य दिखलाई पड़ते हैं जो सावित्री को यमराज के साथ दिखलाई पड़े थे, अंत मे वन का वह दृश्य दिखलाई पड़ता है जिसमें सत्यवान का मृत शरीर पड़ा है। सावित्री उसमे प्राण संस्थापन करती है और सत्यवान उठता है जैसे कोई सोता हुआ जागे)

सत्यवान—(अँगड़ाई लेकर) उह! कैसा भयानक दुःस्वप्न मैंने देखा है। मानो कोई महाविकराल मूर्ति धारण किए महाकाल मेरे प्राण को लेकर चला है। रास्ते मे कैसे कैसे घोर वन और भयानक नरक कुंड मिले हैं जिसके स्मरण होने ही से रोमांच हो जाता है। फिर मानो वह महाकाल स्वर्ग के द्वार पर मुझे ले गया है। वहाँ

मुझे वरण करने के लिये तीन अप्सरा खड़ी हैं। इतने मे मानो किसी स्वर्गीय देवी ने मेरा प्राणदान महाकाल से ले लिया है और वह देवी मानो हूबहू तुम्हीं हो। उफ! कलेजा काँपता है। हे जगदीश! रक्षा करो।

सावित्री—नाथ डरिए मत, अब कुछ चिंता नहीं। यह सब सत्य था, स्वप्न न था, पर अब कुछ डर नहीं।

सत्यवान—ऐं! क्या यह सब सच था? क्या मुझे महाकाल के पाश से तुम्हीं छुड़ा लाईं? धन्य देवि धन्य! (घबड़ाहट नाट्य करता है) अह! बेतरह सिर घूमता है। कुछ समझ नहीं पड़ता जागता हूँ या सोया।

(नारद मुनि बीन बजाते गाते आते हैं)

"बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम।
गोविंद गोविंद, केशव केशव, गोपाल गोपाल॥
माधव माधव, हरि हरि हरि वंशीधर वंशीधर श्याम।
नारायण वासुदेव नंदनंदन जगवंदन वृंदावनचारुचंद्र गरे गुंजदाम।
हरीचंद जनरंजन सरन सुखद मधुर मूर्ति राधापति पूर्ण करन सतत भक्तकाम॥

(सत्यवान सावित्री प्रणाम करते हैं)

नारद—मंगलमय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र सदा तुम लोगों का मंगल करैं। (सावित्री से) सावित्री आज तूने सती-कुल का मुख उज्ज्वल किया, आज तूने सतीत्व की वह ध्वजा फहराई जो अनंत काल तक उड्डीयमान रहैगी। तेरा यश देवांगनागण गा गाकर अपने को धन्य मानेंगी और तेरी पुण्य कथा संसार को पवित्र करैगी।

[लवंगी, मधुकरी और सुरबाला का प्रवेश]

सखीत्रय—वाह सखी वाह ! तुममे इतने गुण भरे हैं यह हम लोगों को तनिक भी विदित न था। धन्य तुम्हारा सतीत्व !

नारद—(सत्यवान से) पुत्र ! तुम्हारा धन्य भाग्य है जो तुमने ऐसी सती स्त्री पाई। (सावित्री का हाथ सत्यवान के हाथ मे देते हैं) लो, आज फिर मैं तुम्हे इस अमूल्य रत्न को सौंपता हूँ। इसे यत्न से रखना। (तीनों सखी और अप्सरागण सावित्री सत्यवान को बीच मे करके नाचती और गाती हैं। रंगशाला मे खूब प्रकाश हो जाता है।)

जय जय सावित्री महरानी।
सती-सिरोमनि रूपरासि करुनामय सब गुनखानी ।।
प्रेममयी निज पति के पद मे छाया सी लपटानी।
इनके जस की सुभग पताका तीन लोक फहरानी ।।
अचल प्रताप सतीत्व धरम को थाप्यो जग सुखदानी।
सती-मंडली भूषण ह्वैहै इनकी प्रेमकहानी ।।

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है और यवनिका गिरती है)